जपुजी साहिब

ॐ अन्नपूर्णा ®
Charitable Trust
WZ-5A/1, Ram Nagar,
Choukhandi Chowk,
New Delhi-110018

जपुजी साहिब

डॉ. टी. आर. शंगारी

राधास्वामी सत्संग ब्यास

विषय-सूची

प्रकाशक की ओर से	7
पाठकों से निवेदन	9
भूमिका	11
निजी भाव	19
मूल-मन्त्र	21-42
जपु	43-320
पउड़ी 1	47
पउड़ी 2	55
पउड़ी 3	64
पउड़ी 4	69
पउड़ी 5	98
पउड़ी 6	106
पउड़ी 7	111
पउड़ी 8	114
पउड़ी 9	117
पउड़ी 10	119
पउड़ी 11	121
पउड़ी 12	128
पउड़ी 13	129
पउड़ी 14	130
पउड़ी 15	132
पउड़ी 16	139
पउड़ी 17	158
पउड़ी 18	160
पउड़ी 19	171
पउड़ी 20	176

पउड़ी 21 180
पउड़ी 22 189
पउड़ी 23 194
पउड़ी 24 196
पउड़ी 25 199
पउड़ी 26 211
पउड़ी 27 217
पउड़ी 28 224
पउड़ी 29 234
पउड़ी 30 242
पउड़ी 31 244
पउड़ी 32 251
पउड़ी 33 257
पउड़ी 34 260
पउड़ी 35 272
पउड़ी 36 275
पउड़ी 37 279
पउड़ी 38 296
सलोकु 316
'जपुजी' और परमात्मा 321
'जपुजी' और हुक्म 331
'जपुजी' और नाम 355
गुरु-घर और नाम 359
'जपुजी' और गुरु साहिब का जीवन-दर्शन 371
'जपुजी': एक विवेचन 397
सन्दर्भ-सूची 403
सहायक पुस्तकों की सूची 417
हमारे प्रकाशन 421

प्रकाशक की ओर से

सत्संग के प्रकाशन विभाग की तरफ़ से 'पूर्व के सन्त' नामक पुस्तक-माला के अन्तर्गत अब तक 20 से ज़्यादा सन्तों-महात्माओं और महापुरुषों के जीवन और उपदेश पर अधारित पुस्तकें छपवाई जा चुकी हैं। इन पुस्तकों का मुख्य उद्देश्य अलग-अलग धर्मों, जातियों, स्थान और समय से सम्बन्धित महापुरुषों के उपदेश में दिखाई देती समानता को प्रकट करना है।

कुछ देर से यह महसूस किया जा रहा है कि सन्तों-महात्माओं की प्रसिद्ध वाणियों पर भी पुस्तकें छपवाई जाएँ। इस क्रम में सब से पहले गुरु नानक साहिब की सुप्रसिद्ध रचना 'जपुजी साहिब' पर पुस्तक छपवाने का फ़ैसला किया गया। 'जपुजी' को सिर्फ़ गुरु-घर की वाणी में ही नहीं, संसार के सम्पूर्ण परमार्थी साहित्य में एक विशेष स्थान प्राप्त है। 'जपुजी' पर पुस्तक लिखने का कार्य डॉ. टी. आर. शंगारी को सौंपा गया।

डॉ. शंगारी इस से पहले साईं बुल्लेशाह, सन्त चरनदास, स्वामी शिवदयाल सिंह, बाबा फ़रीद और सरमद के जीवन और उपदेश पर पुस्तकें लिख चुके हैं। इसके अलावा आप परमार्थ के मूल-सिद्धान्तों पर आधारित पुस्तकें 'सन्तमत विचार' और 'नाम सिद्धान्त' लिख चुके है। डॉ. शंगारी को 'गुरु नानक साहिब की वाणी में हुक्म का संकल्प' विषय पर शोध-प्रबन्ध लिखने के लिए पंजाब यूनीवर्सिटी ने पी-एच. डी. की डिग्री प्रदान की है और आप तीस साल तक एम. ए. के विद्यार्थियों को गुरुवाणी और सूफ़ी दरवेशों का कलाम पढ़ाते रहे हैं। आप ने चार साल की कड़ी मेहनत और खोज के बाद प्रस्तुत पुस्तक तैयार की है।

इस पुस्तक का मूल उद्देश्य गुरु साहिब के उपदेश को सरल ढंग से पाठकों के सामने लाना है। लेखक ने अनेक विद्वानों, खोजियों और अनुभवी पुरुषों की पुस्तकों तथा पांडुलिपियों से लाभ उठाया है और गुरुवाणी के अनेक प्रसंगों की सहायता से 'जपुजी' में प्राप्त वाणी की विस्तृत व्याख्या की है। गुरु साहिब की वाणी में प्राप्त संकल्पों 'हुक्म', 'भाणा', 'हौमैं', 'नाम', 'कर्म और फल', 'संयोग-वियोग', 'दु:ख-सुख' आदि की व्याख्या की तरफ़ विशेष ध्यान दिया गया है क्योंकि गुरु साहिब के उपदेश को भली-भाँति समझने के लिए, इन संकल्पों को समझना बहुत ज़रूरी है। आशा है कि इस पुस्तक से पाठकों को गुरु नानक साहिब के उपदेश को गहराई और विशालता से समझने में सहायता मिलेगी। पुस्तक के सुधार के लिए प्राप्त हुए सुझावों से पूरा लाभ उठाने का प्रयत्न किया जायेगा।

डेरा बाबा जैमल सिंह,
ज़िला अमृतसर।
1.07.04

सेवा सिंह,
सेक्रेटरी,
राधास्वामी सत्संग ब्यास।

पाठकों से निवेदन

हिन्दी पाठकों में यह बात देखने में आती है कि वे गुरुवाणी का शुद्ध उच्चारण नहीं कर पाते हैं, क्योंकि गुरुवाणी में शब्दों के अन्त में ह्रस्व इ (ि) और ह्रस्व उ (ु) का जो प्रयोग है, वह हिन्दी में प्रचलित नहीं है। देखने में यह व्यर्थ-सा जान पड़ता है परन्तु गुरुवाणी में शब्द के अन्त में लगने वाले इन स्वरों का अर्थ की दृष्टि से एक विशेष महत्त्व है।

गुरुवाणी को पढ़ते समय प्राय: इन स्वरों का उच्चारण नहीं किया जाता। जैसे आदि ग्रन्थ में आरम्भ के 'सतिनामु' का उच्चारण 'सतनाम' ही होता है। उदाहरणत:

कामु क्रोधु परहरु पर निंदा॥ लबु लोभु तजि होहु निचिंदा॥

— आदि ग्रन्थ, पृ.1041

उपरोक्त पंक्तियाँ पढ़ते समय इसका उच्चारण इस प्रकार किया जायेगा:

काम क्रोध परहर पर निंदा॥ लब लोभ तज हो निचिंदा॥

इसी प्रकार:

अंतरि बाहरि सो प्रभु जाणै॥ रहै अलिपतु चलते घरि आणै॥

— आदि ग्रन्थ, पृ.1042

इसका उच्चारण इस प्रकार होगा:

अंतर बाहर सो प्रभ जाणै॥ रहै अलिपत चलते घर आणै॥

इसलिये हिन्दी पाठकों से निवेदन है कि वाणी का पाठ करते समय शब्द के अन्त में आनेवाले इन ह्रस्व स्वरों इ (ि) और उ (ु) का उच्चारण न करें।

— प्रकाशक

भूमिका

जपुजी: गुरु साहिब का शाहकार

'जपुजी' को गुरु नानक साहिब का शाहकार माना जाता है। इसको श्री आदि ग्रन्थ का सार कहा जाता है। 'जपुजी' को पूरी तरह से समझ लिया जाये तो श्री आदि ग्रन्थ में दर्ज सभी गुरु साहिबान और दूसरे सन्तों-महात्माओं की वाणी को समझना आसान हो जाता है।

जपुजी की रचना का समय

कुछ विद्वानों का विचार है कि गुरु नानक साहिब ने 'जपुजी' की रचना अपने जीवन के अन्तिम दिनों में की। 'जपुजी' की रचना के सही समय के बारे में निश्चित रूप से कुछ कह सकना चाहे सम्भव न हो परन्तु यह बात निश्चित है कि इसकी महानता को देखते हुए गुरु अर्जुन देव जी ने श्री आदि ग्रन्थ का सम्पादन करते समय 'जपुजी' से ही इस महान् ग्रन्थ का आरम्भ किया। वास्तव में 'जपुजी' में संसार की सर्वोत्तम रूहानी विचारधारा का सार समाया हुआ है और इसको संसार के उत्तम रूहानी साहित्य में श्रेष्ठ स्थान प्राप्त है।

जपुजी का आधार निजी रूहानी अनुभव

'जपुजी' का आधार गुरु नानक साहिब का निजी आत्मिक अनुभव है। यह रचना बाहरी ग्रन्थ-शास्त्र पढ़कर नहीं, स्वयं अन्तर में प्रभु रूपी सत्य का साक्षात्कार करके लिखी गयी है। इसमें एक पूर्ण सतगुरु ने अपने निजी रूहानी अनुभव के आधार पर परमात्मा के स्वरूप पर प्रकाश डाला है। गुरु साहिब ने इसमें कर्तापुरुष द्वारा रचना किये जाने की विधि और

रचना के संचालन में काम कर रहे नियमों का उल्लेख किया है। गुरु साहिब ने मनुष्य-जन्म के मूल उद्देश्य पर प्रकाश डाला है। आपने उस युक्ति और रूहानी अभ्यास के बारे में जानकारी दी है, जिसको अपनाकर परमेश्वर से बिछुड़ी आत्मा पुनः परमेश्वर के साथ मिलाप कर सकती है। इसमें आपने रूहानी अभ्यास में सफलता के लिए ज़रूरी गुणों का वर्णन किया है और साथ ही उन रूहानी मण्डलों का वर्णन भी किया है, जिनमें से गुज़र कर जीवात्मा अन्त में परमेश्वर में लीन हो जाती है।

'जपुजी' को आम कहानी, उपन्यास या नाटक की तरह नहीं पढ़ा जा सकता। यह गूढ़ रूहानी सिद्धान्तों पर आधारित बहुत गहरी और विशाल रचना है। 'जपुजी' में प्रकट रूहानी भेदों को भली-भाँति समझने के लिए यह जान लेना ज़रूरी है कि 'जपुजी' आध्यात्मिक, परमार्थी या रूहानी अनुभवों और विचारों पर आधारित रचना है। इस रचना को समझने के लिए रूहानी या पारमार्थिक दृष्टिकोण को मुख्य तौर पर समझ लेना ज़रूरी है।

संसार के प्रति पहला दृष्टिकोण

संसार को देखने और समझने के दो दृष्टिकोण हैं—एक मायावी या भौतिक और दूसरा रूहानी या पारमार्थिक। भौतिक दृष्टिकोण के व्यक्ति परमात्मा और आत्मा को नहीं मानते। वे किसी अदृश्य कर्ता की हस्ती को स्वीकार नहीं करते। वे कहते हैं कि यह संसार अपने आप बना है। यह संसार अपने आप में पूर्ण है। यह अपनी गति से चल रहा है। न इस संसार से परे कोई अन्य सूक्ष्म, आत्मिक या रहस्यमय संसार है और न ही इस संसार से दूर बैठी कोई शक्ति इस संसार को चला रही है। यह संसार ख़ुद अपनी गति से क़ुदरती नियमों के अनुसार चल रहा है।

इस दृष्टिकोण के व्यक्ति यह मानकर चलते हैं कि संसार में ज़्यादा से ज़्यादा सांसारिक सुख उपलब्ध करवाने चाहिएँ। हर व्यक्ति को ज़्यादा से ज़्यादा सांसारिक सुख मिलने चाहिएँ। व्यक्ति के शारीरिक, शैक्षणिक, आर्थिक और मानसिक विकास की ओर ज़्यादा से ज़्यादा ध्यान देना

चाहिएँ। संसार से ग़रीबी, अनपढ़ता, बेरोज़गारी, बीमारी, बेईमानी और बेइन्साफ़ी को दूर करना चाहिए। हर तरह की सामाजिक और राजनीतिक जत्थेबन्दियों को संसार को बेहतर बनाने और इसमें ज़्यादा से ज़्यादा सुखों के सामान उपलब्ध करवाने के भरपूर यत्न करने चाहिएँ ताकि मनुष्य को शारीरिक, मानसिक और कलात्मक दृष्टि से ज़्यादा से ज़्यादा सुखी बनाया जा सके। भौतिकवादी विचारधारा वाले लोग मनुष्य के नैतिक विकास की ज़रूरत को तो स्वीकार करते हैं, पर आत्मिक विकास की ज़रूरत को व्यर्थ हवाई संकल्प मानते हैं।

दूसरा दृष्टिकोण

पारमार्थिक दृष्टिकोण वाले व्यक्ति यह मानते हैं कि यह संसार न अपने आप बना है और न ही अपने आप चल रहा है। यह संसार रचयिता की रज़ा या इच्छा का खेल है। जिस कर्ता ने अपने हुक्म, रज़ा, भाणे या इच्छा से इसकी रचना की है, वही इसको अपनी रज़ा या इच्छा के अनुसार चला रहा है। दूसरे शब्दों में, उस कर्ता ने संसार की रचना किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए की है और वह इसको उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए ख़ास ढंग से चला रहा है।

मनुष्य के अस्तित्व का आधार आत्मा

उपर्युक्त विचार का सन्देश देनेवाले सन्त-महात्मा कहते हैं कि मनुष्य के अस्तित्व का आधार शरीर या इन्द्रियाँ नहीं, आत्मा है। शरीर जड़ है। इसको चलाने वाली शक्ति आत्मा, चेतन है। शरीर, चेतन आत्मा के इस भौतिक संसार में कार्यशील होने का यन्त्र या साधन है। आत्मा के बिना शरीर नकारा है जब कि आत्मा की शरीर से अलग आज़ाद हस्ती भी है। शरीर बनते और नष्ट होते हैं, पर आत्मा अजर और अमर है।

सन्त-महात्मा समझाते हैं कि आत्मा परमात्मा का अंश है और इसमें परमात्मा के सभी गुण मौजूद हैं। अपने मूल-रूप में आत्मा, परमात्मा की तरह शक्ति-रूप, ज्ञान-रूप, प्रेम-रूप और आनन्द-रूप है। वर्तमान

अवस्था में मनुष्य के अन्दर ये गुण दबे हुए हैं। मनुष्य जितनी चाहे शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, कलात्मक और नैतिक उन्नति कर ले, जब तक वह अपने अन्दर सोये हुए आत्मिक गुणों का विकास नहीं करता, वह न तो पूर्ण मनुष्य बन सकता है और न ही सच्चा सुख प्राप्त कर सकता है।

सन्त-महात्मा कहते हैं कि परमात्मा का आत्मा को संसार में भेजने का असल मक़सद यह है कि आत्मा अपने अन्दर दबे परमात्मा जैसे गुणों का विकास करे। जब तक जीवात्मा परमात्मा द्वारा सौंपे गये इस कार्य को पूरा नहीं करती, इसको जितने चाहे शारीरिक, मानसिक, भौतिक और कलात्मक सुख क्यों न दे दिये जायें, इसे कभी सच्ची शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती।

जपुजी: रूहानी विचारधारा की रचना

संसार का हर इनसान ऊपर बताये गये दोनों दृष्टिकोणों में से कोई एक दृष्टिकोण अपनाने के लिए आज़ाद है। पर 'जपुजी' के पाठक को शुरू में ही यह बात समझ लेनी चाहिए कि गुरु नानक साहिब का दृष्टिकोण पारमार्थिक या आत्मिक है। आपने परमात्मा को सत्य माना है। आप कहते हैं कि जब तक जीवात्मा अपने कर्ता के हुक्म की पहचान नहीं करती, इसको कभी भी पूर्णता प्राप्त नहीं हो सकती। आप दृश्यमान् जगत् को नाशवान और अधूरा मानते हैं। आप कहते हैं कि अधूरे और नाशवान जगत् से मिलने वाले सुख भी अधूरे और नाशवान ही हो सकते हैं। आत्मा को पूर्ण और अविनाशी सुख केवल पूर्ण और अविनाशी प्रभु के साथ मिलाप करके ही मिल सकता है।

गुरु नानक साहिब भौतिक उन्नति और सांसारिक सुखों के विरोधी नहीं हैं लेकिन आप इस बात पर ज़ोर देते हैं कि जीवात्मा को केवल इन सुखों तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए। उसको अपने अन्दर दबे हुए अनन्त आत्मिक सुखों के भण्डार की भी तलाश करनी चाहिए। यही मनुष्य-जन्म का असल मक़सद है। इस मक़सद की पूर्ति के लिए ही

परमात्मा ने आत्मा को संसार में भेजा है। जब तक इस बुनियादी बात को नहीं समझते, 'जपुजी' को सही अर्थों में समझा नहीं जा सकता।

जपुजी: गूढ़ सिद्धान्तों पर आधारित रचना

'जपुजी' गूढ़ सिद्धान्तों से भरपूर रचना है। 'जपुजी' के मूल-मन्त्र, 'गुरु नानक का हुक्म सिद्धान्त', 'गुरु नानक का नाम सिद्धान्त' आदि विषयों पर सैकड़ों पृष्ठों के शोध-प्रबन्ध लिखे जा चुके हैं। 'जपुजी' में अन्य अनेक ऐसे गूढ़ संकल्प हैं जिनकी सैकड़ों पृष्ठों पर व्याख्या की जा सकती है। 'जपुजी' '१ओ सति नामु' से शुरू होता है। इस छोटे-से पद की चाहे जितनी व्याख्या करते जाएँ, व्याख्या पूरी नहीं हो सकती। 'जपुजी' के वास्तविक भेद को तो निजी रूहानी अनुभव द्वारा ही जाना जा सकता है, पर इसको मन-बुद्धि के स्तर पर समझने के लिए यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि इसमें '१ओ', 'नाम', 'हुक़म', 'हौंमैं', 'गुर प्रसादि', 'मन', 'माया', 'धर्मराय', 'कर्म', 'सुणिऐ', 'मंनै', 'पंच' आदि अनेक गूढ़ संकल्प शामिल हैं। इसी तरह 'जपुजी' में 'हुकमि रजाई चलणा नानक लिखिआ नालि॥'[1]; 'हुकमी हुकमु चलाए राहु॥'[2]; 'करमी आवै कपड़ा नदरी मोखु दुआरु॥'[3]; 'केतिआ दूख भूख सद मार॥ एहि भि दाति तेरी दातार॥'[4]; 'आपे बीजि आपे ही खाहु॥ नानक हुकमी आवहु जाहु॥'[5]; 'संजोगु विजोगु दुइ कार चलावहि लेखे आवहि भाग॥'[6]; 'कीता पसाउ एको कवाउ॥ तिस ते होए लख दरीआउ॥'[7]; 'मनि जीतै जगु जीतु॥'[8] आदि सूत्र या फ़ार्मूले हैं जिनकी विस्तृत व्याख्या की आवश्यकता है।

जपुजी की प्रश्नोत्तरी शैली

बहुत-से विद्वानों और टीकाकारों का विचार है कि 'जपुजी' की रचना नाथों, योगियों के प्रश्नों का उत्तर देने के लिए की गयी है। इस बारे में ऐतिहासिक दृष्टि से कुछ कह सकना कठिन है, पर इतनी बात ज़रूर है कि 28 से 31 तक चार पौड़ियाँ योगियों को सम्बोधित करके लिखी गयी

हैं। अन्य कई स्थानों पर भी योगियों के सिद्धान्तों के बारे में विचार प्रकट किये गये हैं। इसके अलावा भी 'जपुजी' में कई स्थानों पर प्रश्न किये गये हैं और फिर जवाब दिये गये हैं। गुरु साहिब पहली पउड़ी में प्रश्न करते हैं, 'किव सचिआरा होईऐ किव कूड़ै तुटै पालि॥' फिर ख़ुद ही जवाब देते हैं, 'हुकमि रजाई चलणा नानक लिखिआ नालि॥' 21वीं पौड़ी इस प्रश्न के उत्तर में लिखी गयी है, 'कवणि सि रुति माहु कवणु जितु होआ आकारू॥' 27वीं पउड़ी इस प्रश्न के उत्तर में लिखी गयी प्रतीत होती है, 'सो दरु केहा सो घरु केहा जितु बहि सरब समाले॥' 'जपुजी' की रचना साधारण तौर पर की गयी हो या विशेष तौर पर योगियों के प्रश्नों के उत्तर देने के लिए, पर इसमें से हर सच्चे जिज्ञासु को परमार्थ सम्बन्धी अनेक प्रश्नों के उत्तर ज़रूर मिल जाते हैं।

जपुजी: अथाह सागर

'जपुजी' पारमार्थिक अनुभवों का अथाह सागर है। अनेक खोजियों और विद्वानों ने अपने अध्ययन, विश्वास और अनुभव के आधार पर 'जपुजी' की व्याख्या की है। 'जिन्ह कें रही भावना जैसी। प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी॥'[9] यह कथन 'जपुजी' पर भी लागू होता है। हर व्यक्ति 'जपुजी' को उसी तरह पेश करता है, जैसे उसको अच्छा लगता है। इसके असल मर्म को कोई अनुभवी पूर्ण पुरुष ही समझ सकता है। हमने अपनी तुच्छ बुद्धि और सीमित अनुभव के आधार पर 'जपुजी' की अनेक व्याख्याओं में एक और व्याख्या जोड़ने का छोटा-सा यत्न किया है। इस यत्न का असल उद्देश्य 'जपुजी' को आज के समय की भाषा और मुहावरे में आसान और सरल ढंग से समझाने का प्रयास करना है, जिससे साधारण पाठक भी इसे समझ सके। 'जपुजी' में प्रकट महान् सिद्धान्तों की बड़ाई का श्रेय इसके रचयिता को जाता है; लेखक की सिर्फ़ इतनी इच्छा है कि 'जपुजी' को ज़्यादा से ज़्यादा आसान बनाया जा सके ताकि आधुनिक युग के ज़्यादा से ज़्यादा लोग इसको भली-भाँति समझकर इसमें दिये गये उपदेश से पूरी तरह लाभ उठा सकें।

प्रस्तुत पुस्तक

इस पुस्तक में जिन विद्वानों की रचनाओं से लाभ उठाया गया है, उन सबका अलग-अलग विवरण देना कठिन है। लेखक सबसे अधिक आभार स. प्रितपाल सिंह 'मान' जी के प्रति प्रकट करना चाहता है। लेखक को मान साहिब की 'जपुजी' की व्याख्या पर आधारित हस्तलिखित प्रति से न केवल बहुमूल्य सहायता ही प्राप्त हुई है बल्कि इस प्रति में से बहुत-सी सामग्री भी पुस्तक में सम्मिलित कर ली गयी है। वास्तव में प्रस्तुत पुस्तक मान साहिब द्वारा की गयी 'जपुजी' की व्याख्या का ही विकसित रूप है।

प्रस्तुत पुस्तक तैयार करने में 'पुरातन टीका—जपुजी साहिब' से भी बहुत लाभ हुआ है। यह टीका 200 वर्ष से भी अधिक पुरानी है। इस टीका को भाई मनी सिंह अथवा ऐसे ही किसी अन्य अनुभवी पुरुष की रचना माना जाता है। इसी तरह भाई गुरदास की वाणी में प्राप्त गुरुवाणी की व्याख्या से भी लाभ उठाया गया है।

वर्तमान समय के व्याख्याकारों में से स्वामी शिवदयाल सिंह, सन्त सुरैण सिंह, भाई वीर सिंह, डॉ. साहिब सिंह, जस्टिस मोहिन्दर सिंह जोशी, सोढी हज़ारा सिंह, प्रिंसिपल तेजा सिंह, डॉ. शरद चन्द्र वर्मा, प्रोफ़ेसर गुरबचन सिंह तालिब, डॉ. गोपाल सिंह दरदी, स. मनमोहन सिंह, ज्ञानी हरबंस सिंह आदि की रचनाओं और हस्तलिखित प्रतियों के अलावा 'जपुजी' की क्रमबद्ध व्याख्या करने वाले विद्वानों भाई तरजीत सिंह (करनाल वाले) ज्ञानी सन्त सिंह 'मसकीन' आदि के कैसटों (cassettes) से भी लाभ उठाया गया है। लेखक इनका और दूसरे उन सभी लेखकों का जिनकी रचनाओं से लाभ उठाया गया है, हृदय से आभारी है। डा. जगजीत सिंह सलूजा और डा. गुरदीप सिंह सेठी ने पुस्तक के सुधार के लिए जो बहुमूल्य सुझाव दिये हैं, लेखक इसके लिए इन विद्वानों के प्रति विशेष रूप से आभारी है।

पुस्तक लिखने की विधि

प्रस्तुत व्याख्या में पहले कठिन शब्दों के अर्थ दिये गये हैं। इसके बाद पउड़ी के सरल अर्थ दिये गये हैं। बाद में पउड़ी की पंक्ति-बद्ध व्याख्या की गयी है। कई स्थानों पर इन पंक्तियों की अलग-अलग टीकाकारों द्वारा की गयी व्याख्या का विवरण भी दिया गया है ताकि पाठक को अलग-अलग पहलुओं और दृष्टिकोणों से की गयी व्याख्या की जानकारी हो सके। लेखक का उद्देश्य पाठक को 'जपुजी' के गहरे अर्थों तक पहुँचने में सहायता देना है, उसे अपनी धारणा के अर्थों के साथ बाँधना नहीं।

'जपुजी' में अलग-अलग पउड़ियों में हुकम, नाम, दया आदि गूढ़ भावों वाले बहुत-से शब्द कई बार दोहराये गये हैं। इसलिए इनकी व्याख्या के लिए गुरुवाणी में से लिए गये बहुत-से प्रसंग भी दोहराने पड़े हैं। लेखक पुनरावृत्ति के लिए क्षमा चाहता है। मकसद यह है कि हर प्रसंग में गुरु साहिब के विचार भली-भाँति स्पष्ट हो जाएँ।

निजी भाव

मेरा गाँव फ़तेहबाद (ज़िला अमृतसर) गोइंदवाल साहिब से पाँच किलोमीटर और खडूर साहिब से आठ किलोमीटर की दूरी पर है। मैंने गुरु अंगद देव ख़ालसा हाई स्कूल, खडूर साहिब से मैट्रिक की। उस स्कूल में हर कक्षा में विद्यार्थी प्रतिदिन पहले पीरिअड में बारी-बारी से 'जपुजी' का पाठ करते थे। कभी-कभी मेरी बारी भी आ जाती थी। 'जपुजी' की ओर मेरा झुकाव उसी समय से हो गया था।

ख़ालसा कालेज अमृतसर में मेरे आदरणीय अध्यापक डॉ. तारन सिंह जी विद्वत्तापूर्ण ढंग से वाणी की व्याख्या करते थे। कई बार प्रोफ़ेसर साहिब के वाक्य बीच में अधूरे रह जाते और वे अपने भावों में खो जाते। इससे कक्षा में एक अद्भुत आनन्द पैदा हो जाता था। कई बार ऐसा प्रतीत होता था कि बहुत-सी बातें सिर के ऊपर से गुज़र गयी हैं पर फिर भी वाणी से एक अद्भुत रस प्राप्त होता था।

'गुरु नानक साहिब का हुक्म संकल्प' विषय पर पी-एच. डी. की डिग्री के लिए शोध करते समय गुरु साहिब की वाणी पर गहराई से विचार करने का अवसर मिला। तत्पश्चात् डी. ए. वी. कालेज जालन्धर में एम. ए. पंजाबी के विद्यार्थियों को लगभग 30 साल तक श्री आदि ग्रन्थ की वाणी पढ़ाने का अवसर मिला। 'सन्तमत विचार', 'नाम सिद्धान्त', 'बोलै शेख़ फ़रीद' आदि पुस्तकें लिखते समय भी गुरु-घर की वाणी के अध्ययन का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इस सबके बावजूद इस बात की कभी सपने में भी कल्पना नहीं की थी कि किसी दिन सतगुरु की कृपा से 'जपुजी साहिब' के बारे में कुछ लिखने का दैवी वरदान प्राप्त होगा। कर्ता के रंग निराले हैं। लेखक केवल कबीर साहिब के ये वाक्य ही दोहरा सकता है:

हम कूकर तेरे दरबारि॥ भउकहि आगै बदनु पसारि॥[1]

गुरु अर्जुन देव जी महाराज, हमारे जैसे निर्बल जीवों की ओर से अकाल पुरुष के आगे अरदास करते हैं:

कोटि पराध हमारे खंडहु अनिक बिधी समझावहु॥
हम अगिआन अलप मति थोरी तुम आपन बिरदु रखावहु॥
तुमरी सरणि तुमारी आसा तुम ही सजन सुहेले॥
राखहु राखनहार दइआला नानक घर के गोले॥[2]

आर-45, राधास्वामी कालोनी, दास
डेरा बाबा जैमल सिंह, ब्यास (अमृतसर)। टी. आर. शंगारी
1.07.04

मूल-मन्त्र

१ओ ... गुर प्रसादि

मूल-मन्त्र

श्री आदि ग्रन्थ में 'जपु' का आरम्भ 'आदि सचु जुगादि सचु॥ है भी सचु नानक होसी भी सचु॥' श्लोक से होता है। 'जपु' से पहले '१ओ संति नामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि॥' महावाक्य दर्ज है। इसको आम तौर पर मूल-मन्त्र कहा जाता है। श्री आदि ग्रन्थ में लगभग हर राग की वाणी के आरम्भ में मूल-मन्त्र दिया गया है। अन्य अनेक वाणियों और शब्दों के शुरू में मूल-मन्त्र के संक्षिप्त रूप '१ओ सतिनामु गुर प्रसादि', '१ओ गुरप्रसादि' आदि दिये गये हैं। इससे गुरुवाणी में मूल-मन्त्र का महत्त्व अपने आप स्पष्ट हो जाता है। इस मूल-मन्त्र पर 'जपुजी' के प्रसंग में भी विचार किया जा सकता है और अलग से भी।

१ओ सति नामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु
अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि॥

उपरोक्त महावाक्य मंगलाचरण है। पुराने समय में महाकाव्य आदि की रचना करनेवाले कवि, रचना का आरम्भ मंगलाचरण से करते थे। वे मंगलाचरण द्वारा अपने इष्ट की महिमा का बखान और उसकी आराधना करते थे। गुरु नानक साहिब इस महावाक्य द्वारा अपने इष्ट उस निरंकार की महिमा गाते हुए कहते हैं:

वह एक परमात्मा ही परमात्मा है (और कुछ भी नहीं); वह सतनाम है; वह संसार का कर्ता-धर्ता है; वह भय से रहित है; वह वैर से परे है; उसकी हस्ती काल से परे और ऊपर है; वह अजन्मा है अर्थात् जन्म-

मरण से ऊपर है; उसका अस्तित्व अपने आपसे है; ऐसे गुणों वाला वह परमात्मा, सतगुरु की कृपा द्वारा प्राप्त होता है।

१ओ

'१ओ' गणित के '1' (एक) और गुरुमुखी वर्णमाला के पहले अक्षर 'ओ' (ऊड़ा) के मेल से बना है। '१' का उच्चारण 'इक' या 'एक' करके किया जाता है। 'ओ'—ऊड़ा खुला और बिंदी के बिना है इसलिए इसका उच्चारण '१ओ' है। लोग अपनी रुचि और धारणा के अनुसार '१ओ' का उच्चारण '१ओं', '१ओंम', '१ओंकार' या 'ओंकार' के रूप में करते हैं। वाणी में परमात्मा के लिए '१ओंकार' और 'एकंकार' पद प्राय: इस्तेमाल किये गये हैं। 'ओंकार' पद परमात्मा के रचयिता के रूप में प्रकट होने का सूचक है। '१ओ' रचना से पहले की पूर्ण अद्वैत की अवस्था को प्रकट करता है। गुरु नानक साहिब कहते हैं:

असति एकु दिगरि कुई॥ एक तुई एक तुई॥[1]

उत्पत्ति, पालन और विनाश जो कुछ है, एक से है। अनेकता का मूल एक है। अनेकता एक का खेल है। वह जब चाहे खेल को अपने में समाकर अनेक से एक हो सकता है—'खेलु संकोचै तउ नानक एकै'[2]। जो कुछ है केवल वह एक है, बाकी सब भ्रम है।

परमात्मा एक है। उसके अनेक नाम, उसके अनेक गुणों के सूचक हैं। सन्तों-महात्माओं ने हज़ारों नामों से उसकी महिमा की है, पर अन्त में उसको 'अनामी' कह दिया है क्योंकि वह नामों की सीमा से परे है।

'१' एक, दो, तीन, चार वाली गिनती का सूचक नहीं। यह '१' उस वाहेगुरु के हर तरह की गिनती, तोल-माप आदि की सब सीमाओं से ऊपर होने का सूचक है। सूफ़ी दरवेशों ने उस ख़ुदावन्द करीम को वाहद-हू-लाशरीक कहा है। वह एक है, अपने जैसा आप है और किसी

दूसरी चीज़ का उससे मुक़ाबला नहीं किया जा सकता। गुरु रविदास जी भी इसी भाव को प्रकट करते हैं:

कहि रविदास अकथ कथा बहु काइ करीजै॥
जैसा तू तैसा तुही किआ उपमा दीजै॥[3]

गुरु नानक साहिब उस एक की महिमा का बखान करते हुए कहते हैं:

आपे रसीआ आपि रसु आपे रावणहारु॥
आपे होवै चोलड़ा आपे सेज भतारु॥
रंगि रता मेरा साहिबु रवि रहिआ भरपूरि॥
आपे माछी मछुली आपे पाणी जालु॥
आपे जाल मणकड़ा आपे अंदरि लालु॥
आपे बहु बिधि रंगुला सखीए मेरा लालु॥
नित रवै सोहागणी देखु हमारा हालु॥
प्रणवै नानकु बेनती तू सरवरु तू हंसु॥
कउलु तू है कवीआ तू है आपे वेखि विगसु॥[4]

आप कहते हैं कि जिसमें रस है वह भी, रस भी और रस का आनन्द लेनेवाला भी वह स्वयं है। स्त्री भी वही है, शय्या भी वही है और पति भी वही है। वह रंगीला साहिब हर जगह व्याप्त है। मछली पकड़ने वाला मछुआ भी वही है, मछली भी वही है, पानी भी वही है और जाल भी वही है। जाल को भारी करने के लिए उसके साथ जो भारी मनका (मणकड़ा) बाँधा जाता है, वह भी वही है और मछली के पेट से जो लाल रंग का रत्न निकलता है, वह भी वही है। वह एक प्रियतम ही अनेक रंगों में प्रकट हो रहा है। सुहागिनों को अपने प्रेम की दात बख़्श कर सुखी करनेवाला भी वही है और अभागिनों को अपने वियोग के दर्द में तड़पाने वाला भी वही है। गुरु साहिब नम्रतापूर्वक कहते हैं कि तुम ही

सागर हो, तुम ही हंस हो, दिन में खिलने वाले कमल भी तुम हो, रात को खिलने वाली कुमुदिनी भी तुम हो और उन्हें देखकर प्रसन्न होने वाले भी तुम ही हो।

गुरु साहिब 'जपुजी' की 21वीं पउड़ी में कहते हैं, 'सुअसति आथि बाणी बरमाउ॥'—हे प्रभु! तुझे नमस्कार है; तुम ही माया हो, तुम ही शब्द हो और तुम ही ब्रह्मा या कर्ता हो। गुरु साहिब सृष्टि की अनन्त अनेकता का आधार उस एक को मानते हैं। जो कुछ है उस एक से है और जो कुछ है, उसमें वह एक ही व्याप्त है।

'१ओ' पूर्णता और अखण्डता का सूचक है। उस एक में कुछ भी बढ़ाया या घटाया नहीं जा सकता। वह पूर्ण और अखण्ड है।

'१ओ' से हमें पूर्ण अद्वैत और मानवता की सच्ची समानता का उपदेश मिलता है। हिन्दू-मुस्लिम, सिक्ख-ईसाई, अमेरिकन-अफ्रीकन, स्त्री-पुरुष, राजा-रंक, अनपढ़-विद्वान् आदि के सब भेदभाव बनावटी हैं। हर इनसान के अन्दर उस एक प्रभु का नूर समाया हुआ है। सब इनसान बराबर हैं और समान प्रेम और आदर के हक़दार हैं। गुरु अर्जुन देव जी ने 'एकु पिता एकस के हम बारिक'[5] और 'तूं साझा साहिबु बापु हमारा'[6] का उपदेश दिया है।

'१ओ' हमें उस एक की पूजा और भक्ति का पाठ पढ़ाता है। गुरु अमरदास जी कहते हैं, 'हरि नामु चेता अवरु न पूजा॥ एको सेवी अवरु न दूजा॥'[7] गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं:

> सूरति देखि न भूलु गवारा॥ मिथन मोहारा झूठु पसारा॥
> जग महि कोई रहणु न पाए निहचलु एकु नाराइणा॥[8]

आप ख़बरदार करते हैं कि हमें दुनिया और इसकी शक्लों-पदार्थों और रिश्तों की बाहरी चमक-दमक देखकर गुमराह नहीं होना चाहिए। हमें इनकी असलियत को समझने का यत्न करना चाहिए। माता-पिता, बेटे-बेटियों, मित्रों-सम्बन्धियों, महलों-भवनों, पदवियों-प्राप्तियों आदि की कोई वास्तविकता नहीं है। इनमें से कोई भी चीज़ पूर्ण, स्थायी और सच्ची

नहीं है। इनका प्रेम भी झूठा है और इनमें से मिलने वाला सुख भी अधूरा और झूठा है। वह प्रभु पूर्ण और सच्चा है। उसके मिलाप से मिलने वाला आनन्द भी पूर्ण और सच्चा है। आप फ़रमाते हैं:

> रहणु न पावहि सुरि नर देवा॥ ऊठि सिधारे करि मुनि जन सेवा॥[9]

साधारण लोग ही नहीं, ऋषि-मुनि और देवी-देवता भी नश्वर हैं। नश्वर चीज़ों की पूजा और भक्ति से कभी अविनाशी शान्ति नहीं मिल सकती। केवल उस एक, अमर-अविनाशी, पूर्ण और आनन्द-स्वरूप परमात्मा का प्रेम ही सच्चे, स्थायी और पूर्ण सुख का स्रोत है।

सति नामु

'सति' के अर्थ हैं—'अस्तित्व', 'वजूद', 'हस्ती', 'सत्ता' आदि। 'सति' पद को परमात्मा के वास्तविक, स्थिर, परिवर्तनरहित, अनन्त और सर्वव्यापक होने के भाव को दृढ़ करवाने के लिए प्रयोग किया गया है।

कुछ लोग प्रभु की हस्ती को नहीं मानते। वे कहते हैं कि प्रभु केवल ख़याल या कल्पना है। वह असल में है ही नहीं, केवल लोगों की कल्पना का आविष्कार है। वे दलील देते हैं कि इनसान में अनेक कमज़ोरियाँ हैं। लोगों ने उन सभी कमज़ोरियों से रहित अवस्था का नाम प्रभु रख दिया है। इसके विपरीत गुरु साहिब ने प्रभु को सिर्फ़ एक शक्ति ही नहीं, बल्कि सत्ता या वजूद भी स्वीकार किया है। यही नहीं, आप प्रभु को ही एकमात्र हस्ती या सत्ता मानते हैं। 'जपुजी' के शुरू में ही गुरु साहिब कहते हैं, 'आदि सचु जुगादि सचु॥ है भी सचु नानक होसी भी सचु॥' सृष्टि की रचना से पहले भी प्रभु की सत्ता क़ायम थी; आज भी क़ायम है और आगे भी हमेशा क़ायम रहेगी। उसके अलावा कुछ भी ऐसा नहीं जो सदा था, सदा से है और सदा रहेगा।

'नामु' मात्र लफ़्ज़ नहीं है। नाम परमात्मा से अभिन्न उसकी सृजनात्मक-शक्ति है। गुरु नानक साहिब की वाणी है:

आपीन्है आपु साजिओ आपीन्है रचिओ नाउ॥
दुयी कुदरति साजीऐ करि आसणु डिठो चाउ॥[10]

परमात्मा ने अपनी और अपने नाम की रचना की और फिर उस नाम द्वारा क़ुदरत का सृजन किया। गुरु साहिब ने परमात्मा और नाम को एक कहा है क्योंकि परमात्मा का नाम पूरी तरह प्रभु से अभिन्न है। गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं:

सगल नाम निधानु तिन पाइआ अनहद सबद मनि वाजंगा॥
किरतम नाम कथे तेरे जिहबा॥ सति नामु तेरा परा पूरबला॥[11]

गुरु साहिब सतनाम को 'परा पूरबला' अर्थात् अनादि और अकृत्रिम कहते हैं। जिह्वा द्वारा जपे जानेवाले नाम 'किरतम' (कृत्रिम) नाम हैं। ये सब मानव-कृत हैं जब कि सतनाम इन्द्रियों और मन की पकड़ से ऊपर है। गुरु साहिब 'जपुजी' में कहते हैं, 'जेता कीता तेता नाउ॥ विणु नावै नाही को थाउ॥'[12] उस कर्ता ने नाम द्वारा सृष्टि की रचना की है और नाम सर्वव्यापक है। गुरु साहिब समझा रहे हैं कि सचखण्ड का मालिक वह सतनाम ही असल कर्ता है।

वह '१' अलख, अगम और अनामी है। वह रंग और रूप से न्यारा है। वह निराकार है। वह सचखण्ड के स्वामी और रचयिता के रूप में सतनाम कहलाता है। सचखण्ड में आत्मा को जिस रूप में परमात्मा के दर्शन होते हैं, उसको 'सति नामु' कहा गया है। उसको इसलिए भी सतनाम कहा गया है क्योंकि वह भी सत्य है और उसका नाम भी सत्य है।

'सति नामु'—परमात्मा सच है और वह नामी है। जिस तरह व्यक्ति अपने नाम से पहचाना जाता है, उसी तरह परमात्मा भी अपने नाम से पहचाना जाता है। मान लो एक व्यक्ति का नाम साहिब सिंह है। यह नाम उसकी पहचान है। परमात्मा को इसलिए 'सति नामु' नहीं कहा जाता

क्योंकि उसका नाम सतनाम है। वह इसलिए 'सति नामु' है क्योंकि वह आप भी सत्य है और उसका नाम भी सत्य है।

व्यक्ति अपने नाम से अलग होता है, पर परमात्मा और उसका नाम दो नहीं हैं। परमात्मा नाम-रूप है और परमात्मा का नाम परमात्मा का रूप है। व्यक्ति का नाम व्यक्ति का संकेत देता है, पर व्यक्ति की शक्ति व्यक्ति में होती है, उसके नाम में नहीं। इसके विपरीत परमात्मा का नाम परमात्मा की पूरी शक्ति और सब गुणों से भरपूर है।

प्रभु का नाम एक है। नाम सत्य है, कर्ता और विधाता है। नाम ही रचना की उत्पत्ति और सँभाल करता है और यही इसका अन्त करता है। प्रभु का नाम प्रभु की तरह ही सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापक है।

परमात्मा से छोटी कोई चीज़ किसी को परमात्मा से नहीं मिला सकती। परमात्मा का नाम परमात्मा का रूप है, इसलिए परमात्मा का नाम ही परमात्मा के साथ मिलाप का वास्तविक साधन है। परमात्मा की पूजा या भक्ति का साधन नाम है और नाम की पूजा या भक्ति ही परमात्मा की पूजा या भक्ति है। नाम के साथ लिव जोड़ना ही परमात्मा के साथ लिव जोड़ना है।

'सति नामु' पद की उपरोक्त व्याख्या से प्रेरणा मिलती है कि यह देश जिसमें हम रह रहे हैं, हमारा देश नहीं, ये क़ौमें हमारी क़ौमें नहीं, ये धर्म हमारे धर्म नहीं। हमारा देश सचखण्ड है, हमारा पिता वह सतनाम है और हमारा धर्म उस सतनाम का प्रेम है। गुरु नानक साहिब कहते हैं, 'हमरी जाति पति सचु नाउ॥ करम धरम संजमु सत भाउ॥'[13] हमारी आत्मा उस सतनाम का अंश है। जो उस पिता की जाति है, वही आत्मा की जाति है। जो उस पिता का धर्म है, वही इसका धर्म है। 'सत भाउ'— उस सतनाम रूपी पिता का प्रेम ही जीवात्मा के लिए सच्चा कर्म है और यही इसके लिए सच्चा धर्म है। जब तक आत्मा कर्म और फल के इस अधूरे, परिवर्तनशील, नाशवान और दुःखदायी जगत् के बन्धन तोड़कर अपने पिता सतनाम की गोद में नहीं पहुँचती, इसको कभी भी पूर्ण, स्थायी और सच्ची शान्ति नहीं मिल सकती।

जीवात्मा में अपने देश वापस पहुँचने का सामर्थ्य है और इसके पिता ने इस पर अपार दया करके इसके निज घर पहुँचने का साधन इसके अन्दर रखा हुआ है। इसका पिता नाम-रूप होकर इसके अन्दर बैठा हुआ है। यह अपनी लिव उसके साथ जोड़कर सहज ही मृत्युलोक से मुक्त होकर सतलोक वापस पहुँच सकती है।

गुरु नानक साहिब की वाणी है, 'घरि घरि नामु निरंजना सो ठाकुरु मेरा॥'[14] सतनाम रूपी इष्ट भी अन्दर है, उसके साथ मिलाने वाला उस जैसा नाम भी अन्दर है—'देही अंदरि नामु निवासी॥ आपे करता है अबिनासी॥'[15]। गुरु अमरदास जी की वाणी है, 'बिनु नावै होर पूज न होवी भरमि भुली लोकाई॥'[16] आप सावधान करते हैं कि बाहरमुखी भक्ति की अनेक प्रकार की भटकन छोड़कर अपना ध्यान अन्दर नाम के साथ जोड़ो। नाम के साथ लिव जोड़ने से तुम्हें और कुछ भी करने की ज़रूरत नहीं रहेगी। प्रभु का नाम, प्रभु की तरह शक्तिमान है। जब तुम उसके साथ लिव जोड़ोगे तो वह तुम्हें उस निर्भय, निरवैर, अकालमूरत और अजूनी परमात्मा में अभेद करके उसका रूप बना देगा। फिर तुम्हें तुम्हारा सच्चा आधार मिल जायेगा, जिससे तुम उस प्रभु की तरह ही स्थिर और निश्चल हो जाओगे। तुम्हारे अन्दर पूर्ण शान्ति आ जायेगी। तुम्हें शक्ति, ज्ञान, प्रेम और आनन्द की तलाश में बाहर नहीं भटकना पड़ेगा। तुम उस प्रभु में समाकर उसकी तरह ही शक्ति-रूप, ज्ञान-रूप, प्रेम-रूप और आनन्द-रूप बन जाओगे।

करता पुरखु

'करता' और 'पुरखु' का सम्बन्ध रचयिता और रचना से है। गुरु साहिब क़ुदरत को क़ादिर (कर्ता) का खेल कहते हैं:

सभ तेरी कुदरति तूं कादिरु करता पाकी नाई पाकु॥[17]

सृष्टि उसका खेल है। जब तक उसकी मौज होती है, खेल चलता रहता है और जब वह चाहता है, इसको वापस अपने में समेट लेता है:

आपन खेलु आपि करि देखै॥ खेलु संकोचै तउ नानक एकै॥[18]

तिसु भावै ता करे बिसथारु॥ तिसु भावै ता एकंकारु॥[19]

'करता' का सिद्धान्त रूहानियत के सबसे महत्त्वपूर्ण पहलुओं में से है। वह प्रभु हमारा कर्ता, मालिक और प्रतिपालक है और हमारा अस्तित्व पूरी तरह से उस पर निर्भर है। गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं, 'जगजीवनु साचा एको दाता॥'[20] सारे संसार को जीवन देनेवाला, उसकी सँभाल करनेवाला और उसको अनेक दातें प्रदान करनेवाला दयालु पिता एक है। वह अपनी दातों की बख़्शिश करते समय क़ौमों, मज़हबों, मुल्कों का भेदभाव नहीं करता। उसके बनाये हुए धरती, पर्वत, आकाश, जल, वायु आदि सबके लिए सांझे हैं। उसने सब इनसानों की रचना एक ही सामग्री से की है। उसने सबके अन्दर समान रूप से आत्मा का प्रकाश रखा है। यही नहीं, वह स्वयं सबके अन्दर बैठा हुआ है। उसने सब इनसान एक जैसे बनाये हैं। ऊँच-नीच और छोटे-बड़े का भेदभाव मानव-कृत है, कर्ता-कृत नहीं।

'पुरखु' पुरुष का बदला हुआ रूप है। यहाँ इस के अर्थ हैं—शक्तिमान और विधाता। गुरु साहिब कहते हैं, 'पूरि रहिआ सरबत्र मै सो पुरखु बिधाता॥'[21] परमात्मा सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापक है। वह विधाता है जो अपनी बनाई हुई रचना को ख़ास विधि व विधान के अनुसार चला रहा है। गुरु नानक साहिब की वाणी है:

चहु दिसि हुकमु वरतै प्रभ तेरा चहु दिसि नाम पतालं॥
सभ महि सबदु वरतै प्रभ साचा करमि मिलै बैआलं॥[22]

हुकमे आइआ हुकमि समाइआ॥ हुकमे दीसै जगतु उपाइआ॥[23]

सृष्टि बहुत ही विशाल और रंग-बिरंगी है, परन्तु समस्त रचना एक इकाई है। इसकी रचना परमात्मा, शब्द या नाम द्वारा हुई है और इसमें परमात्मा, शब्द या नाम सभी जगह व्याप्त है। इसी तरह सारी सृष्टि एक ही हुक्म या विधान के अधीन चल रही है। इसमें दृश्यों की अनेकता है, नियमों की अनेकता नहीं। सृष्टि अन्धाधुन्ध और अपनी इच्छा से नहीं चल रही। यह उस कर्ता द्वारा बनाये गये विधान के अनुसार चल रही है। रचना अपने कर्ता के हुक्म के ताल पर नाच रही नर्तकी है।

कुम्हार घड़े, सुनार गहने और चित्रकार चित्र बनाता है। घड़े, गहने और चित्र कुम्हार, सुनार और चित्रकार से अलग होते हैं, पर परमात्मा रूपी कर्ता अपनी रचना से अलग नहीं होता। उसकी सृष्टि उसका रूप है। गुरु अंगद साहिब लिखते हैं, 'इहु जगु सचै की है कोठड़ी सचे का विचि वासु॥'[24] रचनेवाला, रचना में है। आश्चर्य यह है कि वह परमात्मा व्यापक भी है और निर्लेप भी। गुरु तेग़ बहादुर साहिब का कथन है:

काहे रे बन खोजन जाई॥
सरब निवासी सदा अलेपा तोही संगि समाई॥
पुहप मधि जिउ बासु बसतु है मुकर माहि जैसे छाई॥
तैसे ही हरि बसे निरंतरि घट ही खोजहु भाई॥[25]

गुरु साहिब बहुत सुन्दर ढंग से समझाते हैं कि जिस तरह फूल में सुगन्ध होती है, पर दिखाई नहीं देती और जिस तरह व्यक्ति आईने में दिख रही अपनी परछाईं से अलग होता है, उसी तरह परमात्मा सृष्टि में व्याप्त भी है और अदृश्य और निर्लेप भी।

गुरु साहिब उपदेश देते हैं कि उस रचयिता की रज़ा से पैदा हुई सृष्टि उसकी रज़ा के मुताबिक़ चल रही है। सृष्टि के संचालन के लिए उस विधाता द्वारा बनाये गये विधान के प्रमुख पहलू ये हैं:

1. संसार कर्म और फल के नियम के मुताबिक़ चल रहा है।

2. संसार का प्रेम जीव को संसार से बाँधकर रखता है और परमात्मा का प्रेम इसे परमात्मा की तरफ़ खींचता है।
3. परमात्मा की प्राप्ति के लिए परमात्मा द्वारा जीव के अन्दर रखा गया साधन नाम है।
4. नाम के साथ लिव जोड़कर नामी में अभेद होना ही जीवात्मा का संसार में आने का वास्तविक उद्देश्य है। परमात्मा से मिलाप परमात्मा की दया और पूरे गुरु की सहायता द्वारा ही सम्भव है।

निरभउ

'निरभउ' का अर्थ है—भय-रहित, डर-रहित, बेख़ौफ़, निडर। डर या चिन्ता का सम्बन्ध द्वैत से है। जब उसके अलावा कोई दूसरा या बड़ा है ही नहीं तो डर किसका? गुरु साहिब फ़रमाते हैं:

एके कउ नाही भउ कोइ॥ करता करे करावै सोइ॥[26]

तिस ते ऊपरि नाही कोइ॥ कउणु डरै डरु किस का होइ॥[27]

जो कुछ उस सर्वशक्तिमान परमात्मा ने बनाया है, वह सब काल और कर्मों के भय के अधीन है, पर वह अविनाशी कर्ता निर्भय है। गुरु अर्जुन देव जी का कथन है, 'सगलिआ भउ लिखिआ सिरि लेखु॥ नानक निरभउ निरंकारु सचु एकु॥'[28] अनेक प्रकार के भय में फँसे जीव के निर्भय होने का एकमात्र साधन यह है कि वह उस निर्भय में समाकर उसका रूप हो जाये:

जिन निरभउ जिन्ह हरि निरभउ धिआइआ जीउ
तिन का भउ सभु गवासी॥[29]

निरभउ जपै सगल भउ मिटै॥[30]

निरवैरु

'निरभउ' और 'निरवैरु' दोनों का सम्बन्ध अद्वैत से है। भय या वैर तभी होता है, जब कोई दूसरा हो। 'जुगि जुगि थापि सदा निरवैरु॥'[31] वह प्रभु सदा निरवैर है। सारी रचना उसकी है। वह सबका कर्ता और पिता है। वह प्रेम, दया और क्षमा की मूर्ति है। वह कुछ भी भय या दबाव के अधीन नहीं करता। वह जो कुछ करता है, अपनी स्वतन्त्र मौज से तथा प्रेम व दया के भाव से करता है। केवल मनुष्य ही नहीं, पशु-पक्षी, फल-फूल, पेड़-पौधे, पर्वत, सागर आदि सब उस एक के हैं और वह एक सबका है। उसका सबके साथ प्रेम और दया का रिश्ता है और उसका किसी के साथ वैर नहीं। जीवात्मा उसमें समाकर ही दुई या द्वैत द्वारा पैदा किये हुए हर तरह के वैर-विरोध और उसमें से पैदा होनेवाले दु:खों-क्लेशों से मुक्त हो सकती है।

अकाल मूरति

'अकाल': संसार की हर वस्तु समय या काल और मृत्यु के अधीन है। वह प्रभु देश, काल और मृत्यु से ऊपर है। वह समय या काल और मृत्यु का कर्ता है, पर स्वयं अकाल और अविनाशी है। गुरु अर्जुन साहिब की वाणी है:

> खंड पताल दीप सभि लोआ॥ सभि कालै वसि आपि प्रभि कीआ॥
> निहचलु एकु आपि अबिनासी सो निहचलु जो तिसहि धिआइदा॥[32]

संसार की हर वस्तु और हर प्राणी समय और स्थान की हद में क़ैद है तथा परिवर्तन और विनाश के अधीन है। वह प्रभु अकाल है। जो उस अकाल की भक्ति करते हैं, वे भी उसकी भाँति अमर और अविनाशी हो जाते हैं।

'मूरति' से भाव है स्वरूप, वजूद, अस्तित्त्व या हस्ती। 'मूरति' से यह भाव दृढ़ होता है कि परमात्मा सिर्फ़ शक्ति नहीं, हस्ती भी है। बिजली

एक शक्ति है, परन्तु वह मूर्तिमान नहीं। परमात्मा शक्ति भी है और हस्ती भी। गुरु अर्जुन देव जी ने दो संकेत दिये हैं:

> अकाल मूरति जिसु कदे नाही खउ॥[33]

> सफल दरसनु अकाल मूरति प्रभु है भी होवनहारा॥[34]

अर्थात् वह अकालपुरुष काल की हद से परे है। उस अमर-अविनाशी अकाल हस्ती के दर्शन धन्य हैं। आप परमात्मा के दर्शन से प्राप्त होनेवाले अद्भुत आनन्द का वर्णन करते हुए कहते हैं:

> अनदो अनदु घणा मै सो प्रभु डीठा राम॥
> चाखिअड़ा चाखिअड़ा मै हरि रसु मीठा राम॥[35]

अजूनी सैभं

'अजूनी' संस्कृत के 'अयोनि' का पंजाबी रूप है जिसके ये अर्थ किये जाते हैं—बिना आरम्भ के; बिना स्रोत के; बिना कारण के; सदैव रहनेवाला; बिना गर्भ या कोख के जन्म लेनेवाला आदि। 'सैभं' स्वयं-भू का बदला हुआ रूप है। इसका अर्थ है—स्वयं प्रकाश या अस्तित्व में आया। गुरु साहिब 'मूरति' से पैदा हुए हस्ती या वजूद के भाव को 'अजूनी' और 'सैभं' द्वारा सुदृढ़ करते हैं। वह 'अकाल मूरति' (परमात्मा) सृष्टि के सब वजूदों, शक्लों, आकारों का कारण और कर्ता है, पर अपने रूपवान होने का कारण वह स्वयं है। उसके बनाये हुए सब जीव जन्म लेते और मरते हैं, पर वह स्वयं जन्म-मरण में नहीं आता। वह योनि में नहीं आता। उसने स्वयं वजूद धारण किया है। इसलिए वह 'अजूनी' और 'सैभं' है:

> सो ब्रहमु अजोनी है भी होनी घट भीतरि देखु मुरारी जीउ॥[36]

गुर प्रसादि

'गुर प्रसादि' द्वारा गुरु साहिब यह इशारा करते हैं कि जिस परमात्मा की हस्ती के प्रमुख पहलुओं का ऊपर उल्लेख किया गया है, वह गुरु की दया-मेहर द्वारा प्राप्त होता है।

गुरुवाणी में सतगुरु और परमात्मा की दया के भाव इस तरह जुड़े हुए हैं कि इनको एक-दूसरे से अलग कर सकना असम्भव है। यदि परमात्मा का मिलना सतगुरु की दया से जोड़ा गया है तो सतगुरु के मिलाप को परमात्मा की दया से जोड़ा गया है। वाणी में पहले भाव के कुछ प्रसंग इस प्रकार हैं:

गुर परसादी पाइआ॥ तिथै माइआ मोहु चुकाइआ॥[37]

आपे मेले भरमु चुकाए॥ गुर परसादि परम पदु पाए॥[38]

दूसरे भाव के कुछ प्रसंग इस प्रकार हैं:

पूरबि होवै लिखिआ ता सतिगुरु पावै॥[39]

नदरि करे ता गुरू मिलाए॥[40]

'गुरु' के परमार्थी अर्थ हैं—अज्ञान का नाश करनेवाला; ज्ञान देनेवाला; भ्रम के अन्धकार में से निकालकर सत्य के प्रकाश में ले जानेवाला। गुरु साहिब कहते हैं:

गुर दीपकु गिआनु सदा मनि बलीआ जीउ॥[41]

गुरु साहिब दूसरे प्रसंग में कहते हैं:

गुर साखी मिटिआ अंधिआरा बजर कपाट खुलावणिआ॥[42]

अर्थात् गुरु की शिक्षा पर चलने से अज्ञान के अन्धकार का नाश हो गया और परमात्मा से मिलाप के रास्ते में खड़ी रुकावटें दूर हो गयीं।

गुरु अज्ञान के वज्र-कपाट तोड़कर जीवात्मा को अन्धकार से प्रकाश में ले जाता है। गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं:

आपण लीआ जे मिलै विछुड़ि किउ रोवंनि॥
साधू संगु परापते नानक रंग माणंनि॥[43]

यदि हम स्वयं प्रभु से मिलाप कर सकते तो गुरु की कोई आवश्यकता नहीं थी। प्रभु, सतगुरु की सहायता से मिलता है। गुरु साहिब ज़ोर देकर कहते हैं:

बिनु सतिगुर किनै न पाइओ॥ बिनु सतिगुर किनै न पाइआ॥
सतिगुर विचि आपु रखिओनु करि परगटु आखि सुणाइआ॥[44]

सतिगुर बाझु न पाइओ सभ थकी करम कमाइ जीउ॥[45]

आप कहते हैं कि प्रभु, सतगुरु की दया-मेहर से मिलता है:

बाबा जगु फाथा महा जालि॥ गुर परसादी उबरे सचा नामु समालि॥[46]

गुरु तीरथु गुरु पारजातु गुरु मनसा पूरणहारु॥
गुरु दाता हरि नामु देइ उधरै सभु संसारु॥[47]

गुरु साहिब कहते हैं:

धुरि खसमै का हुकमु पइआ विणु सतिगुर चेतिआ न जाइ॥[48]

सचै सबदि सची पति होई॥ बिनु नावै मुकति न पावै कोई॥
बिनु सतिगुर को नाउ न पाए प्रभि ऐसी बणत बणाई हे॥[49]

'धुरि खसमै का हुकमु पइआ' और 'प्रभि ऐसी बणत बणाई हे' द्वारा यह दर्शाया गया है कि उस परमात्मा ने स्वयं यह युक्ति बनायी है कि बिना नाम के मुक्ति नहीं मिलती और बिना गुरु के नाम नहीं मिलता।

'प्रसादि' पद से यह भाव दृढ़ होता है कि परमात्मा मनुष्य की बुद्धि, चतुराई या शक्ति द्वारा नहीं, सतगुरु की दया-मेहर से मिलता है। 'चतुराई नह चीनिआ जाइ॥'[50]; 'चतुराई न चतुरभुजु पाईऐ॥'[51] उस सर्वशक्तिमान और सर्वज्ञाता को कोई अपनी शक्ति और अपने ज्ञान द्वारा प्राप्त नहीं कर सकता।

'गुर प्रसादि' पद से यह भाव दृढ़ होता है कि परमात्मा मनुष्य के यत्न द्वारा या कोई मूल्य अदा करने से नहीं मिलता। उसकी प्राप्ति गुरु की दया-मेहर पर निर्भर है। जिस पर गुरु दया करता है, केवल उसे ही परमात्मा से मिलाप का सौभाग्य प्राप्त होता है।

'गुर प्रसादि' पद चयन का भाव दृढ़ करवाता है अर्थात् गुरु जिस पर प्रसन्न होता है, उसको अपना शिष्य बनाता है। यदि कोई व्यक्ति किसी महात्मा को गुरु धारण करना चाहता है, तो जब तक वह महात्मा उसे शिष्य बनाना स्वीकार नहीं करता, रिश्ता क़ायम नहीं होता।

संसार के बहुत-से धर्मों के लोग यह मान कर चलते हैं कि हम पूर्व समय में हुए अपने धर्म-गुरुओं, अवतारों और पीरों पैग़म्बरों में विश्वास, भरोसा या ईमान लाकर प्रभु की दरगाह में परवान हो जायेंगे। शिष्य, गुरु को नहीं चुनता, गुरु जिस पर प्रसन्न होता है उसको अपनी शरण में लेना और उसका मार्ग-दर्शन करना स्वीकार करता है। हम मन की तसल्ली के लिए पिछले समय में हुए किसी गुरु और अवतार-पैग़म्बर को अपना गुरु-पीर समझ सकते हैं, पर हमें उस गुरु-पीर, अवतार-पैग़म्बर से न तो कोई स्वीकृति मिलती है और न ही सहायता प्राप्त होती है। पूर्व समय के महात्माओं की बात तो एक तरफ़ रही, हम अपने समय के किसी महात्मा को भी अपना गुरु बनने के लिए मजबूर नहीं कर सकते। शिष्य गुरु की इच्छा के अधीन होता है, गुरु शिष्य की इच्छा के अधीन नहीं होता। इसके अलावा अपने समय के किसी महात्मा को गुरु धारण कर लेना ही काफ़ी नहीं। संगीत सिखाने वाले उस्ताद का होना काफ़ी नहीं, स्वयं मेहनत और अभ्यास से संगीत में निपुणता प्राप्त करनी पड़ती है। गुरु साहिब की वाणी है:

सब किछु घर महि बाहरि नाही॥ बाहरि टोलै सो भरमि भुलाही॥
गुर परसादी जिनी अंतरि पाइआ सो अंतरि बाहरि सुहेला जीउ॥[52]

भूले कउ गुरि मारगि पाइआ॥ अवर तिआगि हरि भगती लाइआ॥[53]

गुरपरसादी नामु मनि वसिआ अनदिनु नामु धिआइआ॥[54]

गुरु शिष्य पर कृपा करके उसको बाहरमुखी भटकन में से निकालकर, परमेश्वर प्राप्ति के सच्चे अन्तर्मुख मार्ग पर डाल देता है, पर सफ़र शिष्य को स्वयं तय करना होता है। गुरु शिष्य को भक्ति के ग़लत साधनों में से निकालकर सच्ची भक्ति में लगाता है, पर भक्ति शिष्य को स्वयं करनी होती है। गुरु शिष्य की लिव नाम के साथ जोड़ता है, पर नाम का अभ्यास शिष्य ने स्वयं करना होता है। गुरू साहिब की वाणी है:

सतिगुर नो सभु को देखदा जेता जगतु संसारु॥
डिठै मुकति न होवई जिचरु सबदि न करे वीचारु॥[55]

सतिगुरु देखिआ दीखिआ लीनी॥ मनु तनु अरपिओ अंतरगति कीनी॥
गति मिति पाई आतमु चीनी॥[56]

दर्शन देना, सच्चे मार्ग पर डालना, दीक्षा देना और सुरत को अन्दर नाम के साथ जोड़ना, गुरु की दया-मेहर है पर सतगुरु के दर्शन कर लेना और उनसे नाम के साथ लिव जोड़ने की युक्ति सीख लेना पर्याप्त नहीं। गुरु के उपदेश के अनुसार ध्यान को अन्तर्मुख करके आत्मा की पहचान द्वारा परमात्मा की पहचान करना ज़रूरी है। अगर केवल निजी विश्वास या मान्यता द्वारा परमात्मा से मिलाप कर सकना संभव होता तो परमार्थी साहित्य में उल्लेखित गुरु की दया-मेहर, गुरु के दर्शन, गुरु की दीक्षा, सहायता और सम्भाल ही नहीं, शिष्य का उद्यम और नाम की कमाई आदि के वर्णन निरर्थक हो जाते हैं।

'गुर प्रसादि' का एक अन्य भाव भी है। प्रसाद मुफ़्त मिलता है, क़ीमत पर नहीं। पूरा गुरु दाता होता है, मँगता नहीं। वह अकालपुरुष का

रूप होता है। अकालपुरुष हमें अनन्त दातों की बख़्शिश करता है, पर कभी किसी दात का मूल्य नहीं माँगता। सच्चा गुरु जीव को अपनी शरण में लेने और उसको परमात्मा की भक्ति की राह पर चलाने के लिए की गयी सहायता का कोई मूल्य नहीं माँगता। गुरु नानक साहिब कहते हैं:

गुरु पीरु सदाए मंगण जाइ॥ ता कै मूलि न लगीऐ पाइ॥
घालि खाइ किछु हथहु देइ॥ नानक राहु पछाणहि सेइ॥[57]

आप सावधान करते हैं कि जो व्यक्ति गुरु-पीर होने का दावा करता है, पर अपने गुज़ारे के लिए दूसरों के आगे हाथ फैलाता है, ऐसे व्यक्ति के पैरों पर भूलकर भी माथा नहीं टेकना चाहिए। पूरा गुरु हक़-हलाल की कमाई पर गुज़ारा करता हुआ साध-संगत की मुफ़्त सेवा ही नहीं करता, बल्कि वह अपनी कमाई भी संगत के साथ बाँटकर खाता है।

'गुर प्रसादि' द्वारा गुरु साहिब यह गूढ़ भेद समझा रहे हैं कि जो '१' सतनाम और कर्तापुरुष के रूप में सृष्टि की रचना करता है, वही गुरु-रूप में प्रकट होकर जीवात्मा को अपने साथ मिलाने की दया करता है। गुरु साहिब समझाना चाहते हैं कि परमात्मा के हुक्म से जगत् में आयी जीवात्मा केवल उसकी दया द्वारा ही संसार के हर तरह के बन्धन तोड़कर निज घर वापस पहुँच सकती है। निराकार प्रभु की दया सतगुरु के रूप में प्रकट साकार प्रभु द्वारा होती है। गुरु अर्जुन साहिब 'सुखमनी' के आरम्भ में लिखते हैं:

आदि गुरए नमह॥ जुगादि गुरए नमह॥
सतिगुरए नमह॥ स्री गुरदेवए नमह॥[58]

सृष्टि के आरम्भ से भी पहले मौजूद आदि गुरु को नमस्कार है। युगों के आदि के आदि गुरु को नमस्कार है; संसार में सतगुरु का रूप धारण करके आये प्रभु को नमस्कार है। मेरा अपने श्री गुरुदेव को नमस्कार है। गुरु साहिब अपने सतगुरु को 'स्री गुरदेवए' कहते हैं। आपके कथन में

अपने सतगुरु के प्रति जो प्रेम और सम्मान भरा हुआ है, वह अपनी मिसाल आप है। आपने अपने गुरुदेव को बहुत प्रेम से पुकारा है क्योंकि आपको प्रभु का अनुभव अपने गुरुदेव द्वारा ही हुआ। आप कहते हैं, 'हरि जीउ नामु परिओ रामदासु॥'[59] वह हरि, रामदास नाम रखवाकर गुप्त से प्रकट हो गया है, निराकार से साकार बन गया है। आपका भाव है कि जीव का कल्याण गुरु के रूप में साक्षात् प्रकट होनेवाले हरि की दया द्वारा ही सम्भव है। आप लिखते हैं:

हरि का सेवकु सो हरि जेहा॥ भेदु न जाणहु माणस देहा॥
जिउ जल तरंग उठहि बहु भाती फिरि सललै सलल समाइदा॥[60]

बाहर से देखने में गुरु देह-स्वरूप है, पर वह वास्तव में सतनाम के समुद्र में से उठी दया की लहर है। यह लहर जिस जीवात्मा को अपने साथ मिला लेती है, उसे अपने साथ सतनाम-समुद्र में वापस ले जाती है। गुरु नानक साहिब लिखते हैं, 'गुर महि आपु समोइ सबदु वरताइआ॥'[61] वह आदि कर्ता अपने आपको शब्द-रूप में गुरु में समाकर जीवात्मा को अपने साथ मिलाने का कार्य करता है। भाई गुरदास की वाणी है:

बेद गिरंथ गुर हटि है जिसु लगि भवजल पारि उतारा॥
सतिगुर बाझु न बुझीऐ जिचरु धरे न प्रभु अवतारा॥[62]

वेदों और ग्रन्थ-शास्त्रों की समझ भी साकार गुरु से होती है और परमात्मा के साथ मिलाप का निजी अनुभव भी सतगुरु के रूप में प्रकट हुए परमात्मा द्वारा ही होता है।

सार

गुरु साहिब ने मूल-मन्त्र द्वारा परमात्मा के स्वरूप पर प्रकाश डाला है और उसके साथ मिलाप की युक्ति का वर्णन किया है। वह परम तत्त्व एक है। वह हर प्रकार की अनेकता का एकमात्र कारण और आधार है।

वह सतनाम ही वह कर्तापुरुष है जो सृष्टि की रचना करके उसको अपनी रज़ा के अनुसार चला रहा है। वह प्रभु भय-रहित और वैर-रहित है। वह अमर-अविनाशी है। वह जन्म-मरण के बन्धनों से ऊपर है। वह स्वयं प्रकाश में आया है और अपना आधार आप है। ऐसे अनुपम गुणों के मालिक उस प्रभु की प्राप्ति पूरे गुरु की दया-मेहर द्वारा होती है।

जपु

मूल-मन्त्र के बाद एक श्लोक है। उसके बाद 38 पउड़ियाँ हैं, जिनके अन्त में एक अन्य श्लोक है। दो श्लोकों और 38 पउड़ियों पर आधारित इस रचना का नाम 'जपु' रखा गया है!

गुरु साहिबान द्वारा रखे गए वाणियों के नाम गहरे अर्थों से भरे हुए हैं। 'सुखमनी' गुरु अर्जुन साहिब की एक वाणी का नाम है। इस वाणी में गुरु साहिब संकेत देते हैं, 'सुखमनी सुख अंम्रित प्रभ नामु'[63] अर्थात् प्रभु का नाम ही सच्चे सुख की मणि है। 'अनंदु साहिब' में गुरु अमरदास जी कहते हैं, 'अनंदु भइआ मेरी माए सतिगुरू मै पाइआ॥'[64], 'आनंदु आनंदु सभु को कहै आनंदु गुरू ते जाणिआ॥'[65] इस तरह 'अनंदु' एक वाणी का नाम भी है और यह नाम एक गहरा सन्देश भी देता है। इसी तरह 'जपु' शब्द भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। यह इस वाणी का नाम भी है और इससे उस परमात्मा का नाम जपने का सन्देश भी मिलता है, जिसकी गुरु साहिब ऊपर महिमा कर आये हैं। 'जपु' को 'गुर प्रसादि' के साथ जोड़ लें तो इससे यह संकेत भी मिलता है कि गुरु की दया-मेहर द्वारा नाम जप कर परमात्मा की प्राप्ति हो सकती है।

जपु

आदि सचु जुगादि सचु॥
है भी सचु नानक होसी भी सचु॥

. . . . . .

जिनी नामु धिआइआ गए मसकति घालि॥
नानक ते मुख उजले केती छुटी नालि॥

जपु

आदि सचु जुगादि सचु॥
है भी सचु नानक होसी भी सचु॥

मूल-मन्त्र में गुरु साहिब समझा चुके हैं कि परमात्मा एक है, वह सतनाम अजन्मा और अविनाशी है। इसी विचारिं से 'जपुजी' का आरम्भ करते हुए गुरु साहिब कहते हैं:

आदि में जब कुछ नहीं था तब प्रभु था। जब रचना का आरम्भ हुआ और युगों की गिनती शुरू हुई, तब भी वह प्रभु था। अब जब कि सृष्टि की रचना को हुए अनन्त युग बीत चुके हैं, वह प्रभु अब भी है और भविष्य में भी वह सदा रहेगा।

व्याख्या

गुरु साहिब ने मूल-मन्त्र में प्रभु को 'सतिनामु' कहा है। यहाँ भी परमात्मा को सत्य कह रहे हैं। सचु=परमात्मा। गुरु साहिब समझा रहे हैं कि परमात्मा का अस्तित्व या हस्ती सत्य है। आप स्पष्ट करते हैं:

1. परमात्मा कल्पना, ख़याल या सिद्धान्त-मात्र नहीं, वास्तविक अस्तित्व, सत्ता या वजूद है।
2. केवल परमात्मा का अस्तित्व, हस्ती या वजूद ही सत्य है।
3. परमात्मा अनादि और अविनाशी है। उसका न कोई आदि है, न मध्य और न ही अन्त। वह देश तथा काल की सीमा से परे और ऊपर है।

सच वह है जो अपने अस्तित्व के लिए किसी दूसरे पर निर्भर नहीं और जो सदा एक-रस, एक-रंग और एक-रूप रहता है। गुरु नानक साहिब वाणी के एक और प्रसंग में कहते हैं:

निहचलु कोइ न दिसै संसारै॥ अफरिउ कालु कूड़ु सिरि मारै॥
निहचलु एकु सचा सचु सोई॥'[1]

संसार की हर वस्तु झूठी और नाशवान है। वह अकालपुरुष सच है क्योंकि वह निश्चल, अमर और अविनाशी है। आप कहते हैं, 'काइआ गड़ महल महली प्रभु साचा सचु साचा तखतु रचाइआ॥'[2] वह परमात्मा निहचल है और उसका निवास-स्थान भी निहचल है। गुरु अमरदास जी कहते हैं, 'सचै सचा तखतु रचाइआ॥'[3] वह प्रभु, उसका सिंहासन और राज्य सदा क़ायम रहता है। गुरु रविदास जी कहते हैं, 'काइमु दाइमु सदा पातिसाही॥'[4] उस सच्चे शहंशाह की बादशाहत अटल और अविनाशी है। गुरु अर्जुन देव जी की वाणी है:

रहणु न पावहि सुरि नर देवा॥
ऊठि सिधारे करि मुनि जन सेवा॥[5]

आम इनसान ही नहीं, देवी-देवता भी काल के अधीन हैं। गुरु अमरदास जी का कथन है, 'जो आइआ सो सभु को जासी॥'[6] जो बनता है, वह समय पाकर अवश्य नष्ट हो जाता है। जो आता है, उसे देर-सवेर अवश्य जाना पड़ता है। उस अकालपुरुष पर काल का प्रभाव नहीं पड़ता। वह सब परिवर्तनों का कर्ता है, पर स्वयं परिवर्तन से मुक्त है। गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं, 'आदि निरंजनु प्रभु निरंकारा॥'[7] वह निराकार प्रभु जो सदा से चला आ रहा है, काल और माया के प्रभाव से मुक्त है। आप कहते हैं:

सूरति देखि न भूलु गवारा॥ मिथन मोहारा झूठु पसारा॥
जग महि कोई रहणु न पाए निहचलु एकु नाराइणा॥[8]

आप उपदेश देते हैं कि संसार में दिखाई देनेवाली शक्लों को देखकर मत भूलो कि यह सारा संसार माया का झूठा खेल है। यहाँ कुछ भी और कोई भी सदा क़ायम नहीं रहता। केवल उस नारायण का वजूद ही सच्चा, स्थिर, अमर और अविनाशी है। गुरु अमरदास जी की वाणी है, 'एको

सेवी सदा थिरु साचा॥'[9] आप कहते हैं कि भक्ति या पूजा करना चाहते हो, तो उस एक सच्चे और निहचल प्रभु की करो। उस अविनाशी प्रभु के बिना कोई दूसरी वस्तु पूजा या भक्ति के योग्य नहीं है।

पउड़ी 1

सोचै सोचि न होवई जे सोची लख वार॥
चुपै चुप न होवई जे लाइ रहा लिव तार॥
भुखिआ भुख न उतरी जे बंना पुरीआ भार॥
सहस सिआणपा लख होहि त इक न चलै नालि॥
किव सचिआरा होईऐ किव कूड़ै तुटै पालि॥
हुकमि रजाई चलणा नानक लिखिआ नालि॥

शब्दार्थ: चुपै=मौन धारण करने से। सहस=हज़ारों। पालि=दीवार, पर्दा।

सरलार्थ: पिछले श्लोक में सच्चे प्रभु की महिमा सुनकर मन में उसके साथ मिलाप करने की इच्छा पैदा होती है और इसके लिए हम अलग-अलग साधन और मार्ग अपनाते हैं। इस पउड़ी में गुरु साहिब उन साधनों का उल्लेख करने के साथ-साथ प्रभु की प्राप्ति के सच्चे साधन की तरफ़ भी इशारा करते हैं। आप कहते हैं:

अगर कोई चाहे कि शरीर की सफ़ाई से मन निर्मल हो जायेगा तो यह असम्भव है, चाहे वह लाखों बार शरीर की सफ़ाई कर ले।

मौन धारण करने से मन चुप नहीं होता और न ही प्रभु से मिलाप होता है, चाहे लगातार ध्यान में लगे रहें।

भूखे रहने से मन की भूख शान्त नहीं होती और न ही सभी पुरियों या सभी लोकों की धन-दौलत मिलने से भूख शान्त होती है।

चाहे इनसान कितना ही बुद्धिमान हो और उसमें लाखों चतुराइयाँ हों पर उनमें से एक भी उस सच्चे दरबार तक पहुँचने में सहायक नहीं होती।

तो फिर 'सचिआरा' यानी सच्चा कैसे बना जा सकता है और झूठ की दीवार कैसे टूट सकती है? झूठ की दीवार तोड़ने और 'सचिआर' बनने का एकमात्र सच्चा साधन यह है कि जीव उस हुक्मी परमात्मा के हुक्म पर चलना शुरू कर दे, उस हुक्म पर जो उस कर्ता ने धुरधाम से उसके साथ लिखकर भेजा है।

व्याख्या

सोचै सोचि न होवई जे सोची लख वार॥ कुछ व्याख्याकारों ने 'सोचि' के अर्थ अक़्ल, बुद्धि, दलील या सोच-विचार आदि किये हैं अर्थात् परमात्मा विचार, चिन्तन या बुद्धि द्वारा नहीं मिल सकता।

कुछ व्याख्याकारों ने 'सोचि' शब्द को संस्कृत के 'शौच' का रूप मानकर इस पंक्ति की व्याख्या इस प्रकार की है कि चाहे तीर्थों आदि पर स्नान करके लाखों बार शरीर की सफ़ाई कर ली जाये, इससे मन की सफ़ाई नहीं होती और जब तक मन की सफ़ाई नहीं होती तथा मन निर्मल नहीं होता, तब तक प्रभु रूपी सत्य की प्राप्ति नहीं हो सकती। वे इस बात की पुष्टि के लिए वाणी से ये प्रमाण देते हैं:

सोच करै दिनसु अरु राति॥ मन की मैलु न तन ते जाति॥[1]

काइआ कुसुध हउमै मलु लाई॥ जे सउ धोवहि ता मैलु न जाई॥[2]

कबीर साहिब दो सुन्दर संकेत करते हैं:

कबीर गंगा तीर जु घरु करहि पीवहि निरमल नीरु॥
बिनु हरि भगति न मुकति होइ इउ कहि रमे कबीर॥[3]

कबीर मनु निरमलु भइआ जैसा गंगा नीरु॥
पाछै लागो हरि फिरै कहत कबीर कबीर॥[4]

शरीर की सफ़ाई काफ़ी नहीं, मन की सफ़ाई ज़रूरी है। मन की सफ़ाई भक्ति से होती है और निर्मल हृदय वाले व्यक्ति को परमात्मा की खोज करने की ज़रूरत नहीं पड़ती, परमात्मा ख़ुद उसकी खोज करता है।

गुरु साहिब ने इसी पउड़ी में 'सहस सिआणपा लख होहि त इक न चलै नालि॥' द्वारा यह समझाया है कि अक़्ल या चतुराई जीवात्मा को परमात्मा के दरबार में नहीं पहुँचा सकती। इसलिए यहाँ 'सोचि' का अर्थ शरीर की सफ़ाई अधिक स्वाभाविक प्रतीत होता है।

चुपै चुप न होवई जे लाइ रहा लिव तार॥ कुछ लोग कहते हैं कि अगर मन पर नियन्त्रण करना चाहते हो तो मौन धारण करके बैठ जाओ। इससे तुम्हारी लिव अन्तर में जुड़ जायेगी। गुरु साहिब समझाते हैं कि इस तरह मन वश में नहीं आ सकता। मौन धारण करनेवाले मुँह से नहीं बोलते पर जिस चीज़ की आवश्यकता हो, इशारे से या लिखकर माँग लेते हैं। मौन धारण करने से न तो शरीर की आवश्यकताएँ पूरी होती हैं और न ही मन में संकल्प-विकल्प उठने बन्द होते हैं। अगर मौन धारण करने से प्रभु का ज्ञान मिल जाता तो सारे गूँगे ब्रह्मज्ञानी बन जाते। गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं:

बोलै नाही होइ बैठा मोनी॥ अंतरि कलप भवाईऐ जोनी॥[5]

अर्थात् मौन धारण कर लेने के बावजूद मन आशाओं-तृष्णाओं और संकल्पों-विकल्पों का अखाड़ा बना रहता है। परमात्मा से लिव जोड़ने के लिए मुँह बन्द करने की नहीं, मन को एकाग्र, स्थिर और शान्त करने की ज़रूरत है।

भुखिआ भुख न उतरी जे बंना पुरीआ भार॥ इस पंक्ति का सरल अर्थ यह है कि भूखों की भूख दूर नहीं होती चाहे उनको सारी सृष्टि की धन-दौलत क्यों न मिल जाये। गुरु अर्जुन साहिब की वाणी है, 'सहस खटे लख कउ उठि धावै॥ त्रिपति न आवै माइआ पाछै पावै॥'[6] माया की भूख माया की प्राप्ति से पूरी नहीं हो सकती।

इस पंक्ति से यह अर्थ भी लिया जाता है कि मन को न सांसारिक पदार्थों से वंचित रखकर वश में किया जा सकता है और न ही सारी सृष्टि की धन-दौलत देकर वश में किया जा सकता है। मन को ज़बरदस्ती मायामय पदार्थों से दूर रखने से, मन से इनकी चाह दूर नहीं

होती। इसी तरह मन की हर इच्छा पूरी करने से भी, मन की तृष्णाएँ शान्त नहीं होतीं।

इस पंक्ति से यह भाव भी लिया जाता है कि आत्मा की भूख सांसारिक भोजन से नहीं, केवल आत्मिक भोजन से ही शान्त हो सकती है। आत्मा की परमात्मा से मिलाप करने की क़ुदरती तड़प, केवल परमात्मा के मिलाप द्वारा ही शान्त हो सकती है। गुरु नानक साहिब फ़रमाते हैं:

नानक सचे नाम बिनु किसै न लथी भुख॥
रूपी भुख न उतरै जां देखां तां भुख॥[7]

आप फ़रमाते हैं कि इनसान की न धन-दौलत इकट्ठा करने की भूख शान्त होती है और न ही सौन्दर्य की। परमात्मा के सच्चे नाम के बिना कामना या वासना कभी शान्त नहीं होती। गुरु अर्जुन देव जी की वाणी है:

विणु तुधु होरु जि मंगणा सिरि दुखा कै दुख॥
देहि नामु संतोखीआ उतरै मन की भुख॥[8]

गुरु अंगद साहिब कहते हैं:

भुखिआ भुख न उतरै गली भुख न जाइ॥
नानक भुखा ता रजै जा गुण कहि गुणी समाइ॥[9]

जब तक आत्मा नाम के जाप द्वारा परमात्मा में नहीं समा जाती, इसकी परमात्मा से मिलने की भूख कभी शान्त नहीं हो सकती।

इस पंक्ति के जो भी अर्थ किए जायें, इससे हमें यह उपदेश अवश्य मिलता है कि मन न तो इन्द्रियों के दमन से शान्त होता है और न ही तृष्णाओं की पूर्ति से। मन सिर्फ़ नाम के अमृत द्वारा शान्त होता है।

सहस सिआणपा लख होहि त इक न चलै नालि॥ मन-बुद्धि द्वारा प्रभु तक पहुँच सकना असम्भव है। उस सर्वज्ञाता को कोई अपने ज्ञान द्वारा कैसे प्राप्त कर सकता है? गुरु नानक साहिब कहते हैं, 'सहस सिआणप पवै न ताउ॥'[10] गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं, 'सहस सिआनप लइआ न जाईऐ॥'[11] गुरु रामदास जी कहते हैं, 'सहस सिआणप नह मिलै मेरी जिंदुड़ीए जन नानक गुरमुखि जाता राम॥'[12]

बुद्धि या चतुराई मनुष्य को अपने आप धर्मात्मा नहीं बना देती। रावण को दशानन अर्थात् दस सिरों वाला कहा जाता है क्योंकि चार वेदों और छह दर्शनों का ज्ञान उसकी अंगुलियों पर था। इतने ज्ञान के बावजूद वह न अपने मन को क़ाबू में कर सका और न ही नेकी और सच्चाई की राह पर चल सका। गुरु नानक साहिब का फ़रमान है:

पड़िआ मूरखु आखीऐ जिसु लबु लोभु अहंकारा॥
नाउ पड़ीऐ नाउ बुझीऐ गुरमती वीचारा॥[13]

लोभ और अहंकार को जन्म देनेवाली विद्वत्ता व्यर्थ है। अपने आस-पास नज़र डालकर देखें, आज विज्ञान ने इनसान को कितना अधिक ज्ञान दिया है। लेकिन इस ज्ञान का उपयोग मानवता की तबाही के लिए अधिक किया जा रहा है और उसके कल्याण के लिए कम। बुद्धि दोधारी तलवार है, यह सीधी तरफ़ से भी काट सकती है और उलटी तरफ़ से भी। बुद्धि सांसारिक काम-काज के लिए है। उस सर्वज्ञाता से हम अपने ज्ञान या बुद्धि द्वारा नहीं मिल सकते। वह अलख व अगम प्रभु मन, बुद्धि की पहुँच से परे है। वह आत्मा द्वारा अनुभव किया जानेवाला परम तत्त्व है।

किव सचिआरा होईऐ किव कूड़ै तुटै पालि॥
हुकमि रजाई चलणा नानक लिखिआ नालि॥

गुरु साहिब ने 'जपुजी' के पहले श्लोक में परमात्मा को सच कहा है। वह परमेश्वर सच है क्योंकि वह अपना आधार आप है। वह सच है क्योंकि वह सदा एक-रंग, एक-रस और एक-रूप रहता है; वह न ही बदलता है और न ही नाश होता है। उस अमर-अविनाशी परमेश्वर के अलावा दूसरी हर चीज़ परिवर्तनशील और नाशवान है, इसलिए गुरु साहिब ने परमेश्वर के अलावा हर चीज़ को असत्य या झूठ कहा है।

गुरु साहिब रचना रूपी कूड़ (असत्य) के साथ प्रेम करने वाले व्यक्ति को कुड़िआर और परमात्मा रूपी सच में समा कर उस का रूप हो जाने वाले व्यक्ति को सचिआर कहते हैं। आप कहते हैं कि जीवात्मा और परमात्मा के बीच असत्य की दीवार खड़ी है। इस दीवार को गिराकर कूड़िआर से सचिआर बनने का एकमात्र साधन मनमत को त्याग कर अपने आप को परमात्मा के हुक्म के अधीन करना है।

गुरु अमर दास जी का कथन है, 'त्रै गुण कालै की सिरि काल॥'[14] गुरु अर्जुन देव जी की वाणी है:

सूरति देखि न भूलु गवारा॥ मिथन मोहार झूठु पसारा॥
जग महि कोई रहणु न पाए निहचलु एकु नाराइणा॥[15]

यह संसार बाहरी दृष्टि से देखने पर सच्चा और स्थाई प्रतीत होता है पर वास्तव में माया का झूठा या नाशवान पसारा है। वह परमेश्वर के अलावा सबकुछ नाशवान है। गुरु नानक साहिब 'आसा दी वार' में कहते हैं, 'नानकु वखाणै बेनती तुधु बाझु कूड़ो कूड़ु॥'[16] आप प्रभु रूपी सत्य को छोड़कर बाकी हर चीज़ को कूड़ कहते हैं। आपने 'कूड़ु' पद माया के लिए भी प्रयोग किया है और अज्ञान, द्वैत या अहं के लिए भी। कूड़ की दीवार गिराने से गुरु साहिब का वास्तविक भाव माया, द्वैत, अज्ञान या अहं के बन्धन तोड़ने से है। आप परमेश्वर के हुक्म की पालना को इन बन्धनों को तोड़ने का वास्तविक साधन बताते हैं।

सचिआर, कूड़िआर, हुकम

गुरु साहिब द्वारा प्रयुक्त तीन शब्दों 'सचिआर', 'कूड़िआर' और 'हुकम' का आपके उपदेश में अत्यन्त महत्त्व है। आपके उपदेश का मूल उद्देश्य कूड़िआर को सचिआर या मनमुख को गुरुमुख बनाना है। गुरु साहिब के अनुसार यह कार्य परमात्मा का हुक्म मानने से होता है। आप 'कूड़िआर' किसको कहते हैं और 'सचिआर' किसको कहते हैं?

सचि मिलै सचिआरु कूड़ि न पाईऐ॥
सचे सिउ चितु लाइ बहुड़ि न आईऐ॥[17]

परमात्मा रूपी सत्य में समाकर जन्म-मरण के बन्धनों से आज़ाद हो चुके प्राणी सचिआर हैं। माया रूपी कूड़ में ग्रस्त कूड़िआरों को यह बड़ाई नहीं मिल सकती। आप कहते हैं:

सुइना रुपा संचीऐ धनु काचा बिखु छारु॥
साहु सदाए संचि धनु दुबिधा होइ खुआरु॥
सचिआरी सचु संचिआ साचउ नामु अमोलु॥
हरि निरमाइलु ऊजलो पति साची सचु बोलु॥
साजनु मीतु सुजाणु तू तू सरवरु तू हंसु॥
साचउ ठाकुरु मनि वसै हउ बलिहारी तिसु॥[18]

संसार के झूठे और नाशवान पदार्थ इकट्ठे करने में लगे हुए लोग कूड़िआर हैं। प्रभु के नाम का सच्चा धन इकट्ठा कर रहे लोग सच्चे भक्त या सचिआर हैं। गुरु साहिब 'आसा दी वार' में कहते हैं:

नानक जीअ उपाइ कै लिखि नावै धरमु बहालिआ॥
ओथै सचे ही सचि निबड़ै चुणि वखि कढे जजमालिआ॥
थाउ न पाइनि कूड़िआर मुह काल्है दोजकि चालिआ॥
तैरै नाइ रते से जिणि गए हारि गए सि ठगण वालिआ॥
लिखि नावै धरमु बहालिआ॥[19]

गुरु साहिब सावधान करते हैं कि नाम के रंग में रँगे सचिआर जीवन की बाज़ी जीतकर सच्ची दरगाह में परवान हो जाते हैं जबकि दुनिया के प्यार में फँसे कूड़िआर, ज़िन्दगी की बाज़ी हार जाते हैं। वे सदा आवागमन के चक्कर में फँसे रहते हैं।

हुकमि रजाई चलणा नानक लिखिआ नालि॥ इस पंक्ति के यह अर्थ भी किये जाते हैं कि कर्मानुसार लिखे तक़दीर के लेख को ख़ुशी-ख़ुशी परवान कर लेना ही 'हुकमि रजाई चलणा' है।

हुक्म के बारे में चर्चा करते समय तीन बातें मुख्य रखनी चाहिए—(1) हुक्म से गुरु साहिब का भाव प्रभु की रज़ा (भाणा) भी है। (2) उसकी संसार की रचना और सँभाल करनेवाली शक्ति भी और जीवात्मा को परमात्मा के साथ मिलाने वाली शक्ति भी। (3) गुरु साहिबान तथा अन्य कई सन्तों-महात्माओं ने हुक्म, शब्द, नाम और परमात्मा—सबका समान अर्थों में प्रयोग किया है। 'सभो हुकमु हुकमु है आपे निरभउ समतु बीचारी॥'[20] या 'नामु निरंजन नालि है किउ पाईऐ भाई॥'[21] और 'तेरा सबदु तूंहै हहि आपे भरमु कहा ही॥'[22] इन और ऐसे अन्य प्रसंगों से पता चलता है कि वाणी में हुक्म, शब्द, नाम और परमात्मा को समान अर्थों में प्रयोग किया गया है। इसके बारे में आगे विस्तारपूर्वक चर्चा करेंगे। यहाँ इतना जान लेना ही काफ़ी है कि 'हुकमि रजाई चलणा नानक लिखिआ नालि॥' द्वारा गुरु साहिब अपनी विचारधारा के इस बुनियादी पहलू पर प्रकाश डाल रहे हैं कि प्रभु-प्राप्ति का एकमात्र साधन प्रभु का हुक्म, नाम या शब्द है। वह हुक्म, नाम या शब्द कहीं बाहर नहीं, जीव के अन्दर और जीव के साथ है। गुरु रामदास जी की वाणी है:

नामु निरंजन अलखु है किउ लखिआ जाई॥
नामु निरंजन नालि है किउ पाईऐ भाई॥
नामु निरंजन वरतदा रविआ सभ ठांई॥
गुर पूरे ते पाईऐ हिरदै देइ दिखाई॥
नानक नदरी करमु होइ गुर मिलीऐ भाई॥[23]

निरंजन का निरंजन-रूप नाम, जीव के अपने अन्दर है। जब गुरु के उपदेश पर चलते हैं तो यह नाम हृदय में प्रकट हो जाता है और सर्वव्यापक दिखायी देने लगता है।

गुरु साहिब ने कूड़िआर से सचिआर बनने के लिए 'हुकमि रजाई चलणा नानक लिखिआ नालि॥' का उपदेश दिया है। आप वाणी के एक अन्य प्रसंग में कहते हैं:

एको नामु हुकमु है नानक सतिगुरि दीआ बुझाइ जीउ॥[24]

जीव को परमात्मा द्वारा केवल एक हुक्म दिया गया है और वह हुक्म है, नाम से लिव जोड़ना। गुरु अमर दास जी लिखते हैं, 'सिमरि गोविंदु मनि तनि धुरि लिखिआ॥'[25] 'नानक लिखिआ नालि' और 'मनि तनि धुरि लिखिआ' जीव को संसार में भेजते समय उस कर्ता की तरफ़ से दिये गये हुक्म का बोध करवाते हैं। वह हुक्म, नाम से लिव जोड़ने का है। नाम के साथ लिव जोड़ने पर झूठ की दीवार टूटती है और नाम के साथ लिव जोड़ने पर ही जीव सचिआर बनकर निज-घर वापस पहुँचने का सौभाग्य प्राप्त कर सकता है। गुरु अर्जुन साहिब कहते हैं:

प्रभ मिलणै की एह नीसाणी॥ मनि इको सचा हुकमु पछाणी॥
सहजि संतोखि सदा त्रिपतासे अनदु खसम कै भाणै जीउ॥[26]

जो हुक्म को पहचान लेता है, वह प्रभु से मिल जाता है और जो प्रभु से मिल जाता है, हुक्म का रूप हो जाता है।

पउड़ी 2

हुकमी होवनि आकार हुकमु न कहिआ जाई॥
हुकमी होवनि जीअ हुकमि मिलै वडिआई॥
हुकमी उतमु नीचु हुकमि लिखि दुख सुख पाईअहि॥
इकना हुकमी बखसीस इकि हुकमी सदा भवाईअहि॥
हुकमै अंदरि सभु को बाहरि हुकम न कोइ॥
नानक हुकमै जे बुझै त हउमै कहै न कोइ॥

सरलार्थ: पहली पउड़ी में गुरु सहिब ने हुक्म की पहचान को परमात्मा से मिलाप का सच्चा साधन बताया है। यहाँ हुक्म के बारे में और ज़्यादा विस्तार से समझाते हुए कहते हैं:

जिस हुक्म द्वारा रचना के सब आकार अस्तित्व में आते हैं, वह हुक्म अकथ है। संसार के सब जीव भी हुक्म के द्वारा अस्तित्व में आते हैं और

सच्ची बड़ाई भी हुक्म द्वारा प्राप्त होती है। जो उत्तम हैं, वे हुक्म द्वारा उत्तम बने हैं। जो नीच हैं, हुक्म के कारण नीच हैं। जिसको सुख मिलता है, हुक्म द्वारा मिलता है, जिसको दु:ख मिलता है, हुक्म द्वारा मिलता है। जिन पर दया-मेहर-बख़्शिश होती है, हुक्म द्वारा होती है। जो सदा भटकते रहते हैं, वे हुक्म के कारण ही भटकते हैं। सबकुछ उसके हुक्म के अन्दर है। जिन्हें हुक्म की पहचान हो जाती है, उनका अहं दूर हो जाता है। फिर वे कभी हौंमैं का शिकार नहीं होते।

व्याख्या

हुकमी होवनि आकार हुकमु न कहिआ जाई॥ रेत के कण से लेकर पृथ्वी, चन्द्र, सूर्य, खण्ड-ब्रह्माण्ड आदि सबका आकार हैं। इनसान-हैवान, देवी-देवता आदि सब का आकार है। हर आकार उस कर्ता के हुक्म से अस्तित्व में आया है और हुक्म अकथ है। उस हुक्म के बारे में मनुष्य द्वारा रचित भाषा में कुछ कैसे कहा जा सकता है? गुरु अमरदास जी का कथन है, 'हुकमे साजे हुकमे ढाहे हुकमे मेलि मिलाइदा॥'[1] गुरु नानक साहिब का कथन है:

हुकमी सभे ऊपजहि हुकमी कार कमाहि॥
हुकमी कालै वसि है हुकमी साचि समाहि॥
नानक जो तिसु भावै सो थीऐ इना जंता वसि किछु नाहि॥[2]

गुरु अमरदास जी की वाणी है:

हुकमी स्रिसटि साजीअनु बहु भिति संसारा॥
तेरा हुकमु न जापी केतड़ा सचे अलख अपारा॥[3]

हुकमी होवनि जीअ हुकमि मिलै वडिआई॥ गुरु अर्जुन साहिब कहते हैं, 'लख चउरासीह जोनि सबाई॥ माणस कउ प्रभि दीई वडिआई॥'[4] चौरासी लाख योनियों में सबसे ऊँची योनि मनुष्य की है। मनुष्य बनने की बड़ाई भी प्रभु की रज़ा से मिलती है और मनुष्यों में बड़ा या ऊँचा मनुष्य

बनने की बड़ाई भी हुक्म द्वारा मिलती है। जिसको वह कर्ता सांसारिक बड़ाई बख़्शता है, वह संसार में बड़ा बन जाता है, जिसको वह अपने प्रेम और अपने नाम की दात बख़्शता है, उसको उसके मिलाप की बड़ाई मिल जाती है। 'नानक नामु मिलै वडिआई एदू उपरि करमु नही॥'[5] उस कर्ता की बड़ी से बड़ी रहमत यह है कि वह अपने नाम द्वारा अपने साथ मिलाप की बड़ाई बख़्श दे।

हुकमी उतमु नीचु हुकमि लिखि दुख सुख पाईअहि॥ जीवों के बड़ा-छोटा, भला-बुरा, सुखी-दु:खी होने का कारण हुक्म है। सांसारिक तौर पर बड़ा-छोटा या ऊँचा-नीचा होने का कारण भी हुक्म है और रूहानियत के आधार पर बड़ा-छोटा या ऊँचा-नीचा होने का कारण भी हुक्म है। रचना की दु:खदायक भटकन से बँधे रहने का कारण भी हुक्म है और परमात्मा के साथ मिलाप के परम-आनन्द की प्राप्ति का साधन भी हुक्म है। गुरु नानक साहिब की वाणी है:

दुखु सुखु तेरै भाणै होवै किस थै जाइ रूआईऐ॥
हुकमी हुकमि चलाए विगसै नानक लिखिआ पाईऐ॥[6]

गुरु अंगद सहिब का कथन है:

हुकमि चलाए आपणै करमी वहै कलाम॥
नानक सचा सचि नाइ सचु सभा दीबानु॥[7]

आपका तात्पर्य है कि सुख-दु:ख किये हुए कर्मों के अनुसार मिलते हैं तथा कर्म और फल का कानून परमात्मा के हुक्म का खेल है।

गुरु साहिब ने 'जपुजी' की तीसरी पउड़ी में कहा है, 'हुकमी हुकमु चलाए राहु॥' 'जपुजी' में ही गुरु साहिब ने 'करमी करमी होइ वीचारु'[8] के नियम की तरफ़ इशारा किया है। इनसान को जो कुछ मिलता है, किये हुए कर्मों के अनुसार मिलता है तथा कर्म और फल का नियम उस कर्ता की रज़ा से उत्पन्न हुआ है। इसलिए गुरु साहिब कहते हैं कि जो कुछ हो रहा है, उस कर्ता के हुक्म के अनुसार हो रहा है। गुरु नानक साहिब की वाणी

है, 'तिन्हा सवारे नानका जिन्ह कउ नदरि करे॥'[9] जिन पर उसकी रहमत हो जाती है, वे उसके हुक्म की पहचान द्वारा उसके साथ मिलकर उत्तम-पद प्राप्त कर लेते हैं। बाकी सब इस रचना में सुख-दुःख के जाल में बँधे रहते हैं।

इकना हुकमी बखसीस इकि हुकमी सदा भवाईअहि॥ गुरु अंगद साहिब फ़रमाते हैं:

> इहु जगु सचै की है कोठड़ी सचे का विचि वासु॥
> इकन्हा हुकमि समाइ लए इकन्हा हुकमे करे विणासु॥[10]

अर्थात् प्रभु के साथ मिलने की बड़ाई भी हुक्म से मिलती है और चौरासी के चक्कर में भटकने का कारण भी हुक्म है।

मर्ज़ी रचयिता की चलती है, रचना की नहीं। आज़ादी नाटककार को होती है, पात्र को नहीं। किसी जीव को कब तक रचना रूपी नाटक का हिस्सा बने रहना है और कब रचना के बन्धनों से मुक्त होकर वापस जाकर रचयिता में समाना है, इसका फ़ैसला उस रचयिता की मौज के अनुसार होता है।

रचयिता की मौज विवेकरहित नहीं है पर उसकी मौज को मन-बुद्धि द्वारा समझ सकना या शब्दों में बयान कर सकना सम्भव नहीं है। अनेक नीच, पापी और अपराधी—सन्तों की संगति द्वारा—देखते ही देखते सन्त-महात्मा बन जाते हैं, जब कि अनेक नेक-दिल इनसान, प्रभु के अस्तित्व को ही नहीं मानते। अनेक लोग दान-पुण्य, लोक-सेवा, सच्चाई, ईमानदारी, त्याग, मानवता के प्रेम और लोक-भलाई के महत्त्व को स्वीकार करते हैं। वे देश, जाति या धर्म के लिए अपनी जान क़ुर्बान करने को भी तैयार हो जाते हैं पर परमात्मा का नाम जप कर परमात्मा से मिलाप करने के महत्त्व को स्वीकार करने को तैयार नहीं होते। गुरु अर्जुन देव जी की वाणी है, 'ना को मूरखु ना को सिआणा॥ वरतै सभ किछु तेरा भाणा॥'[11] आपका भाव है कि न कोई अपनी मूर्खता के कारण परमेश्वर से दूर है और न कोई अपनी चतुराई या बुद्धिमता के कारण परमात्मा के समीप

है। जिसको वह परमात्मा स्वयं समीप लाना चाहता है, वह उसके पास है और जिसको वह नज़दीक नहीं करना चाहता, वह उससे दूर है।

हुकमै अंदरि सभु को बाहरि हुकम न कोइ॥ सारी सृष्टि, सृष्टि की हर चीज़ और सृष्टि का हर जीव उस सर्वशक्तिमान कर्ता के हुक्म में है। सृष्टि में कुछ भी उसके हुक्म से बाहर नहीं है।

नानक हुकमै जे बुझै त हउमै कहै न कोइ॥ जिसको यह ज्ञान हो जाता है कि प्रभु का हुक्म सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान है और इनसान की मर्ज़ी तुच्छ और निर्बल है, वह सदा के लिए हौंमैं के रोग से मुक्त हो जाता है।

हौंमैं

हौंमैं 'हउ' और 'मैं' के जोड़ से बना है जिसके अर्थ हैं 'मैं-मेरा' या 'मैं-मेरी'। गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं, 'अंतरि अलखु न जाई लखिआ विचि पड़दा हउमै पाई॥'[12] आत्मा और परमात्मा के बीच हौंमैं की दीवार है।

गुरु नानक साहिब की वाणी है, 'हउमै बिखु पाइ जगतु उपाइआ सबदु वसै बिखु जाइ॥'[13] संसार की रचना करते समय इसमें हौंमैं का विष डाला गया है। गुरु अमरदास जी की वाणी है, 'दूजै भाइ न सेविआ जाइ॥ हउमै माइआ महा बिखु खाइ॥'[14] आप 'हउमै', 'माइआ' और 'दूजै भाइ' तीनों को विष कह रहे हैं। 'दूजै भाइ' का अर्थ द्वैतभाव भी है और प्रभु के सिवाय किसी दूसरी चीज़ का प्यार भी है।

1. परमात्मा के अलावा किसी दूसरी चीज़ को अपना बनाने की कोशिश करना, हौंमैं है।
2. 'मैं' का भाव, 'आपाभाव' या अपने आपको परमात्मा से अलग समझना और अपनी अलग हस्ती क़ायम करने की कोशिश करना, हौंमैं है।
3. परमात्मा के हुक्म के अधीन चलने की बजाय मनमर्ज़ी करना भाव परमात्मा ने जिस मुख्य कार्य के लिए हमें संसार में भेजा है, उसे भुलाकर मनमर्ज़ी के कार्यों में खोये रहना हौंमैं है।

4. संसार, प्रभु द्वारा निर्धारित कर्म और फल के नियम के अनुसार चल रहा है। किये हुए कर्म के फल से बचने की आशा रखना हौंमैं है।
5. प्रभु द्वारा स्वयं अपने साथ मिलाप के लिए बनायी गयी विधि या युक्ति अपनाने की बजाय मन-पसन्द युक्तियों द्वारा परमात्मा से मिलाप करने का यत्न करना हौंमैं है।

गुरु अंगद साहिब हौंमैं की समस्या पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डालते हैं:

हउमै एहा जाति है हउमै करम कमाहि॥
हउमै एई बंधना फिरि फिरि जोनी पाहि॥
हउमै किथहु ऊपजै कितु संजमि इह जाइ॥
हउमै एहो हुकमु है पइऐ किरति फिराहि॥
हउमै दीरघ रोगु है दारू भी इसु माहि॥
किरपा करे जे आपणी ता गुर का सबदु कमाहि॥
नानक कहै सुणहु जनहु इतु संजमि दुख जाहि॥[15]

आप उपदेश देते हैं:

1. 'हउमै एहो हुकमु है'—हौंमैं हुक्म द्वारा पैदा हुई है। जीव का परमात्मा के हुक्म से परमात्मा से अलग होकर रचना का अंग बनना, हौंमैं की जड़ है। हौंमैं रचना के संचालन का अभिन्न अंग है।
2. 'हउमै दीरघ रोगु है'—हौंमैं का रोग अनादि है। जब से जीव इस रचना का अंग बना है, यह हौंमैं के अधीन है।
3. 'हउमै एहा जाति है हउमै करम कमाहि॥'—परमात्मा से बिछुड़ चुका जीव जो भी कर्म करता है, हौंमैं के अधीन करता है।
4. 'हउमै एई बंधना फिरि फिरि जोनी पाहि॥'—हौंमैं के कारण ही जीव रचना और आवागमन के चक्कर में बँधा हुआ है।
5. 'किरपा करे जे आपणी ता गुर का सबदु कमाहि॥ नानक कहै सुणहु जनहु इतु संजमि दुख जाहि॥'—परमात्मा के हुक्म द्वारा हौंमैं के बन्धन में बँधा जीव, परमात्मा की दया द्वारा अन्दर शब्द या नाम से जुड़ जाये तो वह हौंमैं के अनादि रोग से मुक्त हो जाता है। परमात्मा के हुक्म द्वारा, परमात्मा की दया द्वारा या परमात्मा के शब्द द्वारा हौंमैं से छुटकारा मिलने का एक ही भाव है।

हौंमैं के विषय में व्यावहारिक दृष्टिकोण

हौंमैं की समस्या के बारे में व्यावहारिक दृष्टि से भी विचार किया जाना ज़रूरी है। हम आम तौर पर अपने आपको केन्द्र में रखकर हर चीज़ को अपने आसपास घुमाते हैं या घुमाना चाहते हैं। हम सोचते हैं कि हमें यह मिलना चाहिए, लोगों को हमारे बारे में इस तरह सोचना चाहिए और हमें हमारी पसन्द की चीज़ें देनी चाहिए। हम हमेशा अपनी बात मनवाना चाहते हैं और लोगों को तथा हालात को अपनी मर्ज़ी के मुताबिक़ ढालना चाहते हैं। हर बात में मनमर्ज़ी करने की इच्छा ही हौंमैं है। यह हौंमैं ही जीवात्मा को परमात्मा से दूर रखने का मूल कारण है। पाँच विकारों की जड़ भी हौंमैं है। हौंमैं जीव को काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार में फँसाकर परमात्मा से दूर ले जाती है। ये सारे विकार, विवेक और धैर्य का नाश कर देते हैं। इनके अधीन हम सच-झूठ, ठीक-ग़लत की परवाह किये बिना ऐसे कर्म कर बैठते हैं जो हमारी नैतिक, मानसिक और आत्मिक गिरावट का कारण तो बनते ही हैं, साथ ही हमारे लिए नरकों के द्वार भी खोल देते हैं। इस तरह हमारी परमार्थ की दौलत का नाश हो जाता है और हम प्रभु से दूर होते चले जाते हैं।

हम न तो अपने आपके कर्ता हैं और न ही संसार के। संसार न तो हमारी इच्छा से बना है और न ही हमारी इच्छा के अनुसार चल रहा है। न ही जीवन हमारे हाथ में है और न ही मृत्यु। पल-भर में ही लोग जानलेवा बीमारियों और दुर्घटनाओं का शिकार हो जाते हैं। क्षण-भर में ही राज्य पलट जाते हैं और बादशाह भिखारी बन जाते हैं। भूकम्प, समुद्री तूफ़ान, आँधियाँ, वर्षा, महामारी आदि लाखों लोगों का जीवन बरबाद कर देती हैं। गुरु रामदास जी का कथन है:

अनिक उपाव चितवीअहि बहुतेरे सा होवै जि बात होवैनी॥
अपना भला सभु कोई बाछै सो करे जि मैरै चिति न चितैनी॥[16]

अपनी तरफ़ से हम जो कुछ भी करते हैं, बहुत सोच-समझ कर और अपने लाभ के लिए करते हैं पर इसके बावजूद कुछ ऐसा हो जाता है, जिसके बारे में कभी सपने में भी नहीं सोचा होता। गुरु अर्जुन साहिब के वचन हैं:

मता करै पछम कै ताई पूरब ही लै जात॥
खिन महि थापि उथापनहारा आपन हाथि मतात॥
सिआनप काहू कामि न आत॥
जो अनरूपिओ ठाकुरि मेरै होइ रही उह बात॥[17]

इनसान जाना तो किसी और तरफ़ चाहता है पर होनी उसको कहीं और ही खींचकर ले जाती है। इनसान अपनी तरफ़ से बहुत चतुराई करता है पर अन्त में वही होता है जो उस कर्ता का हुक्म है। हौंमैं निपट अज्ञानता है।

किसान कहता है कि मैं दिन-रात सख़्त मेहनत करके खेतों में फ़सलें उगाता हूँ। व्यापारी कहता है कि मैं ख़ून-पसीना एक करके धन कमाता हूँ। इसी तरह संसार का हर इनसान अपनी मेहनत, अपनी बुद्धि और अपनी कला की प्रशंसा करता है। क्या हमने कभी यह सोचने की कोशिश की है कि धरती, वायु, पानी, सूर्य, आकाश और अग्नि न होते तो हम क्या कर सकते थे? पाँचों तत्त्व और उस कर्ता द्वारा उनसे पैदा किये गये संसार के बिना हमारी क्या हस्ती है? किसान फ़सलें उगाता है। वह किसकी बनी धरती पर फ़सलें उगाता हैं? क्या उसकी फ़सलें उसका पैदा किया हुआ सूर्य पकाता है? क्या हमने कभी यह सोचने का यत्न किया है कि सौर-मण्डल से सम्बन्धित सारी कायनात सूर्य के आधार पर क़ायम है? आज सूर्य ठण्डा हो जाये तो क्षण-भर में सारे सौर-मण्डल का जीवन सुन्न हो जायेगा।

सारी सृष्टि पर उस दयालु प्रभु की रहमत बरस रही है। जैसे सौर-मण्डल का जीवन सूर्य के आसरे क़ायम है, उसी तरह सारी सृष्टि का जीवन अकालपुरुष की सचखण्ड से बरस रही नाम रूपी सूक्ष्म और

अदृश्य शक्ति के आधार पर क़ायम है। जो भी इस सच्चाई को समझ लेता है कि सारी सृष्टि उस कर्तापुरुष के हुक्म का खेल है, वह हौंमैं के अन्धकार से निकलकर ज्ञान के प्रकाश में आ जाता है। जो हौंमैं के अन्धकार में खोया रहता है, वह न तो हुक्म को पहचान सकता है और न ही हुक्मी परमात्मा को। गुरु अमरदास जी की वाणी है:

हउमै विचि भगति न होवई हुकमु न बुझिआ जाइ॥
हउमै विचि जीउ बंधु है नामु न वसै मनि आइ॥[18]

आप सावधान करते हैं कि जब तक हौंमैं का त्याग नहीं करते, तब तक नाम के साथ लिव जोड़कर बन्धन-मुक्त नहीं हो सकते। आप कहते हैं:

सोहागणी जाइ पूछहु मुईए जिनी विचहु आपु गवाइआ॥
पिर का हुकमु न पाइओ मुईए जिनी विचहु आपु न गवाइआ॥[19]

सुहागिनों अर्थात् प्रभु के सच्चे भक्तों से पूछकर देखो, उनको जो कुछ मिला है, हौंमैं को मारकर अर्थात् हुक्म की पहचान द्वारा मिला है।

पउड़ी का सार

इस पउड़ी में गुरु साहिब 'हुक्म' द्वारा परमात्मा की इच्छा या मौज और परमात्मा द्वारा बनाये विधान या नियम का दोहरा भाव प्रकट कर रहे हैं। आप फ़रमाते हैं कि जो कुछ हो रहा है, उस कर्ता की इच्छा या मौज से हो रहा है और जो कुछ हो रहा है, उसकी क़ायम की हुई मर्यादा और उसके द्वारा बनाये गये विधान के अनुसार हो रहा है। यह हुक्म अनादि, सर्वव्यापक और अटल है; इससे बाहर न कभी कुछ हुआ है, न हो ही सकता है।

जीव का अस्तित्व, उसके संसार में आने और संसार का भाग बने रहने का कारण हुक्म है। इसी तरह इस महाजाल से मुक्त होने के सौभाग्य का साधन भी हुक्म है। स्पष्ट है कि संसार और जीव के आदि, मध्य और अन्त में हुक्म ही हुक्म है और परमात्मा के हुक्म की पहचान ही जीवात्मा के कल्याण, उद्धार और भवसागर से पार होने का एकमात्र साधन है।

पउड़ी 3

गावै को ताणु होवै किसै ताणु॥ गावै को दाति जाणै नीसाणु॥
गावै को गुण वडिआईआ चार॥ गावै को विदिआ विखमु वीचारु॥
गावै को साजि करे तनु खेह॥ गावै को जीअ लै फिरि देह॥
गावै को जापै दिसै दूरि॥ गावै को वेखै हादरा हदूरि॥
कथना कथी न आवै तोटि॥ कथि कथि कथी कोटी कोटि कोटि॥
देदा दे लैदे थकि पाहि॥ जुगा जुगंतरि खाही खाहि॥
हुकमी हुकमु चलाए राहु॥ नानक विगसै वेपरवाहु॥

शब्दार्थ: नीसाणु=निशानी। विखमु वीचारु=मुश्किल विचार। तोटि=कमी।

सरलार्थ: पहली दो पउड़ियों में हुक्म की महिमा गायी गयी है। अब बता रहे हैं कि जिस हुक्मी के हुक्म से सबकुछ हो रहा है, उस हुक्मी के बारे में शब्दों में कुछ कह सकना असम्भव है:

जिसको उस प्रभु ने जितना बल बख़्शा है, वह उस प्रभु के उतने गुण गाता है। कोई उस दाता की दातों को उसकी बड़ाई की निशानी मानकर उसके गुण गाता है; कोई उसकी बड़ाइयों और सुन्दरता का वर्णन कर रहा है और कोई विद्या और गहरे विचारों द्वारा उस प्रभु का यश गा रहा है, जिसके बारे में विचार करना बहुत कठिन है।

कोई कहता है कि वह परमात्मा शरीरों को बनाता है और फिर शरीरों को भस्म कर देता है। कोई उसको जान लेनेवाला और फिर देनेवाला कह रहा है। कोई यह गा रहा है कि वह प्रभु लगता तो पास है पर है बहुत दूर। कोई यह गा रहा है कि वह प्रभु साक्षात् सबको देख रहा है।

करोड़ों बार उसका कथन या वर्णन करने का प्रयास किया गया है पर न ही ऐसे वर्णन समाप्त होते हैं और न ही उस कर्ता के गुण गिनती में आते हैं। वह दाता युगों-युगों से देता आ रहा है। उससे लेनेवाले लेते-लेते थक जाते हैं, पर वह देता-देता नहीं थकता। लेनेवाले युगों-युगों से उससे लेकर खाते चले

आ रहे हैं। वह हुक्मी अपने हुक्म द्वारा सबकुछ ठीक ढंग से और ठीक रास्ते पर चला रहा है और वह स्वयं बेपरवाह, निर्लेप और आनन्द-मग्न है।

व्याख्या

गावै को ताणु होवै किसै ताणु॥ इसका अर्थ इस प्रकार भी किया जाता है कि उस प्रभु ने जिसको जितना बल बख़्शा है, वह उसका उतना गुणगान कर रहा है। इसका यह अर्थ भी किया जाता है कि कुछ लोग 'ताणु' लगाकर और गाकर उस प्रभु की महिमा गाते हैं, पर इस तरह राग गाकर उस प्रभु की पूरी तरह से महिमा नहीं गायी जा सकती।

गावै को दाति जाणै नीसाणु॥ कुछ लोग उसको दाता मानकर और उसके द्वारा दी गयी दातों को देखकर उसका यश गा रहे हैं। वे कहते हैं कि जिस किसी को जो कुछ मिल रहा है, उस एक दाता की दया-मेहर से ही मिल रहा है। गुरु अमरदास जी की वाणी है, 'जगजीवनु साचा एको दाता॥'[1] वह एक पिता-परमात्मा सारे संसार को पैदा करके उसको अपनी दातों से निहाल कर रहा है। उस दाता ने पाँचों तत्त्व और अनेक दातें बख़्शी हैं। गुरु अर्जुन साहिब ने 'सुखमनी' की छठी अष्टपदी में 'जिह प्रसादि' पद के द्वारा परमात्मा की अनन्त दातों का दृष्टान्त देते हुए उस दाता के गुण गाने की प्रेरणा दी है।

गावै को गुण वडिआईआ चार॥ इस पंक्ति का यह अर्थ भी किया गया है कि कुछ लोग उस प्रभु के सुन्दर गुणों और सुन्दर बड़ाइयों का यश गायन करते हैं। इसका यह अर्थ भी किया गया है कि कुछ लोग चार वेदों द्वारा उस प्रभु की महिमा गाते हैं।

गावै को विदिआ विखमु वीचारु॥ इस पंक्ति का एक अर्थ यह किया जाता है कि कुछ लोग विद्या या इल्म, जिसमें बुद्धि का बहुत ज़्यादा प्रयोग करना पड़ता है, के द्वारा उस प्रभु की महिमा गाते हैं। इस पंक्ति का दूसरा अर्थ यह भी किया जाता है कि लोग इल्म या विद्या के द्वारा उस प्रभु के गुण गाने का प्रयत्न करते हैं, जिसके गुण गा सकना बहुत कठिन है।

गावै को साजि करे तनु खेह॥ गावै को जीअ लै फिरि देह॥ कुछ लोग यह कहकर मालिक की बड़ाई करते हैं कि शरीरों को बनाने वाला भी वही है और उनको मिट्टी और राख बनाने वाला भी वही है। शरीर में आत्मा डालने वाला भी वही है, और आत्मा को शरीर से निकालने वाला भी वही है। गुरु नानक साहिब का कथन है, 'ढाहे ढाहि उसारे आपे हुकमि सवारणहारो॥'[2] गुरु अमरदास जी का वचन है, 'आपे मारि जीवाले आपे॥'[3] इसलिए लोग यह कहकर उस कर्ता का यश गाते हैं कि वह जीवन और मृत्यु का मालिक है।

गावै को जापै दिसै दूरि॥ गावै को वेखै हादरा हदूरि॥ कुछ लोग उसको अलख, अगम और दूर बसने वाला कहकर उसका यश गाते हैं तो कई उसे पत्ते-पत्ते, ज़र्रे-ज़र्रे में प्रत्यक्ष दिखाई देनेवाला कहकर उसकी सराहना करते हैं। गुरु नानक साहिब कहते हैं, 'आपे नेड़ै दूरि आपे ही आपे मंझि मिआनो॥'[4] गुरु अमरदास जी का कथन है, 'साहिबु सदा हजूरि है भरमै के छउड़ कटि कै अंतरि जोति धरेहु॥'[5] वह परमात्मा सदा अंग-संग है। अगर भ्रम, अज्ञान या हौंमैं के पर्दे उतार दें तो अन्तर में ही उसकी ज्योति नज़र आने लगती है।

कथना कथी न आवै तोटि॥ कथि कथि कथी कोटी कोटि कोटि॥ बेशक अनन्त ढंग से उस कर्ता की महिमा कर लें, पर उसकी पूर्ण महिमा का वर्णन कर सकना असम्भव है। गुरु अर्जुन देव जी की वाणी है, 'ऊच अपार बेअंत सुआमी कउणु जाणै गुण तेरे॥'[6] गुरु नानक साहिब कहते हैं:

नानक कागद लख मणा पड़ि पड़ि कीचै भाउ॥
मसू तोटि न आवई लेखणि पउणु चलाउ॥
भी तेरी कीमति ना पवै हउ केवडु आखा नाउ॥[7]

चाहे लाखों मन काग़ज़ हो, बेशुमार स्याही हो और हवा के वेग के साथ बिना रुके लिखते जायें तो भी परमात्मा तथा उसके नाम की पूरी महिमा नहीं गायी जा सकती। गुरु नानक साहिब की वाणी है, 'अकथै का

किआ कथीऐ भाई चालउ सदा रजाई॥'[8] आप उपदेश करते हैं कि अकथ, अकह परमात्मा की बड़ाई कहने और सुनने से परे है। तुम बातों से उसकी बड़ाई करने में ही न खोये रहो बल्कि उसके भाणे या हुक्म में रहने की कोशिश करो ताकि तुम उसमें समाकर उसका रूप हो जाओ।

देदा दे लैदे थकि पाहि॥ जुगा जुगंतरि खाही खाहि॥ इन पंक्तियों के अर्थ यह किये जाते हैं कि वह दाता तो हमेशा ही देता रहता है, पर लेनेवाले सदा क़ायम नहीं रहते। लोग युगों-युगों से खाते चले आ रहे हैं, पर उस दाता की दातों में कभी कमी नहीं आती।

इन पंक्तियों के दूसरे अर्थ यह किये जाते हैं कि जीव इच्छाएँ करता-करता थक जाता है पर वह प्रभु उसकी इच्छाएँ पूरी करता हुआ नहीं थकता। युगों-युगों से जीव उस दाता से दातें माँगता चला आ रहा है और दाता उसकी इच्छाएँ पूरी करता चला आ रहा है।

इच्छाओं की पूर्ति

मन में शंका पैदा होती है कि क्या प्रकृति सचमुच जीव की सभी इच्छाएँ पूरी करती है? प्रकृति के भण्डार अथाह और बेअन्त हैं। प्रकृति जीव की हर इच्छा पूरी करने में समर्थ है पर इच्छाओं की पूर्ति के लिए जीव को बार-बार संसार में जन्म लेना पड़ता है। वास्तव में जीव की इच्छाएँ-तृष्णाएँ ही उसके चौरासी के चक्कर से बँधे रहने का मूल कारण हैं। अज्ञानी जीव यह नहीं जानता कि इच्छाओं की पूर्ति के लिए वह अपने आपको कैसे-कैसे संकटों में डाल लेता है। सन्त त्रिलोचण जी सावधान करते हैं:

अंति कालि जो लछमी सिमरै ऐसी चिंता महि जे मरै॥
सरप जोनि वलि वलि अउतरै॥
अरी बाई गोबिद नामु मति बीसरै॥
अंति कालि जो इसत्री सिमरै ऐसी चिंता महि जे मरै॥
बेसवा जोनि वलि वलि अउतरै॥
अंति कालि जो लड़िके सिमरै ऐसी चिंता महि जे मरै॥

सूकर जोनि वलि वलि अउतरै॥
अंति कालि जो मंदर सिमरै ऐसी चिंता महि जे मरै॥
प्रेत जोनि वलि वलि अउतरै॥
अंति कालि नाराइणु सिमरै ऐसी चिंता महि जे मरै॥
बदति तिलोचनु ते नर मुकता पीतंबरु वा के रिदै बसै॥[9]

आप समझाते हैं कि जो इनसान मन में धन की तृष्णा लेकर शरीर छोड़ता है, वह साँप की योनि में जाता है। जो मनुष्य काम-वासना की तृष्णा लेकर शरीर छोड़ता है, वह वेश्या की योनि में जाता है। जो मन में सन्तान की तृष्णा लेकर शरीर छोड़ता है, वह सूअरनी या कुतिया की योनि में जाता है। जो मन में महलों-हवेलियों की तृष्णा लेकर प्राण त्यागता है, वह प्रेत बनकर किसी महल या बंगले में जा बैठता है। जिसका ध्यान अन्त समय में परमात्मा की ओर होता है, उसकी आत्मा शरीर के बन्धनों से मुक्त होकर उस परमात्मा में समा जाती है। 'अरी बाई गोबिद नामु मति बीसरै॥' हे प्यारी जीवात्मा, तू स्वाँस-स्वाँस, गोबिन्द के नाम से लिव जोड़कर रख ताकि अन्त समय तेरा ध्यान गोबिन्द में रहे और तेरा जन्म-मरण के बन्धनों से छुटकारा हो जाये।

धर्म-ग्रन्थों में समझाया गया है—'अन्त मता सो गता।' जिस तरफ़ हमारा अन्त समय ध्यान होता है, हम उसी धारा में बह जाते हैं। पर अन्त समय ध्यान उसी तरफ़ जाता है, जिस तरफ़ सारी उम्र रहता है। महात्मा समझाते हैं कि जीवन-भर की इच्छाओं के अनुरूप ही अन्त समय का संकल्प रूप धारण करता है। अगर सारी उम्र मालिक की तरफ़ स्वप्न में भी ध्यान न जाये तो अन्त समय उसकी तरफ़ ध्यान कैसे जा सकता है? जीवन-भर के भजन-सुमिरन का वास्तविक उद्देश्य ही यह है कि अन्त समय मन में संसार की कोई तृष्णा न उठे और ध्यान प्रभु-परमात्मा या सतगुरु की तरफ़ जाये। ध्यान देने की आवश्यकता है कि गुरु साहिब ने 'देदा दे' को 'लैदे थकि पाहि' से जोड़ा है। भक्त त्रिलोचन द्वारा दी गयी चेतावनी 'अरी बाई गोबिद नामु मति बीसरै॥' ही गुरु साहिब दोहरा रहे

हैं। आप जीव को प्रेरणा देना चाहते हैं कि जब तक तू सांसारिक इच्छाओं को छोड़कर अपने अन्दर प्रभु-प्रेम की प्रबल ज्वाला प्रचण्ड नहीं करता, तू रचना के बन्धनों से मुक्त होकर रचयिता से मिलाप नहीं कर सकता।

हुकमी हुकमु चलाए राहु॥ यहाँ गुरु साहिब समझाते हैं कि प्रभु अपने हुक्म द्वारा हर चीज़ को निर्धारित रास्ते पर चला रहा है। उसने संसार में हर चीज़ के होने की एक विधि बना दी है। उसने संसार के संचालन के लिए एक विधान या कानून बना दिया है, जिसके अनुसार संसार अपने आप चल रहा है।

नानक विगसै वेपरवाहु॥ सारा संसार उस हुक्मी द्वारा बनाये विधान या कानून के अनुसार चल रहा है जब कि संसार में हुक्म लागू करनेवाला वह हुक्मी, ख़ुद संसार और इसके संचालन के विधान से निर्लेप है। संसार में सबकुछ ख़ुद-बख़ुद उस कर्ता की रज़ा से उत्पन्न हुए हुक्म या विधान के अनुसार हो रहा है। कर्ता द्वारा बनायी गयी रचना में कुछ भी कर्ता की मर्ज़ी, इच्छा या हुक्म के विपरीत नहीं हो सकता। वह कर्ता अपने द्वारा रचित सृष्टि को अपने द्वारा बनाये विधान के अनुसार चल रही देखकर प्रसन्न होता है।

पउड़ी 4

साचा साहिबु साचु नाइ भाखिआ भाउ अपारु॥
आखहि मंगहि देहि देहि दाति करे दातारु॥
फेरि कि अगै रखीऐ जितु दिसै दरबारु॥
मुहौ कि बोलणु बोलीऐ जितु सुणि धरे पिआरु॥
अंम्रित वेला सचु नाउ वडिआई वीचारु॥
करमी आवै कपड़ा नदरी मोखु दुआरु॥
नानक एवै जाणीऐ सभु आपे सचिआरु॥

शब्दार्थ: भाखिआ=भाषा, बोली, भाखा जाता है, बयान किया जाता है। दातारु=दाता। नदरी=कृपा से। मोखु दुआरु=मुक्ति का दरवाज़ा।

सरलार्थ: गुरु साहिब ने तीसरी पउड़ी का अन्त 'नानक विगसै वेपरवाहु' के साथ किया था। चौथी पउड़ी में उस बेपरवाह निरंकार की और अधिक महिमा गा रहे हैं:

वह प्रभु सच्चा है। वह अपने द्वारा सृजित सृष्टि का साहिब या स्वामी है। उसका नाम सच्चा है। उसका प्रेमपूर्वक वर्णन किया जाता है। हम सदा उससे माँगते रहते हैं कि हमें दे-दे और वह दाता हमें लगातार दातें देता रहता है। हम उसके शुक्राने में उसे क्या भेंट करें ताकि उसका दरबार दिखाई दे और अगर हम उसके दरबार में पहुँच जायें तो मुँह से कैसे वचन बोलें, जिनको सुनकर वह हमारे साथ प्यार करे? आप उत्तर देते हैं कि अमृत-वेला में सच्चे नाम का जाप करो। उसकी दया से ही मनुष्य शरीर (कपड़ा) मिला है, उसकी रहमत से ही मुक्ति के द्वार पर पहुँचेंगे। फिर ऐसा प्रतीत होगा कि जो कुछ है, सब वह सच्चा परमात्मा है।

व्याख्या

साचा साहिबु साचु नाइ—गुरु साहिब उस प्रभु को सृष्टि का स्वामी और रक्षक कह रहे हैं। उस द्वारा बनायी गयी रचना पूरी तरह से उसके अधीन है। उस द्वारा बनायी गयी सृष्टि पर उसका पूरी तरह से नियन्त्रण और अधिकार है।

वह परमात्मा सच्चा है और उसका नाम भी सत्य है। 'मूल-मन्त्र' में 'सति नामु' पद का प्रयोग किया गया है। गुरुवाणी के कई प्रसंगों में 'नाम', 'शब्द', 'हुक्म' पदों का प्रयोग परमात्मा की सृष्टि की रचना और सम्भाल करने वाली शक्ति के अर्थों में भी किया गया है। परमात्मा भी सत्य है और संसार की उत्पति और पालन करनेवाली उसकी नाम या शब्द रूपी शक्ति भी सत्य है। यह शक्ति ही जीवात्मा और परमात्मा के बीच कड़ी या पुल का काम करती है। जीवात्मा शब्द या नाम से लिव जोड़कर ही रचना से मुक्त होकर रचयिता में लीन हो सकती है।

सच्चा नाम वह परम तत्त्व है जो लिखने-बोलने में नहीं आता। हमने अपने प्यार में परमात्मा के अनेक नाम रखे हुए हैं—परमात्मा, राम, रहीम,

अल्लाह, वाहेगुरु आदि। ये नाम समय, स्थान और भाषा के दायरे में हैं। इनकी रचना किसी-न-किसी इनसान ने की है—चाहे वह इनसान कोई पूर्ण सन्त-महात्मा ही क्यों न हो। गुरु नानक साहिब 'आसा दी वार' में कहते हैं, 'आपीन्है आपु साजिओ आपीन्है रचिओ नाउ॥ दुयी कुदरति साजीऐ करि आसणु डिठो चाउ॥'[1] उस कर्ता ने पहले अपना, फिर अपने नाम का और नाम द्वारा सारी सृष्टि का सृजन किया। प्रत्यक्ष है कि परमात्मा का सच्चा नाम सृष्टि की रचना से पहले ख़ुद परमात्मा द्वारा सृजित किया गया था। यह किसी भाषा का कोई शब्द नहीं। यह परमात्मा के साथ अभिन्न उसकी अमर और अविनाशी शक्ति है।

ध्यान देने की ज़रूरत है कि गुरु-घर की वाणी में नाम, शब्द, हुक्म और वाणी पद परमात्मा के लिए प्रयुक्त किये गये हैं:

हरि हरि तेरा नामु है॥[2]

घरि घरि नामु निरंजना सो ठाकुरु मेरा॥[3]

एको सबदु एको प्रभु वरतै सभ एकसु ते उतपति चलै॥[4]

सभो हुकमु हुकमु है आपे निरभउ समतु बीचारी॥[5]

वाहु वाहु बाणी निरंकार है तिसु जेवडु अवरु न कोइ॥[6]

इसी तरह नाम, शब्द, हुक्म और वाणी को कर्ता माना गया है:

जेता कीता तेता नाउ॥ विणु नावै नाही को थाउ॥[7]

एको सबदु एको प्रभु वरतै सभ एकसु ते उतपति चलै॥[8]

हुकमी होवनि आकार हुकमु न कहिआ जाई॥[9]

हुकमी सहजे स्रिसटि उपाई॥ करि करि वेखै अपणी वडिआई॥[10]

गुरुवाणी में नाम, शब्द, हुक्म और वाणी को सर्वव्यापक कहकर उसकी महिमा गायी गयी है:

चहु दिसि हुकमु वरतै प्रभ तेरा चहु दिसि नाम पतालं॥
सभ महि सबदु वरतै प्रभ साचा करमि मिलै बैआलं॥[11]

सदा हजूरि रविआ सभ ठाई हिरदै नामु अपारा॥
जुगि जुगि बाणी सबदि पछाणी नाउ मीठा मनहि पिआरा॥[12]

इसके अलावा गुरु साहिबान ने हुक्म, नाम, शब्द और वाणी सबके साथ 'सच' पद प्रयुक्त किया है, जिसका अर्थ है कि हुक्म, शब्द, नाम और वाणी समय और स्थान से ऊपर हैं—ये अनादि और अविनाशी हैं। स्पष्ट है कि ये सब पद एक ही परम तत्त्व के सूचक हैं।

भाखिआ भाउ अपारु॥ भाई वीर सिंह आदि टीकाकारों ने इसके यह अर्थ किये हैं कि लोग अपार भाव या प्रेम द्वारा उस प्रभु की महिमा करते हैं, पर उसकी महिमा अपरम्पार हैं। इन टीकाकारों ने 'भाखिआ' का अर्थ 'भाखा' या 'बोली' नहीं किया। उन्होंने 'भाखिआ' का अर्थ 'भाखा जाता है' 'बयान किया जाता है' आदि किया है। अर्थात् परमात्मा की प्रेम सहित महिमा गायी जाती है, उसका प्रेम सहित यश गाया जाता है। 'पुरातन टीका' में इसका यह अर्थ किया गया है—'उस साहिब सतनाम को जो गावीऐ सो अपार प्रीत कर के गावीऐ।'[13] 'उस साहिब सतनाम को अपार प्रीति से गाना चाहिए।' कुछ व्याख्याकारों ने इस पंक्ति का यह अर्थ भी किया है कि परमात्मा अपार प्रेम की भाषा बोलता है। ऐसे व्याख्याकारों के अनुसार इस पंक्ति से यह सन्देश मिलता है:

1. जिससे बातचीत करनी हो या रिश्ता क़ायम करना हो, उसकी भाषा आनी चाहिए। जितनी ज़्यादा किसी से उसकी भाषा में बातचीत करते हैं, उतनी ज़्यादा उसकी बात समझ सकते हैं और अपनी बात उसे समझा सकते हैं। परमात्मा अरबी, फ़ारसी, हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेज़ी, उर्दू, पंजाबी आदि कौन-सी भाषा बोलता और समझता है? दुनिया की हर भाषा समय और स्थान की सीमा में है। कोई भी भाषा सर्वव्यापक और नित्य नहीं है। परमात्मा प्रेम की बोली बोलता है और प्रेम की बोली समझता है। यह बोली सर्वव्यापक और सबकी सांझी है। 'भाउ अपारु'—उसकी भाषा अनन्त प्रेम है। जिसके हृदय में जितना अधिक प्रेम है, वह उतनी अधिक परमात्मा की भाषा बोल और समझ रहा है। गुरु नानक साहिब की वाणी है, 'प्रेम पराइण प्रीतम राउ॥'[14] जिस तरह प्रकाश और तेज सूर्य का सहज स्वभाव है, ठण्डक और शीतलता बर्फ़ का सहज स्वभाव है, उसी तरह प्रेम, परमात्मा का सहज स्वभाव है। हज़रत ईसा ने कहा है—परमात्मा प्रेम है और प्रेम परमात्मा है।*
2. परमात्मा जाति-पाँति, क़ौम-नस्ल, रंग-रूप, बुद्धि-ज्ञान, धन-दौलत, स्त्री-पुरुष नहीं देखता। और तो और वह नेक और बद में भी भेद नहीं करता। आम कहावत है, 'गोबिंद भाउ भगत का भूखा।' परमात्मा को भूख है तो प्रेम की, परमात्मा को चाहत है तो प्रेम की। परमात्मा बोली बोलता है तो प्रेम की, परमात्मा रम्ज़ समझता है तो प्रेम की। यही कारण है कि गुरु गोबिन्द सिंह जी महाराज ने अन्य कई प्रकार की करनी के बारे में चर्चा करते हुए अन्त में यह निष्कर्ष निकाला है, 'साच कहौ सुन लेहु सभै जिन प्रेम कीओ तिन ही प्रभ पायो॥'[16] सौ गज़ रस्सा और सिर पर गाँठ। सौ स्याने एक मत, मूर्ख अपनी-अपनी। संसार के सब धर्मों का लक्ष्य इनसान के अन्दर परमात्मा का प्रेम पैदा करना है और संसार के सब धर्म-ग्रन्थों का निचोड़ परमात्मा का प्रेम है।

---

* God is love; and he that dwelleth in love dwelleth in God, and God in him.[15]

आखहि मंगहि देहि देहि दाति करे दातारु॥ संसार के अनेक लोग उस दाता से अनन्त दातें माँगते रहते हैं और वह दाता उन्हें दातें देता रहता है। आप तीसरी पउड़ी में इशारा कर चुके हैं, 'देदा दे लैदे थकि पाहि॥ जुगा जुगंतरि खाही खाहि॥' युगों-युगों से वह दाता देता चला आ रहा है और हम लेते आ रहे हैं। जीव दातें माँगते-माँगते थक जाते हैं पर वह दाता देते-देते नहीं थकता। गुरु अर्जुन देव जी धनासरी राग के एक शब्द में कहते हैं, 'दाति पिआरी विसरिआ दातारा॥'[17] अज्ञानी जीव दाता को भुलाकर दातों में खोया रहता है। परिणाम यह निकलता है कि वह इस नश्वर संसार के साथ बँधा रहता है। जब तक वह नाशवान सांसारिक शक्लों-पदार्थों का मोह त्यागकर अपना ध्यान उस अविनाशी दाता की तरफ़ नहीं मोड़ता, तब तक वह कभी भी मायामय रचना के दु:खदायी बन्धनों से मुक्त होकर निज-घर वापस नहीं पहुँच सकता।

गुरु अर्जुन देव जी का कथन है, 'जो मंगीऐ सोई पाईऐ॥'[18] आप साथ ही यह भी कहते हैं, 'जो मागै सो भूखा रहै॥'[19] माँगने वाले की हर माँग पूरी हो जाये तो भी उसकी माँगने की भूख तृप्त नहीं होती। गुरु अमरदास जी का कथन है, 'विणु बोलिआ सभु किछु जाणदा किसु आगै कीचै अरदासि॥'[20] यदि वह परमात्मा देने की शक्ति रखता है तो जानने की ताक़त भी रखता है। यदि वह जानने की शक्ति नहीं रखता तो उसमें देने की ताक़त भी नहीं है। यदि माँगना ही है तो क्यों न परमात्मा से परमात्मा को ही माँग लें ताकि हमेशा माँगते रहने की मजबूरी से ही मुक्त हो जायें! इसलिए गुरु अर्जुन देव जी उपदेश करते हैं:

विणु तुधु होरु जि मंगणा सिरि दुखा कै दुख॥
देहि नामु संतोखीआ उतरै मन की भुख॥[21]

आप कहते हैं कि परमात्मा से परमात्मा को माँगो ताकि सब सुखों का ख़ज़ाना हाथ आ जाये। उससे उसके अलावा कुछ और माँगना दु:खों को माँगना है क्योंकि जो भी माँगेंगे उसे लेने के लिए इस दु:ख-रूप संसार में आना पड़ेगा।

एक गूढ़ रहस्य

गुरु अर्जुन देव जी ने अपनी वाणी के एक प्रसंग में परमार्थ का यह गूढ़ रहस्य खोला है:

पिता क्रिपालि आगिआ इह दीनी बारिकु मुखि मांगै सो देना॥[22]

आप इशारा कर रहे हैं कि जब कृपालु पिता ने जीवात्मा रूपी पुत्र को संसार में भेजा तो रचना का प्रबन्ध चलाने वाली शक्ति काल को हुक्म दिया कि आत्मा रूपी बालक की हर इच्छा पूरी करना। जब तक आत्मा सांसारिक इच्छाएँ करती रहती है, इसकी इच्छाएँ पूरी होती रहती हैं, पर उन इच्छाओं की पूर्ति के लिए यह संसार के साथ बँधी रहती है। गुरु अर्जुन देव जी इसी प्रसंग में आगे लिखते हैं, 'नानक बारिकु दरसु प्रभ चाहै मोहि ह्रिदै बसहि नित चरना॥'[23] हे मेरे पिता-परमात्मा, मैं चाहता हूँ कि मेरे अन्दर तेरे चरण-कँवलों का प्रेम बस जाये और मुझे तेरे दर्शनों का आधार प्राप्त हो जाये।

माता बहुत-सी मिठाइयाँ और खिलौने देकर बच्चे को खेलने के लिए आया के पास छोड़ देती है। जब तक बच्चा खिलौनों और मिठाइयों में मस्त रहता है, माता भी अपने काम में लगी रहती है। जब बच्चा हर तरफ़ से ध्यान हटाकर सिर्फ़ माता के लिए रोता है तो माता भी दौड़कर उसको गले से लगा लेती है। जब तक आत्मा रूपी बालक माया रूपी आया के साथ रचना के पदार्थों में मस्त रहता है, पिता-परमात्मा उसको खेल में लगा रहने देता है। लेकिन जब बच्चा सबकुछ छोड़कर केवल पिता के लिए रोता है तो पिता उसको एकदम अपने साथ मिला लेता है। 'पिता क्रिपालि आगिआ इह दीनी बारिकु मुखि मांगै सो देना॥', 'देदा दे लैदे थकि पाहि॥ जुगा जुगंतरि खाही खाहि॥', 'आखहि मंगहि देहि देहि दाति करे दातारु॥' और 'नानक बारिकु दरसु प्रभ चाहै॥' द्वारा गुरु साहिबान ने यह गूढ़ रहस्य खोला है कि जब तक आत्मा रूपी बालक रचना के मोह में फँसा रहता है, वह रचना से बँधा रहता है। जब वह

रचना की वस्तुओं, पदार्थों और रिश्तों के मोह से उपराम होकर पिता-परमात्मा के लिए तड़पता है तो वह दयालु पिता स्वयं ही उसे अपने साथ मिला लेता है।

फेरि कि अगै रखीऐ जितु दिसै दरबारु॥
मुहौ कि बोलणु बोलीऐ जितु सुणि धरे पिआरु॥

गुरु साहिब प्रश्न करते हैं कि हम उस प्रभु के आगे क्या चढ़ायें कि उसके दरबार में पहुँच जायें और किस प्रकार के वचन बोलें जिनको सुनकर वह प्रभु हमसे प्रसन्न हो जाये। हम मन्दिरों, मस्जिदों, गुरुद्वारों आदि में हमेशा कुछ-न-कुछ चढ़ाते हैं और अनेक तरह से परमात्मा का यश गाते हैं। हम समझते हैं कि धर्म-स्थानों पर चढ़ावा चढ़ाने से और वहाँ कीर्तन करने या भजन गाने से परमात्मा प्रसन्न हो जायेगा। गुरु साहिब इशारा करते हैं कि जो कुछ भी हमारे पास है, वह सब उस प्रभु का ही दिया हुआ है। उसके दिये हुए में से उसे कुछ वापस देने का क्या लाभ है? उसकी प्रसन्नता या प्रेम प्राप्त करने के लिए सांसारिक वस्तुओं, पदार्थों, धन-दौलत आदि का चढ़ावा काम नहीं आता और न ही उसे प्रसन्न करने के लिए ख़ास क़िस्म के भजन या शब्द गाने की आवश्यकता है। तो फिर उस दाता को कौन-सी चीज़ भेंट की जाये और कौन-से वचन बोले जायें कि हम उस प्रभु के दरबार में पहुँच जायें और उसकी प्रसन्नता प्राप्त कर लें? इस प्रश्न का उत्तर गुरु साहिब आगे देते हैं:

अंम्रित वेला सचु नाउ वडिआई वीचारु॥ ऊपर यह प्रश्न किया जा चुका है कि परमात्मा की प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए उसे क्या भेंट किया जाये? भेंट वह चीज़ की जा सकती है, जो अपनी हो। बाकी सबकुछ परमात्मा का है, इनसान की सिर्फ़ हौंमैं या ख़ुदी है। इसलिए अपनी हौंमैं या ख़ुदी प्रभु को अर्पित कर देनी चाहिए। भाव अपनी मर्ज़ी त्यागकर प्रभु को पसन्द आनेवाली युक्ति के अनुसार प्रभु की खोज करनी चाहिए। वह युक्ति प्रभु का नाम है। नाम की कमाई ही प्रभु की सच्ची

महिमा है और नाम की कमाई ही प्रभु की बड़ाई का सच्चा विचार, चिन्तन या ज्ञान है। इसलिए गुरु साहिब इशारा करते हैं कि अगर प्रभु की प्रसन्नता प्राप्त करना चाहते हो तो अपनी लिव उसके नाम के साथ जोड़ो। अमृत-वेला में लिव परमात्मा के नाम से जोड़ना ही असली चढ़ावा है, यही उसकी सच्ची महिमा है और यही उसकी प्रसन्नता प्राप्त करने का वास्तविक साधन है।

यहाँ 'वीचारु' का अर्थ मन, बुद्धि द्वारा नाम की महिमा के बारे विचार करना नहीं है। इस तरह के सोच-विचार के बारे में आप पहली पउड़ी में ही सावधान कर आये हैं। इसी तरह आप वाणी के एक अन्य प्रसंग में कहते हैं:

मनहठ बुधी केतीआ केते बेद बीचार॥
केते बंधन जीअ के गुरमुखि मोख दुआर॥
. . . . . .
नानक नामु न वीसरै छूटै सबदु कमाइ॥[24]

आप सावधान करते हैं कि मन, बुद्धि द्वारा ग्रन्थों-शास्त्रों का पाठ-विचार करने से जीवात्मा के बन्धन बढ़ ज़रूर सकते हैं, मगर यह बन्धन-मुक्त नहीं हो सकती। आशा-तृष्णा, मन-माया और हौंमैं के बन्धनों से जब भी छुटकारा मिलता है, गुरुमुखों की शरण में जाकर नाम के साथ लिव जोड़कर मिलता है।

गुरुवाणी के एक प्रसंग में आता है, 'गोबिदु गोबिदु कहै दिन राती गोबिद गुण सबदि सुणावणिआ॥'[25] गुरु साहिब इशारा करते हैं कि बाहरमुखी महिमा से तुम्हें अमली तौर पर कोई लाभ नहीं होगा। प्रभु की सच्ची बड़ाई लिव को अन्दर शब्द या नाम में लीन करना है। गुरु अमरदास जी भी एक प्रसंग में इशारा करते हैं:

हरि बिनु सभु किछु मैला संतहु किआ हउ पूज चड़ाई॥
हरि साचे भावै सा पूजा होवै भाणा मनि वसाई॥

पूजा करै सभु लोकु संतहु मनमुखि थाइ न पाई॥
सबदि मरै मनु निरमलु संतहु एह पूजा थाइ पाई॥
पवित पावन से जन साचे एक सबदि लिव लाई॥
बिनु नावै होर पूज न होवी भरमि भुली लोकाई॥[26]

आप कहते हैं कि प्रभु के बिना हर चीज़ नाशवान है, इस प्रकार की चीज़ों के चढ़ावे से प्रभु कैसे प्रसन्न हो सकता है? असली पूजा या चढ़ावा वही है, जो प्रभु को पसन्द है। प्रभु को यह पूजा पसन्द है कि हम अपनी लिव नाम के साथ जोड़ें। इसके अतिरिक्त अन्य कोई भी पूजा प्रभु को पसन्द नहीं।

अमृत-वेला

ग्रन्थों-शास्त्रों में सुबह-सवेरे यानी रात के पिछले पहर को अमृत-वेला, ब्रह्म-मुहूर्त, ब्रह्म-घड़ी आदि कहा गया है। परमात्मा के भक्तों ने अमृत-वेला को भक्ति के लिए ख़ास तौर से लाभदायक और गुणकारी माना है। गुरु नानक साहिब उपदेश देते हैं:

नाउ प्रभातै सबदि धिआईऐ छोडहु दुनी परीता॥
प्रणवति नानक दासनि दासा जगि हारिआ तिनि जीता॥[27]

रात भर सोने के बाद सुबह हम तरो-ताज़ा होते हैं। रात का खाना हज़म हो चुका होता है और नींद का भी ज़ोर नहीं होता। पिछले दिन के सारे झगड़े-झमेले भूले होते हैं। मन दुनिया में नहीं फैला होता। घर-बाहर, गलियों-मुहल्लों में भी आना-जाना नहीं होता। वातावरण शान्त होता है और रूहानियत की ऐसी निर्मल तरंगों से भरा होता है जिसमें जीव एकान्त में शान्तिपूर्वक भजन करके बहुत लाभ प्राप्त कर सकता है। गुरु अर्जुन देव जी का उपदेश है:

परभाते प्रभ नामु जपि गुर के चरण धिआइ॥
जनम मरण मलु उतरै सचे के गुण गाइ॥[28]

आप समझा रहे हैं कि अमृत-वेला में प्रभु का नाम जपना ही सच्ची गुरु-भक्ति है और यही सच्ची प्रभु-भक्ति है। इस भक्ति के द्वारा ही जीव जन्म-मरण के बन्धन तोड़कर निज-घर वापस पहुँच सकता है। आप कहते हैं, 'हरि धनु अंम्रित वेलै वतै का बीजिआ भगत खाइ खरचि रहे निखुटै नाही॥'[29] जिस प्रकार भली-भाँति तैयार की गयी धरती में समय पर बोया गया बीज जल्दी अंकुरित होता है, उसी तरह अमृत-वेला में किया गया नाम का सुमिरन शीघ्र फलीभूत होता है। अमृत-वेला में नाम का सुमिरन करने से भक्ति का ऐसा ख़ज़ाना जमा हो जाता है, जिसमें कभी कमी नहीं आती। बाबा फ़रीद का कलाम है:

पहिलै पहरै फुलड़ा फलु भी पछा राति॥
जो जागंन्हि लहंनि से साई कंनो दाति॥[30]

फरीदा पिछल राति न जागिओहि जीवदड़ो मुइओहि॥
जे तै रबु विसारिआ त रबि न विसरिओहि॥[31]

आप कहते हैं कि पहले पहर का भजन-सुमिरन फूलों के समान है और अमृत-वेला का भजन-सुमिरन फल के समान है। यह फल उनको मिलता है जो रात के पिछले पहर जागकर लिव अन्दर नाम के साथ जोड़ते हैं। अमृत-वेला का वातावरण भक्ति के लिए बहुत अनुकूल होता है। सन्त-महात्मा उस समय अपनी लिव नाम के साथ जोड़कर अन्तर में प्रभु-भक्ति का आनन्द लेते हैं। जो लोग पिछले पहर में उठकर नाम नहीं जपते, वे चलती-फिरती लाशों के समान हैं।

अमृत-वेला में नाम जपने का यह अर्थ नहीं है कि कोई और समय नाम जपने के लिए ठीक नहीं है। गुरु अमरदास जी की वाणी है:

सचु वेला मूरतु सचु जितु सचे नालि पिआरु॥[32]

वेला वखत सभि सुहाइआ॥ जितु सचा मेरे मनि भाइआ॥[33]

वही घड़ी, पल, मुहूर्त और समय धन्य है जिसमें उस प्यारे प्रभु की याद आये। गुरु अर्जुन साहिब 'बारह माहा' के अन्त में दो सुन्दर इशारे करते हैं:

माह दिवस मूरत भले जिस कउ नदरि करे॥[34]

जिनि जिनि नामु धिआइआ तिन के काज सरे॥[35]

सब दिन, महीने, मुहूर्त परमात्मा के बनाये हुए हैं। उसका बनाया हुआ हर पल पवित्र है। उसकी कृपा से जिस समय भी नाम की कमाई की तरफ़ ध्यान जाये, वह समय धन्य है। कई लोगों की नौकरी रात के समय होती है। स्वाभाविक है कि वे सुबह-सवेरे नाम की कमाई नहीं कर सकते। जिस समय भी नींद के बाद शरीर तरो-ताज़ा हो और मन दुनिया में न फैला हो, वही समय भजन-सुमिरन के लिए उचित है। अमृत-वेला को एकान्त और शान्त माहौल के अर्थों में लेना चाहिए। अमृत-वेला में भजन करना उत्तम है पर जो उस समय भजन-सुमिरन न कर सकें, उनको अपने हालात और सहूलियत के मुताबिक़ भजन-सुमिरन के लिए उचित समय और शान्त-स्थान का चुनाव करना चाहिए। हर व्यक्ति को अपने हालात के मुताबिक़ नाम की कमाई के लिए उचित वातावरण बनाने का यत्न करना चाहिए ताकि नाम के सुमिरन से पूरा फ़ायदा उठाया जा सके।

करमी आवै कपड़ा नदरी मोखु दुआरु॥ इस पंक्ति का एक अर्थ यह किया जाता है कि अगर प्रभु के नाम से लिव जोड़ोगे तो उसकी बख़्शिश से तुम्हें ख़िल्लत मिलेगी। पुराने समय में बादशाह जिस पर प्रसन्न होते थे उसको ख़िल्लत (रेशमी पोशाक) देते थे। गुरु साहिब इशारा कर रहे हैं कि अमृत-वेला में नाम की कमाई करने से तुम पर प्रभु की रहमत होगी और तुम मुक्ति के द्वार पर पहुँच जाओगे। 'करमी आवै कपड़ा' से यह भी तात्पर्य है कि प्रभु के प्रेम की दात (कपड़ा) उसकी रहमत से मिलती है, अपने प्रयत्न से नहीं।

इस पंक्ति से यह भाव भी लिया जाता है कि जहाँ पर भी, जैसा भी जन्म मिलता है, कर्मों के अनुसार मिलता है पर मुक्ति की प्राप्ति परमात्मा

की दया-मेहर से होती है। 'कपड़ा' का अर्थ मनुष्य शरीर और इसके सुख-दुःख, मान-अपमान आदि भी किये जाते हैं अर्थात् हमें जो भी सुख-दुःख मिलते हैं, अपने किये हुए कर्मों के कारण मिलते हैं पर परमात्मा कर्मों के द्वारा नहीं, दया या रहमत द्वारा मिलता है।

नानक एवै जाणीऐ सभु आपे सचिआरु॥ आप समझा रहे हैं कि जब प्रभु की कृपा और नाम की कमाई से प्रभु से मिलाप हो जाता है तो यह अनुभव होता है कि जो कुछ है, वह सचिआर भाव सच्चा परमात्मा है, कुछ भी उससे भिन्न नहीं है, कुछ भी उससे बाहर और परे नहीं है। वह सबका आदि, मध्य और अन्त है। जो कुछ है, उससे है, जो कुछ है, उसके सहारे क़ायम है और वह सबमें व्याप्त है।

पहली चार पउड़ियाँ

मूल-मन्त्र में परमात्मा के प्रमुख गुण बयान करके परमात्मा की प्राप्ति को गुरु की कृपा का फल बताया गया है। 'जपुजी' की पहली पउड़ी में गुरु साहिब बताते हैं कि परमात्मा की प्राप्ति के यत्न में अपने-अपने ढंग से सभी लगे हुए हैं, पर परमात्मा की प्राप्ति मनमर्ज़ी के यत्नों द्वारा नहीं, परमात्मा के हुक्म द्वारा ही सम्भव है।

दूसरी पउड़ी में समझाते हैं कि परमात्मा का हुक्म अटल है। 'हुकमै अंदरि सभु को बाहरि हुकम न कोइ॥' कुछ भी कर्ता के हुक्म से बाहर नहीं है और कुछ भी कर्ता के हुक्म के बिना नहीं हो सकता। 'हुकमी उतमु नीचु'—संसार में छोटा-बड़ा होना, ऊपर उठना या नीचे गिरना आदि जो कुछ भी है हुक्म में है। 'इकना हुकमी बखसीस इकि हुकमी सदा भवाईअहि॥' परमात्मा से मिलाप की बड़ाई भी परमात्मा के हुक्म से मिलती है और परमात्मा से बिछुड़कर रचना में भटकते रहने का कारण भी परमात्मा का हुक्म है।

तीसरी पउड़ी में समझाते हैं कि जिस परमात्मा के हुक्म से सारी सृष्टि चल रही है, लोग अनेक ढंग से उसकी महिमा गाते हैं, पर उसकी महिमा बयान से बाहर है। सिर्फ़ यही कहा जा सकता है कि जो कुछ हो

रहा है, उस एक कर्ता का किया हो रहा है और जो कुछ हो रहा है उसकी रज़ा के अनुसार हो रहा है। उस सर्वशक्तिमान ने अपनी रज़ा से हर चीज़ के होने की एक विधि या युक्ति बना दी है और वह उस विधि के अनुसार सबकुछ हो रहा देखकर प्रसन्न होता है।

चौथी पउड़ी में इशारा करते हैं कि जिस सर्वशक्तिमान परमात्मा के हुक्म के अनुसार सृष्टि चल रही है उसकी प्राप्ति उसकी दया-मेहर द्वारा उसके नाम के साथ लिव जोड़ने से होती है। आपका भाव है कि हुक्म की पहचान का साधन नाम है।

पहले भी कहा जा चुका है कि संसार को देखने और समझने के दो दृष्टिकोण हैं—पहला यह कि संसार अपने आप बना है, अपने आप चल रहा है और इनसान अपनी मर्ज़ी से जो चाहे कर सकता है। दूसरा दृष्टिकोण यह है कि संसार एक सर्वशक्तिमान परमात्मा की रचना है और यह उस सर्वशक्तिमान की उस जैसी ही सर्वशक्तिमान इच्छा या रज़ा के अनुसार चल रहा है। दूसरी पउड़ी में कहा गया है, 'नानक हुकमै जे बुझै त हउमै कहै न कोइ॥' जो जीव यह समझ लेता है कि इस जगत् में दो इच्छाएँ काम नहीं कर सकती और इसमें सिर्फ़ उस एक रचयिता की इच्छा ही चल सकती है, वह इस अविद्या, भ्रम और हौंमैं से मुक्त हो जाता है कि इनसान भी कुछ कर सकता है। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि हमें अपने मन की मर्ज़ी को छोड़कर परमात्मा के हुक्म के अनुसार चलना चाहिए, पर निरपेक्ष दृष्टि (Absolute view) से हम न अपनी मर्ज़ी से मनमत पर चलते हैं और न ही अपनी मर्ज़ी से हुक्म के अनुसार चल सकते हैं।

उपरोक्त विचार को 'जपुजी' की 37वीं पउड़ी में किये गये वर्णन से मिलाकर पढ़ते हैं:

सच खंडि वसै निरंकारु॥ करि करि वेखै नदरि निहाल॥
तिथै खंड मंडल वरभंड॥ जे को कथै त अंत न अंत॥
तिथै लोअ लोअ आकार॥ जिव जिव हुकमु तिवै तिव कार॥
वेखै विगसै करि वीचारु॥

गुरु साहिब समझा रहे हैं कि सचखण्ड में पहुँचकर पता लगता है कि सम्पूर्ण कायनात में जो कुछ हो रहा है एक सर्वशक्तिमान कर्ता की रज़ा के अनुसार हो रहा है और वह कर्ता अपने द्वारा सृजित सृष्टि को अपनी रज़ा के अनुसार चलता देखकर प्रसन्न होता है।

'जपुजी' की 38वीं पउड़ी में परमात्मा की प्राप्ति के लिए उसकी रज़ा से पैदा हुई विधि बयान करके अन्त में कहते हैं—'जिन कउ नदरि करमु तिन कार॥ नानक नदरी नदरि निहाल॥' परमात्मा की रज़ा से उत्पन्न परमात्मा की प्राप्ति की विधि को सिर्फ़ वही अपना सकते हैं जिन पर परमात्मा की दया होती है।

स्पष्ट है कि पहली पउड़ी मूल-मन्त्र का विस्तार है और दूसरी से चौथी पउड़ी तक तीन पउड़ियाँ पहली पउड़ी का विस्तार हैं। बाक़ी सारा 'जपुजी' इन चार पउड़ियों का विस्तार है। इन पउड़ियों में सिर्फ़ गुरु साहिब की विचारधारा का ही नहीं, संसार की सम्पूर्ण रूहानियत का सार समाया हुआ है। वह सार इस प्रकार है:

1. संसार एक सर्वशक्तिमान कर्ता की रज़ा का खेल है।
2. संसार में जो कुछ हो रहा है, एक सर्वशक्तिमान कर्ता की सर्वशक्तिमान रज़ा के अनुसार हो रहा है।
3. प्रभु दयालु है। वह सर्वव्यापक, अमर और अविनाशी है। उसकी रज़ा और दया भी उसकी तरह ही सर्वव्यापक और निरन्तर है।
4. व्यावहारिक दृष्टि से यह कहना ग़लत नहीं कि जीव की भलाई अपने मन की मर्ज़ी को परमात्मा की रज़ा के अधीन कर देने में है, पर निरपेक्ष दृष्टि से यह कहना अधिक उचित है कि जो कुछ परमात्मा करता है, उसी में जीव की भलाई है क्योंकि उसकी रज़ा उसकी दया से भरपूर है।

उपर्युक्त चर्चा से पता चलता है कि 'हुक्म' सिद्धान्त का गुरु साहिब की विचारधारा में विशेष महत्त्व है। इसलिए इस सिद्धान्त के अलग-अलग पहलुओं पर गहराई से विचार करना ज़रूरी है।

हुक्म

हुक्म का सम्बन्ध हुक्म देनेवाले और उसकी इच्छा या रज़ा से है। यहाँ हुक्म पद परमात्मा के हुक्म के लिए प्रयोग किया गया है। इसलिए इसका सम्बन्ध परमात्मा की इच्छा या रज़ा से है। परमार्थी साहित्य में परमात्मा का हुक्म, उसकी रज़ा, इच्छा, मनसा, भाणा, इरादा आदि शब्द लगभग समान अर्थों में प्रयोग किये गये हैं। भाणा और रज़ा में पसन्द का भाव छिपा होता है, जिससे पता चलता है कि परमात्मा के हुक्म में उसकी पसन्द शामिल होती है। परमात्मा के हुक्म में उसकी रज़ा या पसन्द शामिल होने का भाव दर्शाने के लिए 'मौज' शब्द का प्रयोग किया जाता है। भाव यह है कि परमात्मा का हुक्म उसकी मौज, रज़ा, भाणे या पसन्द पर आधारित है।

परमात्मा के हुक्म के कई पहलू हैं। इसका पहला पहलू यह है कि परमात्मा इच्छा-रूप या रज़ा-रूप है। परमात्मा अचेत शक्ति नहीं है, वह चेतन और ज्ञान-रूप हस्ती है। गुरु साहिब ने 'जपुजी' की पहली पउड़ी में 'हुकमि रजाई' पद का प्रयोग किया है। 'रजाई' का अर्थ है—रज़ा, या इच्छा वाला प्रभु। परमात्मा की हस्ती या वजूद का सबसे प्रमुख पहलू इच्छा-रूप या रज़ा-रूप होना है। सन्त नामदेव जी का कथन है, 'सभो हुकमु हुकमु है आपे॥'[36] जो कुछ है परमात्मा के हुक्म का रूप है और हुक्म परमात्मा का रूप है।

परमात्मा केवल सिद्धान्त, ख़याल या कल्पनामात्र नहीं है। मूल-मन्त्र में 'सति', 'करता', 'पुरखु' और 'मूरति' पद परमात्मा को ऐसी हस्ती या सत्ता के रूप में प्रकट करते हैं जिसका अस्तित्व या वजूद सत्य है। परमात्मा केवल शक्ति नहीं है, वह ऐसी हस्ती है, जिसमें इच्छा, इरादा, चेतना और ज्ञान है।

बिजली एक शक्ति है पर उसमें ज्ञान और इच्छा नहीं है। बिजली अपने लिए अपनी मर्ज़ी की दिशा नहीं चुन सकती। उसमें चयन का सामर्थ्य नहीं। बच्चा-बूढ़ा, अच्छा-बुरा जो भी बिजली के नंगे तार को

छूएगा, उसे बिजली का करंट लगेगा। इसके विपरीत प्रभु में ज्ञान भी है और चुनाव करने का सामर्थ्य भी। चयन भी वह अपनी इच्छानुसार करता है और ज्ञान को भी वह अपनी इच्छा की पूर्ति के लिए प्रयोग करता है।

शक्ति जितनी मर्ज़ी बड़ी हो जब तक उसमें इच्छा न हो, वह कुछ नहीं कर सकती। मान लो, एक व्यक्ति में अथाह शक्ति और अथाह ज्ञान है, पर उसमें उस शक्ति और ज्ञान का प्रयोग करने की इच्छा न हो तो उसकी शक्ति और उसका ज्ञान व्यर्थ है। बेशक परमात्मा सर्वशक्तिमान और सर्वज्ञाता हो पर यदि उसमें इच्छा न हो तो उसकी शक्ति और ज्ञान व्यर्थ है। परमात्मा के पास अपनी शक्ति और अपने ज्ञान को अपनी रज़ा के अनुसार प्रयोग कर सकने का अपार सामर्थ्य है। परमात्मा की हस्ती का यह सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू है जिसको गुरु साहिब ने हुक्म, रज़ा, भाणा आदि पदों द्वारा प्रकट करने का प्रयत्न किया है।

कर्म की संचालक शक्ति इच्छा है। मनुष्य के हर कार्य के पीछे कोई न कोई संकल्प या इरादा होता है। जितना प्रबल संकल्प या इरादा होता है, उतना ज़ोरदार उसका कर्म होता है। मनुष्य की हस्ती का सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू भी उसकी इच्छा-शक्ति है और परमात्मा की हस्ती का सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू भी उसकी इच्छा-शक्ति, उसकी रज़ा, उसका भाणा या हुक्म है। जीवात्मा का सबसे ज़्यादा सम्बन्ध परमात्मा के हुक्म, उसकी रज़ा, इच्छा या मौज से है क्योंकि जीवात्मा उसके हुक्म से ही संसार में आयी है और केवल उसके हुक्म और हुक्म की पहचान द्वारा ही वापस उससे मिलाप कर सकती है।

हुक्म के दूसरे पहलू का इशारा गुरु नानक साहिब के इस कथन से मिलता है:

> अरबद नरबद धुंधूकारा॥ धरणि न गगना हुकमु अपारा॥
> ना दिनु रैनि न चंदु न सूरजु सुंन समाधि लगाइदा॥[37]

अनन्त काल तक सिवाय धुँधकार के और कुछ नहीं था। उस समय न धरती थी, न आकाश और न ही कुछ और। गुरु साहिब इसी शब्द में

विस्तारसहित समझाते हैं कि उस समय काल, माया, तीन गुण, पाँच तत्त्व, सूर्य-चन्द्र, स्वर्ग-नरक, देवी-देवता, पुण्य-पाप और मोह-ममता आदि कुछ भी नहीं था। वह प्रभु पूर्ण अद्वैत की अवस्था में सुन्न-समाधि में मग्न था। 'हुकमु अपारा'—उस समय परमात्मा था या उसके जैसा ही उसका अलख-अपार हुक्म था। भाव यह है कि सुन्न-समाधि में मग्न रहने का कारण प्रभु की इच्छा, मौज या रज़ा थी। आप वाणी के इसी प्रसंग में आगे कहते हैं:

जा तिसु भाणा ता जगतु उपाइआ॥
बाझु कला आडाणु रहाइआ॥
ब्रहमा बिसनु महेसु उपाए माइआ मोहु वधाइदा॥
विरले कउ गुरि सबदु सुणाइआ॥
करि करि देखै हुकमु सबाइआ॥
खंड ब्रहमंड पाताल अरंभे गुपतहु परगटी आइदा॥[38]

परमात्मा सुन्न-समाधि की अवस्था में गुप्त था क्योंकि उसकी गुप्त रहने की रज़ा थी। 'गुपतहु परगटी आइदा'—वह गुप्त से प्रकट हो गया, एकता से अनेकता में आ गया। निर्लेप, निरंकार से कर्ता-रूप में प्रकट हो गया और सारी सृष्टि की रचना करके इसके कण-कण में समा गया क्योंकि यही उसकी रज़ा थी। पूर्ण अद्वैत या एकता का कारण भी रज़ा थी और अनन्त अनेकता का कारण भी रज़ा या हुक्म है। रज़ा या इच्छा हर अवस्था में परमात्मा की हस्ती का अभिन्न अंग रहती है।

हुक्म का तीसरा पहलू यह है कि सुख-दुःख, मान-अपमान और जीवन के हर उतार-चढ़ाव को प्रभु का भाणा मानकर ख़ुशी-ख़ुशी स्वीकार कर लेना चाहिए। हम आधा हुक्म मानते हैं। हम सुख को तो ख़ुशी-ख़ुशी मालिक की दया कह देते हैं पर दुःख को कभी मालिक की दया नहीं मानते। सुख और दुःख दोनों को एक-रूप में देखना ही सही अर्थों में भाणा मानना है। इसी बात का दूसरा पहलू यह है कि सुख-दुःख

में अडोल रहते हुए ध्यान परमात्मा के नाम में रखना चाहिए। गुरु नानक साहिब की वाणी है:

दुखु सुखु भाणा तेरा होवै विणु नावै जीउ रहै नाही॥[39]

दुखु सुखु गुरमुखि सम करि जाणा हरख सोग ते बिरकतु भइआ॥
आपु मारि गुरमुखि हरि पाए नानक सहजि समाइ लइआ॥[40]

जिन्होंने गुरुमुखों की मति पर चलकर सुख और दुःख को एक मानकर नाम से लिव जोड़ ली, वे सुख-दुःख से ऊपर उठकर सहज अवस्था में पहुँच गये। इस बात की पुष्टि के लिए यहाँ एक दृष्टान्त दिया गया है:

एक राजा किसी दरवेश का श्रद्धालु बन गया। राजा ने बहुत प्रेम और नम्रता सहित दरवेश से विनती की कि आप कुछ देर मेरे साथ रहो। मालिक के प्यारे ने विनती स्वीकार कर ली। राजा पहले महात्मा को खाना खिलाता फिर ख़ुद खाता। एक दिन राजा ने एक बहुत बढ़िया तरबूज़ काटा और उसकी फाँकें महात्मा को खिलाता गया। अन्तिम फाँक राजा ने अपने लिए रख ली। जब राजा ने वह फाँक मुँह में डाली तो फाँक बहुत कड़वी थी। राजा बहुत दुःखी हुआ और कहने लगा कि आपने मुझे पहले क्यों नहीं बताया? आप ज़हर जैसा कड़वा तरबूज़ चुपचाप खाते रहे। दरवेश ने जवाब दिया कि बादशाह, जो हाथ मुझे हर रोज़ इतना मीठा खाना खिलाता रहा है, क्या मैं उस हाथ से एक दिन कड़वी चीज़ नहीं खा सकता? ऐ बादशाह, जो मालिक हमें इतनी दातें बख़्शता है, अगर कोई ऐसी चीज़ बख़्श दे, जो हमें कड़वी लगती हो, उसको भी मालिक के प्रेम और विश्वास की ख़ातिर ख़ुशी-ख़ुशी स्वीकार कर लेना चाहिए। मैं यह समझाने के लिए ही तेरे पास रुका हुआ था। आज मेरा कार्य पूरा हो गया है, अब मैं चलता हूँ। बादशाह ने अर्ज़ की कि आपकी संगति से मेरे लिए इस बात पर अमल करना आसान हो जायेगा। दरवेश ने कहा कि मैं तुम्हें मालिक की बन्दगी का तरीक़ा समझा

देता हूँ। यदि तुम उस पर अमल करोगे तो तुम्हें धीरे-धीरे मालिक की रज़ा में राज़ी रहने का तरीक़ा आ जायेगा। मालिक की रज़ा का प्रेम-भरोसा मालिक की बन्दगी या नाम की कमाई द्वारा जाग्रत होता है।

हुक्म के चौथे पहलू के बारे में 'जपुजी' की तीसरी पउड़ी में 'हुकमी हुकमु चलाए राहु॥' महावाक्य द्वारा प्रकाश डाला गया है। हुक्म का अर्थ इच्छा भी है और विधान या मर्यादा भी। सृष्टि के संचालन के लिए परमात्मा द्वारा रचित विधान भी उसकी इच्छा से ही जन्मा है। गुरु साहिब फ़रमाते हैं कि जो कुछ हो रहा है, हुक्म या मर्यादा के अनुसार हो रहा है। जो कुछ होता है, परमात्मा की मर्ज़ी और उसके द्वारा बनाये गये विधान के अनुसार होता है।

परमात्मा द्वारा बनाये गये संसार में कई भौतिक नियम काम करते दिखाई देते हैं जैसे पानी नीचे की तरफ़ बहता है, समय हर चीज़ पर असर करता है आदि। इसमें कुछ नैतिक नियम काम कर रहे हैं जैसे 'आपे बीजि आपे ही खाहु'[41] अर्थात् हर जीव को किये हुए कर्मों का फल भोगना पड़ता है और मनुष्य के कर्म ही उसकी होनी बन जाते हैं आदि। इसमें कुछ परमार्थी नियम भी काम कर रहे हैं जैसे काया के अन्दर बैठे परमात्मा के साथ केवल काया के अन्दर ही मिलाप किया जा सकता है; चौरासी लाख योनियों में केवल मनुष्य की योनि को ही परमात्मा के साथ मिलाप करने का अधिकार प्राप्त है, परमात्मा से मिलाप परमात्मा या सतगुरु की दया-मेहर द्वारा नाम से लिव जोड़कर होता है और यह दया-मेहर परमात्मा के हुक्म या रज़ा के अनुसार होती है। गुरु नानक साहिब की वाणी है:

चहु दिसि हुकमु वरतै प्रभ तेरा चहु दिसि नाम पतालं॥
सभ महि सबदु वरतै प्रभ साचा करमि मिलै बैआलं॥[42]

वह परमात्मा हुक्म, नाम या शब्द का रूप है और उसका हुक्म, शब्द या नाम सर्वव्यापक है।

संसार में जितने देश हैं, उतने विधान हैं। ये विधान बनते बाद में हैं, पर इनमें परिवर्तन पहले ही शुरू हो जाता है। इन विधानों का पालन कम

होता है और उल्लंघन ज़्यादा। ये विधान किसी-न-किसी भाषा में लिखे होते हैं। इनकी कई प्रकार की व्याख्या की सम्भावना होती है। कई बार अदालत में अपराधी छूट जाते हैं और निर्दोषों को सज़ा मिल जाती है। जितना होशियार वकील होता है, उतना ही कानून मोम की नाक बन जाता है। ऐसे देश भी हैं जहाँ विधान तो ईमानदारी, बराबरी और इन्साफ़ की बात करता है परन्तु व्यावहारिक रूप में वहाँ पर बेईमानी, असमानता और बेइन्साफ़ी का बोलबाला होता है। पर परमात्मा द्वारा बनाया गया विधान सब दोषों से मुक्त है। गुरु अमरदास जी की वाणी है:

एको अमरु एका पतिसाही जुगु जुगु सिरि कार बणाई हे॥[43]

न कभी उस कर्ता का राज्य बदलता है और न ही उसका कानून या विधान बदलता है। उसके द्वारा रचित विधान सर्वव्यापक और अटल है। यह विधान स्वचालित है, यह अपने आप लागू होता रहता है। कोई व्यक्ति न सृष्टि से बाहर जा सकता है और न ही सृष्टि में लागू विधान से बच सकता है।

मछली समुद्र में जहाँ चाहे जा सकती है पर समुद्र से बाहर नहीं जा सकती। मनुष्य एक पाँव धरती से ऊपर उठा सकता है, पर जब तक उठाया हुआ पाँव नीचे नहीं रखता, दूसरा पाँव नहीं उठा सकता। दोनों पाँव उठाकर छलाँग लगाई जा सकती है पर धरती पर चलने के लिए एक पाँव का हर समय धरती पर होना ज़रूरी है। इसी तरह कर्म और प्रतिकर्म का नियम अनादि, सर्वव्यापक और अटल है। हाथ पानी या आग में डालने की, सेब या मिर्च खाने की, बबूल या अँगूर बोने की आज़ादी है पर हर चुनाव का फल पूर्व निश्चित है। आग में से पानी जैसी ठण्डक, मिर्च में से सेब जैसा स्वाद तथा बबूल में से अँगूर जैसा रस प्राप्त करने की आशा रखना अज्ञानता है।

परमात्मा द्वारा बनाये गये विधान का उल्लंघन असम्भव है क्योंकि हर कर्म का फल पूर्व निश्चित है और फल की प्राप्ति क़ुदरती और लाज़मी है। सारा संसार एक कर्ता की रज़ा से पैदा हुए एक अटल हुक्म या विधान के अधीन है।

इनसान की मर्ज़ी और परमात्मा की रज़ा

गुरु नानक साहिब की वाणी है, 'एना जंता कै वसि किछु नाही तुधु वेकी जगतु उपाइआ॥'[44] गुरु अर्जुन देव जी का कथन है, 'जीअ जंत सभि तुधु उपाए॥ जितु जितु भाणा तितु तितु लाए॥ सभ किछु कीता तेरा होवै नाही किछु असाड़ा जीउ॥'[45] 'जपुजी' की 33वीं पउड़ी में गुरु साहिब फ़रमाते है कि जन्म-मरण, लेना-देना, चुप रहना और बोलना, सुरति को बलवान या निर्मल बना सकना, ज्ञान या अनुभव प्राप्त कर सकना आदि कुछ भी हमारी मर्ज़ी से नहीं होता। इनसान रोष प्रकट करता है कि अगर संसार में कुछ भी उसकी मर्ज़ी से नहीं हो सकता तो ऐसे जीवन का क्या लाभ है? वह यह नहीं सोचता कि अगर संसार में सबकुछ उसकी मर्ज़ी से होने लगे तो संसार की क्या हालत हो जायेगी। गुरु अर्जुन देव जी 'सुखमनी' में लिखते हैं, 'इस कै हाथि होइ ता सभु किछु लेइ॥'[46] इनसान के वश में हो तो सारी कायनात पर ही अपना कब्ज़ा कर ले। ज़रा विचार करें कि यदि हर इनसान संसार के सारे धन-पदार्थ और ऐशो-इशरत के सामान अपने वश में कर ले तो संसार कैसे चलेगा? अगर इनसान की मर्ज़ी मानी जाये तो एक व्यक्ति कहेगा कि सूर्य दस दिन अस्त न हो ताकि उसकी फ़सलें जल्दी पक जायें और दूसरा कहेगा कि सूर्य दस दिन न निकले क्योंकि वह गर्मी से तंग है। इस सम्बन्ध में एक दृष्टान्त है:

> एक बुज़ुर्ग अपनी बेटी से मिलने उसके ससुराल गया। उसका हाल-चाल पूछा तो बेटी कहने लगी कि पिता जी, आप परमात्मा से प्रार्थना करें कि ख़ूब वर्षा हो, अन्यथा हमारी फ़सल तबाह हो जायेगी और हमारा सत्यानाश हो जायेगा। उसके बाद वह अपनी दूसरी बेटी के ससुराल में गया। उसने कहा कि पिता जी, प्रभु से प्रार्थना करो कि महीना भर वर्षा न हो अन्यथा हमारा आवा* कच्चा रह जायेगा और हम बरबाद हो जायेंगे। जब बुज़ुर्ग घर वापस आया तो उसकी पत्नी ने पूछा कि मेरी बेटियों का क्या हाल है? बुज़ुर्ग कहने लगा कि अगर वर्षा हो गयी तो एक का सत्यानाश हो जायेगा और अगर न हुई तो दूसरी का कुछ नहीं बचेगा।

* एक तरह की भट्ठी जिसमें कुम्हार मिट्टी के बर्तन आदि पकाता है।

जिस तरह लम्बी-लम्बी लड़ियों में लगे बिजली के अनेक छोटे-छोटे बल्ब पल में जगते हैं, पल में बुझते हैं, उसी तरह इनसान के मन में भी पल-पल अनन्त संकल्प-विकल्प उठते हैं। इनसान का कौन-सा संकल्प पूरा किया जाये और कौन-सा पूरा न किया जाये? फिर एक इनसान के संकल्प दूसरे इनसान के संकल्पों के विरुद्ध हैं। कौन-से इनसान का कौन-सा संकल्प पूरा किया जाये और कौन-सा पूरा न किया जाये? 'हुकमी हुकमु चलाए राहु'[47]—इस छोटे-से वचन द्वारा गुरु साहिब यह परम रहस्य खोल रहे हैं कि संसार में जो कुछ हो रहा है विधि के विधान के अनुसार हो रहा है और जो कुछ हो रहा है, सब ठीक है।

हुक्म के बिना पत्ता नहीं हिलता

'हुकमै अंदरि सभु को बाहरि हुकम न कोइ॥'[48], 'बिना हुक्म हाले नहीं तरवर हूँ को पात॥'[49]—बिना हुक्म के पत्ता भी नहीं हिलता। इसका यह अर्थ नहीं है कि पहले परमात्मा हुक्म देता है और फिर पत्ता हिलता है। इसका अर्थ यह है कि परमात्मा की रज़ा या परमात्मा के हुक्म से बनी हवा चलती है तो पत्ता हिलता है। परमात्मा को एक-एक काम के लिए पल-पल हुक्म नहीं देना पड़ता। उस सृजनहार ने हर चीज़ के होने की एक निश्चित विधि बना दी है। सृष्टि में जो कुछ हो रहा है, किसी योजना के अधीन और किसी युक्ति या विधि के अनुसार हो रहा है।

संसार में एक की बजाय अनेक रज़ाएँ हों तो यहाँ अराजकता फैल जायेगी। संसार में सबको कुछ न कुछ मिल रहा है क्योंकि इसमें एक दाता की रज़ा काम कर रही है। सृष्टि एक ख़ास दिशा में, ख़ास उद्देश्यों की पूर्ति के लिए और ख़ास नियमों के अनुसार चल रही है क्योंकि इसमें एक कर्ता की रज़ा कार्यशील है। निरपेक्ष दृष्टि (Absolute view) से संसार में जो कुछ हो रहा है, उसका एकमात्र कारण कर्ता की रज़ा है।

आज यह संसार इस तरह का इसलिए है क्योंकि इसका कर्ता इसे इसी तरह का बनाना चाहता था। इसके स्वरूप, इसमें कार्यशील नियमों आदि के बारे में किन्तु-परन्तु करना, इसके रचयिता और उसके विवेक और रज़ा के बारे में सन्देह प्रकट करना है।

मनुष्य-जन्म का वास्तविक उद्देश्य प्रभु की रज़ा के बारे में किन्तु-परन्तु करने की बजाय लिव अन्दर प्रभु के नाम के साथ जोड़कर प्रभु की रज़ा की पहचान करना है। जब तक मनुष्य अपनी मर्ज़ी प्रभु की रज़ा के साथ एक-सुर नहीं करता, वह कभी सच्ची शान्ति का स्वप्न भी नहीं देख सकता।

हुक्म का पाँचवाँ पहलू विशेष ध्यान की माँग करता है। ऊपर यह विचार कर चुके हैं कि हुक्म से अस्तित्व में आयी सम्पूर्ण कायनात में परमात्मा की रज़ा कार्यशील है। मनुष्य की वास्तविक समस्या यह है कि उसे परमात्मा की रज़ा का ज्ञान नहीं। मनुष्य का कल्याण इस बात में है कि वह अपनी मर्ज़ी को परमात्मा की रज़ा के अधीन करे। पर जब तक इनसान को यह पता न चले कि परमात्मा की रज़ा क्या है, वह अपनी मर्ज़ी परमात्मा की रज़ा के अधीन नहीं कर सकता।

परमात्मा की रज़ा जानने के तीन अंग हैं। पहला यह कि परमात्मा के हुक्म की पहचान, परमात्मा की दया से होती है। गुरु अमरदास जी कहते हैं, 'हुकमु भी तिन्हा मनाइसी जिन्ह कउ नदरि करेइ॥'[50] दूसरा यह कि परमात्मा की रज़ा का भेद, परमात्मा में समाकर परमात्मा का रूप हो चुके किसी पूर्ण पुरुष से ही जाना जा सकता है। गुरु नानक साहिब का कथन है, 'साचे गुर ते हुकमु पछानु॥'[51] तीसरा यह कि जीव उस पूर्ण पुरुष की समझाई हुई युक्ति के अनुसार अपनी लिव परमात्मा के शब्द या नाम के साथ जोड़कर परमात्मा में अभेद हो जाये।

गुरुवाणी में 'हुकमि रजाई चलणा नानक लिखिआ नालि॥'[52], 'नानक हुकमै जे बुझै त हउमै कहै न कोइ॥'[53] और 'नानक हुकमु पछाणि कै तउ खसमै मिलणा॥'[54] का उपदेश दिया गया है। हमें उस हुक्म को समझकर और पहचानकर उसके अनुसार चलना है जो हुक्म नाम के रूप में हमारे अन्दर और हमारे साथ है। गुरु नानक साहिब की वाणी है:

देही अंदरि नामु निवासी॥ आपे करता है अबिनासी॥
ना जीउ मरै न मारिआ जाई करि देखै सबदि रजाई हे॥[55]

वह नाम जो कर्तापुरुष का रूप है, शरीर के अन्दर है। जब हम आत्मा को उस नाम या शब्द की रज़ा के अधीन कर देते हैं तो आत्मा जन्म-मरण के बन्धनों से सदा के लिए आज़ाद हो जाती है। गुरु साहिब कहते हैं:

हुकमे मेले सबदि पछाणै॥[56]

हुकमु पछाणै सु हरि गुण वखाणै॥
गुर कै सबदि नामि नीसाणै॥[57]

जो भाग्यशाली जीव परमात्मा के हुक्म द्वारा शब्द की पहचान कर लेते हैं, उनको परमात्मा की पहचान हो जाती है। 'एको नामु हुकमु है नानक सतिगुरि दीआ बुझाइ जीउ॥'[58] और 'हुकमे मेले सबदि पछाणै' मिलकर यही भाव दृढ़ करते हैं कि सतगुरु द्वारा समझायी गयी युक्ति के अनुसार लिव नाम के साथ जोड़ना प्रभु के हुक्म का पालन करना है और जब लिव अन्तर में शब्द या नाम के साथ जोड़ लेते हैं तो परमात्मा और उसके हुक्म की पहचान करने के क़ाबिल बन जाते हैं।

आदम और हव्वा की कहानी

बाइबल[59] में यह कहानी दर्ज है कि आदम और हव्वा अदन के बाग़ में सुख-शान्ति से रह रहे थे। परमात्मा ने उनको बाग़ का हर फल खाने की आज्ञा दी हुई थी पर ज्ञान के वृक्ष का फल खाने से वर्जित किया हुआ था। उन दोनों को साँप ने उकसाया कि ज्ञान के वृक्ष का फल खाने से तुम्हें पाप और पुण्य का भेद समझ आ जायेगा और यह ज्ञान हो जायेगा कि तुम परमात्मा के बराबर हो।

जब आदम और हव्वा ने साँप पर भरोसा करके ज्ञान का फल खा लिया तो उन्होंने एक तरह से उसको अपना परमात्मा से बड़ा मित्र,

हितैषी और शुभचिन्तक मान लिया। उन्होंने उसके ज्ञान, प्रेम, दया और हुक्म को परमात्मा के ज्ञान, प्रेम, दया और हुक्म से बड़ा मान लिया। उन्होंने साँप का हुक्म मान लिया और पिता के हुक्म का उल्लंघन किया। परिणाम यह हुआ कि उनको अदन के बाग़ से बाहर निकाल दिया गया।

इस कहानी द्वारा महात्मा यह रूहानी भेद बहुत सरल ढंग से समझाने का प्रयत्न करते हैं कि साँप हौंमैं, शैतान या मन है जो हमारे अन्दर परमात्मा के प्रति शंका या अविश्वास पैदा करता है जब कि परमात्मा पर सन्देह करना और प्रभु के हुक्म का उल्लघंन करना मनुष्य की आत्मिक मौत है।

परमात्मा ने आदम और हव्वा को अदन के बाग़ में से इसलिए बाहर नहीं निकाला था कि वह उन्हें सज़ा देना चाहता था। यदि पिता-परमात्मा आत्मा रूपी पुत्र को सज़ा देना चाहता तो वह दयालु पिता नहीं, बदला लेनेवाला निर्दयी दुश्मन है। उस दयालु पिता ने आत्मा रूपी पुत्र को द्वैत, परिवर्तन और दुःख के इस देश में यह ज्ञान प्राप्त करने के लिए भेजा है कि पिता पर शंका करना और पिता के हुक्म का पालन न करना, दुःखों की जड़ है और परमात्मा पर पूरा भरोसा रखते हुए, उसके हुक्म का पालन करना, सब सुखों का सच्चा भण्डार है। गुरु नानक साहिब के महावाक्यों 'हुकमि रजाई चलणा नानक लिखिआ नालि॥'[60] 'नानक हुकमै जे बुझै त हउमै कहै न कोइ॥'[61] और 'एको नामु हुकमु है नानक सतिगुरि दीआ बुझाइ जीउ॥'[62] में सम्पूर्ण रूहानियत का सार समाया हुआ है। गुरु साहिब परमार्थ के इस गूढ़ रहस्य पर प्रकाश डाल रहे हैं कि परमात्मा और उसके हुक्म से टूटा और हौंमैं के अन्धकार में घिरा जीव, परमात्मा के हुक्म की पहचान के द्वारा ही फिर परमात्मा के साथ जुड़ सकता है और इस परिवर्तन, विनाश और दुःख की नगरी से मुक्त होकर निज घर वापस पहुँच सकता है।

गुरु साहिब समझाना चाहते हैं कि परमात्मा के हुक्म को मानने से इन्कार करना, परमात्मा की हस्ती को मानने से इन्कार करना है और परमात्मा के हुक्म का पालन करना ही परमात्मा में भरोसा प्रकट करना

है। इसी विचार को इस तरह भी समझने का प्रयत्न करना चाहिए कि इनसान का अपने मन को परमात्मा से बड़ा समझना ही इसके सब दुःखों का मूल कारण है और परमात्मा के हुक्म को अपने मन की मर्ज़ी से बड़ा समझना ही आत्मिक ज्ञान और पूर्ण आनन्द का आदि, मध्य और अन्त है।

परमात्मा की शक्ति, परमात्मा के ज्ञान, परमात्मा के प्रेम और परमात्मा की दया में अटूट विश्वास रखते हुए, जीवन को परमात्मा के हुक्म के अनुसार ढालना ही हौंमैं के रोग से मुक्त होने और पारमार्थिक उन्नति करने का वास्तविक साधन है। व्यावहारिक दृष्टि से इसका भाव यह है कि मन के बहकावे में आकर किये हुए कर्मों के फल को परमात्मा का भाणा मानकर ख़ुशी-ख़ुशी भोग लेना चाहिए और जीवन के हर तरह के हालात में लिव परमात्मा के नाम के साथ जोड़कर रखनी चाहिए क्योंकि मनमर्ज़ी से किये हुए कर्मों के नाश का साधन भी परमात्मा का नाम है और परमात्मा या उसके हुक्म की पहचान का साधन भी परमात्मा का नाम है। हज़रत ईसा बाइबल में फ़रमाते हैं—नाम के विरुद्ध किये गये पाप की कभी माफ़ी नहीं मिल सकती।* आपका भाव है कि अगर हम नाम के साथ लिव नहीं जोड़ते तो न मनमर्ज़ी से किये हुए कर्मों का नाश हो सकता है और न ही हम परमात्मा के साथ मिलाप कर सकते हैं। साराँश यह है कि नाम से लिव न जोड़ना परमात्मा और उसके हुक्म को मानने से इन्कार करना है और नाम के साथ लिव जोड़ना ही परमात्मा और उसके हुक्म को स्वीकार करना है। नाम को न मानना हौंमैं से ग्रस्त होना है और नाम के साथ जुड़ जाना हौंमैं से मुक्त हो जाना है।

नाम के साथ जुड़ा साधक

जो व्यक्ति परमात्मा के नाम के साथ अन्तर में लिव जोड़ लेता है, वह परमात्मा के हुक्म की मूरत बन जाता है। गुरु अर्जुन साहिब का कथन है:

---

* ... but the blasphmey against the Holy Ghost shall not be forgiven unto men.[63]

हउ आपहु बोलि न जाणदा मै कहिआ सभु हुकमाउ जीउ ॥[64]

गुरु साहिब कहते हैं कि मैं जो कुछ कहता हूँ, उस अकालपुरुष के हुक्म के अनुसार कहता हूँ।

शब्द से जुड़े साधक के मन, वचन और कर्म का आधार परमात्मा का हुक्म होता है। ऐसा साधक अधिक-से-अधिक उद्यम और परिश्रम करता हुआ भी कर्मों के फल से मुक्त रहता है क्योंकि उसके कर्म उसके मन की इच्छा से नहीं, प्रभु की इच्छा से पैदा हुए होते हैं। श्रीकृष्ण ने गीता में अर्जुन को समझाया था कि तू कर्मों के फल से मुक्त होने के लिए सब कर्म मेरे निमित्त कर।[65] परमात्मा के निमित्त कर्म करने का यह अर्थ नहीं कि हम कर्म मन के कहे अनुसार करते जायें पर नाम परमात्मा का लगा दें कि हम सबकुछ तेरे निमित्त कर रहे हैं। परमात्मा के निमित्त कर्म करने का अर्थ है कि हर कर्म अन्दर से परमात्मा के या बाहर से परमात्मा के साकार रूप पूर्ण पुरुष के हुक्म के अनुसार किया जाये। जब तक अन्तर में लिव नाम के साथ नहीं जुड़ जाती, हर कर्म गुरु के हुक्म के अनुसार करना और नाम के साथ अन्तर में लिव जुड़ जाने पर हर कर्म परमात्मा के हुक्म के अनुसार करना ही कर्मों के बन्धन से मुक्त होने का असल साधन है।

अन्तर में नाम के साथ जुड़े साधक के हर कर्म में पूर्ण सहज होता है। गुरु अर्जुन देव जी की वाणी है:

गुर का सबदु रिद अंतरि धारै ॥ पंच जना सिउ संगु निवारै ॥
दस इंद्री करि राखै वासि ॥ ता कै आतमै होइ परगासु ॥
ऐसी द्रिड़ता ता कै होइ ॥ जा कउ दइआ मइआ प्रभ सोइ ॥
साजनु दुसटु जा कै एक समानै ॥ जेता बोलणु तेता गिआनै ॥
जेता सुनणा तेता नामु ॥ जेता पेखनु तेता धिआनु ॥
सहजे जागणु सहजे सोइ ॥ सहजे होता जाइ सु होइ ॥
सहजि बैरागु सहजे ही हसना ॥ सहजे चूप सहजे ही जपना ॥

सहजे भोजनु सहजे भाउ ॥ सहजे मिटिओ सगल दुराउ ॥
सहजे होआ साधू संगु ॥ सहजि मिलिओ पारब्रहमु निसंगु ॥
सहजे ग्रिह महि सहजि उदासी ॥ सहजे दुबिधा तन की नासी ॥
जा कै सहजि मनि भइआ अनंदु ॥ ता कउ भेटिआ परमानंदु ॥
सहजे अंम्रितु पीओ नामु ॥ सहजे कीनो जीअ को दानु ॥
सहज कथा महि आतमु रसिआ ॥ ता कै संगि अबिनासी वसिआ ॥
सहजे आसणु असथिरु भाइआ ॥ सहजे अनहत सबदु वजाइआ ॥
सहजे रुण झुणकारु सुहाइआ ॥ ता कै घरि पारब्रहमु समाइआ ॥
सहजे जा कउ परिओ करमा ॥ सहजे गुरु भेटिओ सचु धरमा ॥
जा कै सहजु भइआ सो जाणै ॥ नानक दास ता कै कुरबाणै ॥[66]

आप फ़रमाते हैं कि नाम के साथ जुड़े व्यक्ति की इन्द्रियाँ उसके वश में आ जाती हैं। वह पाँचों विकारों पर विजय प्राप्त कर लेता है। वह दोस्त और दुश्मन की द्वैत से ऊपर उठ जाता है। उसका हर वचन पूर्ण ज्ञान से निकला होता है। उसके बोलने और चुप हो जाने, जागने और सोने, हँसने और रोने में सहजता होती है। वह हर अवस्था में अडोल और निश्चिन्त रहता है। उसके लिए गृहस्थ और त्याग का फ़र्क़ ख़त्म हो जाता है और उसके हर तरह के संशय और भ्रम नष्ट हो जाते हैं। वह उस परमानन्द परमात्मा के साथ मिलकर आनन्द-रूप हो जाता है। उसका मन सदा नाम के अमृत में रँगा रहता है। वह अमर-अविनाशी प्रभु पल-भर के लिए भी उससे दूर नहीं होता। परमात्मा में अभेद हो जाने के कारण, उसे भी परमात्मा जैसी अचल-अडोल अवस्था प्राप्त हो जाती है। गुरु साहिब कहते हैं कि ऐसी अनुपम अवस्था उस परमात्मा की कृपा से प्राप्त होती है और मैं पूर्ण परमात्मा में समाकर पूर्ण हो चुके प्रभु-भक्त पर क़ुर्बान जाता हूँ।*

हुक्म के बारे में उपरोक्त चर्चा की पृष्ठभूमि में 'जपुजी' और गुरु साहिब की विचारधारा को बेहतर ढंग से समझने में सहायता मिलेगी।

* विस्तार के लिए देखें: पुस्तक का अध्याय 'जपुजी और हुक्म' पृ. 331

पउड़ी 5

थापिआ न जाइ कीता न होइ॥ आपे आपि निरंजनु सोइ॥
जिनि सेविआ तिनि पाइआ मानु॥ नानक गावीऐ गुणी निधानु॥
गावीऐ सुणीऐ मनि रखीऐ भाउ॥ दुखु परहरि सुखु घरि लै जाइ॥
गुरमुखि नादं गुरमुखि वेदं गुरमुखि रहिआ समाई॥
गुरु ईसरु गुरु गोरखु बरमा गुरु पारबती माई॥
जे हउ जाणा आखा नाही कहणा कथनु न जाई॥
गुरा इक देहि बुझाई॥
सभना जीआ का इकु दाता सो मै विसरि न जाई॥

शब्दार्थ: गुणी निधानु=गुणों का ख़ज़ाना। दुखु परहरि=दु:ख दूर करके। ईसरु=शिवजी। गोरखु=विष्णु। बरमा=ब्रह्मा। पारबती माई=पार्वती, लक्ष्मी और सरस्वती।

सरलार्थ: पिछली चार पउड़ियों की तरह इस पउड़ी में भी प्रभु की महिमा का वर्णन करते हैं:

वह सच्चा प्रभु न किसी के द्वारा स्थापित किया गया है और न ही किसी ने उसकी रचना की है। माया से निर्लेप वह निरंजन अपने आपसे आप है।

जिन्होंने ऐसे गुणों के भण्डार परमात्मा की सेवा-भक्ति की है, उनको ही उसकी प्राप्ति का सच्चा मान प्राप्त हुआ है। हे नानक! आओ, गुणों के भण्डार उस प्रभु के गुण गायें। आओ, उसके गुण गायें, उसके गुण सुनें और मन में उसका प्रेम धारण करें ताकि वह हमारे दु:ख दूर करके हमें सच्चे सुख के घर में ले जाये।

शब्द रूपी नाद की पहचान गुरु द्वारा होती है। ज्ञान (वेदं) की प्राप्ति गुरु द्वारा होती है। वह प्रभु गुरु में समाया हुआ है। गुरु ही शिवजी, विष्णु और ब्रह्मा है और गुरु ही पार्वती, लक्ष्मी और सरस्वती है। अगर मुझे गुरु की बड़ाई का ज्ञान हो भी जाये तो भी मैं उसका वर्णन नहीं करूँगा

क्योंकि गुरु की बड़ाई कहने में नहीं आ सकती। मेरी तो यही विनती है कि हे सतगुरु, तू मुझे उस एक की पहचान करवा दे और वह एक जो सबका दाता है, मुझे कभी न भूले।

व्याख्या

थापिआ न जाइ कीता न होइ॥ आपे आपि निरंजनु सोइ॥ आपने मूल-मन्त्र में उस परमात्मा को 'सैभं' कहकर उसकी महिमा गायी है। वह परमात्मा अपने आपसे आप है। आप 'आसा दी वार' में कहते हैं, 'आपीन्है आपु साजिओ'[1]—वह प्रभु अपना कर्ता आप है। वह अपनी हस्ती या अस्तित्व के लिए किसी दूसरे पर निर्भर नहीं।

हम मन्दिरों में मूर्तियों की स्थापना करते हैं। उन मूर्तियों को किसी न किसी मूर्तिकार ने तराशा होता है। वे न अपने आप बनी होती हैं और न ही अपने आप स्थापित हुई होती हैं। सन्तों-महात्माओं की गद्दियाँ बदलती हैं। एक महात्मा दूसरे को अपनी जगह स्थापित करता है या अपनी गद्दी पर बिठाता है। लेकिन वह परमात्मा स्वयं ही बना है और स्वयं ही स्थापित हुआ है।

गुरु साहिब जपुजी की 27वीं पउड़ी में कहते हैं, 'है भी होसी जाइ न जासी रचना जिनि रचाई॥ रंगी रंगे भाती करि करि जिनसी माइआ जिनि उपाई॥'[2] जिस कर्ता ने सारी रंग-बिरंगी रचना पैदा की है, वह सदा से क़ायम है और सदा क़ायम रहेगा। वह किसी द्वारा स्थापित किये जाने का मोहताज नहीं। न ही वह किसी दूसरे के सहारे का मोहताज है, वह अपना आधार आप है।

जिनि सेविआ तिनि पाइआ मानु॥ गुरु साहिब समझाते हैं कि जिसने उस परमात्मा की सेवा या भजन-बन्दगी की है, उसे उसके दरबार में मान प्राप्त होता है। गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं, 'जिनि सेविआ सो पारगिरामी कारज सगले थीए जीउ॥'[3] गुरु अमरदास जी की वाणी है, 'जिन सेविआ जिन सेविआ मेरा हरि जी ते हरि हरि रूपि समासी॥'[4] गुरु साहिब समझा रहे हैं कि जो भाग्यशाली जीव उस परमात्मा की भक्ति

करते हैं उनको परमात्मा में समाकर परमात्मा का रूप बनने का मान प्राप्त हो जाता है।

'पुरातन टीका' में 'जिनि सेविआ तिनि पाइआ मानु' के अर्थ इस प्रकार किये गये हैं, "जिसने उसकी सेवा की है, उनको मान और बड़ाइयाँ मिलती हैं। इसलिए वह (प्रभु) जो गुणों की निधि है उसकी सेवा करनी चाहिए। इसलिए सेवा के तीन गुण हैं—गाना, सुनना और निध्यासन यानी समाधि लगाना।"[5]

परमात्मा की सेवा का वास्तविक भाव बाहर से उसका गुणगान करना नहीं है, बल्कि अन्तर में लिव लगाकर उसका नाम सुनना और समाधि की अवस्था में सुरत को उसके नाम की ध्वनि में लीन करना है। इस सन्बन्ध में गुरु साहिब ने 'सुणिऐ' और 'मंनै' की पउड़ियों में भी उपदेश दिया है।

निरंकार की सेवा

ऊपर 'जिनि सेविआ तिनि पाइआ मानु' द्वारा निरंकार की सेवा का उपदेश दिया गया है। आप कहते हैं, 'सेवत रहे चितु जिन् का लागा आइआ तिन् का सफलु भइआ॥'[6] जिन्होंने अपनी लिव उस निराकार प्रभु के साथ जोड़ने की सेवा की, उनका जन्म सफल हो गया। गुरु अमर दास जी की वाणी है:

> गुर ते साति सहज सुखु बाणी॥ सेवा साची नामि समाणी॥
> सबदि मिलै परीतम सदा धिआए॥ साच नामि वडिआई पाए॥[7]

सुरत को सच्चे सुख के सहज-स्रोत परमेश्वर के शब्द, नाम या वाणी में लीन कर देना परमेश्वर की सच्ची सेवा है। गुरु अमर दास जी की वाणी है:

> करमु होवै सतिगुरू मिलाए॥ सेवा सुरति सबदि चितु लाए॥
> हउमै मारि सदा सुखु पाइआ माइआ मोहु चुकावणिआ॥[8]

प्रभु की कृपा से पूरे गुरु से मिलाप होता है तो जीव अन्तर में सुरत को शब्द या नाम में लीन करने की सेवा में लग जाता है। इस सेवा द्वारा

हौंमैं और मोह-माया से मुक्त होकर जीव परमात्मा में समाकर स्थायी सुख का अधिकारी बन जाता है। गुरु नानक साहिब की वाणी है:

> ऐसी सेवकु सेवा करै॥ जिस का जीउ तिसु आगै धरै॥[9]

सेवक को चाहिए कि सच्ची सेवा करे और सच्ची सेवा यह है कि जीव अपनी आत्मा को उस परमात्मा में लीन कर दे जिसका वह अंश है। यही सच्ची सेवा है और इसी में सेवक की सेवा की पूर्णता है।

जिनि सेविआ तिनि पाइआ मानु॥ इस महावाक्य पर एक अन्य पहलू से विचार करना आवश्यक है। यहाँ 'मानु' परमेश्वर-प्राप्ति के मान का सूचक है। गुरु नानक साहिब एक अन्य प्रसंग में कहते हैं, 'जैसा सेवै तैसो होइ॥'[10] अर्थात् जो जिसकी पूजा-भक्ति करता है, अन्त में उसका रूप बन जाता है। 'गीता' में श्रीकृष्ण ने समझाया है कि जो जिस इष्ट की पूजा करता है, अन्त में उसी को प्राप्त होता है। देवी-देवताओं की पूजा करनेवाले देवी-देवताओं को, भूत-प्रेतों की पूजा करनेवाले भूत-प्रेतों को और उस परम पुरुष की पूजा करनेवाले उस परम पुरुष को प्राप्त होते हैं।[11] गुरु अमरदास जी की वाणी है, 'पुरखै सेवहि से पुरख होवहि जिनी हउमै सबदि जलाई॥'[12] जो लोग हर प्रकार की मायामय रचना से ध्यान निकालकर, एक अमर-अविनाशी कर्तापुरुष की पूजा-भक्ति में लगते हैं, वे उसके शब्द द्वारा उसमें समाकर उसका रूप बन जाते हैं।

नानक गावीऐ गुणी निधानु॥ इस पंक्ति का अर्थ यह किया जाता है कि उस प्रभु के गुण गाने चाहिएँ, जो अनन्त गुणों का भण्डार है। इसका यह भी अर्थ किया जाता है कि जो कोई उस प्रभु की भक्ति करता है वह उस प्रभु की तरह गुणों का भण्डार बन जाता है।

गावीऐ सुणीऐ मनि रखीऐ भाउ॥ दुखु परहरि सुखु घरि लै जाइ॥ जो लोग उस एक सच्चे की सच्ची भक्ति में लग जाते हैं और जिनके मन में प्रभु का प्रेम समा जाता है, वे इस रचना के दुःखदायी बन्धनों से सदा के लिए मुक्त होकर उस परम सुख के देश में पहुँच जाते हैं, जहाँ आनन्द-स्वरूप प्रभु का निवास है।

दुखु परहरि सुखु घरि लै जाइ॥ हम दुनिया में जो कुछ भी करते हैं उसका वास्तविक उद्देश्य दुःखों से छुटकारा हासिल करना और सुख प्राप्त करना है। चाहे सांसारिक उद्यम हो या धार्मिक यत्न, सबका वास्तविक उद्देश्य दुःखों से मुक्ति और सुख की प्राप्ति है। हम सदा सुखी रहना चाहते हैं और ज़्यादा से ज़्यादा सुखी रहना चाहते हैं। गुरु साहिब यह सन्देश देना चाहते हैं कि आत्मा के सब दुःखों का कारण इसका परमात्मा से बिछुड़ना है। परमात्मा से बिछुड़कर किये गये कर्म मनुष्य को दुःखों के कभी न समाप्त होनेवाले चक्कर से बाँध देते हैं। जैसे-जैसे मन में परमात्मा का प्रेम बढ़ता है, वैसे-वैसे नाम का प्रेम भी बढ़ता जाता है। जैसे-जैसे लिव नाम में लीन होती है, कर्मों और दुःखों का नाश होता जाता है। जैसे-जैसे पर्वत के निकट पहुँचते जाते हैं, शीतलता बढ़ती जाती है। जब पर्वत की चोटी पर पहुँच जाते हैं तो शीतलता का रूप हो जाते हैं। इसी तरह जैसे-जैसे आत्मा नाम का अमृत पीती है, वैसे-वैसे इसका आनन्द बढ़ता जाता है। जब यह नाम में समाकर नाम का रूप हो जाती है तो हमेशा के लिए सच्चा सुख प्राप्त कर लेती है। गुरु अमरदास जी की वाणी है:

ए मन मेरिआ तू सदा रहु हरि नाले॥
हरि नालि रहु तू मंन मेरे दूख सभि विसारणा॥
अंगीकारु ओहु करे तेरा कारज सभि सवारणा॥
सभना गला समरथु सुआमी सो किउ मनहु विसारे॥
कहै नानकु मंन मेरे सदा रहु हरि नाले॥[13]

अक्सर यह प्रश्न सुनने में आता है कि परमात्मा से मिलाप करने का क्या लाभ है? गुरु साहिब उत्तर देते हैं कि परमात्मा के मिलाप से दुःखों का नाश हो जाता है, सब कार्य पूर्ण हो जाते हैं और अमर-अविनाशी आनन्द की प्राप्ति हो जाती है।

गुरमुखि नादं गुरमुखि वेदं गुरमुखि रहिआ समाई॥ गुरु साहिब समझा रहे हैं कि सच्चे नाद की प्राप्ति गुरु से होती है, वेद का सच्चा ज्ञान गुरु से मिलता है, गुरु के अन्दर वह कर्ता समाया हुआ है और गुरु

उस कर्ता के अन्दर समाया हुआ है। इस पंक्ति का यह अर्थ भी किया जाता है कि गुरुमुख नाद या शब्द का रूप होता है, गुरुमुख वेद या ज्ञान का रूप होता है, और गुरुमुख सृष्टि में समाया होता है। 'गुरुमुखि' शब्द में 'ख' के साथ 'छोटी इ' की मात्रा (ि) लगी है। इसलिए गुरुवाणी व्याकरण के अनुसार इसकी व्याख्या ऐसे की जा सकती है कि गुरुमुख में शब्द, ज्ञान और परमात्मा समाया होता है।

इस पंक्ति का यह अर्थ भी किया जाता है कि जो गुरु के उपदेश पर चलता है, वह नाद (शब्द) का रूप हो जाता है। जो गुरु के उपदेश पर चलता है उसे अन्तर में सच्चे ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है और वह गुरु के द्वारा परमात्मा में लीन रहता है।

बहुत-से टीकाकारों ने, जिनमें प्राचीन टीकाकार भी शामिल हैं, यह माना है कि 'जपुजी' की रचना योगियों के प्रश्नों का उत्तर देने के लिए की गयी है। 'जपुजी' में 28वीं से 31वीं तक चार पउड़ियाँ योगियों को सम्बोधित करके कही गयी हैं। गोरखनाथ आदि ऊँचे दर्जे के योगियों ने अपनी वाणी में अनहद शब्द की साधना पर ज़ोर दिया है। परन्तु समय पाकर उन पूर्ण योगियों के उपदेश को भुलाकर कुछ योगियों ने बाहर सिंगियाँ आदि बजाने को ही रूहानी साधना मानना शुरू कर दिया। उनमें शिवजी आदि देवताओं की पूजा प्रचलित हो गयी और छह दर्शनों और ग्रन्थों-शास्त्रों के पाठ-विचार पर ज़ोर दिया जाने लगा। गुरु साहिब ऐसे योगियों को उनकी ही भाषा में समझा रहे हैं कि नाम या शब्द रूपी सच्चे नाद का ज्ञान भी गुरु से प्राप्त होता है, वेदों-शास्त्रों में दर्ज ज्ञान का सच्चा भेद भी गुरु से प्राप्त होता है और सारे देवी-देवताओं की पूजा-भक्ति का फल भी सतगुरु-भक्ति में शामिल है क्योंकि सतगुरु प्रभु में समाया हुआ है।

गुरु अमरदास जी की वाणी है, 'गुरमुखि नाद बेद बीचारु॥ गुरमुखि गिआनु धिआनु आपारु॥'[14] सच्चे नाद की समझ गुरुमुखों द्वारा होती है। वेदों-शास्त्रों में दर्ज ज्ञान की सही समझ गुरुमुखों द्वारा आती है और उस अपरम्पार, अलख और अगम परमात्मा से लिव भी पूर्ण गुरुमुखों द्वारा जुड़ती है।

'गुरमुखि नादं'—'जपुजी' में गुरु नानक साहिब ने चार प्रसंगों में 'नाद' पद का प्रयोग किया है—1. 'गुरमुखि नादं गुरमुखि वेदं॥'[15] 2. 'वाजे नाद अनेक असंखा केते वावणहारे॥'[16] 3. 'घटि घटि वाजहि नाद'[17] 4. 'तिथै नाद बिनोद कोड अनंदु॥'[18] इन सारे प्रसंगों में 'नाद' पद अनहद नाद या अनहद शब्द के अर्थों में प्रयोग किया गया है। इन प्रसंगों में 'नाद' का अर्थ समाधि की अवस्था में सुनाई देनेवाला आत्मिक संगीत है जिसे विद्वानों ने 'दैवी संगीत', 'वाहेगुरु के नाम की ध्वनि', 'आत्म-मण्डल का संगीत', 'खण्डों-ब्रह्माण्डों का राग', 'दिव्य-ध्वनि' आदि नामों से पुकारा है।

भाई वीर सिंह की व्याख्या

भाई वीर सिंह जी 'अनहद नाद' के बारे में लिखते हैं:

''अनहद नाद वह है जो एकाग्रता होने पर आत्मा के अनुभव में आता है। यह आत्मा का पूर्ण-एकाग्रता की अवस्था का अनुभव है। यह कानों का विषय नहीं। जिस प्रकार यह नाद आत्म-मण्डल का है वैसे ही इसका अनुभव भी उसी मण्डल का है। इसका प्रमाण मन की एकाग्रता और लिव है, जो सुमिरन द्वारा होती है—'प्रभ कै सिमरनि अनहद झुनकार॥'[19] इस नाद की ओर गुरुवाणी में कई स्थानों पर इशारे मिलते हैं जिससे अभिप्राय आत्म-मण्डल का संगीत है।''[20]

'गुरमुखि नादं' द्वारा गुरु नानक साहिब यह प्रेरणा दे रहे हैं कि बाहरी राग-नाद मन की ख़ुराक है। अपनी आत्मा को मन-माया, कर्मों और संस्कारों की मलिनताओं से निर्मल करके उस परम निर्मल परमात्मा के साथ मिलाने वाले सच्चे नाद, शब्द या नाम का ज्ञान प्राप्त करना चाहते हो तो किसी पूर्ण गुरुमुख की शरण लो।

गुरु ईसरु गुरु गोरखु बरमा गुरु पारबती माई॥ गुरु साहिब कहते हैं कि शिवजी, विष्णु, ब्रह्मा और पार्वती, लक्ष्मी और सरस्वती सब देवी-देवता गुरु में समाये हुए हैं। गुरु साहिब ऊपर कह आये हैं—'गुरमुखि रहिआ समाई॥' गुरु परमात्मा में और परमात्मा गुरु में समाया हुआ है। गुरु नानक साहिब दूसरे प्रसंग में कहते हैं:

गुर महि आपु रखिआ करतारे॥ गुरमुखि कोटि असंख उधारे॥[21]

गुर महि आपु समोइ सबदु वरताइआ॥[22]

परमात्मा, गुरु में अपना प्रकाश रखकर संसार में शब्द की दात बाँटता है, जिससे अनन्त जीवों का उद्धार होता है। गुरु की पदवी देवी-देवताओं से बहुत ऊँची है। देवी-देवता काल और माया के अधीन हैं पर पूरा गुरु हरि का रूप होता है। इसलिए गुरु की पूजा में सबकी पूजा समायी होती है।

जे हउ जाणा आखा नाही कहणा कथनु न जाई॥ आप इशारा करते हैं कि मैंने गुरु को नाम का दाता, ज्ञान का दाता और प्रभु का रूप कहा है और यह भी कहा है कि सभी देवी-देवता गुरु में समाये हुए हैं पर असल में गुरु की बड़ाई कहने-सुनने से परे है। गुरु जैसा गुरु ही है। गुरु साहिब एक अन्य प्रसंग में कहते हैं:

किआ हउ कथी कथे कथि देखा मै अकथु न कथना जाई॥[23]

आप कहते हैं कि परमात्मा को जाना जा सकता है, पर बयान नहीं किया जा सकता। गुरु साहिब ने 'जपुजी' की 21वीं से 26वीं तक छह पउड़ियों में बार-बार यह विचार दोहराया है कि वह परमात्मा अगम, अथाह और अकथ है। आप 23वीं पउड़ी में कहते हैं कि नदियाँ समुद्र में समा सकती हैं, पर समुद्र की महिमा बयान नहीं कर सकतीं। उसी तरह आत्मा परमात्मा और गुरु की बड़ाई का अनुभव कर सकती है पर वर्णन नहीं कर सकती।

गुरा इक देहि बुझाई॥ महावाक्य द्वारा आप उस 'एक' की महिमा कर रहे हैं। आपने मूल-मन्त्र का आरम्भ '१' से किया था। ऊपर अनेक देवी-देवताओं के बारे में चर्चा कर आये हैं। आप साधक का ध्यान हर प्रकार के दूसरे इष्टों की ओर से हटाते हुए, उसको उस एक निरंकार की पूजा-भक्ति की प्रेरणा देते हैं। आपने देवी-देवताओं तथा अवतारों आदि के बारे में 35वीं पउड़ी में बहुत सुन्दर संकेत किये हैं।

सभना जीआ का इकु दाता सो मै विसरि न जाई॥ गुरु साहिब कहते हैं कि मैं गुरु की महिमा बयान नहीं कर सकता। मेरी तो गुरु के

आगे एक ही अरदास है कि हे दाता! तू मुझे उस एक कर्ता से मिला दे जो सबका दाता है। तू मेरे ऊपर ऐसी दया कर कि मुझे कभी एक साँस के लिए भी उस कर्ता की याद न भूले।

उपरोक्त पंक्ति द्वारा गुरु साहिब हमें गुरु के आगे प्रार्थना करने का ढंग सिखा रहे हैं। हम जब भी अरदास करते हैं, सांसारिक शक़्लों-पदार्थों के लिए करते हैं। गुरु साहिब इशारा कर रहे हैं कि गुरु से परमात्मा को माँगो ताकि और कुछ माँगने की मजबूरी से सदा के लिए मुक्त हो जाओ।

गुरु अर्जुन साहिब का कथन है, 'मागना मागनु नीका हरि जसु गुर ते मागना॥'[24] 'नीका' का अर्थ है उत्तम या निर्मल। गुरु से कोई उत्तम, निर्मल और सच्चा पदार्थ माँगो। अगर जौहरी के पास माँगने गये हो तो हीरे-जवाहरात माँगो न कि कौड़ियाँ या सीपियाँ। गुरु के आगे संसार के नश्वर पदार्थों के लिए अरदास न करो। गुरु से माँगना है तो प्रभु के नाम का दान माँगो, परमात्मा का प्रेम माँगो, उसका विश्वास माँगो और उसके भाणे का प्रेम माँगो। एक करोड़पति प्रेमी ने एक महात्मा से अर्ज़ की कि मेरा सबकुछ ले लो पर मुझे अपना प्रेम और भरोसा दे दो। महात्मा बहुत प्रसन्न हुए और पास खड़े सेवकों को कहने लगे कि शुक्र है, कोई तो ठीक अर्ज़ लेकर आया है!

पउड़ी 6

तीरथि नावा जे तिसु भावा विणु भाणे कि नाइ करी॥
जेती सिरठि उपाई वेखा विणु करमा कि मिलै लई॥
मति विचि रतन जवाहर माणिक जे इक गुर की सिख सुणी॥
गुरा इक देहि बुझाई॥
सभना जीआ का इकु दाता सो मै विसरि न जाई॥

शब्दार्थ: सिरठि=सृष्टि। उपाई=पैदा की हुई। रतन जवाहर माणिक= बहुमूल्य हीरे-जवाहरात। सिख=शिक्षा, उपदेश।

सरलार्थ: पाँचवीं पउड़ी में दिये गये उपदेश को सुनकर जिज्ञासु के मन में प्रश्न उत्पन्न होता है कि यदि प्रभु-भक्ति और गुरु-भक्ति में बाक़ी सभी इष्टों की भक्ति शामिल है तो तीर्थ-स्नान आदि अनेक प्रकार के कर्मकाण्ड की पूजा-भक्ति का क्या महत्त्व है? गुरु साहिब छठी पउड़ी में समझाते हैं:

अगर उस प्रभु को अच्छा लगे तो मैं भी तीर्थों पर स्नान कर आऊँ। अगर उसको अच्छा न लगता हो तो फिर मैं तीर्थों पर स्नान करके क्या करूँगा?

मैं देखता हूँ कि परमात्मा द्वारा पैदा की गयी सारी सृष्टि में किसी को प्रभु की कृपा के बिना कुछ नहीं मिलता।

हमारी बुद्धि में रत्न-जवाहर छिपे हुए हैं। ये तभी प्रकट हो सकते हैं जब हम गुरु का उपदेश सुनकर उस पर अमल करें।

व्याख्या

तीरथि नावा जे तिसु भावा विणु भाणे कि नाइ करी॥ हमारे हर प्रकार के धार्मिक यत्नों का वास्तविक उद्देश्य परमात्मा की प्रसन्नता प्राप्त करना है। गुरु साहिब कहते हैं कि मैं तीर्थों के स्नान आदि जैसा कोई भी कर्म करने को तैयार हूँ, यदि ऐसा करने से प्रभु रूपी पिता प्रसन्न होता हो। पर जिस कर्म से उस दयालु पिता की प्रसन्नता प्राप्त न हो, उसका क्या लाभ? आप बार-बार यह बात मन में बिठाना चाहते हैं कि वास्तविक लाभ, परमात्मा को भानेवाली करनी से मिलता है, मनमर्ज़ी की करनी से नहीं। चौथी पउड़ी में 'अंम्रित वेला सचु नाउ वडिआई वीचारु' की व्याख्या करते हुए विस्तारपूर्वक चर्चा कर आये हैं कि हरि को केवल नाम की भक्ति या नाम की कमाई ही अच्छी लगती है। हरि जब भी मिलेगा हरि को भानेवाली भक्ति द्वारा मिलेगा। वह मनमर्ज़ी की भक्ति से न किसी को मिला है और न ही कभी मिलेगा।

हम सोचते हैं कि तीर्थों पर स्नान करने से हमारे पाप धुल जायेंगे और हम निर्मल होकर उस निर्मल प्रभु के साथ मिलाप करने के क़ाबिल

बन जायेंगे। हिन्दू धर्म में अड़सठ तीर्थ प्रसिद्ध हैं। इसी तरह दूसरे धर्मों को मानने वालों के भी अपने-अपने तीर्थ हैं। गुरु नानक साहिब ने 'जपुजी' की 20वीं पउड़ी में समझाया है:

भरीऐ हथु पैरु तनु देह॥ पाणी धोतै उतरसु खेह॥
मूत पलीती कपड़ु होइ॥ दे साबूणु लईऐ ओहु धोइ॥
भरीऐ मति पापा कै संगि॥ ओहु धोपै नावै कै रंगि॥

शरीर गन्दा हो तो पानी से साफ़ कर सकते हैं। कपड़े गन्दे हो जायें तो साबुन से साफ़ किये जा सकते हैं लेकिन मन-बुद्धि को लगी कर्मों और संस्कारों की मलिनताएँ केवल नाम रूपी अमृत द्वारा ही उतर सकती हैं। गुरु नानक साहिब की वाणी है:

तीरथि नावण जाउ तीरथु नामु है॥
तीरथु सबद बीचारु अंतरि गिआनु है॥[1]

अर्थात् यदि मन-आत्मा को निर्मल बनाना चाहते हो तो नाम या शब्द के सच्चे तीर्थ पर स्नान करो। वह तीर्थ कहीं बाहर नहीं, तुम्हारे अन्दर है।

जेती सिरठि उपाई वेखा विणु करमा कि मिलै लई॥ इस पंक्ति का यह अर्थ भी किया जाता है कि संसार में किसी को प्रभु की रहमत के लिखे लेख के बिना कभी कुछ नहीं मिल सकता। इसका यह अर्थ भी किया जाता है कि जो कुछ मिलता है, कर्मों द्वारा बनी तक़दीर के अनुसार मिलता है। इसका यह अर्थ भी किया गया है कि जो कुछ मिलता है, प्रभु की कृपा और प्रभु को पसन्द आनेवाली पूजा द्वारा मिलता है।

मति विचि रतन जवाहर माणिक जे इक गुर की सिख सुणी॥ गुरु की शिक्षा एक है। वह शिक्षा है—एक का प्रेम और एक के हुक्म या नाम का प्रेम। जो व्यक्ति इस एक शिक्षा को समझकर इसके अनुसार जीवन ढाल लेता है, उसके अन्दर अनमोल हीरे-जवाहरात प्रकट हो जाते हैं। जो व्यक्ति गुरु की शिक्षा सुनकर भी अनसुनी कर देता है और शिक्षा को करनी में नहीं लाता, उसकी न सोच बदलती है और न ही रहनी।

ऐसा व्यक्ति नाम के अमूल्य धन से ख़ाली रह जाता है। गुरु साहिब कहते हैं कि गुरु की शिक्षा सुनकर उस पर अमल करोगे तो मति में हीरे-जवाहरात प्रकट हो जायेंगे। हम प्रतिदिन सन्तों-महात्माओं की वाणी सुनते हैं, सतगुरुओं का सत्संग सुनते हैं पर हमारी मति में हीरे-जवाहरात प्रकट नहीं होते। इस सम्बन्ध में दो दृष्टान्त हैं:

एक पिता ने अपने पुत्र के लिए विदेश में दुकान खोल दी। पिता ने पुत्र को समझाया कि थोड़ा लाभ कमा लेना, थोड़ा माल बेच लेना पर किसी को उधार मत देना, फिर तुझे कभी हानि नहीं होगी। कुछ सालों बाद पिता ने जाकर देखा कि पुत्र की दुकान चौपट हो चुकी है। पिता ने पूछा कि यह सब क्या? पुत्र ने जवाब दिया कि मैंने दस लाख रुपये वसूल करने हैं। पिता ने कहा कि क्या तूने मेरी बात नहीं सुनी थी?

एक मूर्तिकार एक राजा के दरबार में दो मूर्तियाँ ले गया। बाहर से देखने में मूर्तियों में रत्ती भर का भी अन्तर नहीं था। बादशाह ने क़ीमत पूछी तो उसने एक की क़ीमत एक रुपया और दूसरी की क़ीमत एक लाख रुपये बतायी। बादशाह ने दोनों मूर्तियाँ अपने वज़ीर को पकड़ा दीं और पूछा कि कौन-सी मूर्ति एक रुपये की है और कौन-सी एक लाख रुपये की। वज़ीर ने दोनों मूर्तियों को ध्यान से देखा। उसने देखा कि एक मूर्ति में एक कान से दूसरे कान की तरफ़ सूराख़ है और दूसरी मूर्ति में दोनों कानों की तरफ़ से सूराख़ अन्दर ऊपर की तरफ़ जाते हैं। उसने बादशाह से कहा कि यह दूसरी मूर्ति एक लाख रुपये की है।

जो व्यक्ति एक कान से सुनता है और दूसरे कान से बाहर निकाल देता है, उसकी हालत उस बेटे के समान है, जिसने पिता की बात सुनकर भी अनसुनी कर दी। वह उस मूर्ति के समान है जो एक कान से बात सुनकर दूसरे कान से बाहर निकाल देती है। जो व्यक्ति शिक्षा को सुनकर उसको अन्दर मन में बिठा लेता है और फिर उस पर अमल करता है, वह लाख रुपये वाली मूर्ति के समान है। गुरु के उपदेश को सुनने का भाव गुरु के उपदेश पर पूरी तरह से विचार करके उसको मन में बिठाना और उस पर अमल करना है। शिष्य को जो कुछ मिलता है, गुरु के

उपदेश पर अमल करने से मिलता है। उसकी हालत जब भी बदलती है, गुरु के उपदेश पर चलकर ही बदलती है।

जब हम सतगुरु के उपदेश को मन में बसा लेते हैं तो हमें संसार और इसके शक़्लों-पदार्थों की वास्तविकता का ज्ञान हो जाता है। हमें आत्मा और परमात्मा के रिश्ते के बारे में पता चल जाता है। हमें संसार में आने के वास्तविक उद्देश्य की समझ आ जाती है। हमें परमात्मा की भक्ति के सच्चे साधन और मार्ग का पता चल जाता है। सतगुरु की संगति से हमें नाम की प्राप्ति होती है और नाम की कमाई के लिए योग्य वातावरण मिलता है। जैसे-जैसे हम सतगुरु के उपदेश पर अमल करते हैं, हमारी प्राथमिकताएँ (priorties) बदलती जाती हैं। हमारी सोच बदल जाती है, हमारे आदर्श बदल जाते हैं, हमारी रहनी बदल जाती है। पहले हमारा मुँह संसार की ओर था और पीठ प्रभु की तरफ़। गुरु की शिक्षा मन में बिठाने से हमारा मुँह प्रभु की ओर हो जाता है और पीठ संसार की तरफ़। हमारी वृत्ति अन्तर्मुखी हो जाती है। हमारा ध्यान प्रभु के सुमिरन और नाम की कमाई में लग जाता है। हमारा मन माया का चोगा चुगने की बजाय, अन्तर में नाम का अमृत पीना शुरू कर देता है। गुरु नानक साहिब के अनुसार इसका यह लाभ होता है:

सभ महि जोति जोति है सोइ॥
तिस दै चानणि सभ महि चानणु होइ॥
गुर साखी जोति परगटु होइ॥[2]

परमात्मा की ज्योति तो हमारे अन्दर ही है पर गुरु की शिक्षा पर अमल करने से वह ज्योति अन्दर प्रकट हो जाती है। गुरु रामदास जी की वाणी है:

कासट महि जिउ है बैसंतरु मथि संजमि काढि कढीजै॥
राम नामु है जोति सबाई ततु गुरमति काढि लईजै॥[3]

अग्नि तो लकड़ी के अन्दर ही होती है पर जब ठीक युक्ति अपनाते हैं तो अग्नि प्रकट हो जाती है। इस तरह राम-नाम की ज्योति तो हरएक

के अन्दर है पर जो लोग गुरु की शिक्षा पर अमल करते हैं, उनके अन्दर ज्योति प्रकट हो जाती है और वे ज्योति में समाकर ज्योति का रूप हो जाते हैं। इसलिए गुरु नानक साहिब प्रेरणा दे रहे हैं कि मनमत छोड़कर गुरुमत में आ जाओ। अगर तुम गुरु के उपदेश पर अमल करोगे तो तुम्हारी बुद्धि श्रेष्ठ हो जायेगी और इसमें से हीरे-पन्ने प्रकट होने शुरू हो जायेंगे। तुम्हारे अन्दर परमार्थी गुणों के अखूट भण्डार दबे पड़े हैं। जब तुम गुरु की शिक्षा के अनुसार नाम के साथ लिव जोड़ोगे तो वे सब अमूल्य गुण जाग्रत और प्रफुल्लित होने शुरू हो जायेंगे। इसलिए तुम मनमत को छोड़कर अपना जीवन पूरी तरह से गुरु की शिक्षा के अनुसार ढालने का प्रयत्न करो।

पउड़ी 7

जे जुग चारे आरजा होर दसूणी होइ॥
नवा खंडा विचि जाणीऐ नालि चलै सभु कोइ॥
चंगा नाउ रखाइ कै जसु कीरति जगि लेइ॥
जे तिसु नदरि न आवई त वात न पुछै के॥
कीटा अंदरि कीटु करि दोसी दोसु धरे॥
नानक निरगुणि गुणु करे गुणवंतिआ गुणु दे॥
तेहा कोइ न सुझई जि तिसु गुणु कोइ करे॥

शब्दार्थ: आरजा=आयु, उम्र। दसूणी=दस गुना। कीरति=कीर्ति, यश, बड़ाई। कीटु=कीड़ा।

सरलार्थ: छठी पउड़ी में आप बाहरमुखी कर्मों के बारे में समझा चुके हैं। सातवीं पउड़ी में समझाते हैं:

यदि किसी को चार युगों से दस गुना अर्थात् चालीस युगों जितनी लम्बी आयु मिल जाये; कुल कायनात में हर कोई उसका आदर करना

शुरू कर दे; और उसके अच्छे नाम का यश सारे संसार में फैल जाये परन्तु इस सब के बावजूद यदि उस पर प्रभु की दया-दृष्टि नहीं पड़ी तो अन्त में कोई उसकी बात नहीं पूछेगा बल्कि उस पर मनमर्ज़ी करने का दोष लगाकर उसे कीड़ों के बीच कीड़ा बनाया जायेगा।

वह गुण-निधान परमात्मा अपनी मौज, भाणे या दया द्वारा निर्गुणों में भी गुण भर देता है और गुणवानों को और अधिक गुणों से भरपूर कर देता है। हे नानक! दूसरा कोई ऐसा दिखाई नहीं देता, जो उस गुण-निधान की तरह गुण पैदा कर सके।

व्याख्या

जे जुग चारे आरजा... दोसी दोसु धरे॥ हिन्दू धर्म-ग्रन्थों में चार युगों की आयु 43, 20, 000 साल मानी गयी है।* 'दसूणी' का अर्थ दस गुना अर्थात् चार करोड़ बत्तीस लाख साल।

हर इनसान लम्बी आयु व्यतीत करना चाहता है, अमर होना चाहता है। हर इनसान यश और प्रसिद्धि का भूखा है। हर इनसान चाहता है कि हर ओर उसका नाम हो और उसका मान व आदर हो। गुरु साहिब समझा रहे हैं कि मन-चाही भक्ति द्वारा लम्बी आयु, संसार की मान-बड़ाई, उत्तम पद, राजपाट आदि मिल सकते हैं पर इन सबकी उस कर्ता की नज़र में कौड़ी भी क़ीमत नहीं। उस कर्ता की दया-मेहर के बिना जीव की उसके दरबार में कोई बात नहीं पूछता। प्रभु के सच्चे प्रेम और उसके नाम को भुलाकर दूसरे कर्मों-धर्मों द्वारा अनेक प्रकार के फल प्राप्त

* चार युगों की उम्र इस तरह बताई गई है:

सतयुग	17, 28, 000 वर्ष
त्रेता	12, 96, 000 वर्ष
द्वापर	8, 64, 000 वर्ष
कलियुग	4, 32, 000 वर्ष
जोड़	43, 20, 000 वर्ष

करनेवाले लोग मालिक का हुक्म न मानने के दोषी माने जाते हैं। उनको कीड़ों-मकोड़ों आदि जैसी निकृष्ट योनियों में जन्म दिया जाता है। गुरु साहिब बहुत सूक्ष्म ढंग से समझा रहे हैं कि प्रभु के मिलाप से प्राप्त होनेवाले अमर जीवन, अमर आनन्द और सच्ची बड़ाई के मुक़ाबले में लम्बी आयु और सांसारिक मान-बड़ाई की कोई क़ीमत नहीं।

नानक निरगुणि गुणु करे गुणवंतिआ गुणु दे॥ वह कुल मालिक सर्वसमर्थ है। वह निर्गुणों को गुणवान बना देता है और गुणवानों को और गुणों से भरपूर कर देता है। सारी सृष्टि में किसी दूसरे में यह सामर्थ्य नहीं कि उस जैसे गुण पैदा कर सके।

'पुरातन टीका' में सातवीं पउड़ी की अन्तिम चार पंक्तियों 'जे तिसु नदरि न आवई' से 'जि तिसु गुणु कोइ करे' तक के अर्थ इस तरह किये गये हैं:

''यदि वाहेगुरु की कृपा दृष्टि न हो तो आगे कोई इसकी बात नहीं पूछेगा। इसको कीड़ों में कीड़ा किया जायेगा और दोषी तथा पापी भी इसे दोष देंगे, यदि यह आरोग्य देह होने के बावजूद नाम नहीं जपेगा। गुरु नानक जी कहते हैं कि वाहेगुरु का नाम ऐसा है कि जप, तप आदि से हीन निर्गुण व्यक्तियों में भी गुण पैदा कर देता है। जो दान, पुण्य, जप, तप करनेवाले गुणवान हैं उनमें भी गुण भर देता है ऐसा दूसरा कोई नहीं है जैसा निर्गुणों में गुण भरनेवाला परमात्मा का नाम है। जो कोई नाम जपता है, अपने उद्धार के लिए जपता है। ऐसा दूसरा कोई नहीं सूझता है जो प्रभु के गुणों का कथन कर सके। जैसा प्रभु का नाम पापियों का उद्धार करता है वैसा दूसरा कोई नहीं करता।''[1]

'पुरातन टीका' में की गयी पाँचवीं और सातवीं पउड़ी की व्याख्या से पता चलता है कि:

1. प्राचीन व्याख्याकार 'सेविआ' का अर्थ नाम का सुमिरन या जाप करना और ध्यान करना, करते आये हैं। ये टीकाकार 'जिन्होंने परमात्मा को सेविआ' का अर्थ, जिन्होंने परमात्मा का नाम जपा, परमात्मा का नाम ध्याया, जिन्होंने परमात्मा के नाम से लिव जोड़ी और जिन्होंने अपनी सुरत को परमात्मा के नाम में लीन किया आदि करते आये हैं।

2. 'नानक निरगुणि गुणु करे गुणवंतिआ गुणु दे॥ तेहा कोइ न सुझई जि तिसु गुणु कोइ करे॥' इन पंक्तियों में परमात्मा के नाम को निर्गुणों को गुणवान बनानेवाला, गुणवानों में गुण भरनेवाला कहा गया है और यह इशारा किया गया है कि जो परमार्थी गुण नाम की कमाई द्वारा प्राप्त होते हैं, दूसरे किसी साधन द्वारा प्राप्त नहीं हो सकते।

गुरु साहिबान के समय और उसके बहुत समय बाद तक भी सारा ज़ोर नाम की कमाई पर होता था। परमात्मा और उसके नाम को समान अर्थों में प्रयोग किया जाता था। 'नानक निरगुणि गुणु करे गुणवंतिआ गुणु दे' की सरल व्याख्या यही है कि परमात्मा सर्वसमर्थ है और सब गुणों का ख़ज़ाना है पर इसका वास्तविक भाव यह है कि पापियों को पाप-मुक्त करने, परमार्थ से ख़ाली प्राणियों में परमार्थी गुण भरने और परमार्थियों को परमार्थ की पूर्णता की मंज़िल तक पहुँचाने वाली शक्ति प्रभु का नाम है। जो कोई अपनी लिव अन्दर नाम के साथ जोड़ता है, वह सब दोषों और पापों से मुक्त होकर सच्चा परमार्थी बन जाता है। अन्य किसी साधन में ऐसा कर सकने का सामर्थ्य नहीं है।

पउड़ी 8

सुणिऐ सिध पीर सुरि नाथ॥ सुणिऐ धरति धवल आकास॥
सुणिऐ दीप लोअ पाताल॥ सुणिऐ पोहि न सकै कालु॥
नानक भगता सदा विगासु॥ सुणिऐ दूख पाप का नासु॥

शब्दार्थ: सुणिऐ=अन्तर में शब्द-धुन सुनने से। सुरि=देवता। धवल=सफ़ेद बैल, नीचे वाला आकाश। विगासु=ख़ुशी।

सरलार्थ: गुरु साहिब पहले अनेक प्रकार की बाहरमुखी भक्ति को तुच्छ कह चुके हैं। आप 8वीं से 11वीं पउड़ी में नाम सुनने की तथा 12वीं से 15वीं तक चार पउड़ियों में ध्यान को नाम में लीन करने की महिमा करते हैं:

प्रभु का नाम सुनने से सिद्धों, गुरुओं-पीरों, देवताओं और बड़े-बड़े योगियों या नाथों का पद प्राप्त होता है। नाम सुनने से धरती और इसके ऊपर वाले और नीचे वाले आकाश (धवल) क़ायम हैं। नाम सुनने से दीप, लोक, पाताल, खण्ड-ब्रह्माण्ड आदि क़ायम हैं। नाम सुनने से धर्मराज निकट नहीं आ सकता। हे नानक! नाम सुनने से भक्तों का मन सदा खिला रहता है और नाम सुनने से भक्तों के दुःखों और पापों का नाश हो जाता है।

व्याख्या

सुणिऐ सिध पीर सुरि नाथ॥ सुणिऐ धरति धवल आकास॥ गुरुओं-पीरों, सिद्धों और देवताओं जैसी गति नाम सुनने से प्राप्त होती है और सारी कायनात नाम के सहारे ही क़ायम है। गुरु अर्जुन देव जी की वाणी है, 'सुणि सुणि अंम्रित नामु धिआवा॥ आठ पहर तेरे गुण गावा॥'[1] जब नाम से लिव जुड़ जाती है तब जीवात्मा उठते-बैठते, चलते-फिरते, सोते-जागते यानी हर समय प्रभु-भक्ति में लगी रहती है। गुरु रामदास जी कहते हैं, 'नाइ सुणिऐ सभ सिधि है रिधि पिछै आवै॥'[2] जिसकी नाम से लिव जुड़ जाती है, ऋद्धियाँ-सिद्धियाँ उसकी ग़ुलाम बन जाती हैं। गुरु अमरदास जी का कथन है, 'नामि रते परम हंस बैरागी निज घरि ताड़ी लाई हे॥'[3] जो लोग नाम के रंग में रँग जाते हैं, उन्हें घर बैठे ही सच्चे त्यागियों और पूर्ण सन्तों की अवस्था प्राप्त हो जाती है।

सुणिऐ दीप लोअ पाताल॥ आप इशारा करते हैं कि सिर्फ़ जीव ही नहीं, खण्ड-मण्डल भी नाम को सुन रहे हैं। इस बारे में 'सुणिऐ' की चार पउड़ियों के अन्त में विस्तारपूर्वक विचार किया गया है।

सुणिऐ पोहि न सकै कालु॥ भाई वीर सिंह ने इस पंक्ति के विद्वानों द्वारा किये गये अलग-अलग अर्थों का विवरण दिया है। एक अर्थ यह है कि नाम सुनने से सिद्धों, पीरों, सुरों, नाथों, धरतियों, धवलों, आकाशों, द्वीपों, लोकों और पातालों के भेदों को जान लेते हैं। दूसरा अर्थ यह है कि द्वीप, लोक, पाताल आदि के अधिष्ठाता देवते सुनने से इस पद पर पहुँचे है। तीसरा अर्थ यह किया गया है: सुनने से जाच आ जाती है सिध

पीर आदि बनने की और धरती, आकाश, द्वीप, लोक में गति प्राप्त हो जाने की। इसी प्रकार इस पंक्ति के यह अर्थ भी किये गये है:

"श्रवण करने से कायम है धरती, निचला और ऊपरी (भाव चारों ओर का) आकाश, हां धरती के द्वीप, लोक (ऊपरी मण्डल) और पाताल (निचले लोक)। युक्ति यह है कि जैसे सोदरु में खण्ड, मण्डल, स्वर्ग, पाताल आदि यश गायन करते हुए बताये गये हैं, आसा की वार में धरती, सूर्य, चन्द्र ईश्वर का भय मानते हुए बताये गये हैं। जैसे बिहागड़ा म: 4 में धरति, पाताल, आकाश हरिनाम को ध्याते हुए बताये गये हैं, वैसे ही यहाँ धरती, आकाश, पाताल आदि हरिनाम को श्रवण करते हुए बताये गये हैं, जो नाम को श्रवण करके कायम हुए हैं और चल रहे हैं— चाहे इनके गायन करने, ध्याने और श्रवण करने का ढ़ंग अलग प्रकार का है। जब साईं ने 'कीता पसाउ एको कवाउ॥' तब जो 'कवाउ' किया उसके साथ श्रवण के प्रताप गा रहे, ध्या रहे और कायम चले आ रहे हैं। चाहे उनके गायन आदि का ढ़ंग अलग है।"[4]

सुणिऐ पोहि न सकै कालु॥ गुरु अमरदास जी की वाणी है, 'भगता नो जमु जोहि न साकै कालु न नेड़ै जाई॥'[5] नाम जपने वाली आत्मा समय और स्थान के बन्धनों, जन्म-मरण के दु:खों और आवागमन के चक्कर से मुक्त हो जाती है।

नानक भगता सदा विगासु॥ सुणिऐ दूख पाप का नासु॥ दु:ख की जड़ पाप है। वर्तमान अवस्था में हम पिछले जन्मों के पापों के कारण अनेक क़िस्म के शारीरिक, मानसिक और आत्मिक दु:खों के शिकार हैं। सब दु:खों की जड़, आत्मा का प्रभु से वियोग है जिस कारण यह कर्मों के जाल में फँसकर चौरासी के दु:ख भोग रही है। गुरु साहिब समझाते हैं कि नाम सुनने से दुरमति यानी बुरी मति दूर होती है, मन पर चढ़ी कर्मों और विकारों की मलिनताएँ उतरती हैं, जिससे पापों और उनसे पैदा होनेवाले दु:खों का नाश होता है। गुरु अंगद देव जी कहते हैं, 'नामु निरंजनु निरमला सुणिऐ सुखु होई॥'[6] प्रभु का नाम प्रभु की तरह निर्मल

है। नाम के साथ लिव जोड़ने से पापों की मलिनताएँ धुल जाती हैं और सच्चे सुख की प्राप्ति होती है।

गुरु अमरदास जी का कथन है, 'नाइ सुणिऐ मनु त्रिपतीऐ सभ दुख गवाई॥'[7] दु:ख की जड़ कर्म है और कर्म की जड़ तृष्णा है। नाम आशा-तृष्णा और कर्मों-संस्कारों की सब मलिनताएँ और उनसे पैदा होनेवाले सब दु:खों को सदा के लिए समाप्त कर देता है। गुरु अर्जुन साहिब का कथन है, 'सुखमनी सुख अंम्रित प्रभ नामु॥ भगत जना कै मनि बिस्राम॥'[8] परमात्मा का नाम सच्चे आनन्द का अथाह भण्डार है। परमात्मा के सच्चे भक्त अपने अन्तर से नाम रूपी अमृत पीकर आनन्द-रूप बन जाते हैं।

पउड़ी 9

सुणिऐ ईसरु बरमा इंदु॥ सुणिऐ मुखि सालाहण मंदु॥
सुणिऐ जोग जुगति तनि भेद॥ सुणिऐ सासत सिम्रिति वेद॥
नानक भगता सदा विगासु॥ सुणिऐ दूख पाप का नासु॥

शब्दार्थ: ईसरु=शिवजी। बरमा=ब्रह्मा। इंदु=इन्द्र। जोग जुगति=योग की युक्ति। तनि भेद=शरीर के गुप्त रहस्य। सिम्रिति=स्मृतियाँ।

सरलार्थ: गुरु साहिब कहते हैं कि नाम सुनने से शिव, ब्रह्मा और इन्द्र जैसी पदवी प्राप्त होती है। नाम सुनने से बुरा मनुष्य भी प्रशंसा के योग्य बन जाता है। नाम सुनने से योग की सच्ची युक्ति और शरीर के गुप्त रहस्यों का ज्ञान होता है। नाम सुनने से वेदों, स्मृतियों और शास्त्रों के ज्ञान का सार समझ में आ जाता है।

व्याख्या

सुणिऐ ईसरु बरमा इंदु॥ सारा संसार देवी-देवताओं की पूजा में लगा हुआ है। गुरु साहिब समझाते हैं कि अगर तुम अपनी लिव नाम की ध्वनि में लीन करोगे तो तुम्हें देवी-देवताओं से ऊँची पदवी प्राप्त हो जायेगी।

सुणिऐ मुखि सालाहण मंदु॥ 'मंदु' लफ़्ज़ फ़ारसी में सराहना के लिए भी प्रयोग किया जाता है। इसलिए इस पंक्ति का यह अर्थ भी किया जाता है कि शब्द को सुनने वाले, मुख से प्रभु की बहुत सुन्दर सराहना करते हैं।

सुणिऐ जोग जुगति तनि भेद॥ लोग अनेक प्रकार के जप-तप, हठ-कर्मों, पूजा-पाठ आदि में लगे हुए हैं। अनेक लोग पिण्ड के छः चक्रों की कठिन साधना में लगे हुए हैं। गुरु साहिब कहते हैं कि नाम से लिव जोड़ने से तुम्हें प्रभु-प्राप्ति के सच्चे योग का ज्ञान हो जायेगा और शरीर के सब गुप्त रहस्य खुल जायेंगे। गुरु नानक साहिब की वाणी है:

पंच ततु मिलि काइआ कीनी॥ तिस महि राम रतनु लै चीनी॥
आतम रामु रामु है आतम हरि पाईऐ सबदि वीचारा हे॥[1]

आप कहते हैं, 'जो ब्रहमंडि खंडि सो जाणहु॥'[2] शरीर सिर्फ़ पाँच तत्त्वों का नाशवान पुतला ही नहीं है, परमात्मा ने इसे अजीब कारीगरी से बनाया है। शरीर को सृष्टि का सूक्ष्म दर्शन (microcosm) कहा जाता है अर्थात् जो कुछ सारे ब्रह्माण्ड में है, वह मनुष्य शरीर के अन्दर भी है। सन्त पीपा जी कहते हैं, 'जो ब्रहमंडे सोई पिंडे जो खोजै सो पावै॥'[3] गुरु अमरदास जी ने अपने शब्द 'काइआ कामणि अति सुआल्हिउ पिरु वसै जिसु नाले'[4] में फ़रमाया है कि सब देवी-देवता, सारे खण्ड-ब्रह्माण्ड, वह परमात्मा और उसका नाम काया के अन्दर है:

काइआ अंदरि सभु किछु वसै खंड मंडल पाताला॥
काइआ अंदरि जगजीवन दाता वसै सभना करे प्रतिपाला॥

. . . . . .

इसु काइआ अंदरि नउ खंड प्रिथमी हाट पटण बाजारा॥
इसु काइआ अंदरि नामु नउ निधि पाईऐ गुर कै सबदि वीचारा॥

. . . . . .

काइआ अंदरि ब्रहमा बिसनु महेसा सभ ओपति जितु संसारा॥
सचै आपणा खेलु रचाइआ आवा गउणु पासारा॥
पूरै सतिगुरि आपि दिखाइआ सचि नामि निसतारा॥[5]

गुरु नानक साहिब समझा रहे हैं कि ये सारे भेद नाम से लिव जोड़ने से ही प्राप्त होते हैं।

सुणिऐ सासत सिम्रिति वेद॥ हिन्दू धर्म में चार वेदों, छः दर्शनों, सत्ताईस स्मृतियों, अठारह पुराणों आदि की महिमा गायी जाती है। लोग अनेक ग्रन्थों-शास्त्रों के पाठ-विचार में लगे हुए हैं। यदि जीव का उद्धार धर्म-ग्रन्थों के पाठ-विचार पर निर्भर हो तो बेचारे अनपढ़ कहाँ जायेंगे? पुराने समय में अज्ञानता के कारण कुछ जातियों के लोगों को नीच मानकर, उनको ग्रन्थ-शास्त्र पढ़ने से वंचित रखा जाता था। गुरु अर्जुन देव जी का कथन है, 'जो प्राणी गोविंदु धिआवै॥ पड़िआ अणपड़िआ परम गति पावै॥'[6] गुरु साहिब कहते हैं कि यह चिन्ता न करो कि तुम धर्म-ग्रन्थों का पाठ-विचार नहीं कर सकते। नाम के साथ लिव जोड़ने से तुम्हें संसार के सब धर्म-ग्रन्थों में दर्ज ज्ञान प्राप्त हो जायेगा। आप इशारा करते हैं:

हरि सिमरनु करि भगत प्रगटाए॥ हरि सिमरनि लगि बेद उपाए॥[7]

बेद पुरान सिंम्रिति सुधाख्यर॥ कीने राम नाम इक आख्यर॥
किनका एक जिसु जीअ बसावै॥ ता की महिमा गनी न आवै॥[8]

संसार के सब धर्म-ग्रन्थों का उदय नाम के सुमिरन से हुआ है। नाम के साथ लिव जोड़ने से, न केवल तुम्हारे अन्दर सब धर्म-ग्रन्थों का ज्ञान पैदा हो जायेगा, बल्कि तुम स्वयं ग्रन्थ-शास्त्र रचने के क़ाबिल हो जाओगे।

पउड़ी 10

सुणिऐ सतु संतोखु गिआनु॥ सुणिऐ अठसठि का इसनानु॥
सुणिऐ पड़ि पड़ि पावहि मानु॥ सुणिऐ लागै सहजि धिआनु॥
नानक भगता सदा विगासु॥ सुणिऐ दूख पाप का नासु॥

शब्दार्थ: अठसठि=आठ+साठ=अड़सठ। विगासु=प्रसन्नता।

सरलार्थ: गुरु साहिब कहते हैं कि नाम सुनने से हमारे अन्दर सच, सन्तोष और ज्ञान जैसे गुण पैदा हो जाते हैं। नाम सुनने से अड़सठ तीर्थों के स्नान का फल प्राप्त हो जाता है। नाम सुनने से ग्रन्थ-शास्त्र पढ़कर मिलने वाला मान प्राप्त हो जाता है। नाम सुनने से सहज में ही ध्यान अन्दर ठहर जाता है, लिव लग जाती है और सहज-समाधि की अवस्था प्राप्त हो जाती है।

व्याख्या

सुणिऐ सतु संतोखु गिआनु॥ सारा संसार काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, आशा-तृष्णा, निन्दा-चुग़ली, ईर्ष्या आदि विकारों का शिकार है। गुरु साहिब कहते हैं कि नाम के साथ लिव जोड़ने से तुम्हारे अन्दर अपने आप ही सन्तोष, विवेक आदि अनेक गुण उत्पन्न हो जायेंगे।

सुणिऐ अठसठि का इसनानु॥ आप फ़रमाते हैं कि अन्दर नाम के साथ लिव जोड़ने से तुम बाहरमुखी तीर्थों की दु:खदायक भटकन से मुक्त हो जाओगे क्योंकि नाम या शब्द की कमाई में अड़सठ तीर्थों के स्नान का फल शामिल है। गुरु नानक साहिब वाणी के एक अन्य प्रसंग में इशारा करते हैं, 'अठसठि तीरथ नामु प्रभ नानक जिसु मसतकि भाग॥'[1] आप फ़रमाते हैं:

> सगले करम धरम सुचि संजम जप तप तीरथ सबदि वसे॥
> नानक सतिगुर मिलै मिलाइआ दूख पराछत काल नसे॥[2]

हर तरह के कर्म, धर्म, शौच, संयम, जप, तप, तीर्थ आदि का फल नाम के साथ लिव जोड़ने में समाया हुआ है। जो लोग गुरुमुखों के उपदेश पर चलकर अपने अन्दर नाम बसा लेते हैं, उनके हर तरह के शारीरिक, मानसिक और आत्मिक दु:खों का नाश हो जाता है। वे लोग काल के जाल से मुक्त होकर परम आनन्द से भरपूर सहज-अवस्था प्राप्त कर लेते हैं।

सुणिऐ पड़ि पड़ि पावहि मानु॥ जब अन्तर में नाम के साथ लिव जुड़ जायेगी तो तुम्हें ग्रन्थों-शास्त्रों के पाठ से मिलने वाला सम्मान प्राप्त हो जायेगा।

सुणिऐ लागै सहजि धिआनु॥ गुरु साहिब कहते हैं कि इस समय हमारी यह हालत है कि हमारा चंचल मन एक क्षण के लिए भी अन्दर नहीं ठहरता। जब सुरत अन्तर में नाम को पकड़ लेगी तो धीरे-धीरे सहज-समाधि की उत्तम अवस्था प्राप्त हो जायेगी।

गुरु साहिब ने 'जपुजी' की पहली पउड़ी में कहा है—'चुपै चुप न होवई जे लाइ रहा लिव तार॥'[3] हम न तो ज़बरदस्ती मन को स्थिर कर सकते हैं और न ही हठ-कर्मों द्वारा सहज-समाधि की अवस्था प्राप्त कर सकते हैं। 'नाइ सुणिऐ सहजु ऊपजै सहजे सुखु पावै॥'[4] नाम के साथ लिव जोड़ने से सहज-अवस्था प्राप्त हो जाती है जिससे मन-आत्मा की गाँठ खुल जाती है और मन के पंजे से आज़ाद हुई आत्मा अपने स्रोत में समा जाती है; जीव कर्मों और आवागमन के बन्धनों से आज़ाद हो जाता है और सदा ख़ुशी और आनन्द में मग्न रहता है।

पउड़ी 11

सुणिऐ सरा गुणा के गाह॥ सुणिऐ सेख पीर पातिसाह॥
सुणिऐ अंधे पावहि राहु॥ सुणिऐ हाथ होवै असगाहु॥
नानक भगता सदा विगासु॥ सुणिऐ दूख पाप का नासु॥

शब्दार्थ: सरा=समुद्रों। हाथ...असगाहु=अथाह की थाह लग जाती है।

सरलार्थ: गुरु साहिब कहते हैं कि नाम सुनने से गुणों के समुद्र की थाह प्राप्त हो जाती है भाव अनन्त गुणों के भण्डार मिल जाते हैं। नाम सुनने से शेख़, पीर और शहंशाहों के शहंशाह भाव परम सन्त की पदवी मिल जाती है। नाम सुनने से अन्धे, अज्ञानी भी सच्चे ज्ञान के रास्ते पर चलने लगते हैं। नाम सुनने से अथाह भवसागर की थाह मिल जाती है।

व्याख्या

सुणिऐ सरा गुणा के गाह॥ सुणिऐ सेख पीर पातिसाह॥ इस समय हमारे अन्दर अनन्त अवगुण भरे हुए हैं। नाम के साथ लिव जोड़ने से हमें सारे गुणों के समुद्र की थाह मिल जायेगी अर्थात् हमारे अन्दर अनन्त गुणों के भण्डार प्रकट हो जायेंगे। इस समय हम प्रभु-प्राप्ति के सच्चे ज्ञान की तलाश में दर-दर भटक रहे हैं, नाम के साथ लिव जोड़ने से हमें बड़े-बड़े गुरुओं और पीरों जैसी अवस्था प्राप्त हो जायेगी।

सुणिऐ अंधे पावहि राहु॥ जिसको सामने पड़ी चीज़ दिखाई न देती हो, जो रास्ते से भटक गया हो, उसको लोग अन्धा कह देते हैं। जो लोग परमेश्वर-प्राप्ति के सच्चे मार्ग पर चलने की बजाय ग़लत मार्ग पर चलते हैं, गुरु साहिब उनको अन्धा कहते हैं। गुरु अंगद साहिब की वाणी है:

अंधे कै राहि दसिऐ अंधा होइ सु जाइ॥
होइ सुजाखा नानका सो किउ उझड़ि पाइ॥
अंधे एहि न आखीअनि जिन मुखि लोइण नाहि॥
अंधे सेई नानका खसमहु घुथे जाहि॥[1]

अन्धे वे नहीं हैं, जिनकी आँखें नहीं हैं। वास्तव में अन्धे वे हैं जिनको परमात्मा की तरफ़ जानेवाला ठीक रास्ता दिखाई नहीं देता। गुरु नानक साहिब समझा रहे हैं कि चाहे हम अन्धे अज्ञानी ही क्यों न हों, पर जब लिव अन्दर नाम के साथ जुड़ेगी तो हमें परमेश्वर-प्राप्ति का सच्चा रास्ता दिखाई देने लगेगा। जो शब्द की कमाई द्वारा दसवाँ द्वार पार कर लेता है, वह उस अलख, अगम परमात्मा के दरबार में पहुँच जाता है। गुरु अमरदास जी कहते हैं, 'अंतरि महलु गुर सबदि पछाणै॥'[2] आन्तरिक महलों की प्राप्ति सतगुरु के बख़्शे शब्द या नाम की पहचान द्वारा होती है।

गुरु अर्जुन देव जी आत्मा के परमात्मा के साथ मिलाप की अद्भुत अवस्था इस तरह बयान करते हैं:

सूरज किरणि मिले जल का जलु हूआ राम॥
जोती जोति रली संपूरनु थीआ राम॥
ब्रहमु दीसै ब्रहमु सुणीऐ एकु एकु वखाणीऐ॥
आतम पसारा करणहारा प्रभ बिना नही जाणीऐ॥
आपि करता आपि भुगता आपि कारणु कीआ॥
बिनवंति नानक सेई जाणहि जिन्ही हरि रसु पीआ॥[3]

सूरज से बिछुड़ी किरण, सूरज से मिलकर सूरज का ही रूप हो जाती है। समुद्र से अलग हुई बूँद, समुद्र में समाकर समुद्र बन जाती है। इसी तरह आत्मा रूपी ज्योति परमात्मा रूपी परम ज्योति में लीन होकर उसका रूप हो जाती है। फिर उसे हर तरफ़ उस एक ज्योति के दर्शन होते हैं। यह अवस्था अपनी लिव अन्दर हरि के नाम से जोड़ने वाले सौभाग्यशाली गुरुमुखों को प्राप्त होती है।

सुणिऐ हाथ होवै असगाहु—'असगाहु' का अर्थ है, अथाह सागर। आप एक अन्य प्रसंग में कहते हैं:

बिखु बोहिथा लादिआ दीआ समुंद मंझारि॥
कंधी दिसि न आवई ना उरवारु न पारु॥
वंझी हाथि न खेवटू जलु सागरु असरालु॥
बाबा जगु फाथा महा जालि॥
गुर परसादी उबरे सचा नामु समालि॥[4]

इस समय अपने किये हुए कर्मों के ज़हर से भरी हमारी जीवन रूपी किश्ती ऐसे भवसागर में ग़ोते खा रही है जिसके न इधर के किनारे का पता है और न उधर के किनारे का। यह किश्ती विकराल समुद्र में विषय-विकारों की भयानक लहरों के थपेड़े खा रही है। न इस किश्ती का कोई मल्लाह है, न हमारे पास कोई चप्पू या बाँस है और न ही हमें समुद्र की गहराई का कुछ अनुमान है। इस भयानक अवस्था से छुटकारे का एकमात्र साधन यह है कि हमारे ऊपर किसी गुरुमुख की दया-मेहर

हो जाये और हम उसके बताये हुए उपदेश के अनुसार अपनी लिव अन्दर नाम के साथ जोड़ लें। फिर हमारा बाल भी बाँका नहीं हो सकता और हम सहज ही भवसागर को पार करके निज घर वापस पहुँच जाते हैं।

'सुणिऐ' की चार पउड़ियाँ

उपरोक्त चार पउड़ियों में नाम सुनने की अपार महिमा की गयी है। इस महिमा का पहला पहलू यह है कि नाम सुनने से अनेक परमार्थी गुण प्राप्त होते हैं और जीव सब दुःखों और पापों से मुक्त हो जाता है। उसको श्रेष्ठ साधक की अवस्था प्राप्त हो जाती है। उसको सृष्टि और शरीर के गुप्त रहस्यों का ज्ञान हो जाता है। नाम सुनने वाले साधक को सहज-समाधि की अवस्था प्राप्त हो जाती है और वह भवसागर से पार हो जाता है।

भाई वीर सिंह द्वारा की गयी व्याख्या

इस बारे में भाई वीर सिंह जी लिखते हैं—'सुणिऐ' का विशेष अर्थ है: वाहेगुरु जी के नाम को 'सुनना।' आपने अपने विचार की प्रौढ़ता में वाणी के बहुत-से प्रमाण दिये हैं, जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं:

नाइ सुणिऐ मनु रहसीऐ नामे सांति आई॥
नाइ सुणिऐ मनु त्रिपतीऐ सभ दुख गवाई॥
नाइ सुणिऐ नाउ ऊपजै नामे वडिआई॥
नामे ही सभ जाति पति नामे गति पाई॥
गुरमुखि नामु धिआईऐ नानक लिव लाई॥

नाइ सुणिऐ सभ सिधि है रिधि पिछै आवै॥
नाइ सुणिऐ नउ निधि मिलै मन चिंदिआ पावै॥
नाइ सुणिऐ संतोखु होइ कवला चरन धिआवै॥
नाइ सुणिऐ सहजु ऊपजै सहजे सुखु पावै॥
गुरमती नाउ पाईऐ नानक गुण गावै॥

नाइ सुणिऐ सुचि संजमो जमु नेड़ि न आवै॥
नाइ सुणिऐ घटि चानणा आन्हेरु गवावै॥
नाइ सुणिऐ आपु बुझीऐ लाहा नाउ पावै॥
नाइ सुणिऐ पाप कटीअहि निरमल सचु पावै॥
नानक नाइ सुणिऐ मुख उजले नाउ गुरमुखि धिआवै॥[6]

भाई वीर सिंह लिखते हैं, 'नाइ सुणिऐ नाउ ऊपजै नामे वडिआई॥' से पता चलता है कि पहले नाम सुना जाता है, फिर नाम अन्दर प्रकट होता है जिससे सहज अवस्था की प्राप्ति होती है। 'गुरमुखि नामु धिआईऐ नानक लिव लाई॥' से पता चलता है कि गुरु की शिक्षा के अनुसार लिव लगाकर नाम ध्याया जाता है। नाम सुनने का सम्बन्ध बाहरी कानों से नहीं, लिव को अन्दर नाम के साथ जोड़ने से है। 'नाइ सुणिऐ घटि चानणा आन्हेरु गवावै' से पता चलता है कि लिव (ध्यान) द्वारा नाम सुनने से अन्दर नाम का प्रकाश प्रकट होता है।*

इससे पता चला कि 'सुणिऐ' की पउड़ियों में नाम सुनने की जो महिमा की गयी है, उसका सम्बन्ध बाहरी कानों द्वारा प्रभु की महिमा सुनने से नहीं, बल्कि लिव, ध्यान या सुरत द्वारा अन्तर में वाहेगुरु का नाम सुनने से है। गुरु नानक साहिब की वाणी है:

सतिगुरु भेटै ता सहसा तूटै धावतु वरजि रहाईऐ॥
निझरु झरै सहज धुनि लागै घर ही परचा पाईऐ॥[7]

जब साधक सतगुरु के उपदेश के अनुसार चंचल मन को आँखों के पीछे टिकाता है तो आत्मा शब्द की सहज-धुन में लीन होकर लगातार बरस रहे नाम के अमृत को पीना शुरू कर देती है। इससे उसको अन्तर में ही परम सत्य का अनुभव हो जाता है। गुरु साहिब जीव को हर प्रकार की बाहरमुखी करनी से मुक्त करके नाम के अन्तर्मुख अभ्यास में लगाना

* विस्तार के लिये देखें: संथ्या श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी।[6]

चाहते हैं क्योंकि नाम ही जीव को कर्मों के परिणामस्वरूप मिलनेवाले दुःखों से मुक्त करके उसे आनन्द-रूप प्रभु में अभेद करने का एकमात्र सच्चा साधन है।

नाम की महिमा का दूसरा पहलू यह है कि धरती और आकाश भी नाम सुन रहे हैं तथा खण्ड, मण्डल और ब्रह्माण्ड भी नाम सुन रहे हैं। गुरु रामदास जी लिखते हैं:

धरति पातालु आकासु है मेरी जिंदुड़ीए
सभ हरि हरि नामु धिआवै राम॥
पउणु पाणी बैसंतरो मेरी जिंदुड़ीए
नित हरि हरि हरि जसु गावै राम॥
वणु त्रिणु सभु आकारु है मेरी जिंदुड़ीए
मुखि हरि हरि नामु धिआवै राम॥[8]

आश्चर्य की बात है कि पवन, पानी, अग्नि, धरती, आकाश, पाताल आदि कैसे नाम जप रहे हैं? गुरु अर्जुन देव जी लिखते हैं:

नाम के धारे सगले जंत॥ नाम के धारे खंड ब्रहमंड॥
नाम के धारे सिम्रिति बेद पुरान॥ नाम के धारे सुनन गिआन धिआन॥
नाम के धारे आगास पाताल॥ नाम के धारे सगल आकार॥
नाम के धारे पुरीआ सभ भवन॥ नाम कै संगि उधरे सुनि स्रवन॥[9]

अर्थात् सारी सृष्टि नाम के सहारे खड़ी है। आप आदि ग्रन्थ के अन्त में संकलित 'मुंदावणी' में लिखते हैं:

थाल विचि तिंनि वसतू पईओ सतु संतोखु वीचारो॥
अंम्रित नामु ठाकुर का पइओ जिस का सभसु अधारो॥[10]

'जिस का सभसु अधारो॥' सजीव जगत और निर्जीव जगत भी नाम द्वारा बना है और नाम द्वारा सृजित सारी सृष्टि नाम के सहारे क़ायम है।

इस सम्बन्ध में गुरु नानक साहिब की वाणी का नीचे लिखा प्रसंग विशेष ध्यान के योग्य है:

घर महि घरु देखाइ देइ सो सतिगुरु पुरखु सुजाणु॥
पंच सबद धुनिकार धुनि तह बाजै सबदु नीसाणु॥
दीप लोअ पाताल तह खंड मंडल हैरानु॥
तार घोर बाजित्र तह साचि तखति सुलतानु॥
सुखमन कै घरि रागु सुनि सुंनि मंडलि लिव लाइ॥[11]

आप उस सच्चे शहंशाह के दरबार में बज रही शब्द की शक्तिशाली धुन की तरफ़ इशारा करते हैं, जिसके साथ सारे खण्ड-ब्रह्माण्ड लिव लगाए खड़े हैं। प्रभु के दरबार में बज रही शब्द या नाम की वह शक्तिशाली धुन ही समस्त कायनात का आधार है। गुरु साहिब लिखते हैं, 'सुंनहु भवण रखे लिव लाए॥'[12] सारे खण्ड-ब्रह्माण्ड, सुन्न मण्डल से आ रही शब्द की शक्तिशाली धुन के साथ लिव लगाए हुए हैं। गुरु साहिब ने अपने प्रसिद्ध शब्द 'गगन मै थालु' में इशारा किया है:

कैसी आरती होइ भव खंडना तेरी आरती॥
अनहता सबद वाजंत भेरी॥[13]

सारी कायनात अनहद शब्द की धुन के सहारे एक सूत्र में पिरोई हुई, उस कर्ता की अद्भुत आरती उतार रही प्रतीत होती है।

शब्द या नाम कोई लफ़्ज़ नहीं। यह प्रभु से आ रही अनन्त शक्ति की वह धारा है, जिसने सारी सृष्टि की रचना की है, जो सारी सृष्टि में व्याप्त है और जिसके सहारे सारी सृष्टि क़ायम है। उसके साथ लिव जोड़ने से ही हर प्रकार की रूहानी उन्नति प्राप्त होती है। निज घर से बिछुड़ी आत्मा, अन्त में नाम या शब्द की धुन द्वारा ही निज घर वापस पहुँचती है।

पउड़ी 12

मंने की गति कही न जाइ॥ जे को कहै पिछै पछुताइ॥
कागदि कलम न लिखणहारु॥ मंने का बहि करनि वीचारु॥
ऐसा नामु निरंजनु होइ॥ जे को मंनि जाणै मनि कोइ॥

शब्दार्थ: मंने=सुरत को शब्द में लीन कर देने की अवस्था। कागदि= काग़ज़।

सरलार्थ: 'सुणिऐ' की चार पउड़ियों में गुरु साहिब नाम के अन्तर्मुख अभ्यास द्वारा होनेवाले अद्भुत लाभ का वर्णन कर आये हैं। 'मंनै' की पउड़ियों में आप आत्मा को नाम में एक-रूप कर देने के अलौकिक गुण बयान कर रहे हैं। आप कहते हैं:

नाम का जाप करनेवाले साधक की अवस्था कहने-सुनने से परे है। जो कोई ऐसे नाम के रसिया की अवस्था बयान करने का यत्न करेगा, उसको इसमें सफलता नहीं मिलेगी बल्कि उसको पछताना पड़ेगा।

संसार में न कोई ऐसा काग़ज़ है, जिस पर नाम के रंग में रँगे महापुरुष की पूरी महिमा लिखी जा सकती हो, न ही संसार में ऐसी कलम है, जो उसकी पूरी महिमा लिख सकती हो और न ही कोई ऐसा लेखक है जो पूरी तरह वह महिमा लिख सकता हो। एक नहीं अनेक व्यक्ति भी इकट्ठे बैठकर ऐसे पूर्ण पुरुष की आध्यात्मिक अवस्था के बारे में विचार करके उसका वर्णन नहीं कर सकते क्योंकि उसकी अवस्था विचार और वर्णन से परे है।

परमात्मा का नाम उसकी तरह निर्मल और माया-रहित है। पर इस बात का ज्ञान उस विरले प्राणी को ही होता है, जो नाम में समाकर नाम का रूप हो जाता है।

व्याख्या

मंने की गति कही न जाइ॥ ... जाणै मनि कोइ॥ यहाँ 'मंने' से भाव सोचना, विचार करना या मानना न होकर सुरत को नाम में अभेद करना

है। गुरु साहिब कहते हैं कि आत्मा को नाम में लीन कर देने की अवस्था अकथ है। नाम निरंजन का रूप है। निरंजन अकथ है और नाम में समाकर नाम का रूप हो चुके व्यक्ति की अवस्था भी अकथ है।

आप कहते हैं कि यदि कोई इस अवस्था का वर्णन करने की कोशिश करेगा तो उसे पछताना पड़ेगा क्योंकि वह अवस्था कहने और सुनने से परे है। संसार में न ऐसी कलम है जो उस अवस्था को बयान कर सके, न ऐसा काग़ज़ है जिस पर उस अवस्था का वर्णन किया जा सके और न ही कोई ऐसा लेखक है जो अपनी बुद्धि या दूसरों से विचार-विमर्श करके उस अवस्था का वर्णन कर सकता हो। परमात्मा का नाम प्रभु की तरह माया-रहित है। उसमें ऐसी अपार सामर्थ्य है कि जो भी मन को उसमें लीन कर लेता है, नाम उसमें अनन्त गुण भर देता है।

पउड़ी 13

मंनै सुरति होवै मनि बुधि॥ मंनै सगल भवण की सुधि॥
मंनै मुहि चोटा ना खाइ॥ मंनै जम कै साथि न जाइ॥
ऐसा नामु निरंजनु होइ॥ जे को मंनि जाणै मनि कोइ॥

सरलार्थ: अपनी सुरत को नाम में लीन करनेवाले साधक के मन, बुद्धि और सुरत तीनों बलवान और निर्मल हो जाते हैं। ऐसा पुरुष अन्तर्यामी बन जाता है। कुल कायनात में जो कुछ है और जो कुछ हो रहा है, उसको उसका पूरा ज्ञान हो जाता है। न तो उसे यमदूतों के साथ जाना पड़ता है और न ही मुँह पर (यमदूतों की) मार खानी पड़ती है।

व्याख्या

मंनै सुरति होवै मनि बुधि॥ ... जाणै मनि कोइ॥ सुरत को नाम में लीन करनेवाला साधक सर्वज्ञाता बन जाता है। उसे सारी सृष्टि किताब की तरह

सामने खुली दिखाई देती है। सारा संसार बुरी तरह मोह-माया की चोटें खा रहा है, पर नाम से लिव जोड़ने वाला साधक मोह-माया के प्रभाव से मुक्त हो जाता है। कर्मों, पापों और माया की हर प्रकार की त्रुटियों से मुक्त हो जाने के कारण, ऐसे पूर्ण ज्ञानी को यमदूतों के मार्ग पर नहीं जाना पड़ता।

पउड़ी 14

मंनै मारगि ठाक न पाइ॥ मंनै पति सिउ परगटु जाइ॥
मंनै मगु न चलै पंथु॥ मंनै धरम सेती सनबंधु॥
ऐसा नामु निरंजनु होइ॥ जे को मंनि जाणै मनि कोइ॥

शब्दार्थ: ठाक=रोक, रुकावट। पति=इज़्ज़त, मान। मगु=मार्ग, रास्ता। सनबंधु= सम्बन्ध।

सरलार्थ: नाम में समाकर नाम-रूप हो चुके साधक को अन्दर परमात्मा के रास्ते पर चलने में कोई रुकावट नहीं आती। कोई शक्ति न उसके रास्ते में रुकावट डाल सकती है और न ही उसे ठग सकती है। वह पूरे मान-सम्मान के साथ आन्तरिक मण्डल पार करता है। ऐसे पूर्ण पुरुष को यम-मार्ग पर नहीं चलना पड़ता अर्थात् उसको उस रास्ते पर नहीं जाना पड़ता (मगु न चलै पंथु), जिस रास्ते से धर्मराज के दरबार में पेश होनेवाले जीवों को नरकों या स्वर्गों में भेजने के लिए ले जाया जाता है। उसका सम्बन्ध सच्चे धर्म के साथ जुड़ जाता है और वह सच्चा धर्मात्मा बन जाता है।

व्याख्या

मंनै मारगि ठाक न पाइ॥ मंनै पति सिउ परगटु जाइ॥ गुरु रामदास जी कहते हैं, 'नाइ मंनिऐ भवजलु लंघीऐ फिरि बिघनु न होई॥'[1] आन्तरिक

मण्डल अनेक शैतानी ताक़तों से भरे पड़े हैं। ये ताक़तें अपनी सुरत को नाम में लीन कर चुके साधक का रास्ता नहीं रोक सकतीं। ऐसा गुरुमुख पूरे मान-सम्मान के साथ ऊपरी मण्डलों का सफ़र तय करता है।

मंनै मगु न चलै पंथु॥ गुरु साहिब समझाते हैं कि नाम की कमाई करनेवाले साधकों को उस मार्ग पर नहीं जाना पड़ता जिस पर जीवों को धर्मराज की अदालत में पेश करने के लिए ले जाया जाता है। गुरु अर्जुन साहिब जी की वाणी है:

जह साधू गोबिद भजनु कीरतनु नानक नीत॥
णा हउ णा तूं णह छुटहि निकटि न जाईअहु दूत॥[2]

धर्मराज अपने दूतों को सावधान करता है कि जहाँ साधक और साधु परमेश्वर के भजन-कीर्तन में लगे हों, तुम भूल कर भी वहाँ मत जाना अन्यथा न तुम छूटोगे और न ही मैं छूटूँगा। गुरु साहिब कहते हैं:

जिह पैडै लूटी पनिहारी॥ सो मारगु संतन दूरारी॥
सतिगुर पूरै साचु कहिआ॥
नाम तेरे की मुकते बीथी जम का मारगु दूरि रहिआ॥
जह लालच जागाती घाट॥ दूरि रही उह जन ते बाट॥
जह आवटे बहुत घन साथ॥ पारब्रहम के संगी साध॥
चित्र गुपतु सभ लिखते लेखा॥ भगत जना कउ द्रिसटि न पेखा॥[3]

अर्थात् जिन भक्तों के अन्दर अनहद शब्द के बाजे बज रहे हैं, उनको उस रास्ते पर नहीं जाना पड़ता जिस रास्ते पर धर्मराज के दूत उनके पुण्य कर्मों का फल छीन लेते हैं, जिस रास्ते पर जीवों से महसूल या टैक्स लिया जाता है और जिस रास्ते पर जीवों को अनेक प्रकार की यातनाएँ दी जाती हैं। चित्रगुप्त सबका लेखा लिखता है, पर नाम की कमाई करनेवालों की तरफ़ आँख उठाकर भी नहीं देखता।

मंनै धरम सेती सनबंधु॥ नाम की कमाई करनेवाले साधकों का सच्चे धर्म से सम्बन्ध जुड़ जाता है। गुरु अर्जुन साहब की वाणी है:

संतहु राम नामि निसतरीऐ॥
ऊठत बैठत हरि हरि धिआईऐ अनदिनु सुक्रितु करीऐ॥
संत का मारगु धरम की पउड़ी को वडभागी पाए॥
कोटि जनम के किलबिख नासे हरि चरणी चितु लाए॥[4]

आप कहते हैं कि पूर्ण सन्तों का मार्ग सच्चे धर्म की सीढ़ी है। यह नाम की कमाई का मार्ग है, जिससे जन्म-जन्मातरों के पापों का नाश हो जाता है और आत्मा निर्मल होकर हरि में समा जाती है। यही धर्म का असल उद्देश्य है। 'मंनै धरम सेती सनबंधु' द्वारा गुरु नानक साहिब यह समझा रहे हैं कि संसार में धर्म बहुत हैं, पर सच्चे धर्म के साथ किसी विरले भाग्यशाली का ही सम्बन्ध जुड़ता है। असल में वही जीव धार्मिक है जो अन्तर में नाम से लिव जोड़कर परमात्मा के चरण-कमलों में समा जाता है।

पउड़ी 15

मंनै पावहि मोखु दुआरु॥ मंनै परवारै साधारु॥
मंनै तरै तारे गुरु सिख॥ मंनै नानक भवहि न भिख॥
ऐसा नामु निरंजनु होइ॥ जे को मंनि जाणै मनि कोइ॥

शब्दार्थ: मोखु दुआरु=मुक्ति का दरवाज़ा। परवारै साधारु=परिवार सहित पार हो जाता है। भवहि न भिख=भीख माँगने के लिए भटकना नहीं पड़ता।

सरलार्थ: नाम के रंग में रँगे हुए जीव को मुक्ति का द्वार प्राप्त हो जाता है। वह ख़ुद भी तर जाता है और अपने कुल को भी तार लेता है। नाम में समाकर नाम का रूप हो चुके गुरुमुख आप भी तर जाते हैं और अपने शिष्यों, सेवकों को भी तार लेते हैं। ऐसे पूर्ण पुरुष भिखारियों की तरह चौरासी के चक्कर में नहीं भटकते।

व्याख्या

मंनै पावहि मोखु दुआरु॥ ... जाणै मनि कोइ॥ गुरु रामदास जी कहते हैं, 'नाइ मंनिऐ कुलु उधरै सभु कुटंबु सबाइआ॥'[1] आप आगे कहते हैं, 'नाइ मंनिऐ संगति उधरै जिन रिदै वसाइआ॥'[2] नाम-रूप हो चुका गुरुमुख आवागमन के बन्धनों से मुक्त हो जाता है। उसके प्रभाव से उसका परिवार भी परमेश्वर-प्राप्ति के सच्चे मार्ग पर चल कर मुक्ति प्राप्त कर लेता है।

गुरु रामदास जी की वाणी है, 'जन नानक के गुरसिख पुतहहु हरि जपिअहु हरि निसतारिआ॥'[3] आप गुरु के शिष्यों को गुरु के पुत्र कहते हैं। गुरुमुखों का असली परिवार उनकी संगत होता है। इसलिए गुरु साहिब 'मंनै तरै तारे गुरु सिख' का संकेत देते हैं। गुरु अर्जुन साहिब समझाते हैं, 'गुरमुखि कोटि उधारदा भाई दे नावै एक कणी॥'[4] पूरा गुरुमुख स्वयं भी नाम की कमाई करता है तथा दूसरों में भी नाम की कमाई करने का शौक़ पैदा करता है। उसके उपदेश के अनुसार नाम की कमाई करनेवाले लाखों जीव अन्तर में नाम के साथ लिव जोड़कर भवसागर से पार हो जाते हैं।

'मंनै'

पउड़ी 8 से 11 में प्रयुक्त किया पद 'सुणिऐ' ध्यान द्वारा अन्तर में नाम की ध्वनि सुनने का सूचक है। 'मंनै' पद उससे ऊँची रूहानी अवस्था की ओर संकेत करता है। गुरु रामदास जी ने राग 'सारंग दी वार' में 'नाम के सुनने' और 'नाम के मनन' से होनेवाले परमार्थी लाभों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। यह वर्णन पढ़ने से पता चलता है कि नाम का मनन बहुत ऊँची रूहानी अवस्था का सूचक है। इस अवस्था में आत्मा की आन्तरिक रूहानी मण्डलों में चढ़ाई शुरू हो जाती है, जिस पर गुरु साहिब ने ज्ञान खण्ड, सरम खण्ड, करम खण्ड और सच खण्ड के वर्णन में प्रकाश डाला है। डॉ. साहिब सिंह, भाई काहन सिंह नाभा और भाई वीर सिंह ने 'मंनै' को वह ऊँची रूहानी अवस्था माना है जिसमें मन नाम में रँग जाता है और

मन की नाम में लगन लग जाती है।[5] मन नाम को श्रद्धापूर्वक मान कर (परवान करके) उसकी पूजा-उपासना में लग जाता है[6] या मन नाम को तसलीम करके (मानकर) उसके मनन अथवा अभ्यास में मग्न हो जाता है।[7]

धर्म-ग्रन्थों में रूहानी उन्नति के तीन पड़ाव श्रवण, मनन और निध्यासन (समाधि) माने गए हैं। मन पहले ध्यानपूर्वक नाम की ध्वनि सुनता है, फिर यह नाम में लीन होकर नाम-रूप हो जाता है। इसे पूर्ण एकाग्रता या समाधि की अवस्था भी कहा जाता है, जिसे प्रभु-प्राप्ति का फल लगता है। गुरु साहिब ने 'जपुजी' में ही कहा है, 'सुणिआ मंनिआ मनि कीता भाउ॥ अंतरगति तीरथि मलि नाउ॥'[8] जब नाम का सुनना नाम में लीन हो जाने में बदलता है तो मन में परमात्मा का सच्चा प्रेम जाग्रत हो जाता है और आत्मा नाम के तीर्थ में स्नान करके कर्मों-संस्कारों की सब मलिनताएँ उतारकर परमात्मा के साथ मिलाप करने के योग्य बन जाती है।

ऐसा नामु निरंजनु होइ

गुरु साहिब ने 'मंनै' की चारों पउड़ियों के अन्त में 'ऐसा नामु निरंजनु होइ॥ जे को मंनि जाणै मनि कोइ॥' महावाक्य दर्ज किया है। निरंजन का नाम निरंजन का ही रूप है। जिसके अन्दर अभ्यास द्वारा नाम बस जाता है, उसे ऐसी अद्‌भुत अवस्था प्राप्त हो जाती है, जिसे शब्दों में बयान कर सकना सम्भव नहीं। गुरु साहिब लिखते हैं:

> नानक कागद लख मणा पड़ि पड़ि कीचै भाउ॥
> मसू तोटि न आवई लेखणि पउणु चलाउ॥
> भी तेरी कीमति ना पवै हउ केवडु आखा नाउ॥[9]

गुरु साहिब कहते हैं—1. 'भी तेरी कीमति ना पवै॥' 2. 'हउ केवडु आखा नाउ॥' प्रत्यक्ष है कि आप प्रभु और नाम को समान अर्थों में प्रयोग कर रहे हैं। इसलिए 'मंनै' की पउड़ियों में निरंजन के नाम को निरंजन-रूप मानते हुए और नाम में समाकर नाम-रूप हो चुके भक्त को प्रभु की तरह अनन्त-अकह कहकर उसकी सराहना कर रहे हैं।

गुरु नानक साहिब कहते हैं, 'घरि घरि नामु निरंजना सो ठाकुरु मेरा॥'[10] अर्थात् हर घट में समाया हुआ नाम ही मेरा सच्चा ठाकुर, इष्ट या परमेश्वर है। आप कहते हैं, 'नाइ सुणिऐ नाउ ऊपजै नामे वडिआई॥'[11] 'नाइ सुणिऐ'—पहले सुमिरन द्वारा सुरत नाम को सुनती है। 'नाउ ऊपजै'—फिर अन्दर नाम की ध्वनि और नाम का प्रकाश प्रकट हो जाता है। 'नामे वडिआई'—फिर जीव को नाम में समाकर नाम-रूप होने की बड़ाई प्राप्त होती है। जैसे परमात्मा अकथ है, उसी तरह नाम में समाकर नाम-रूप हो चुके उसके पूर्ण भक्तों की अवस्था भी अकथ होती है।

रूहानी साधना

'सुणिऐ' और 'मंनै' की पउड़ियों में गुरु साहिब द्वारा समझायी और सिखायी गयी व्यावहारिक रूहानी साधना का पूर्ण सार समाया हुआ है। आप फ़रमाते हैं, 'सुणि सुणि बूझै मानै नाउ॥ ता कै सद बलिहारै जाउ॥'[12] 'सुणि सुणि'—पहले सुमिरन द्वारा सुरत को आँखों के पीछे एकाग्र करके नाम सुनने का अभ्यास किया जाता है। 'बूझै मानै नाउ'—फिर नाम की धुन निरन्तर हो जाती है। उस अवस्था में नाम या शब्द सुमिरन के बिना भी हर क्षण सुनाई देता रहता है। यह नाम को बूझ लेने, नाम को मान लेने या नाम के ध्यान द्वारा नाम में अभेद हो जाने की अवस्था है।

गुरु नानक साहिब का कथन है, 'नाइ मंनिऐ पति पाईऐ हिरदै हरि सोई॥'[13] गुरु अमरदास जी की वाणी है:

> जिनी सुणि कै मंनिआ तिना निज घरि वासु॥[14]

इस श्रवण और मनन का बाहरी कानों द्वारा सुनने से कोई सम्बन्ध नहीं है; न ही इसका मन-बुद्धि या सोच-विचार द्वारा नाम की महिमा मान लेने या मन में बिठा लेने से सम्बन्ध है। यह आत्मा द्वारा नाम की ध्वनि को सुनते-सुनते नाम में अभेद हो जानेवाली अनूठी अवस्था है जिससे निज घर में पहुँचकर हरि से मिलाप हो जाता है।

हमारा सन्तों-महात्माओं की वाणी से प्रेम है। हमारा इस वाणी में भरोसा है और हम रोज़ प्रेमपूर्वक इस वाणी का पाठ-विचार भी करते हैं पर इससे हमारा कार्य पूरा नहीं हो जाता। इससे तो हमारा असल कार्य शुरु होता है। सन्तों-महात्माओं के उपदेश से मार्ग-दर्शन लेकर अन्तर्मुख रूहानी अभ्यास की ओर भी ध्यान देना चाहिए। जो साधक गुरुमुखों की समझायी गयी युक्ति के अनुसार ध्यान को अन्तर्मुख करके नाम की ध्वनि और नाम के प्रकाश में लीन कर देते हैं, वे प्रभु में समाकर प्रभु का ही रूप बन जाते हैं।

पुरातन टीका के अनुसार व्याख्या

'पुरातन टीका' में 'सुणिऐ' और 'मंनै' के साधना पक्ष पर प्रकाश डालते हुए लिखा है:

''तो सिद्धों ने पूछा कि सुनते तो बहुत हैं, परमगति की बात किसी विरले को प्राप्त होती है। तो बाबा ने कहा सुनना भी बहुत तरह का है। एक तो श्रवण करते हैं, पर मन बाहर भटकता रहता है। वह श्रवण ऐसा है जैसे भूतों की आग होती है। उसको सुनने का पुण्य होता है पर कुछ भी ज्ञान प्राप्त नहीं होता। और एक जो अपनी इन्द्रियों को रोककर ध्यान लगाकर सुनते हैं उनका सुनना हलवाई की आग की तरह है। जब हलवाई कड़ाही उतारता है तो आग बुझा देता है। इस तरह यदि सुना है तो फिर अपने व्यवहार में लग जाता है तो भूल जाता है। इसलिए श्रवण के साथ मनन होता है। यदि सुनकर फिर विचार करते हैं तो बिजली की आग की तरह भूलता नहीं। जैसे जल से भरे बादलों में बिजली बुझती नहीं उसी तरह जो ध्यान लगाकर सुनते हैं उनको अनेक कार्यों में भी भूलता नहीं। इसी तरह जब मनन के साथ निध्यासन होता है, जो सुना, सुनकर माना, मानकर कमाया जाता है तो वह बड़वानल अर्थात् समुद्र की आग की तरह होता है। बड़वानल आग जल को जला देती है पर ख़ुद नहीं बुझती। उसी तरह व्यवहारों में लगा हुआ भी वह परमात्मा का नाम नहीं भूलता। और यदि निध्यासन होता है, यदि साक्षात्कार होता है तो यह

प्रलय की आग की भाँति है जो सब वृक्षों को अपना रूप ही बना लेती है। उसे सबमें वाहेगुरु का ही रूप प्रकाशमान दिखाई देता है।''[15]

हज़ारा सिंह सोढी के अनुसार व्याख्या

हज़ारा सिंह सोढी ने अपनी पुस्तक 'जपु-बीचारू' में इशारा किया है कि 'जपुजी' में 'सुणिऐ' और 'मंनै' का असल अर्थ अपने अन्तर में नाम को 'सुनना' और आत्मा को उसमें अभेद करना है। आप कहते हैं—ध्यान को अन्तर्मुख करके और एक-मन, एक-चित्त होकर नाम को सुनना ही वह बीज है जिसमें से सहज-समाधि या प्रभु से मिलाप का फल प्राप्त होता है।[16]

भाई वीर सिंह जी के अनुसार व्याख्या

भाई वीर सिंह जी उपरोक्त आठ पउड़ियों में नाम सुनने और नाम मानने की साधना का वर्णन करते हुए कहते हैं:

''जिस तरह गुरुवाणी ने निरंकार को निरंजन, अगम, अगोचर और अलख आदि विशेषणों से याद किया है इसी तरह 'नाम' को भी किया है, यथा—

नामु निरंजनु अगमु अगोचरु सतिगुरि दीआ बुझाए॥[17]

फिर फ़रमाया है:

नामु निरंजन अलखु है किउ लखिआ जाई॥
नामु निरंजन नालि है किउ पाईऐ भाई॥
नामु निरंजन वरतदा रविआ सभ ठांई॥
गुर पूरे ते पाईऐ हिरदै देइ दिखाई॥[18]

पहली पंक्ति में कहा था कि नाम निरंजन है, अगम है, अगोचर है। इन पंक्तियों में बताया गया है कि निरंजन का नाम परमात्म-देव की तरह अलख है, फिर वह परमात्मा की तरह हर जगह व्यापक है, वह एक देश तक सीमित नहीं, व्यापक होने के कारण सबके साथ है। फिर वह व्यापक होने के कारण सबके हृदय में है, जो पूरा गुरु जिज्ञासु के हृदय में बस रहा दिखा देता है। फिर फ़रमाते हैं:

इसु काइआ अंदरि बहुतु पसारा॥ नामु निरंजनु अति अगम अपारा॥[19]

अर्थात् देह के अन्दर बहुत पसारा है। वह व्यापक नाम देही के अन्दर (मन में मौजूद) है। यहाँ नाम को फिर निरंजन और अगम अपार कहा गया है।

इन प्रमाणों के विचार से सिद्ध होता है कि नाम वाहेगुरु के साथ अभेद उसकी कोई अपनी कला व्यापक वस्तु है; उसकी तरह ही मायारहित है और उसकी तरह ही अलख है। फिर यह इनसानी हृदय में भी व्यापक है। उसको जानना है और जानने की शक्ति भी गुरु से प्राप्त होती है जो उसे हृदय में ही दिखा देगा। गुरु किस तरह दिखाता है— गुरु-प्रसाद से तथा अपने बताये हुए नाम-अभ्यास से। इससे पता चलता है कि हमारा 'नाम-सुमिरन' हमें उस व्यापक और हृदय के अन्दर बसते व्यापक नाम के साथ जोड़ देगा; जब व्यापक नाम और सुमिरन किये गये नाम दोनों का संगम होता है तो उस संगम को भी नाम ही कहा जाता है।

इससे पता चला कि नाम केवल संज्ञामात्र नहीं, नाम जप है। नाम सुमिरन है। नाम लिव है। नाम व्यापक नाम में पहुँचकर तदरूप होता है। अन्त में नाम और नामी की अभेदता है अर्थात् नाम का प्रेमी नामी (वाहिगुरु) को प्राप्त हो जाता है। जैसे—

वाहु वाहु पूरे गुर की बाणी॥ पूरे गुर ते उपजी साचि समाणी॥[20]

इसलिए गुरुवाणी के अनुसार नाम एक आत्म-विद्या है, जो जिज्ञासु की ईश्वर-प्राप्ति की आकाँक्षा से लेकर, जप से शुरू होकर, साँईं के साथ मिलाप तक ले जाती है।''[21]

भाई वीर सिंह जी कहते हैं:

''इन मंनै की पउड़ियों की पड़ताल बता देती है कि पीछे नाम सुनने में नाम का धारण करना आ गया है। उसका फल (विगास) नाम-रस आ गया है। अब मन में नाम सुनकर और नाम को स्वीकार करके बारम्बार अभ्यास द्वारा धारण करना है। इस मनन ने 'मंनै पावहि मोखु दुआरु' तक ले जाना है। भाव यह हुआ कि 'मंनै' पद में शास्त्री भाषा का केवल

'मनन' मात्र नहीं है बल्कि इसमें 'निध्यासन' भी शामिल है, क्योंकि मोक्ष द्वार की प्राप्ति साक्षात्कार है; साक्षात्कार निध्यासन के बाद होता है।''[22]

आप इशारा कर रहे हैं कि मानने का अर्थ विचार के स्तर पर मानना नहीं 'निध्यासन' अर्थात् समाधि द्वारा इसका साक्षात् अनुभव प्राप्त करना है। मन-आत्मा को एकाग्र करके अन्दर नाम में लीन करना ही मनन की वह उच्च अवस्था है जिसके द्वारा नाम और नामी एक हो जाते हैं और नाम का साधक नाम-निरंजन द्वारा उस निरंजन या नामी में समाकर उसका ही रूप हो जाता है।

पउड़ी 16

पंच परवाण पंच परधानु॥ पंचे पावहि दरगहि मानु॥
पंचे सोहहि दरि राजानु॥ पंचा का गुरु एकु धिआनु॥
जे को कहै करै वीचारु॥ करते कै करणै नाही सुमारु॥
धौलु धरमु दइआ का पूतु॥ संतोखु थापि रखिआ जिनि सूति॥
जे को बुझै होवै सचिआरु॥ धवलै उपरि केता भारु॥
धरती होरु परै होरु होरु॥ तिस ते भारु तलै कवणु जोरु॥
जीअ जाति रंगा के नाव॥ सभना लिखिआ वुड़ी कलाम॥
एहु लेखा लिखि जाणै कोइ॥ लेखा लिखिआ केता होइ॥
केता ताणु सुआलिहु रूपु॥ केती दाति जाणै कौणु कूतु॥
कीता पसाउ एको कवाउ॥ तिस ते होए लख दरीआउ॥
कुदरति कवण कहा वीचारु॥ वारिआ न जावा एक वार॥
जो तुधु भावै साई भली कार॥ तू सदा सलामति निरंकार॥

शब्दार्थ: सुमारु=शुमार, गिनती। धौलु=बैल, जिसके सिर पर धरती खड़ी मानी जाती है। सूति=रस्सी, मर्यादा। वुड़ी=गुप्त, न दिखनेवाली। कलाम= कलम। ताणु=बल। सुआलिहु रूपु=सुन्दर रूप। कूतु=शक्ति। पसाउ= पसारा। कवाउ=हुक्म, शब्द, वचन। दरीआउ=समुद्र। कुदरति=ताक़त, शक्ति।

सरलार्थ: गुरु साहिब ने 'सुणिऐ' और 'मंनै' की पउड़ियों में नाम की कमाई के रूहानी लाभ बयान किये हैं। अब आप नाम के सम्बन्ध में और प्रभु की सृष्टि के बारे में कुछ गूढ़ रहस्य खोल रहे हैं। आप कहते हैं:

मालिक के दरबार में पंच परवान हैं, उसके दरबार में पंच मुखिया या आगू हैं। पंचों को दरगाह में मान प्राप्त होता है। पंच प्रभु रूपी शहंशाह के दरबार में राजाओं के समान शोभायमान हैं। पंचों का गुरु ध्यान है।

अगर कोई मालिक की महिमा करना चाहे और विचार करके उसके बारे में जानना चाहे तो यह सम्भव नहीं है क्योंकि उस कर्ता द्वारा किये गये कार्यों का कोई अन्त नहीं है। इनसान किस-किस चीज़ की तारीफ़ करे। कहा जाता है कि धरती बैल के सींगों के सहारे खड़ी है। धरती परमात्मा द्वारा स्थापित किये गये धर्म या नियम के आधार पर खड़ी है जिसका जन्म दया से हुआ है और जिसको सन्तोष ने ठीक जगह पर क़ायम रखा हुआ है।

जो इस सच्चाई को समझ लेता है, वह सचिआर हो जाता है। यदि यह कहा जाये कि धरती बैल के आसरे खड़ी है तो सोचना चाहिए कि बैल ने इतना भार कैसे उठाया हुआ है और बैल किसके सहारे खड़ा है? पृथ्वियाँ अनेक हैं। कौन-कौन सी धरती, कौन-कौन से बैल के आसरे खड़ी है?

अनगिनत क़िस्मों, रंगों और नामों वाले जीव हैं। इन सबको उस कर्ता के हुक्म की गुप्त कलम ने सृजित किया (लिखा) है। उस कर्ता के बिना और कोई इनका लेखा नहीं जानता। यदि यह लेखा लिखा भी जाये तो कहाँ तक लिखा जायेगा—यह लेखा ख़त्म होने में नहीं आ सकता।

किस में इतनी ताक़त है कि यह अनुमान लगा सके कि वह मालिक कितना शक्तिशाली है, उसका स्वरूप कितना सुन्दर है और वह कितनी और कौन-कौन-सी दातें देनेवाला दाता है? उसने अपने एक वचन या हुक्म द्वारा सारी सृष्टि की रचना कर दी। उसके एक वचन या हुक्म से रचना के लाखों भण्डार (लख दरीआउ) अस्तित्व में आ गये। मुझमें इतनी शक्ति कहाँ है कि मैं उस कर्ता के बारे में विचार या वर्णन कर सकूँ। मैं तो उस पर एक बार क़ुर्बान होने के भी क़ाबिल नहीं। हे निरंकार, तुम सदा स्थिर हो और जो तुम्हें भाता है, वही कार्य अच्छा है।

व्याख्या

पंच परवाण पंच परधानु॥ पंचे पावहि दरगहि मानु॥
पंचे सोहहि दरि राजानु॥ पंचा का गुरु एकु धिआनु॥

इन पंक्तियों की एक व्याख्या यह की जाती है कि 'सुणिऐ' और 'मंनै' की आठ पउड़ियों के अनुसार नाम का सुमिरन करनेवाले, नाम का ध्यान करनेवाले और अन्तर में नाम के साथ लिव जोड़नेवाले साधक पंच, सन्त या गुरुमुख का पद प्राप्त कर लेते हैं। ऐसे पंच या पूर्ण पुरुष परमात्मा के दरबार में परवान होते हैं। वे ही परमात्मा के दरबार में प्रधान माने जाते हैं। उनको उस दरगाह में मान बख़्शा जाता है। वे उस शहंशाह के दरबार में राजाओं की तरह शोभायमान होते हैं। ऐसे पंचों का गुरु ध्यान होता है अर्थात् वे सदा परमात्मा के ध्यान में मग्न रहते हैं।

पंचे सोहहि दरि राजानु॥ का यह अर्थ भी किया जाता है कि गुरुमुख लोग राजाओं के दरबार में शोभा पाते हैं पर यहाँ प्रसंग परमात्मा के दरबार का चल रहा है और गुरु साहिब की विचारधारा में सांसारिक राज-पाट का कोई महत्त्व नहीं। गुरु-घर की वाणी है:

नानक होरि पतिसाहीआ कूड़ीआ नामि रते पातिसाह॥[1]

पातिसाही भगत जना कउ दितीअनु सिरि छतु सचा हरि बणाइ॥[2]

भाई वीर सिंह 'पंचे सोहहि दरि राजानु' पंक्ति के किये जाते आम अर्थों और गहरे अर्थों का भेद समझाते हुए कहते हैं कि 'दरि राजानु' का अर्थ ऐसे भी लिया जाता है—पंच राजाओं के दरबार में मान प्राप्त करते हैं। पर 34वीं पउड़ी पढ़कर यह सन्देह नहीं रहता कि 'दरि' का भाव 'परमात्मा का दर' है जहाँ परवान हुए पंच शोभा पाते हैं। यथा 'सचा आपि सचा दरबारु॥ तिथै सोहनि पंच परवाणु॥'[3] इसलिए 'दरि' का संकेत परमात्मा रूपी शहंशाह के दरबार की ओर ही है।

भाई वीर सिंह जी 'पंचा का गुरु एकु धिआनु' में 'धिआनु' शब्द की व्याख्या करते हुए कहते हैं—''ध्यान एक प्रकार की वृत्ति का लगातार

एक तरफ़ लगे रहना है। यह वृत्ति की एकाग्रता है। सुरत का वाहेगुरु जी में लगातार लगे रहना।''[4]

कुछ अन्य व्याख्याएँ

पंच परवाण पंच परधानु॥ की चार पंक्तियों के और भी बहुत-से अर्थ किये गये हैं। किसी टीकाकार ने 'पंच' के अर्थ सत्य, सन्तोष, दया, धर्म, धैर्य आदि पाँच गुण किये हैं। किसी ने 'पंच' के अर्थ शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध करते हुए यह बताया है कि सन्तों ने इनको वश में किया हुआ है और पाँच गुण धारण किये हुए हैं। इसके अलावा 'पंच परवाण पंच परधानु' की और कई ढंगों से खींचतान करके व्याख्या की गयी है, जिसके बारे में यहाँ पूरा विवरण देने की आवश्यकता नहीं।*

इस सम्बन्ध में भाई वीर सिंह जी लिखते हैं:

''पीछे कहा था कि मननशील पुरुष मोक्ष प्राप्त करते हैं, आप तर जाते हैं तथा औरों को भी तार लेते हैं। अब पउड़ी 16 में फ़रमाते हैं कि उनका गुरु 'एक ध्यान' हो जाता है। अर्थात् सुनकर, मानकर उनका ध्यान एक ईश्वर में टिक जाता है। ध्यान ही पूर्ण एकाग्रता में जाकर समाधि कहलाता है। यह ध्यान 'अभ्यास का मोहताज ध्यान' या 'प्रयत्न मई निध्यासन' नहीं, पर 'परिपक्व ध्यान' है जो 'सहज-समाधि' के रूप में बिना यत्न के लगा रहता है। यथा—'गुरमुखि लागै सहजि धिआनु॥'[6] इस पउड़ी में इन सहज ध्यानियों को पंच पद से याद किया है। इससे आगे पहली पउड़ियों में उपाय आदि आये हैं, उनको करनेवाले सचिआरों से मुराद है, यथा—1. सुननेवाले, 2. मानने वाले, 3. गानेवाले, 4. हुक्म रज़ाई चलने वाले, 5. 'मनि रखिऐ भाउ॥' अर्थात् मन से प्रेम करनेवाले जो पाँचों उपाय करके सचिआर हो गये हैं, उनको यहाँ पंच कहा है।''†

* अधिक विस्तार के लिये देखें: संथ्या श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी।[5]

† भाई वीर सिंह जी ने इन चार पंक्तियों की अलग-अलग टीकाकारों द्वारा की गई व्याख्या का भी विस्तारपूर्वक वर्णन किया है।[7]

भाई वीर सिंह जी इशारा कर रहे हैं कि पूर्ण एकाग्रता या सहज-समाधि की अवस्था प्राप्त कर चुके सन्त ही परमात्मा के दरबार में परवान और प्रधान होते हैं और वे सदा परमात्मा के ध्यान में मग्न रहते हैं।

एक गूढ़ व्याख्या

'पंच' पद वाली चार पंक्तियों की एक गूढ़ व्याख्या भी देखने में आयी है। यह व्याख्या करनेवालों ने 'पंच' के अर्थ 'पाँच शब्द' किये हैं। व्याख्याकार लिखते हैं कि रूहानी मण्डलों में पाँच प्रकार के शब्द बज रहे हैं। ये पाँच शब्द परमात्मा की दरगाह में परवान और प्रधान हैं और यही परमात्मा की प्राप्ति का सच्चा साधन हैं।

भाई गुरदास के अनुसार व्याख्या

भाई गुरदास की वारों के ज्ञानी हज़ारा सिंह द्वारा तैयार किये गये और भाई वीर सिंह जी द्वारा संशोधित किये गये टीका में 'पंज शबद परवाणु नीसाणु वजाइआ' का अर्थ इस तरह किया गया है:

''शब्द दो प्रकार का है—एक आहत और एक अनाहत। जो आहत है वह प्रकृति का खेल है। वह शब्द जिस तरह व्यावहारिक जीवन में जीवों के आम व्यवहार में हो रहा है, पाँच तरह का है। जब विज्ञान के आधार पर उसकी परख की जाती है तो उसके मुख्य तीन दर्जे और फिर सात मिलते हैं, जिनको सात स्वर कहते हैं। अनहद शब्द आत्मा से होता है, इसमें द्वैत नहीं होती। वह कानों का विषय नहीं है, इसलिए उसको सुनने का तरीक़ा सुमिरन है। 'प्रभ कै सिमरनि अनहद झुनकार॥' वह पहले पाँच प्रकार का होता है, फिर शब्द ब्रह्म की एकता में और फिर वहाँ से निराकार में ले जाता है।''[8]

'पंजे अखर परधान करि परमेसरु हुइ नाउ धराइआ॥' यह पंक्ति भाई गुरदास की 39वीं वार की दूसरी पउड़ी में आती है। इस पउड़ी की पहली छह पंक्तियों का पाठ इस तरह है:

निरंकारु आकार करि एकंकारु अपार सदाइआ॥
ओअंकारु अकार करि इकु कवाउ पसाउ कराइआ॥
पंज तत परवाण कर पंज मित्र पंज सत्र मिलाया॥
पंजे तिंन असाध साधि साधु सदाइ साधु बिरदाइआ॥
पंजे एकंकार लिखि अगों पिछीं सहस फलाइआ॥
पंजे अखर परधान करि परमेसरु हुइ नाउ धराइआ॥

अर्थात् निरंकार पहले गुप्त था। जब वह प्रकट हुआ तो निरंकार से एकंकार बन गया। फिर उसने ओंकार (कर्तापुरुष) रूप में अपने हुक्म—(कवाउ=हुक्म) 'कीता पसाउ एको कवाउ तिस ते होए लख दरीआउ' द्वारा सृष्टि की रचना की। उसने पाँच तत्त्वों द्वारा कायनात का खेल रचा। इस खेल में उसने पाँच आसुरी गुणों काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार को पैदा किया। ये पाँचों जीवात्मा के शत्रु हैं। इसके साथ ही उसने शील, क्षमा, सन्तोष, विवेक और नम्रता रूपी पाँच दैविक गुण पैदा किये, जो जीवात्मा के मित्र हैं। कामादिक पाँच दुश्मन और सतो, रजो, तमो तीन गुण असाध्य हैं। कोई विरला साधक ही इनको जीतकर पूर्ण साधु का पद प्राप्त करता है। उस कर्तापुरुष का यह उसूल है कि वह साधु-रूप में प्रकट होता है। वह कर्ता अपने हुक्म से पाँच शब्दों को प्रधानता देकर (पंजे अखर परधान करि) स्वयं परमेश्वर-रूप में प्रकट हुआ।[9]

'पुरातन टीका' के अनुसार व्याख्या

''और जो पाँच शब्द हैं—1. तंत (तत) 2. वित (वृत) 3. घन 4. सुखर (सुखिर) 5. नाद। तंत कहते हैं तँबूरे आदि को जो तारों के बने होते हैं। और वित कहते हैं मृदंग आदि को जिन पर चमड़ा मड़ा होता है। घन कहते हैं ताल आदि को जो धातुओं के बने होते हैं और सुखिर कहते हैं शंख आदि को जो फूँक से बजाये जाते हैं। और नाद कहते हैं घड़े आदि को जो मिट्टी को पकाकर बनते हैं। **ये पाँच शब्द दसवें द्वार में भी बजते हैं।** और साधु-संगति में भी बजते हैं तो सबको सुनाई क्यों नहीं देते। तो बाबा जी ने कहा कि उनका गुरु ध्यान है।''[10]

इस व्याख्या में दसवें द्वार में बज रहे पाँच शब्दों को 'पंच' कहा गया है और इशारा किया गया है कि यह ध्यान द्वारा सुनाई देते हैं।

भाई वीर सिंह के अनुसार पाँच शब्द

भाई वीर सिंह जी ने 'पंच शब्द' के अर्थ इस प्रकार किये हैं:

''**पंच शब्द [संखः वाः संस्कृत]** (1) पाँच प्रकार के बाजे— वीणा या सितार, ढोलक, छैणे, नगारा, तूती या ज़रा फरकवें, पाँच तरह के बाजे जो ख़ुशियों के समय रागी लोग, लोगों के घरों में आकर बजाते हैं।

(2) चित्त वृत्ति को एकाग्र करनेवाले बताते हैं कि ब्रह्माण्ड में एक अरूप नाद है जो हमारे इन कानों का विषय नहीं, पर आत्मा के अनुभव की चीज़ है। यह जो राग हम गाते हैं इसका मूल उस अरूप अवस्था में है। वह शब्द ऐसी ध्वनि का है जिस तरह हमारे पाँच प्रकार के बाजे की ध्वनि होती है। इनकी मिश्रित ध्वनि में पाँच प्रकार की अलग-अलग ध्वनियों के मेल का आभास होता है। इस कारण उसको पाँच शब्द कहते हैं।''[11]

हज़ारा सिंह सोढी के अनुसार व्याख्या

हज़ारा सिंह सोढी 'जपु-बीचारू'[12] में लिखते हैं:

पंच शब्द—श्री आदि गुरु ग्रन्थ साहिब जी में 'पंच शब्द' की शिक्षा है। यह मत गुरुमत है। पंच शब्द-ध्वनि पूर्ण अभंग और निर्मल मानी गयी हैं। ये पंच शब्द निरंकार की आरती के हैं:

'पंच सबद' धुनि अनहद वाजे हम घरि साजन आए॥[13]

'पंच सबद', दरगह बाजिआ, हरि मिलिओ मंगलु गाइओ॥[14]

नाम निरंजन—गुरुवाणी और भगत वाणी में नाम निरंजन 'पंच शब्द' माने हैं। 'पंच शब्द' में संख, घन शब्द आदि शामिल हैं:

पंच सबद निरमाइल बाजे॥ ढुलके चवर संख घन गाजे॥[15]

पंच परवाण—भाई गुरदास जी 'पंज शबद परवाणु' के सम्बन्ध में लिखते हैं:

पंज शबद परवाणु नीसाणु वजाइआ॥[16]

पंच परधानु—भाई गुरदास जी लिखते हैं:

पंजे अखर परधान करि, परमेसरु हुइ, नाउ धराइआ॥[17]

सन्त सुरैण सिंह के अनुसार व्याख्या

सन्त सुरैण सिंह जी ने 'नानक नाम नवेला' में सन्त शिवदयाल सिंह जी द्वारा 'जपुजी' की टीका में की 'सुणिऐ', 'मंनै' और 'पंच परवाण पंच परधानु' की व्याख्या की तरफ़ इशारा करते हुए कहा है कि इन पउड़ियों में गुरु साहिब ने नाम के श्रवण और मनन का जो उपदेश दिया है, उसका असली भाव लिव को अन्दर पाँच शब्दों में लीन करना है। आप 'पंचे पावहि दरगहि मानु' की व्याख्या करते हुए लिखते हैं:

''पंच यानी पाँच शब्द जिनका ज़िक्र पहले 'सुणिऐ' और 'मंनै' की पउड़ियों में हो चुका है, ख़ुदा की दरगाह में मकबूल* हैं और वही पाँच उस मालिक की दरगाह में परवान हैं। वह उसकी दरगाह में आदरणीय हैं और वही पाँच शब्द उस प्यारे के दरवाज़े पर रौनक और शोभा देते हैं।''[18]

उपर्युक्त व्याख्या की प्रौढ़ता के लिए व्याख्याकार ने गुरुवाणी में से चौदह प्रसंग पेश किये हैं, जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं:

पंच सबद तह पूरन नाद॥ अनहद बाजे अचरज बिसमाद॥
केल करहि संत हरि लोग॥ पारब्रहम पूरन निरजोग॥[19]

ना मनु चलै न पउणु उडावै॥ जोगी सबदु अनाहदु वावै॥
पंच सबद झुणकारु निरालमु प्रभि आपे वाइ सुणाइआ॥[20]

* मंज़ूर, स्वीकृत, प्रमुख, सुशोभित।

पंचे सबद वजे मति गुरमति वडभागी अनहदु वजिआ॥
आनद मूलु रामु सभु देखिआ गुर सबदी गोविदु गजिआ॥[21]

पंच पद को पंच शब्द के अर्थों में लेनेवाले व्याख्याकारों में भाई गुरदास, पुरातन टीकाकार और अन्य कई अनुभवी पुरुष भी शामिल हैं। इसलिए उनके द्वारा की गयी व्याख्या पर गहराई से विचार करने की आवश्यकता है।

जे को कहै करै वीचारु॥ करते कै करणै नाही सुमारु॥ यदि कोई उस प्रभु के किये हुए कार्यों के बारे में विचार करने या उनका वर्णन करने का प्रयत्न करे तो वह इसमें सफल नहीं होगा क्योंकि उस कर्ता के कार्य मन, बुद्धि तथा विचार से परे और ऊपर हैं।

धौलु धरमु दइआ का पूतु॥ संतोखु थापि रखिआ जिनि सूति॥ इन पंक्तियों के ये अर्थ किये जाते हैं कि धरती धर्म रूपी बैल के सहारे खड़ी है, धर्म रूपी बैल की माता दया है और इसको सन्तोष ने बाँधकर रखा हुआ है। दूसरे शब्दों में धरती धर्म के सहारे खड़ी है और धर्म, दया और सन्तोष द्वारा क़ायम रहता है। इन पंक्तियों पर गहराई से विचार करने की आवश्यकता है।

ऊपर कहा जा चुका है कि कुछ लोग धरती को बैल के सींग पर टिकी मानते हैं। कुछ अन्य लोग इसे शेषनाग के सहारे खड़ी मानते हैं। गुरु साहिब समझाते हैं कि धरती अपने कर्ता द्वारा स्थापित धर्म के सहारे खड़ी है। जिस कर्ता ने धरती की रचना की है, उसने इसके संचालन के लिए एक धर्म या हुक्म भी बना दिया है। 'जपुजी' में पहले आ चुका है, 'हुकमी हुकमु चलाए राहु'[22]—गुरु साहिब समझा रहे हैं कि वह हुक्मी परमात्मा सारी कायनात को एक ख़ास विधि या विधान के अनुसार चला रहा है। यहाँ 'धर्म' पद को हुक्म या विधान के अर्थों में प्रयुक्त किया गया है। गुरु साहिब यह भेद समझा रहे हैं कि उस कर्ता द्वारा लागू किया गया विधान उसकी दया से पैदा हुआ है और यह आगे सन्तोष के सूत्र में पिरोया हुआ है। गुरु अर्जुन देव जी ने लिखा है, 'सगल समग्री तुमरै सूत्रि धारी॥ तुम ते होइ सु आगिआकारी॥'[23] सारी सृष्टि परमात्मा के हुक्म की डोर में पिरोई हुई है। गुरु नानक साहिब 'आसा दी वार' में कहते हैं:

भै विचि पवणु वहै सदवाउ॥ भै विचि चलहि लख दरीआउ॥
भै विचि अगनि कढै वेगारि॥ भै विचि धरती दबी भारि॥
भै विचि इंदु फिरै सिर भारि॥ भै विचि राजा धरम दुआरु॥
भै विचि सूरजु भै विचि चंदु॥ कोह करोड़ी चलत न अंतु॥[24]

सूर्य, चन्द्र, सितारे, पवन, पानी, बैसन्तर—सब परमात्मा के डर से अपनी-अपनी जगह अपने कर्ता द्वारा सौंपे गये कार्य कर रहे हैं। 'संतोखु थापि रखिआ जिनि सूति', 'सगल समग्री तुमरै सूत्रि धारी' और 'भै विचि सूरजु भै विचि चंदु' एक ही भाव प्रकट कर रहे हैं। गुरु साहिब समझा रहे हैं कि सारी सृष्टि अपने कर्ता के हुक्म के अनुसार एक सूत्र में पिरोई उस कर्ता द्वारा सौंपे गये कार्यों की पूर्ति में लगी हुई है। 'दइआ का पूतु'—परमात्मा द्वारा बनाई गयी रचना में जो कुछ हो रहा है, उस दयालु कर्ता की दया बाँटने के लिए हो रहा है।

धर्म, हुक्म और सृष्टि

गुरु साहिब ऊपर समझा आये हैं कि कर्ता ने सारी सृष्टि को एक संयम, मर्यादा या नियम में बाँधा हुआ है। यदि सृष्टि में कोई संयम, मर्यादा या नियम न हो तो सूर्य, चन्द्र, सितारे एक-दूसरे से टकराकर टुकड़े-टुकड़े हो जायें। धरती के चारों तरफ़ समुद्र है। समुद्र तीन चौथाई और धरती एक चौथाई है पर परमात्मा के हुक्म द्वारा स्थापित किये गये धर्म में बँधा समुद्र धरती को अपने पानी में विलीन नहीं करता। गुरु नानक साहिब की वाणी है:

जलु तरंग अगनी पवनै फुनि त्रै मिलि जगतु उपाइआ॥
ऐसा बलु छलु तिन कउ दीआ हुकमी ठाकि रहाइआ॥[25]

पाँचों तत्त्व एक-दूसरे के दुश्मन होने के बावजूद हुक्म के अधीन मिलकर सृष्टि की रचना का कार्य करते हैं। सृष्टि की रचना कैसे होती है? आप कहते हैं:

साचे ते पवना भइआ पवनै ते जलु होइ॥
जल ते त्रिभवणु साजिआ घटि घटि जोति समोइ॥[26]

शब्द से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी का जन्म होता है। प्रलय के समय धरती पानी में घुल जाती है, पानी को अग्नि ख़ुश्क कर देती है, अग्नि को हवा उड़ाकर ले जाती है, हवा को आकाश खा जाता है और आकाश शब्द में समा जाता है। पाँचों तत्त्व एक-दूसरे के दुश्मन होने के बावजूद परमात्मा के हुक्म, शब्द या नाम के सहारे आपस में मिलकर शरीर बनाते हैं। जब परमात्मा के हुक्म के अनुसार शरीर में से आत्मा, जो परमात्मा का अंश है, निकल जाती है तब वे पाँचों तत्त्व बिखर जाते हैं। जब परमात्मा रचना में से शब्द को निकाल लेता है तो रचना का नाश हो जाता है। गुरु अर्जुन साहिब समझाते हैं:

कला उपाइ धरी जिनि धरणा॥ गगनु रहाइआ हुकमे चरणा॥
अगनि उपाइ ईधन महि बाधी सो प्रभु राखै भाई हे॥[27]

उस कर्ता ने पहले नाम रूपी शक्ति (कला) पैदा की। नाम द्वारा आकाश पैदा किया। आकाश से हवा और हवा से अग्नि पैदा की। उसने अग्नि को लकड़ी में क़ैद कर दिया। हम लकड़ी की बनी कुर्सी पर बैठते हैं। लकड़ी में अग्नि है पर अग्नि क़ैद है, वह संयम या मर्यादा के अधीन है। गुरु साहिब का भाव है कि परमात्मा के हुक्म, शब्द या नाम ने कुल कायनात को एक सूक्ष्म और अदृश्य धर्म, संयम या मर्यादा में बाँधा हुआ है।

प्रसिद्ध वैज्ञानिक जे. बी. एस. हालडेन कहता है कि संसार मशीन की तरह अन्धाधुन्ध नहीं चल रहा। संसार को देखने वाली हमारी दृष्टि धुँधली और अधूरी है। आध्यात्मिक जगत् ही असली जगत् है।* मिलीकन कहता है कि परमात्मा ब्रह्माण्ड के अंगों को आपस में जोड़ने वाला नियम है।† माईकेल बकले अरस्तू के विचारों के आधार पर कहता है कि बिना नियमों की एकता और निरन्तरता के संगठन, व्यवस्था और गुण का

* The material world, which has been taken for a world of blind mechanism is in reality a spiritual world seen partially and imperfectly. The only real world is the spiritual world.[28]

† God is the unifying principle of the universe.[29]

अस्तित्व असम्भव है और नेकी का कोई लाभ नहीं।* डॉ. राधाकृष्णन कहते हैं कि अफ़लातून ने संसार की योजना बनाने और लागू करनेवाली एक शक्ति का संकल्प किया है। अरस्तू ने उस शक्ति को ही ब्रह्माण्ड को गति प्रदान करनेवाली शक्ति का नाम दिया है।† ग्रहों को एक-दूसरे की तरफ़ और केन्द्र की तरफ़ खींचने वाले नियम की खोज करनेवाला प्रसिद्ध वैज्ञानिक न्यूटन कहता है कि ब्रह्माण्ड के प्रबन्ध के पीछे ऐसी ज़बरदस्त एकसारता, निरन्तरता और सुन्दरता दिखाई देती है, जिससे पता चलता है कि जो कुछ किया गया है, सोच-समझकर किया गया है।‡ उसका मत है कि अनन्त ग्रहों, नक्षत्रों, खण्डों-ब्रह्माण्डों को आपस में जोड़कर रखना और अनादि काल से उनको एक निश्चित योजना के अनुसार गति में बाँधकर रखना, किसी अन्धी और मनमानी करनेवाली शक्ति का कार्य नहीं है। यह ऐसी चेतन शक्ति की कला का करिश्मा है, जो मकैनिक्स और ज्योमैट्री में निपुण है।§ महान वैज्ञानिक आईनस्टाइन कहता है कि मैं

* The alternative to a single principle to which the Universe is ordered would be no cosmos at all, no unity, no order, no good in virtue...[30]

† Plato's world architect, Aristotle's world-mover belong to the cosmos. If there is ordered development, progressive evolution, it is because there is the divine principle at work in the universe.[31]

‡ The uniformity within the planetary system indicates choice; the study of nature shows that nothing is done in vain and that the world itself is characterized by order and beauty.[32]

§ I answer that the motions which the planets now have, could not spring from any natural cause alone, but were impressed by an intelligent agent for the originating cause must grasp the proportions of internal composition necessary for each body as well as the resultant gravitational attraction that such a mass could author; the positional relationship between the planets and their sun and between the moons and their planets, the precise velocity to be impressed which would combine with gravitational impulses to preserve a concentric orbit. And to compare and adjust all these things together, in so great a variety of bodies argues that cause to be not blind and fortuitous, but very well skilled in mechanics and geometry.[33]

अपनी लम्बी आयु के अनेक तजुर्बों के आधार पर इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि प्रकृति के बारे में हमारा ज्ञान बिल्कुल अधूरा है। प्रकृति में हर जगह एक चेतना के दर्शन होते हैं और मेरा उस परमात्मा में भरोसा पैदा हो गया है जिसका संकल्प स्पिनोज़ा ने किया है—परमात्मा जो कि सृष्टि में दिखाई दे रही चेतना, एकसुरता और एकसारता में प्रकट हो रहा है।*

प्रसिद्ध सूफ़ी दरवेश मौलाना रूम ने इस भाव को बहुत सुन्दर ढंग से समझाने का प्रयत्न किया है। आप कहते हैं कि जिस तरह चुम्बक के बने गुम्बद के बीच में लटका लोहे का टुकड़ा बिना किसी सहारे के अडोल खड़ा रहता है, इसी तरह खण्ड-ब्रह्माण्ड लोहे के गोलों की तरह परमात्मा के हुक्म के सहारे अन्तरिक्ष में लटक रहे हैं।†

यूनानी दार्शनिक अरस्तू लिखता है: God moves the planets by being the object of their desire. अर्थात् सारे खण्ड-ब्रह्माण्ड बड़े ज़ोर के साथ परमात्मा की तरफ़ खिंचे चले जा रहे हैं। परमात्मा हर जगह से समान दूरी पर है और चारों तरफ़ से परमात्मा का समान आकर्षण होने के कारण सारे खण्ड-ब्रह्माण्ड अन्तरिक्ष में स्थित हैं। गुरु अमरदास जी यही बात परमार्थी भाषा में बयान करते हैं, 'पउणु पाणी बैसंतरो हुकमि करहि भगती॥'[38] गुरु नानक साहिब इसी भाव को इस तरह प्रकट करते हैं, 'पउण पाणी बैसंतर सिमरहि सिमरै सगल उपारजना॥'[39] सारी सृष्टि परमात्मा के हुक्म या शब्द के सूक्ष्म अदृश्य परन्तु सर्वशक्तिमान आधार पर खड़ी है

* (a) I have learnt one thing in the tribulations of a long life, it is that we are much further away from a deep insight into Nature's fundamental phenomena than most of the contemporaries think.[35]
(b) Now I believe that events in nature are controlled by a much stricter and a more closely binding law than we suspect today.[34]
(c) I believe in God, in God of Spinoza, who reveals Himself in the orderly harmony of the universe. I believe that intelligence is manifested through-out all nature.[36]

† आं हकीमश गुफ़त कज़ जज़बे समा, अज़ जिहात शश बमांद अंदर हवा।
चूं ज़ि मिकनातीस कुबा रेख़ता, दरमयां मांद आहने आवेख़ता।[37]

जिसको गुरु साहिब ने 'धर्म' का नाम दिया है। वैज्ञानिकों, दार्शनिकों और सन्तों-महात्माओं की भाषा अलग-अलग है पर भाव एक ही है।

जे को बुझै होवै सचिआरु॥ धवलै उपरि केता भारु॥
धरती होरु परै होरु होरु॥ तिस ते भारु तलै कवणु जोरु॥

यह 'बुझणा' और 'सचिआर होना' कोई दिमाग़ी कार्यवाही नहीं है, यह अपनी आत्मा को परमात्मा में लीन करके उसका रूप हो जाने की रूहानी साधना है। अपना आप परमात्मा में लीन कर चुके सचिआर को परमात्मा के हुक्म की पहचान हो जाती है। उसे पता चल जाता है कि सारी कायनात कर्ता के बनाये गये विधान के अनुसार चल रही है। ऐसे सचिआर या गुरुमुख को ज्ञान हो जाता है कि सृष्टि किसी तथाकथित बैल के सहारे नहीं, परमात्मा के हुक्म (धर्म) के बैल के सहारे क़ायम है।

जीअ जाति रंगा के नाव॥ सभना लिखिआ वुड़ी कलाम॥
एहु लेखा लिखि जाणै कोइ॥ लेखा लिखिआ केता होइ॥
केता ताणु सुआलिहु रूपु॥ केती दाति जाणै कौणु कूतु॥

धरती पर या सृष्टि में अनन्त रंगों, रूपों, जातियों और क़िस्मों के जीव हैं, जिनको परमात्मा के हुक्म की गुप्त कलम ने लिखा है। यदि कोई सारी सृष्टि का लेखा लिखना शुरू कर दे तो सृष्टि की तरह उस लेखे का भी कोई अन्त नहीं होगा। परमात्मा और उसके किये हुए का लेखा लिख सकना असम्भव है। किस में इतनी शक्ति है, जो उस कर्ता के बल, उसके रूप, उसकी सुन्दरता और उसकी दातों का हिसाब कर सके!

कीता पसाउ एको कवाउ॥ तिस ते होए लख दरीआउ॥ 'कवाउ' का अर्थ वचन, आदेश या हुक्म है। गुरु साहिब कहते हैं कि परमात्मा ने अनन्त सृष्टि और इसके अनन्त जीवों की रचना अपने हुक्म से की है। गुरु अर्जुन साहिब की वाणी है:

खंड दीप सभि लोआ॥ एक कवावै ते सभि होआ॥[40]

शब्दार्थ में 'कवाउ या कवावै' का अर्थ 'एक आवाज़', 'एक हुक्म' किया गया है।[41] भाई गुरदास की वाणी है:

एकंकारहु सबद धुनि ओअंकार आकारु बणाइआ॥[42]

इक कवाउ पसाउ करि ओअंकारि कीआ पासारा॥[43]

आप समझा रहे हैं कि एकंकार से शब्द की ध्वनि पैदा हुई और उस ध्वनि ने सारी सृष्टि की रचना पैदा की। आपने अपनी इक्कीसवीं वार की सताईसवीं पउड़ी में खोलकर समझाया है कि माया, तीनों गुणों, चार खानियों, चार वाणियों, पाँच तत्त्वों, छः ऋतुओं, दिन-रात, सूर्य-चन्द्र आदि सबकी रचना 'एक कवाओ' से हुई है।

गुरु गोबिन्द सिंह जी कहते हैं, 'जब उदकरख करा करतारा॥ प्रजा धरत तब देह अपारा॥ जब आकरख करत हो कबहूँ॥ तुम मैं मिलत देह धर सबहूँ॥'[44] 'उदकरख' का अर्थ स्वाँस बाहर छोड़ना और 'आकरख' का अर्थ स्वाँस अन्दर खींचना है। गुरु साहिब परमार्थी भाषा में संकेत करते हैं कि जब परमात्मा की शक्ति गतिशील होती है तो सृष्टि अस्तित्व धारण कर लेती है। जब वह उसे अपने अन्दर वापस समेट लेता है तो सारी सृष्टि वापस परमात्मा में समा जाती है।

गुरु साहिब ने रचना की उत्पति 'कवाउ' द्वारा बताई है। बहुत-से दूसरे धर्मों के ग्रन्थों में भी ऐसे संकेत मिलते हैं। इन धर्म-ग्रन्थों में सृष्टि को परमात्मा के 'संकल्प', 'बचन', 'हुक्म' या 'शब्द' द्वारा अस्तित्व में आयी माना गया है। इन सब पदों का असल अर्थ यह है कि पहले परमेश्वर सुन्न-समाधि की अवस्था में था। जब उसके अन्दर रचना करने की मौज उठी तो उसमें समाई हुई उसकी रचना करनेवाली शक्ति, रचना के कार्य में लग गयी।

हिन्दू धर्म-ग्रन्थों में नाद या ब्रह्मनाद द्वारा सृष्टि की रचना मानी गयी है। वेदों-उपनिषदों में सृष्टि को प्रजापति के 'वाक्' या शब्द से बनी माना गया है। उपनिषद् के अनुसार—आरम्भ में प्रजापति अकेला था,

उसके पास एकमात्र वस्तु शब्द था। उसने इच्छा की कि मैं शब्द को प्रकट करूँ और यह सर्वव्यापक होकर हर जगह भरपूर हो जाये। यह शब्द उठा और एक निरन्तर अखण्ड धारा की तरह हर जगह परिपूर्ण हो गया।*

बाइबल में आता है, ''शुरू में शब्द था। शब्द प्रभु के पास था; शब्द ही प्रभु था। जो कुछ बना है, शब्द का बनाया हुआ है और कुछ भी ऐसा नहीं, जो बिना शब्द के बनाये बना हो।''[47] बाइबल में आता है कि प्रभु ने हुक्म दिया कि प्रकाश हो जाये और प्रकाश हो गया।† क़ुरान शरीफ़ में आता है कि रब ने कहा 'हो जा' (कुन) और रचना 'हो गयी' (फ़यकून)।[49] यह कुन, शब्द या आवाज़ का ही सूचक है। ये दोनों वर्णन 'कीता पसाउ एको कवाउ' के साथ मिलते हैं। सूफ़ी सन्तों-फ़क़ीरों ने भी सौत (आवाज़) या कलमे से संसार की उत्पति मानी है। नयाज़ बरेलवी कहते हैं कि कुल आलम सौत (आवाज़, ध्वनि) से अस्तित्व में आया है और उस सौत या ध्वनि से ही सारा नूर प्रकट हुआ है।‡

हज़रत अब्दुल-रज़ाक काशी ने कहा है कि इस्मे-आज़म (बड़ा नाम, बड़ा शब्द) सभी लफ़्ज़ों और नामों का स्रोत है। वही सब वस्तुओं की

---

* (a) Prajapati certainly was alone before this universe. The word (= speech) certainly was his only possession; the word was the second. He desired let me emit this very word, it will pervade this whole (space). He emitted the word and it pervaded this whole (space). It rose upward and spread as a continuous (= well joined) stream of water.[45]

(b) There is a hymn which celebrates V*ac*, speech as the supporter of world, as the companion of the gods, and the foundation of religious activity and all its advantages ; She appears as impelling the Father in the beginning of the things and again as born in waters. This idea which, of course, has long ago been compared by Weber with the Greek Logos is ingenious, The will of the creator is thus considered as expressed in speech.[46]

† And God said, Let there be Light : and there was light.[48]

‡ आलम अज़ सौते-ईं ज़ुहूर ग्रिफ़्त, अज़ हज़ूरश बिसाते नूर ग्रिफ़्त।[50]

आन्तरिक असलियत है। यह इस्म या शब्द, दरिया है और सारी कायनात इसकी लहरें हैं, पर इस रहस्य को वही जान सकता है, जो हमारे घराने से हो, भाव जो हमारी तरह शब्द का अभ्यासी हो।*

डॉ. राधाकृष्णन ने विचार प्रकट किया है कि यूनानी और ईसाई संकल्प का 'लोगॉस', 'वर्ड' या 'शब्द' जो सृष्टि के आदि में था और जो सृष्टि का कर्ता बना, केवल अकालपुरुष के ज्ञान का ही प्रतीक नहीं है, उसके भाणे या रज़ा का भी प्रतीक है।†

वर्तमान युग में वैज्ञानिकों ने 'बिग बैंग' (Big Bang) का सिद्धान्त पेश किया है। वे कहते हैं कि एक शक्तिशाली धमाका हुआ, एक शक्तिशाली आवाज़ उठी जिसमें से सारी रचना प्रकट हुई। जो बात सन्त-महात्मा हज़ारों वर्षों से कहते चले आ रहे हैं, वैज्ञानिकों ने भी उसको स्वीकार करना शुरू कर दिया है। स्वामी शिवदयाल सिंह जी कहते हैं:

धुन धधकार उठी इक भारी। सात सुरत रचना उन धारी॥[53]

शब्द ने रची त्रिलोकी सारी। शब्द से माया फैली भारी॥
शब्द ने अंड ब्रहंमड रचा री। शब्द से सात दीप नौ खण्ड बना री॥
शब्द ने गुन तीनों और परजा धारी। शब्द से धरनि आकाश खड़ा री॥
शब्द ने जीव और ब्रह्म कीआ री। शब्द से चांद और सूर भया री॥[54]

सारी सृष्टि शब्द की शक्तिशाली ध्वनि या आवाज़ में से पैदा हुई है। यह वर्णन वैज्ञानिकों के वर्णन से पूरी तरह मिलता है।

---

* इस्मे आज़म जामा-ऐ-असमा बुवद। सूरते ऊ मानीऐ अशया बुवद।
इस्म दरीआओ तईयुन मौजे ऊ। ईं कसे दानद कि ऊ अज़ मा बुवद।[51]

† Logos, The Reason, The Word was in the beginning and the Word became flesh. The Greek term Logos means both Reason & Word. Word is the active expression of Character. The difference between the conception of Divine Intelligence or Reason and the Word of God is that the latter expresses the will of the Supreme: Vac is Brahman. (R.V. 1:3:21)[52]

आधुनिक विज्ञान के युग में, 'शब्द' या नाम को एक शक्ति के रूप में समझ सकना ज़्यादा आसान है। हम जानते हैं कि बिजली पैदा करनेवाला 'पावर-हाऊस' एक स्थान पर स्थित होता है, परन्तु उसकी शक्ति (बिजली) सैकड़ों-हज़ारों मीलों तक पहुँचती है। यह एकमात्र सूक्ष्म अदृश्य शक्ति अनेक कार्य करती है। शब्द भी एक सूक्ष्म शक्ति है, जो सबकी कर्ता है, सबका आधार है और सबके अन्दर-बाहर व्याप्त है।

सूर्य आकाश में चमकता है, पर सारे सौर-मण्डल के वनस्पति संसार और प्राणी संसार का शारीरिक जीवन, सूर्य के आधार पर क़ायम है। अगर सूर्य ठण्डा हो जाये तो क्षण-भर में सारा सौर-मण्डल सुन्न हो जायेगा। जैसे एक सौर-मण्डल का सारा जीवन, उस मण्डल के सूर्य के आधार पर चलता है, उसी तरह सारे ब्रह्माण्ड का जीवन, उस शब्द रूपी जीवनदाता, सूर्य के आधार पर चलता है। गुरु नानक साहिब की वाणी है, 'सबदि सूर जुग चारे अउधू॥'[55] अर्थात् शब्द रूपी सूर्य चारों युगों में सृष्टि का आधार रहा है।

उस महाचेतन, महासूक्ष्म शब्द रूपी सूर्य के प्रकाश की सूक्ष्म किरणें सृष्टि के कण-कण का आधार हैं। 'पावर हाऊस' में जमा शक्ति निर्लेप है, पर कारख़ानों को चला रही वही शक्ति, कर्ता-रूप में सक्रिय है। आकाश में चमकता सूर्य निर्लेप है पर उसकी जीवन-दाता किरणें कर्ता हैं। 'पावर हाऊस' एक स्थान पर है, पर उसकी बिजली प्रत्येक स्थान पर पहुँचती है। सूर्य एक जगह है पर उसकी शक्ति सर्वव्यापक है। इस तरह परमात्मा निर्लेप भी है और कर्ता भी। शब्द उस निर्लेप, निरंकार प्रभु का कर्ता-रूप है।

तिस ते होए लख दरीआउ॥ 'दरीआउ' का अर्थ केवल दरिया या समुद्र नहीं बल्कि रचना का अनन्त फैलाव है। जैसे ही परमात्मा की शक्ति सक्रिय हुई, अनन्त प्रकार की सृष्टि अस्तित्व में आ गयी। परमात्मा ने अनेक बार या रुक-रुक कर रचना नहीं की। सृष्टि की पूर्ण प्रक्रिया, एक बार में ही पूर्ण हो गयी। जो कुछ बाद में होना था, उस कर्ता ने उसकी पूर्ण सँभावनाएँ एक ही बार में सृष्टि में शामिल कर दीं।

गुरु अमरदास जी कहते हैं, 'नामे उपजै नामे बिनसै नामे सचि समाए॥'[56] जीव नाम या हुक्म द्वारा ही पैदा होता है, नाम या हुक्म द्वारा ही मरता है और नाम या हुक्म द्वारा ही वाहेगुरु रूपी सत्य में समा जाता है।[57] आप कहते हैं, 'उतपति परलउ सबदे होवै॥ सबदे ही फिरि ओपति होवै॥'[58] अर्थात् सृष्टि की रचना और उसका विनाश वाहेगुरु के नाम द्वारा ही होता है। फिर उसी नाम द्वारा दोबारा पैदाइश होती है।[59] स्पष्ट है कि कवाउ, कुन, संकल्प, मौज, उदकरख, शब्द, नाम और हुक्म आदि सब पद अपने-अपने ढंग से सृष्टि की रचना की प्रक्रिया पर प्रकाश डालते हैं।

कुदरति कवण कहा वीचारु॥ वारिआ न जावा एक वार॥
जो तुधु भावै साई भली कार॥ तू सदा सलामति निरंकार॥

यह सारी पउड़ी सिद्धान्तमय है। इसमें परमार्थ के गूढ़ सिद्धान्तों पर प्रकाश डाला गया है। पर इस पउड़ी में यह पंक्ति उपदेश के रूप में प्रकट होती है। गुरु साहिब कहते हैं: ऐ सर्वशक्तिमान, निहचल, निरंजन! 'तेरे' बारे में और 'तेरे किये' के बारे में कुछ भी सोच सकना या कह सकना असम्भव है। हमें चाहिए कि जो कुछ तू करता है, उसको 'भला' करके स्वीकार कर लें। हमें चाहिए कि मन-बुद्धि और कल्पना की उड़ानें छोड़कर तेरे भाणे में आ जायें और अपनी सोच, रहनी और करनी को तेरी रज़ा के अधीन कर दें। पीछे कई बार चर्चा हो चुकी है कि भाणे में आने का अर्थ जीवन में आने वाले सुखों-दुःखों को अकालपुरुष की मौज समझकर ख़ुशी से परवान कर लेना और लिव को नाम के साथ जोड़ना है। परमात्मा का भाणा क्यों मानना है? गुरु नानक साहिब उत्तर देते हैं, 'तेरा हुकमु भला तुधु भावै॥'[60] भाणा मानने का क्या लाभ होगा? गुरु अमरदास जी उत्तर देते हैं, 'भाणे ते सभि सुख पावै संतहु अंते नामु सखाई॥'[61]

पउड़ी 17

असंख जप असंख भाउ॥ असंख पूजा असंख तप ताउ॥
असंख गरंथ मुखि वेद पाठ॥ असंख जोग मनि रहहि उदास॥
असंख भगत गुण गिआन वीचार॥ असंख सती असंख दातार॥
असंख सूर मुह भख सार॥ असंख मोनि लिव लाइ तार॥
कुदरति कवण कहा वीचारु॥ वारिआ न जावा एक वार॥
जो तुधु भावै साई भली कार॥ तू सदा सलामति निरंकार॥

शब्दार्थ: असंख=अनगिनत। सती=सत्यवादी, दानी। मुह...सार=मुँह पर लोहे के हथियारों की चोटें सहते हैं। मोनि=मौनी, मौन धारण करनेवाले।

सरलार्थ: सोलहवीं पउड़ी में 'पंच' की महिमा के साथ, उस कर्ता की अथाह सामर्थ्य, अलौकिक सुन्दरता और उसके द्वारा बनायी गयी सृष्टि के संचालन में काम कर रहे धर्म या नियम का वर्णन कर आये हैं। सत्रहवीं पउड़ी में धरती पर दिखाई देनेवाले अनन्त नेक गुणों और यहाँ बस रहे अनन्त नेक पुरुषों का उल्लेख करते हुए कहते हैं:

उस सत्पुरुष का अनेक तरह से जप किया जाता है और बेशुमार लोग उसका जप करते हैं। न उसका कोई अन्त है, न उसके प्रेम का और न ही उसे प्रेम करनेवालों का। संसार में प्रेम और पूजा-भक्ति के बेशुमार ढंग हैं और बेशुमार लोग अलग-अलग ढंगों से तप-साधना में लगे हुए हैं।

बेशुमार ग्रन्थ हैं और बेशुमार लोग मुँह से वेदों और ग्रन्थों-शास्त्रों का पाठ कर रहे हैं। संसार में अनगिनत प्रकार के योग प्रचलित हैं और अनगिनत योगी संसार की तरफ़ से उदास, उपराम या बेख़बर होकर योग-साधना में मग्न हैं।

हे प्रभु, तेरे असंख्य भक्त हैं जो अपने ज्ञान द्वारा तेरे गुणों और तेरी बड़ाइयों के विचार में लगे हुए हैं। सत्य को धारण करनेवाले बेशुमार सत्यवादी हैं और बेशुमार दानी, दान देने में लगे हुए हैं।

असंख्य सूरमा हैं जो मुख पर शस्त्रों की चोट सहते हैं, पर पीठ नहीं दिखाते। असंख्य मौनी चुपचाप अपनी लिव की तार तेरे साथ जोड़ने के यत्न में लगे हुए हैं।

व्याख्या

असंख जप असंख भाउ॥ ... तू सदा सलामति निरंकार॥ संसार में जप-तप, पूजा-पाठ और भक्ति के अनेक साधन प्रचलित हैं। कोई जिह्वा द्वारा जप करता है, कोई मन से जप करता है, कोई माला फेरता है और कोई अनेक प्रकार के हठ-कर्मों में लगा हुआ है। सूफ़ियों में कई प्रकार के जप प्रचलित हैं, जैसे 'ज़िक्रे-जली' अर्थात् ज़ोर-ज़ोर से सुमिरन करना; 'ज़िक्रे-ख़फ़ी' अर्थात् मन में सुमिरन करना; 'ज़िक्रे-कल्बी' अर्थात् हृदय में सुमिरन करना; 'ज़िक्रे-रूही' भाव रूह द्वारा सुमिरन करना। इसी प्रकार संसार में अनेक प्रकार के तप प्रचलित हैं। न ग्रन्थों-शास्त्रों का कोई अन्त है और न ही विद्वानों, त्यागियों, योगियों, भक्तों, ज्ञानियों, दानियों और सूरमाओं का। न संसार में दिखाई दे रहे शुभ गुणों का वर्णन हो सकता है और न ही उस कर्ता का गुण, कर्म, स्वभाव वर्णन में आ सकता है।

'पुरातन टीका' में इस पउड़ी के अर्थ इस तरह किये गए हैं:

''तो सिद्धों ने पूछा जो वाहेगुरु के नाम को किस जप से कौन-से भाव से जपें॥ तो बाबा जी बोले असंख्य उसके जप हैं। असंख्य भाव हैं। अंसख्य तप करते हैं॥ कई मौन धार कर जपते हैं। कई बैखरी बानी द्वारा जपते हैं। कई साधु-संगति से प्रेम करते हैं। कई प्रियतम से प्यार करते हैं॥* कई प्रेम से ईश्वर की पूजा करते हैं। कई रखीसरों की पूजा करते हैं। कई ठाकुर की पूजा करते हैं। कई तामसी तप करते हैं—जैसे जल में बैठना अग्नि तपानी॥ कई राजसी तप करते हैं इन्द्रियों को रोकते हैं॥ कई

* जिस तरह प्रेमिका अपने प्रेमी को प्रेम करती है।

सात्विक तप करते हैं वासना को रोकते है॥ कई ग्रन्थों को मुख्य रखकर वेद पाठ करते हैं॥ शास्त्रों का पाठ करते हैं॥ कई जगत से उदास होकर योग की ताड़ी लगाते हैं॥ असंख्य भक्त हैं जो वाहेगुरु के गुण गाते हैं और ज्ञान करते हैं॥ अंसख्य सती हैं जो सत्य बोलते हैं॥ असंख्य दाता हैं जो दान देते हैं॥ असंख्य सूरमा हैं जो धर्म युद्ध लड़ते हैं, तलवार और तीर और गोलियाँ और लोहा झेलते हैं॥ अंसख्य मुनिश्वर हैं जो मौन होकर लिव की तार लगाते हैं। मैं उस महाराज की माया का क्या विचार कर सकता हूँ। मैं एक बार भी उस पर क़ुरबान जाने के योग्य नहीं। जो उस वाहेगुरु का भाणा है वही भला है॥ तुम सदा सलामत हो और रूप रंग से रहित हो॥''[1]

पउड़ी 18

असंख मूरख अंध घोर॥ असंख चोर हरामखोर॥
असंख अमर करि जाहि जोर॥
असंख गलवढ हतिआ कमाहि॥ असंख पापी पापु करि जाहि॥
असंख कूड़िआर कूड़े फिराहि॥ असंख मलेछ मलु भखि खाहि॥
असंख निंदक सिरि करहि भारु॥ नानकु नीचु कहै वीचारु॥
वारिआ न जावा एक वार॥ जो तुधु भावै साई भली कार॥
तू सदा सलामति निरंकार॥

शब्दार्थ: अमर=हुक्म। मलेछ=बुरे भावों वाले, मन्दा बोलने और मांस खाने वाले। मलु भखि खाहि=मैले या अखाद्य पदार्थों को खाना।

सरलार्थ: यदि संसार में शुभ गुणों और नेक लोगों की कमी नहीं, तो बुराइयों और बुरे कर्म करनेवालों की भी कोई कमी नहीं। गुरु साहिब कहते हैं:

बेशुमार मूर्ख घोर अन्धेरे में फँसे हुए हैं। बेशुमार चोर और हरामख़ोर हैं। बेशुमार लोग ज़ोर और ज़ुल्म से संसार पर अपना हुक्म (अमर)

चला जाते हैं। असंख्य गला काटने वाले कसाई हैं और अनेक हत्यारे हत्याएँ कर रहे हैं। असंख्य पापी भाँति-भाँति के पाप कमा जाते हैं। असंख्य झूठे दिन- रात झूठ बोलते रहते हैं। अनेक मलिन इच्छाओं वाले मलेच्छ, अखाद्य पदार्थों की मैल खाते हैं। अनेक निन्दक अपने सिर पर परायी निन्दा का भार लाद रहे हैं।

व्याख्या

असंख मूरख अंध घोर॥ मूर्ख उसको कहते हैं, जिसकी अक़्ल काम न करती हो, जो अपना भला-बुरा न जानता हो और जो ठीक और ग़लत, अच्छे और बुरे में पहचान न कर सकता हो। गुरु साहिब हम दुनियादारों को मूर्ख कहते हैं क्योंकि हम सामयिक लाभ के लोभ में पड़कर अपने स्थायी लाभ से बेख़बर हो जाते हैं। हम माया रूपी झूठ को सच समझ रहे हैं और परमात्मा रूपी सच की तरफ़ से आँखें मूँदे हुए हैं। हम इन्द्रियों के भोगों और विषय-विकारों को सच्चे सुख का स्रोत समझ रहे हैं जब कि ये असल में हमारी शारीरिक, मानसिक और आत्मिक तबाही का कारण सिद्ध होते हैं। हम परम सुख के अथाह स्रोत उस परमात्मा की तरफ़ से बेख़बर हैं। हम संसार के शक़्लों-पदार्थों और दुनिया की मान-बड़ाइयों को सच समझकर इनमें इस क़दर खोये हुए हैं कि हमने अपने निज घर सचखण्ड और अपने सच्चे पिता परमात्मा की तरफ़ पीठ की हुई है।

गुरु नानक साहिब की वाणी है, 'पड़िआ मूरखु आखीऐ जिसु लबु लोभु अहंकारा॥'[1] आप कहते हैं कि साधारण लोग ही नहीं, बड़े-बड़े विद्वान और धर्म-ग्रन्थों के ज्ञाता भी बेसमझ हैं क्योंकि उन्होंने सांसारिक पढ़ाई की तरफ़ ध्यान दिया, पर अपने मन को विषय-विकारों और आशा-तृष्णा की मलिनता से निर्मल बनाने का यत्न नहीं किया। जो व्यक्ति संसार में आने के असल मक़सद को भुला देता है, उससे ज़्यादा बेसमझ और कौन हो सकता है? गुरु साहिब ने इस तरह के दुनियादारों के लिए बहुत कठोर शब्दों का प्रयोग किया है। आप उनको मूर्ख ही नहीं, अन्धे-अज्ञानी भी कहते हैं। मुहावरा है: अक़्ल का अन्धा। गुरु

नानक साहिब कहते हैं, 'अंधे अकली बाहरे मूरख अंध गिआनु॥'[2] अर्थात् प्रभु और उसकी भक्ति की तरफ़ से अचेत लोग मूर्ख और अन्धे हैं। आप कहते हैं, 'अंधे एहि न आखीअनि जिन मुखि लोइण नाहि॥ अंधे सेई नानका खसमहु घुथे जाहि॥'[3] आँखें होने के बावजूद हम अन्धे हैं क्योंकि न हमें वह प्रभु दिखाई देता है और न ही उसके मिलाप का रास्ता दिखाई देता है। गुरु नानक साहिब की वाणी है:

मूरखु सिआणा एकु है एक जोति दुइ नाउ॥
मूरखा सिरि मूरखु है जि मंने नाही नाउ॥[4]

गुरु साहिब उन लोगों को सबसे बड़े मूर्ख कहते हैं जो परमात्मा द्वारा अपने साथ मिलाप के लिए बनाये गये साधन को छोड़कर मनमर्ज़ी के अनेक साधनों में खचित होकर अपना वक़्त बरबाद कर रहे हैं।

असंख चोर हरामखोर॥ इस पंक्ति का एक अर्थ यह किया जाता है कि संसार में असंख्य चोर और हरामख़ोर हैं। इसकी यह व्याख्या भी की जाती है कि अनेक लोग जो मालिक का भजन नहीं करते, वे मालिक के चोर हैं। वे उसका दिया खाते हैं पर फिर भी उसकी भक्ति नहीं करते, इसलिए वे हरामख़ोर और नमक-हरामी हैं। गुरु अर्जुन साहिब का शब्द है:

जिस का दीआ पैनै खाइ॥ तिसु सिउ आलसु किउ बनै माइ॥
खसमु बिसारि आन कंमि लागहि॥ कउडी बदले रतनु तिआगहि॥
प्रभू तिआगि लागत अन लोभा॥ दासि सलामु करत कत सोभा॥
अंम्रित रसु खावहि खान पान॥ जिनि दीए तिसहि न जानहि सुआन॥
कहु नानक हम लूण हरामी॥ बखसि लेहु प्रभ अंतरजामी॥[5]

आपका भाव है कि जो जीव दात बख़्शने वाले दाता को भुला देता है, वह नमक-हरामी या हरामख़ोर है।

हम सब आसान रास्ता ढूँढ़ते हैं, चाहे यह नरकों में ही क्यों न जाता हो। हम सोचते हैं: 'इह जग मिट्ठा अगला किन डिट्ठा।' लोग मेहनत और हक़-हलाल की कमाई द्वारा रोज़ी-रोटी कमाने की जगह चोरी, ठगी

और बेईमानी द्वारा रातो-रात अमीर बनना चाहते हैं। यह सबकुछ वे इस भ्रम का शिकार होकर करते हैं कि न तो कोई उनके कर्म देख रहा है और न ही उन्हें किये हुए कर्मों का फल भुगतना पड़ेगा। गुरु अर्जुन साहिब की वाणी है:

खुसि खुसि लैदा वसतु पराई॥ वेखै सुणे तेरै नालि खुदाई॥
दुनीआ लबि पइआ खात अंदरि अगली गल न जाणीआ॥[6]

गुरु साहिब ख़बरदार करते हैं कि परमात्मा, अन्दर बैठा सबकुछ देख रहा है। वह हमारी हरएक सोच की ख़बर रखता है और हमें किये हुए कर्मों की सज़ा ज़रूर भुगतनी पड़ेगी। गुरु नानक साहिब कहते हैं:

हकु पराइआ नानका उसु सूअर उसु गाइ॥
गुरु पीरु हामा ता भरे जा मुरदारु न खाइ॥[7]

गुरु साहिब ख़बरदार करते हैं कि पराया हक़ मारना हिन्दुओं के लिए गाय और मुसलमानों के लिए सूअर का मांस खाने के समान है। गुरु-पीर केवल उन शिष्यों की ज़िम्मेदारी लेते हैं और सहायता करते हैं जो उनके द्वारा खींची लकीर के अन्दर रहते हैं और पराया हक़ नहीं मारते।

असंख अमर करि जाहि जोर॥ 'अमर' अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है हुक्म। अनेक ज़ालिम संसार में मनमानी करते हैं। अनेक अत्याचारी कुल मालिक के जीवों के साथ भेड़ों-बकरियों जैसा बर्ताव करते हैं। वे यह नहीं समझते कि उन मज़लूमों की पुकार कुल मालिक की दरगाह में पहुँचती है और हर ज़ालिम को देर-सवेर अपने हर ज़ुल्म की सज़ा का भुगतान करना पड़ेगा। कुल मालिक के न्याय की चक्की पीसती धीरे-धीरे है, पर पीसती बहुत बारीक है। राजा-महाराजा और हाकिम यह समझने का यत्न नहीं करते कि उनको श्रेष्ठ कर्मों के कारण राज-पाट और हुकूमत मिली है। कुल मालिक ने ये दातें ख़लक़त (सृष्टि) की सेवा और सहायता के लिए बख़्शी हैं, अत्याचार करने के लिए नहीं। एक कहावत है: 'तप से राज और राज से नरक।' पूर्व जन्मों

के उत्तम कर्मों के कारण मिली पदवियों का सहारा लेकर मालिक के जीवों पर ज़ुल्म करेंगे तो अपने लिए नरकों का सामान तैयार कर लेंगे।

असंख गलवढ हतिआ कमाहि॥ जीव-हत्या का सम्बन्ध हिंसा से है। हमारे मन में हिंसा भरी है। हिंसा के इस भाव ने हमारे क्षमा और प्रेम के गुणों को नष्ट कर दिया है। संसार में सदा क़ौमों, मज़हबों, मुल्कों के झगड़े होते रहते हैं। धर्म के नाम पर अनेक मासूमों की बेरहमी से हत्या कर दी जाती है। हम एक तरफ़ यह कहते हैं कि सबका सृजनहार एक है और सबके अन्दर उस एक का नूर समाया हुआ है और दूसरी तरफ़ बेरहमी से लोगों को क़त्ल कर देते हैं। हम यह भूल जाते हैं कि उस पिता-परमात्मा के बनाये जीवों की हत्या करके हम उसकी प्रसन्नता प्राप्त नहीं कर सकते। इसी तरह हम अपने पेट की ख़ातिर निर्दोष जानवरों की गर्दन पर छुरियाँ चलाते हैं। कबीर साहिब कहते हैं:

जउ सभ महि एकु खुदाइ कहत हउ तउ किउ मुरगी मारै॥[8]

अर्थात् यदि सब जीवों के अन्दर एक कर्ता का नूर समाया हुआ है तो भेड़ों-बकरियों और अन्य जानवरों को भोजन की ख़ातिर मारना जायज़ कैसे हो सकता है? आप कहते हैं:

जीअ बधहु सु धरमु करि थापहु अधरमु कहहु कत भाई॥
आपस कउ मुनिवर करि थापहु का कउ कहहु कसाई॥[9]

कबीर साहिब कहते हैं कि यदि जीव-हत्या करनेवाले लोग धर्मी हैं, तो पापी, अधर्मी और कसाई कौन हैं? आप सावधान करते हैं:

कबीर जीअ जु मारहि जोरु करि कहते हहि जु हलालु॥
दफतरु दई जब काढि है होइगा कउनु हवालु॥[10]

हम निडर होकर जीव-हत्या करते रहते हैं। हम भूल जाते हैं कि जब जीव-हत्या के घोर पाप का हिसाब भुगतने के लिए हमारी गर्दनों पर छुरियाँ चलेंगी तो हमारी क्या हालत होगी।

कुछ लोग धर्म के नाम पर जीवों की बलि चढ़ाते हैं। कुछ लोग भेड़ों-बकरियों आदि की गर्दनों पर छुरी चलाने से पहले किसी पवित्र मन्त्र या कलमे का जप करते हैं। वे समझते हैं कि इस तरह तैयार किया गया मांस खाने के क़ाबिल बन जाता है। यह सब मन का धोखा है। कबीर साहिब की वाणी है:

बेद कतेब कहहु मत झूठे झूठा जो न बिचारै॥
जउ सभ महि एकु खुदाइ कहत हउ तउ किउ मुरगी मारै॥[11]

आप हमें ख़बरदार करते हैं कि धर्म-ग्रन्थों का सहारा लेकर ग़लत को ठीक साबित करने की कोशिश न करो। संसार का कौन-सा धर्म-ग्रन्थ है, जिसमें यह नहीं लिखा कि हर जीव के अन्दर एक ही ख़ुदा का नूर है। यदि सब जीव समान हैं तो जीव-हत्या को धर्म के अनुकूल कैसे कह सकते हो? आप कहते हैं, 'सरजीउ काटहि निरजीउ पूजहि अंत काल कउ भारी॥'[12] आप चेतावनी देते हैं कि तुम पत्थरों के बने ठाकुरों को ख़ुश करने के लिए जीवित जीवों के गले काटते हो जिनके अन्दर परमात्मा का निवास है। जब अन्त समय कर्मों का हिसाब होगा तो तुम्हें अपनी अज्ञानता के कारण पछताना पड़ेगा।

असंख पापी पापु करि जाहि॥ संसार के अनेक लोग घोर पाप करके अपना जीवन बरबाद कर लेते हैं। पाप का अर्थ किसी दूसरे को दुःख या हानि पहुँचाना है। अनेक लोग मन द्वारा लोगों का बुरा सोचते हैं, अनेक लोग कठोर वचनों द्वारा लोगों का दिल तोड़ते हैं और अनेक अन्य दूसरों को कई प्रकार के कष्ट और हानि पहुँचाते हैं। वे यह नहीं सोचते कि किये हुए पाप साथ जाते हैं और देर-सवेर हर पाप का फल भुगतना पड़ता है। हमें आज जो भी सुख मिल रहे हैं, पूर्व-जन्मों के पुण्य-कर्मों के कारण मिल रहे हैं और जो भी दुःख मिल रहे हैं, पिछले पाप-कर्मों के कारण मिल रहे हैं। हम रोते-चिल्लाते और दुःखी होते हुए पिछले पापों का फल भुगत रहे हैं और आगे फिर वैसे ही पाप किये जा रहे हैं। हम यह नहीं सोचते कि इनका फल भी हमें ख़ुद ही भुगतना पड़ेगा।

असंख कूड़िआर कूड़े फिराहि॥ इस पंक्ति का एक अर्थ यह किया जाता है कि अनेक झूठे झूठ बोलने में लगे रहते हैं। इसका दूसरा अर्थ यह किया जाता है कि माया रूपी कूड़ में लगे अनेक कूड़िआर इसमें ही भटकते रहते हैं। वे सदा आवागमन के चक्कर में फँसे रहते हैं। गुरु साहिब कहते हैं:

कूड़ि कूड़ै नेहु लगा विसरिआ करतारु॥[13]

आप कहते हैं कि दुनिया झूठी है और परमात्मा रूपी सत्य को भुलाकर झूठी दुनिया से प्यार करनेवाले भी झूठे हैं।

असंख मलेछ मलु भखि खाहि॥ संसार में अनेक लोगों का विचार, आहार और आचार मलेच्छ या नीच वृत्ति के लोगों जैसा होता है। वे बुरा सोचते हैं, बुरा खाते-पीते हैं और व्यवहार भी बुरा ही करते हैं। वे राक्षसी वृत्ति के अधीन मांस-मछली आदि पदार्थ खाते हैं और शराब आदि नशीली चीज़ों का प्रयोग करते हैं। ऐसे लोग विकारों की मैल से हृदय को गन्दा कर लेते हैं। गुरु साहिब की वाणी है:

रसु सुइना रसु रुपा कामणि रसु परमल की वासु॥
रसु घोड़े रसु सेजा मंदर रसु मीठा रसु मासु॥
एते रस सरीर के कै घटि नाम निवासु॥[14]

अर्थात् जिस हृदय में रुपये-पैसे, स्त्री, अनेक प्रकार की सुगन्धियाँ, भाँति-भाँति की सवारी, सुन्दर महलों-भवनों, अनेक प्रकार के खट्टे-मीठे पदार्थों और मांस आदि का चसका समाया हुआ है, उसके अन्दर परमात्मा और उसके नाम के लिए जगह कैसे हो सकती है? हम जिह्वा के स्वाद के लिए निर्दोष जानवरों का मांस खाते हैं। पर हम यह नहीं सोचते कि इससे हमारे कर्मों का बोझ कितना बढ़ जाता है। कबीर साहिब की वाणी है:

कबीर खूबु खाना खीचरी जा महि अंम्रितु लोनु॥
हेरा रोटी कारने गला कटावै कउनु॥[15]

आप कहते हैं कि मैं तो सलूनी खिचड़ी खाकर ही गुज़ारा कर लेता हूँ क्योंकि मुझमें मांस खाकर अपना गला कटवाने की हिम्मत नहीं। भाई गुरदास जी लिखते हैं:

कुहै कसाई बकरी लाइ लूण सीख मास परोआ॥
हसि हसि बोलै कुहीदी खाधे अकु हाल इह होआ॥
मास खाण गल छुरी दे हाल तिनाड़ा कउणु अलोआ॥[16]

यह महापुरुषों का बात समझाने का एक ढंग है। आप कहते हैं कि बकरी कसाई को कहती है कि मैं तो सिर्फ़ झाड़ियाँ और पत्ते खाकर ही गुज़ारा करती थी तो भी मेरा गला काटा जा रहा है, जो लोग निर्दोष जानवरों की गर्दनों पर छुरियाँ चलाकर उनका मांस खाते हैं, उनका क्या हाल होगा!

शराब आदि नशों का प्रयोग मलेच्छ वृत्तिवाले लोग ही करते हैं। गुरु अमरदास जी की वाणी है:

माणसु भरिआ आणिआ माणसु भरिआ आइ॥
जितु पीतै मति दूरि होइ बरलु पवै विचि आइ॥
आपणा पराइआ न पछाणई खसमहु धके खाइ॥
जितु पीतै खसमु विसरै दरगह मिलै सजाइ॥
झूठा मदु मूलि न पीचई जे का पारि वसाइ॥[17]

आप उपदेश करते हैं कि शराबी की बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। उसको अपने और पराये की पहचान नहीं रहती। उसको अकालपुरुष की याद भूल जाती है और दरगाह में धक्के खाने पड़ते हैं। शराब का नशा झूठा है। कभी, किसी हालत में शराब नहीं पीनी चाहिए।

असंख निंदक सिरि करहि भारु॥ सन्तों-महात्माओं ने पर-तन, पर-धन और पर-निन्दा को घोर पाप कहा है। परमार्थ में तरक़्क़ी के चाहवान को इन तीनों के त्याग का उपदेश दिया गया है। गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं:

प्रथमे छोडी पराई निंदा॥ उतरि गई सभ मन की चिंदा॥
लोभु मोहु सभु कीनो दूरि॥ परम बैसनो प्रभ पेखि हजूरि॥
ऐसो तिआगी विरला कोइ॥ हरि हरि नामु जपै जनु सोइ॥[18]

आप फ़रमाते हैं कि सच्चे त्यागी और प्रभु-भक्त बनना चाहते हो तो सबसे पहले पर-निन्दा और पाँच विकार त्याग दो। फिर तुम्हारी लिव नाम के साथ जुड़ जायेगी और तुम्हें प्रभु के दर्शन हो जायेंगे।

सन्तों-महात्माओं ने निन्दा को गुनाहे-बेलज़्ज़त कहा है। काम में, मांस-शराब में तो कोई स्वाद हो सकता है पर निन्दा में क्या स्वाद है? निन्दक फ़ज़ूल में दूसरों के कर्मों का बोझ उठाता है। जिसकी कोई निन्दा करता है, उसको अपने से छोटा, घटिया या बुरा समझता है और अपने आपको बड़ा, ऊँचा और नेक मानता है। यह हौंमैं है। कबीर साहिब कहते हैं:

कबीर सभ ते हम बुरे हम तजि भलो सभु कोइ।
जिनि ऐसा करि बूझिआ मीतु हमारा सोइ॥[19]

परमार्थ में वह तरक़्क़ी करता है जो बाक़ी सबको अपने से ऊँचा और बड़ा समझता है और अपने आपको छोटा या तुच्छ समझता है। गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं:

आपस कउ जो भला कहावै॥ तिसहि भलाई निकटि न आवै॥[20]

आपस कउ जो जाणै नीचा॥ सोऊ गनीऐ सभ ते ऊचा॥[21]

आम तौर पर निन्दा के पीछे ईर्ष्या छिपी होती है। निन्दक दूसरों की ख़ुशी और मान-बड़ाई सहन नहीं कर सकता। उसकी दृष्टि दूषित हो जाती है, जिस कारण उसको दूसरों के गुण भी अवगुण प्रतीत होते हैं। दरअसल उसका अपना मन निर्बल और मलिन होता है, जिस कारण उसको दूसरे घटिया और मलिन नज़र आते हैं।

कहावत है: जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि। जैसी हमारी नज़र होगी दुनिया हमें उसी तरह की नज़र आयेगी। भाई गुरदास जी लिखते हैं, 'बुरा न

कोइ युधिसटरै, दुरजोधन को भला न भेखै॥'[22] गुरु ने दुर्योधन को यह कहकर भेजा कि तुम कोई अच्छा व्यक्ति ढूँढ़कर लाओ। युधिष्ठिर को यह कहकर भेजा कि तुम कोई बुरा व्यक्ति ढूँढ़कर लाओ। दुर्योधन ने आकर कहा कि गुरु जी, मैंने बहुत ढूँढ़ा लेकिन मुझे कोई भी अच्छा व्यक्ति नज़र नहीं आया। युधिष्ठिर ने आकर कहा कि गुरु जी, मुझे कोई भी बुरा नज़र नहीं आया, ऐसा लगता है कि सबसे बुरा मैं ही हूँ। दो व्यक्ति एक ही नगरी को दो दृष्टियों से देख रहे हैं। अच्छाई और बुराई हमारी अपनी दृष्टि में ही होती है। लोगों में अवगुण ढूँढ़ने की बजाय अपनी दृष्टि में सुधार करना चाहिए। कुल मालिक के प्रेम के ज़रिये अन्दर ऐसी दृष्टि जाग्रत करनी चाहिए कि हम अच्छे-बुरे की द्वैत से मुक्त हो जायें और हमें सबमें एक प्रभु की ज्योति नज़र आये।

महात्मा समझाते हैं कि जिसकी कोई निन्दा करता है, उसके अवगुण अपने ऊपर ले लेता है और उसके गुण उसमें चले जाते हैं। कबीर साहिब कहते हैं:

रिदै सुध जउ निंदा होइ॥ हमरे कपरे निंदकु धोइ॥[23]

जन कबीर कउ निंदा सारु॥ निंदकु डूबा हम उतरे पारि॥[24]

किसी की निन्दा करना उसके ज़ख़्मों को जिह्वा से चाटने के समान है। गुरु अमरदास जी उपदेश करते हैं:

निंदा भली किसै की नाही मनमुख मुगध करंनि॥
मुह काले तिन निंदका नरके घोरि पवंनि॥[25]

नानकु नीचु कहै वीचारु॥ 'नानकु नीचु'—इस पउड़ी में अनेक क़िस्म के अवगुणों वाले लोगों का ज़िक्र करते हुए गुरु साहिब ने अपने आपको उनमें शामिल कर लिया है। यह आपकी अद्वितीय नम्रता की निशानी है।

सन्त-महात्मा हम जैसे पापियों को साधु, सन्त, गुरुमुख, भक्त, प्यारे आदि नामों से सम्बोधित करते हैं पर अपने आपको पापी, अपराधी,

गुनहगार, मूर्ख, अज्ञानी, विकारी, नीच, दासानुदास, लाला-गोला, नीच-कर्मा आदि कहते हैं। गुरु अर्जुन देव जी का कथन है:

कहु नानक हम नीच करंमा॥ सरणि परे की राखहु सरमा॥[26]

सूरदास जी कहते हैं:

तुम नाथन के नाथ सुवामी, दाता नाम तिहारौ॥
करमहीन जनम को अंधो, मो तें कौन नकारो॥
तीन लोक के तुम प्रति-पालक, मैं तो दास तिहारो॥
तारी जाति कुजाति प्रभू जी, मो पर किरपा धारो॥
पतितन में इक नायक कहिये, नीचन में सरदारो॥
कोटि पापी इक पासँग मेरे, अजामिल कौन बिचारो॥
नाठो धरम नाम सुनि मेरो, नरक कियो हठ तारो॥
मो को ठौर नहीं अब कोऊ, अपनो बिरद सम्हारो॥[27]

आप अपने आपको अन्धा, कुकर्मी और नीचों का सरदार कहते हैं। आप कहते हैं कि करोड़ों पापियों के पाप मिलकर भी मेरे पापों की बराबरी नहीं कर सकते। आप कहते हैं कि मेरा नाम सुनकर तो धर्मराज भी काँपता है और नरक भी काँपते हैं।

भाई गुरदास गुरु नानक साहिब के बारे में लिखते हैं:

पहिला बाबे पाया बखसु दरि पिछो दे फिरि घालि कमाई।
रेतु अकु आहारु करि रोड़ा की गुर कीअ विछाई।
भारी करी तपसिआ वडे भागि हरि सिउ बणि आई।
बाबा पैधा सचि खंडि नउ निधि नाम गरीबी पाई।[28]

आप कहते हैं कि गुरु साहिब ने परमात्मा की कृपा से रूखा-सूखा भोजन खाकर तथा अनेक कष्ट सहकर भारी तपस्या की। कुल मालिक की दया से उनका परमात्मा से मिलाप हो गया। उस दयालु प्रभु ने आपको नाम के अथाह भण्डार तथा नम्रता की दात बख़्श दी। गुरु नानक

साहिब का वचन है, 'मिठतु नीवी नानका गुण चंगिआईआ ततु॥'[29] आप कहते हैं कि मधुर वचन बोलना और हृदय में नम्रता धारण करना सर्वश्रेष्ठ गुण है।

हमारी यह हालत है कि यदि हमें चार लोग भी हाथ जोड़ना शुरू कर दें तो हमारे पाँव ज़मीन पर नहीं लगते। सन्त-महात्मा कुल मालिक का रूप होने पर भी अपने लिए ऐसे दीनतापूर्ण शब्दों का इस्तेमाल करते हैं। सन्तों का शृंगार भी विनम्रता है और उनकी पहचान भी विनम्रता है।

पउड़ी 19

असंख नाव असंख थाव॥ अगंम अगंम असंख लोअ॥
असंख कहहि सिरि भारु होइ॥
अखरी नामु अखरी सालाह॥ अखरी गिआनु गीत गुण गाह॥
अखरी लिखणु बोलणु बाणि॥ अखरा सिरि संजोगु वखाणि॥
जिनि एहि लिखे तिसु सिरि नाहि॥ जिव फुरमाए तिव तिव पाहि॥
जेता कीता तेता नाउ॥ विणु नावै नाही को थाउ॥
कुदरति कवण कहा वीचारु॥ वारिआ न जावा एक वार॥
जो तुधु भावै साई भली कार॥ तू सदा सलामति निरंकार॥

शब्दार्थ: असंख=अनगिनत। लोअ=लोक, मण्डल। बाणि=वाणी, बोली। वखाणि=वर्णन।

सरलार्थ: गुरु साहिब ने सत्रहवीं और अठारहवीं पउड़ी में संसार में नज़र आते अनेक पुण्य और पाप करनेवालों का वर्णन किया है। उन्नीसवीं पउड़ी में आप इशारा करते हैं कि बात इस धरती के अनन्त जीवों तक ही सीमित नहीं है। परमात्मा की रचना अगम और अथाह है। इसका हिसाब लगा सकना असम्भव है। आप कहते हैं:

हे प्रभु! संसार में असंख्य नाम हैं और असंख्य स्थान हैं। असंख्य ऐसे लोक या मण्डल हैं, जिन तक हमारी पहुँच नहीं। हम अपनी तरफ़ से 'असंख्य' कहकर उस कर्ता की बनाई हुई सृष्टि का वर्णन करते हैं पर असल में 'असंख्य' कहने से भी सिर पर भार अर्थात् पाप चढ़ता है क्योंकि उसकी रचना अनन्त और ला-बयान है।

हम अक्षरों द्वारा रचना और रचयिता का वर्णन करने के लिए मजबूर हैं क्योंकि हमारे पास उसके किये हुए को बयान करने का अक्षरों या भाषा के अलावा दूसरा कोई साधन नहीं। हम अक्षरों द्वारा ही उसकी तथा उसके नाम की सिफ़त-सलाह कर सकते हैं। हमें उसके बारे में जो भी ज्ञान है, हम उसको अक्षरों द्वारा ही प्रकट करते हैं और अक्षरों द्वारा ही उसकी महिमा के गीत गाते हैं। बोली बोलने, लिखने और वाणी की रचना का कार्य अक्षरों द्वारा ही सम्भव है।

कुल मालिक ने मस्तक में संयोग-वियोग का जो लेख लिखा है, उसको भी अक्षरों में ही बयान किया जाता है। पर जिस मालिक ने सब लेख लिखे हैं, उसके सिर पर किसी लेख का भार नहीं है। जिसे जो कुछ मिलता है, प्रभु के हुक्म के अनुसार मिलता है। उसका हुक्म हरएक पर चलता है पर वह ख़ुद किसी लेख या हुक्म के अधीन नहीं। उस कर्ता ने जो कुछ किया है वह नाम-रूप है। कुछ भी और कोई भी जगह नाम से ख़ाली नहीं।

व्याख्या

असंख नाव असंख थाव॥ अगंम अगंम असंख लोअ॥ गुरु साहिब कहते हैं कि न संसार की सब जगहों का पूर्ण लेखा बयान किया जा सकता है, न ही उन असंख्य खण्डों-ब्रह्माण्डों का हिसाब लगाया जा सकता है, जो मन-इन्द्रियों की पहुँच से बाहर हैं और न ही उन अनन्त वस्तुओं-पदार्थों, शक्लों-सूरतों का हिसाब लगाया जा सकता है जिनको हम अलग-अलग नामों से पुकारते हैं।

असंख कहहि सिरि भारु होइ॥ इस पंक्ति का एक अर्थ यह किया गया है कि असंख्य लोग सिर के बल खड़े होकर (सिरि भारु होइ) अकालपुरुष की महिमा कर रहे हैं। इसका दूसरा अर्थ यह किया जाता है कि अकालपुरुष की महिमा के लिए 'असंख' का प्रयोग करना भी अपने सिर पर बोझ उठाना अर्थात् अपने आपको दोषी बनाना है ।

अखरी नामु अखरी सालाह॥ अखरी गिआनु गीत गुण गाह॥
अखरी लिखणु बोलणु बाणि॥ अखरा सिरि संजोगु वखाणि॥

हम जो कुछ लिखते और बोलते हैं, अक्षरों या भाषा द्वारा लिखते और बोलते हैं। हम इनसान के कर्मों और उनके कारण जन्म लेनेवाली प्रारब्ध या तक़दीर को भी लफ़्ज़ों के ज़रिये बयान करने की कोशिश करते हैं, पर वास्तव में हर चीज़ को लफ़्ज़ों के ज़रिये बयान कर सकना सम्भव नहीं। भाषा या शब्द सीमित हैं, इसलिए ये उस असीम प्रभु और उसकी असीम रचना का वर्णन करने में असमर्थ हैं।

जिनि एहि लिखे तिसु सिरि नाहि॥ जिव फुरमाए तिव तिव पाहि॥
जेता कीता तेता नाउ॥ विणु नावै नाही को थाउ॥

आप फ़रमा रहे हैं कि जो कुछ होता है, उस हुक्मी के हुक्म द्वारा होता है। प्रभु द्वारा सृजित सारी रचना कर्म और फल के नियम के अनुसार चल रही है, पर कर्म और फल का नियम बनाने वाला प्रभु इस नियम से ऊपर है। वह कर्म और फल, आवागमन और चौरासी के बन्धन से आज़ाद है। जो कुछ उसने बनाया है, नाम या हुक्म द्वारा बनाया है। जो कुछ बनाया है, उसमें नाम भरपूर है और जो कुछ बनाया है, सब नाम का रूप है। इस तरह गुरु साहिब नाम को हुक्म के क्रियान्वित होने का साधन बताते हुए नाम और हुक्म की पूर्ण एकता का रहस्य खोल रहे हैं। आप कहते हैं:

चहु दिसि हुकमु वरतै प्रभ तेरा चहु दिसि नाम पतालं॥
सभ महि सबदु वरतै प्रभ साचा करमि मिलै बैआलं॥[1]

आप कहते हैं कि हे प्रभु ! तेरा हुक्म चारों दिशाओं में लागू है, तेरा नाम चारों दिशाओं में और पाताल तक व्याप्त है और तू शब्द-रूप होकर सबमें समाया हुआ है। प्रत्यक्ष है कि आप परमेश्वर, हुक्म, नाम और शब्द—चारों को सर्वव्यापक कह रहे हैं। इसलिए प्रभु, नाम, शब्द और हुक्म को कर्ता-धर्ता, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञाता और मुक्ति-दाता कहने में कोई आत्म-विरोध नहीं है।

भाई वीर सिंह जी के अनुसार व्याख्या

भाई वीर सिंह जी ने 'अखरी नामु अखरी सालाह' को 'जेता कीता तेता नाउ॥ विणु नावै नाही को थाउ' से जोड़ा है। आप कहते हैं:

''चौथी पंक्ति (अखरी नामु) से विषय कुछ बदलता महसूस होता है, परन्तु वह पहले बयान किये गये पद 'कहहि' की ही व्याख्या है। 'कहना' अक्षरों द्वारा होता है—'अखरी लिखणु बोलणु बाणि॥' अर्थात् लिखने और बोलने में जो आता है, वह अक्षर ही है और वाणी अक्षरों द्वारा ही लिखी और बोली जाती है। इन अक्षरों द्वारा परमात्मा के नाम का उच्चारण और सुमिरन किया जाता है। इन अक्षरों द्वारा ही साईं की सिफ़त-सलाह लिखकर या बोलकर करते हैं। कीर्तन का गायन, ज्ञान का कथन और गुणों की व्याख्या अक्षरों द्वारा ही होती है। भाव यह हुआ कि सारा कार्य अक्षरों द्वारा या यूँ कहो कि कहने-कहलाने से ही हो रहा है और 'नाम सिफत सलाह' सब परमार्थ भी इसी तरीक़े से हो रहा है। यहाँ तक कि जीवों के सिर जो प्रारब्ध रूपी लेख लिखे हैं, उनकी व्याख्या और वर्णन भी अक्षरों द्वारा ही होता है, पर यह संयोग जिसने लिखे हैं, उसके सिर पर कोई लेख नहीं; वह स्वतन्त्र, स्वच्छन्द और अलेप है:

द्रिसटिमान अखर है जेता॥ नानक पारब्रहम निरलेपा॥[2]

पर निर्लेप होने के कारण वह उदास होकर एक तरफ़ नहीं बैठा हुआ, वह हुक्म का हुक्मी है और जैसा वह हुक्म करता है, वैसा जीवों को प्राप्त होता है, पर जो कुछ उसका 'किया' अर्थात् रचा हुआ है, वह

स्वतन्त्र या अपने आसरे नहीं है, वह उसके 'नाम पर आश्रित' है, नाम के बिना किसी चीज़ का कोई ठिकाना नहीं है। वह की हुई का 'आश्रय रूप नाम', 'अक्षरों वाले' नाम द्वारा प्राप्त होता है, जिसका पता आप ऊपर बता आये हैं:

अखरी नामु अखरी सालाह॥

उस आसरा-रूप नाम को, जिसको व्यापक नाम बताया है 'विणु नावै नाही को थाउ' कहा गया है, फिर इसके बारे में 'आसा दी वार' में ऐसे कहा गया है:

आपीन्है आपु साजिओ आपीन्है रचिओ नाउ॥
दुयी कुदरति साजीऐ करि आसणु डिठो चाउ॥[3]

अर्थात् आपी (निरंकार) ने अपने आपको साजा और आपी ने ही नाम रचा। यहाँ तक एक की गिनती है, आगे जो रचा वह द्वैत की गिनती में आया। यह 'दुयी' जिसको 'कुदरति' कहा है और यहाँ 'जेता कीता' कहा है, किसके सहारे है? उत्तर—उस नाम के सहारे है जो उस आपी (प्रभु) ने रचा है। गुरु अर्जुन देव जी ने यही बात खोलकर लिखी है:

नाम के धारे आगास पाताल॥ नाम के धारे सगल आकार॥
नाम के धारे पुरीआ सभ भवन॥[4]

आपे पिंडु सवारिओनु विचि नव निधि नामु॥[5]

नउ निधि अंम्रितु प्रभ का नामु॥ देही महि इस का बिस्रामु॥[6]

सुंन समाधि अनहत तह नाद॥ कहनु न जाई अचरज बिसमाद॥[7]

इस नाम की समझ कैसे आती है? उत्तर—इस 19वीं पउड़ी में जो कहा है, 'अखरी नामु अखरी सालाह', इस अक्षरों वाले नाम का अभ्यास करते हैं तो उस नाम तक पहुँचते हैं, यथा—'करि किरपा जिसु आपनै

नामि लाए॥'[8] इस अभ्यास से— 'नानक चउथे पद महि सो जनु गति पाए॥'[9]। वह चौथे पद में पहुँचता है, फिर उसे इस संसार का सहारा बनने वाले व्यापक नाम की समझ आती है और वह नाम के नामी अर्थात् 'आपी' में समा जाता है। वह फिर क्या देखता है—'सभ घट तिस के सभ तिस के ठाउ॥ जपि जपि जीवै नानक हरि नाउ॥'[10]।''[11]

पउड़ी 20

भरीऐ हथु पैरु तनु देह॥ पाणी धोतै उतरसु खेह॥
मूत पलीती कपड़ु होइ॥ दे साबूणु लईऐ ओहु धोइ॥
भरीऐ मति पापा कै संगि॥ ओहु धोपै नावै कै रंगि॥
पुंनी पापी आखणु नाहि॥ करि करि करणा लिखि लै जाहु॥
आपे बीजि आपे ही खाहु॥ नानक हुकमी आवहु जाहु॥

सरलार्थ: गुरु साहिब पिछली पउड़ी में समझा आये हैं कि संसार की रचना और सँभाल का कार्य परमात्मा का नाम करता है। इस पउड़ी में बताते हैं कि मन-बुद्धि पर चढ़ी कर्मों और संस्कारों की मैल उतार कर, इन्हें निर्मल बनाने का कार्य भी परमात्मा का नाम करता है। गुरु साहिब एक दृष्टान्त द्वारा समझाते हैं:

यदि शरीर या शरीर के अंग मिट्टी से भर जायें तो पानी के साथ धोने से मिट्टी उतर जाती है। यदि कपड़ा मल-मूत्र के कारण गन्दा हो जाये तो उसे साबुन से धो लेते हैं। इसी तरह यदि बुद्धि पापों से भर जाये तो उसे नाम के प्रेम से धोया जाता है।

संसार में पुण्यात्माओं और पापियों में जो भेद किया जाता है वह सिर्फ़ कहने-सुनने की बात नहीं ठोस हक़ीक़त है। सचमुच ही कुछ लोग पुण्य करनेवाले होते हैं और कुछ पापी। वे स्वयं किये हुए कर्मों के कारण पुण्यात्मा और पापी कहलाते हैं। हे जीव! तू जैसे कर्म करता है,

साथ लिखाकर ले जाता है (किये हुए कर्मों के संस्कार तेरे अन्दर अंकित हो जाते हैं)। तू कर्मों के जो बीज बोता है, उनका फल भी तू स्वयं ही खायेगा और प्रभु के हुक्म के अनुसार तू (किये हुए कर्मों को भोगने के लिए) संसार में आता जाता रहेगा।

व्याख्या

भरीऐ हथु पैरु तनु देह॥ पाणी धोतै उतरसु खेह॥
मूत पलीती कपड़ु होइ॥ दे साबूणु लईऐ ओहु धोइ॥
भरीऐ मति पापा कै संगि॥ ओहु धोपै नावै कै रंगि॥

गुरु साहिब समझा रहे हैं कि शरीर की मलिनताएँ पानी से, कपड़े की मैल साबुन से और मन-बुद्धि की मलिनताएँ नाम द्वारा उतरती हैं। संसार के सब लोग अपने-अपने ढंग से मन की मलिनताएँ उतारने का यत्न करते हैं। हम जो भी जप-तप, पूजा-पाठ, दान-पुण्य, तीर्थों का स्नान इत्यादि करते हैं मन को निर्मल करने के लिए करते हैं। गुरु साहिब समझाते हैं कि मन की मलिनताएँ धोने का एकमात्र साधन परमात्मा का नाम है। गुरु अर्जुन देव जी सुखमनी में इशारा करते हैं:

प्रभ कै सिमरनि मन की मलु जाइ॥ अंम्रित नामु रिद माहि समाइ॥[1]

नाम रूपी अमृत जीव के अनन्त पाप धोकर मन को निर्मल बना देता है। गुरु नानक साहिब 'जपुजी' की 21वीं पउड़ी में कहते हैं, 'सुणिआ मंनिआ मनि कीता भाउ॥ अंतरगति तीरथि मलि नाउ॥'[2] नाम का सुमिरन, नाम का ध्यान और नाम रूपी अमृत का स्नान ही वह सच्चा तीर्थ है, जिससे मन की सब मलिनताएँ दूर होती हैं और आत्मा पूरी तरह से निर्मल होकर परमात्मा में समाने के क़ाबिल बनती है। गुरु अमरदास जी ने अपने शब्द 'निरमल सबदु निरमल है बाणी' में समझाया है:

निरमल सबदु निरमल है बाणी॥ निरमल जोति सभ माहि समाणी॥
निरमल बाणी हरि सालाही जपि हरि निरमलु मैलु गवावणिआ॥[3]

उस निरंजन का नाम, निरंजन की तरह ही निर्मल है। जब आत्मा उस निर्मल नाम में स्नान करती है तो वह भी निर्मल हो जाती है।

पुंनी पापी आखणु नाहि॥ करि करि करणा लिखि लै जाहु॥ इन पंक्तियों के एक अर्थ यह किये जाते हैं कि पुण्य और पापों की बात मन-बुद्धि द्वारा समझ सकना मुश्किल है पर लोग जो भी पुण्य-पाप करते हैं उनका लेखा धर्मराज का दूत सदा लिखता रहता है।

इन पंक्तियों के दूसरे अर्थ यह किये जाते हैं कि 'पुंनी पापी' पद कहने मात्र को नहीं है। हे जीव! तू इस अटल सच्चाई को दृढ़ कर ले कि तू किये हुए कर्मों के फल से बच नहीं सकता। तुझे अपने कर्मों का फल अवश्य भोगना पड़ेगा और यह फल भोगने के लिए तुझे बार-बार जन्म लेना और मरना पड़ेगा। तू कभी किसी हालत में भी इस हुक्म, नियम या विधान से बच नहीं सकता।

आपे बीजि आपे ही खाहु॥ नानक हुकमी आवहु जाहु॥ गुरु साहिब दो बातें समझा रहे हैं। पहली यह कि हर कर्म का फल ख़ुद भोगना पड़ता है। अच्छे कर्म का फल अच्छा मिलता है और बुरे कर्म का बुरा। मिर्चों का बीज बो कर सेब खाने की आशा रखना मूर्खता है। इस विचार को इस तरह भी समझना चाहिए कि वर्तमान जीवन में हमें जो भी सुख और दुःख मिल रहे हैं, हमारे अपने पूर्व-जन्मों के पुण्यों और पापों के कारण मिल रहे हैं। हमने अपना प्रारब्ध ख़ुद बनाया है। कर्म और फल का कानून कुल मालिक के हुक्म के अनुसार बना है लेकिन फल, किये हुए कर्मों के अनुसार ही मिलता है।

दूसरी बात गुरु साहिब यह समझा रहे हैं कि सिर्फ़ पाप ही नहीं, पुण्य भी बन्धनकारी हैं। इस भ्रम का शिकार नहीं होना चाहिए कि पाप छोड़कर पुण्य करने से तुम आवागमन के चक्कर से बच जाओगे या पुण्यों द्वारा पापों का नाश हो जायेगा। पुण्य, पुण्यों के और पाप, पापों के खाते में जमा हो जायेंगे और दोनों क़िस्म के कर्म तुम्हें बार-बार संसार में खींचकर लायेंगे। गुरु नानक साहिब अपने शब्द 'राम नामि मनु बेधिआ अवरु कि करी वीचारु॥ सबद सुरति सुखु ऊपजै प्रभ रातउ सुख सारु॥'[4] में विस्तारपूर्वक

समझाते हैं कि छोटे-मोटे पुण्यों की बात एक तरफ़ रही, तुम शरीर को रत्ती-रत्ती कर के हवन-यज्ञ में इसकी आहुतियाँ डाल दो, सारे शरीर को समिधा बनाकर हवन की लकड़ी के रूप में जला दो, आरे से शरीर को कटवा लो, बर्फ़ीले पर्वतों पर तप-साधना द्वारा शरीर गला लो, सोने का किला दान में दे दो, हाथी, घोड़े, गऊएँ दान में दे दो और बहुत-सी भूमि दान में दो तो भी तुम्हारा मन निर्मल नहीं हो सकता। आप कहते हैं:

> मनहठ बुधी केतीआ केते बेद बीचार॥
> केते बंधन जीअ के गुरमुखि मोख दुआर॥[5]

तुम मन-बुद्धि से जितने मर्ज़ी हठ-कर्म कर लो और ग्रन्थों-शास्त्रों का जितना मर्ज़ी पाठ-विचार कर लो, इससे कर्मों के बन्धन नहीं टूट सकते, बल्कि इनसे कर्मों के बन्धन और मज़बूत हो जायेंगे। केवल गुरुमुखों की समझायी गयी युक्ति के अनुसार, नाम के साथ लिव जोड़ने से ही कर्मों की मलिनताएँ उतर सकती हैं।

पूर्ण सन्तों ने परमार्थ का यह गूढ़ रहस्य खोला है कि पाप लोहे की हथकड़ी हैं तो पुण्य सोने की बेड़ियों के समान हैं। जीव को आवागमन के चक्कर में बाँधकर रखने के लिए ये दोनों ही समान रूप से प्रबल हैं। पापों का फल भोगने के लिए नरकों में जाना पड़ता है और पुण्यों का फल भोगने के लिए स्वर्गों के द्वार खुल सकते हैं पर मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती। आत्मा की निर्मलता और मुक्ति केवल नाम द्वारा ही सम्भव है।

'पुरातन टीका' में इसकी व्याख्या इस प्रकार की गयी है:

''सिद्धों ने कहा शास्त्रों में लिखा है, जो पाप करते हैं, उसके प्रायश्चित्त के लिए पुण्य करते हैं, चन्द्रायण व्रत, तप, गायत्री पाठ, यज्ञ इत्यादि पुण्य करते हैं, उनके पाप धुल जाते हैं। आपने एक नाम की ही महिमा की है। बाबा जी ने कहा, पुण्य करनेवालों और पाप करनेवालों की बातें कहने में नहीं आ सकतीं। जैसी करनी करते हैं, वैसी चित्रगुप्त लिख लेते हैं। यदि पुण्य करते हैं तो सुख भोगते हैं यदि पाप करते हैं तो नरक भोगते हैं। अपना बोया आप ही खाते हैं। जो परमात्मा के नाम को

जपते हैं वे आप भी तर जाते हैं और संगियों का भी उद्धार करते हैं। गुरु नानक देव जी कहते हैं कि पुण्य करनेवालों और पाप करनेवालों का आना-जाना ख़त्म नहीं होता।''[6]

पउड़ी 21

तीरथु तपु दइआ दतु दानु॥ जे को पावै तिल का मानु॥
सुणिआ मंनिआ मनि कीता भाउ॥ अंतरगति तीरथि मलि नाउ॥
सभि गुण तेरे मै नाही कोइ॥ विणु गुण कीते भगति न होइ॥
सुअसति आथि बाणी बरमाउ॥ सति सुहाणु सदा मनि चाउ॥
कवणु सु वेला वखतु कवणु कवण थिति कवणु वारु॥
कवणि सि रुती माहु कवणु जितु होआ आकारु॥
वेल न पाईआ पंडती जि होवै लेखु पुराणु॥
वखतु न पाइओ कादीआ जि लिखनि लेखु कुराणु॥
थिति वारु ना जोगी जाणै रुति माहु ना कोई॥
जा करता सिरठी कउ साजे आपे जाणै सोई॥
किव करि आखा किव सालाही किउ वरनी किव जाणा॥
नानक आखणि सभु को आखै इक दू इकु सिआणा॥
वडा साहिबु वडी नाई कीता जा का होवै॥
नानक जे को आपौ जाणै अगै गइआ न सोहै॥

शब्दार्थ: दतु दानु=दान देना। तिल=तिल के समान। अंतरगति=अपने अन्दर, हृदय में। सुअसति=नमस्कार। आथि=माया। बरमाउ=ब्रह्मा। सुहाणु=सुन्दर। सदा...चाउ=सदा प्रसन्न रहनेवाला, आनन्द-रूप। वेला=वक़्त, समय। पंडती=पण्डितों को। पुराणु=हिन्दुओं की धर्म-पुस्तकें। कादीआ=काज़ियों को। कुराणु=क़ुरान शरीफ़, मुसलमानों का धर्म-ग्रन्थ। किउ वरनी=किस तरह से वर्णन करूँ। नाई=प्रशंसा, महिमा। न सोहै=शोभा नहीं पाता।

सरलार्थ: 20वीं पउड़ी में गुरु साहिब ने इशारा किया है कि मन की मलिनताएँ नाम रूपी अमृत से उतरती हैं। 21वीं पउड़ी में भी यही समझाते हैं कि मन की निर्मलता नाम द्वारा ही सम्भव है। आप इस पउड़ी में रचना की उत्पत्ति के बारे में भी चर्चा करते हैं। आप कहते हैं:

तीर्थ-यात्रा, तप-साधना, दया करने तथा दान देने से तिल-मात्र मान प्राप्त हो सकता है। नाम के श्रवण, मनन और प्रेम द्वारा अपने अन्दर उस तीर्थ तक पहुँच जाते हैं जिसमें स्नान करने से मन की मलिनताएँ उतर जाती हैं और पूर्ण निर्मलता प्राप्त हो जाती है।

हे प्रभु ! तू सब गुणों का ख़ज़ाना है, मुझमें कोई गुण नहीं। जब तक मुझमें गुण पैदा नहीं होते, मुझे तेरी भक्ति हासिल नहीं हो सकती।

हे प्रभु ! तुझे नमस्कार (सुअसति) है। हे प्रभु ! तू ही माया (आथि) है, तू बाणी रूप है और तू ही ब्रह्मा है। हे प्रभु ! तू सत्य है, तू सुन्दर है, तू आनन्द-रूप है। तेरे अन्दर सदा ख़ुशी, चाव या आनन्द भरा रहता है।

वह कौन-सा समय, कौन-सी घड़ी थी, वह कौन-सी तिथि या तारीख़ थी और कौन-सा वार था, वह कौन-सी ऋतु और कौन-सा महीना था, जिस समय रचना का आकार अस्तित्व में आया? पण्डितों को सृष्टि के आकार धारण करने के समय का कुछ पता नहीं। उनको तभी पता होता यदि किसी पुराण में यह समय लिखा होता। काज़ियों को भी इस बारे में पता नहीं क्योंकि यदि क़ुरान शरीफ़ में लिखा होता तभी उनको पता होता। उस कर्ता द्वारा सृष्टि का सृजन किये जाने की तारीख़, वार, ऋतु और महीने के बारे में योगियों को भी कुछ पता नहीं। इसके बारे में केवल वह कर्ता जानता है, जिसने सृष्टि की रचना की है।

मैं उस कर्ता के बारे में कैसे कुछ कह सकता हूँ, मैं उसकी सिफ़त-सलाह कैसे कर सकता हूँ, मैं उसका वर्णन कैसे कर सकता हूँ और मैं उसको कैसे जान सकता हूँ? कहने को तो सभी बहुत कुछ कह देते हैं और हर कोई एक-दूसरे से समझदार बन कर दिखाता है पर सच्ची बात तो यह है कि वह साहिब जिसका किया सबकुछ हो रहा है, बड़े से बड़ा

है और उसकी बड़ाई (नाई) भी बहुत बड़ी है। यदि कोई अपने आपको बड़ा या जाननेवाला समझता है तो वह आगे जाकर शोभा नहीं पाता।

व्याख्या

तीरथु तपु दइआ दतु दानु॥ जे को पावै तिल का मानु॥
सुणिआ मंनिआ मनि कीता भाउ॥ अंतरगति तीरथि मलि नाउ॥
सभि गुण तेरे मै नाही कोइ॥ विणु गुण कीते भगति न होइ॥

इन पंक्तियों की व्याख्या 'पुरातन टीका' में इस प्रकार की गयी है:

"तो बाबा जी ने कहा तीर्थों पर रहना और तप करना और दया करना, दान देना इत्यादि जो पुण्य हैं जो कोई करते हैं तिल-तिल का, मन-मन फल प्राप्त होता है॥ अथवा उनका फल तिल-मात्र है उनका सुख भोगकर चक्कर मिलता है॥* जिन्होंने परमात्मा के नाम को सुना और माना है और मन में भाउ (प्रेम) किया है उन्हें मन के अन्दर ही वाहेगुरु प्राप्त हुआ है। जो शब्द के तीर्थ में मल कर नहाते हैं॥ मल कर नहाना बार-बार अभ्यास करना है॥ सब गुण वाहेगुरु के हैं॥ हम गुणों के योग्य नहीं हैं॥ सदा शुभ कर्म करें, नाम जपें गुणों के बिना भक्ति की प्राप्ति नहीं होती॥"[1]

टीकाकार ने 'मल-मल कर तीर्थ नहाने' का अर्थ बार-बार शब्द का अभ्यास करना और शुभ कर्म करने का अर्थ नाम जपना किया है।

सुणिआ मंनिआ मनि कीता भाउ॥ अंतरगति तीरथि मलि नाउ॥

कबीर साहिब फ़रमाते हैं:

अंतरि मैलु जे तीरथ नावै तिसु बैकुंठ न जानां॥
लोक पतीणे कछू न होवै नाही रामु अयाना॥
पूजहु रामु एकु ही देवा॥ साचा नावणु गुर की सेवा॥
जल कै मजनि जे गति होवै नित नित मेंडुक नावहि॥

* जीव जन्म-मरण के चक्कर में रहता है।

जैसे मेंडुक तैसे ओइ नर फिरि फिरि जोनी आवहि॥
मनहु कठोरु मरै बानारसि नरकु न बांचिआ जाई॥
हरि का संतु मरै हाड़ंबै त सगली सैन तराई॥[2]

पुराने समय में लोगों की मान्यता थी कि बनारस में गंगा के तट पर प्राण त्यागने वाला व्यक्ति स्वर्गों में जाता है और हाड़ंबा नामक स्थान पर प्राण त्यागने वाला नरकों का भागी बनता है। आप समझाते हैं कि जब तक मन मैला है, गंगाजल का स्नान व्यर्थ है। तीर्थों पर स्नान करने से लोगों पर अपनी निर्मलता का रोब डाला जा सकता है, पर परमात्मा को धोखा नहीं दिया जा सकता। परमेश्वर मन की कोमलता तथा निर्मलता से प्रसन्न होता है और ये गुण सतगुरु के उपदेश के अनुसार नाम की कमाई करने से पैदा होते हैं। निर्दयी व्यक्ति बनारस के तट पर प्राण त्यागने के बावजूद नरकों का भागी बनेगा और परमात्मा के सच्चे भक्त हाड़ंबा नामक स्थान पर प्राण त्यागने पर भी अपने सेवकों सहित परमात्मा के चरण-कमलों में पहुँच जायेंगे। गुरु नानक साहिब की वाणी है:

तीरथि नावण जाउ तीरथु नामु है॥
तीरथु सबद बीचारु अंतरि गिआनु है॥[3]

आप कहते हैं कि अगर मन की मलिनताएँ उतारने के लिए तीर्थ पर स्नान करना चाहते हो तो वह असली तीर्थ नाम है। शब्द या नाम का वह तीर्थ अन्दर है और इस तीर्थ पर स्नान करने से ही सत्य का ज्ञान प्राप्त होता है। गुरु अमरदास जी का फ़रमान है:

एहु सरीरु सरवरु है संतहु इसनानु करे लिव लाई॥
नामि इसनानु करहि से जन निरमल सबदे मैलु गवाई॥[4]

आप कहते हैं कि मन की मलिनताएँ दूर करने का असली साधन नाम है। यह नाम शरीर के अन्दर है। अन्तर में शब्द के साथ लिव जोड़कर ही आत्मा पूरी तरह निर्मल होकर परमात्मा से मिलाप करने के

क़ाबिल बन सकती है। गुरु साहिब की वाणी का यह प्रसंग पहले देख आये हैं, 'सगले करम धरम सुचि संजम जप तप तीरथ सबदि वसे॥'[5] हर क़िस्म के जप-तप, तीर्थ-व्रत, शौच, संयम, कर्म-धर्म आदि का फल नाम की कमाई में शामिल है।

एक गूढ़ व्याख्या

तीरथु तपु दइआ दतु दानु॥ जे को पावै तिल का मानु॥ इन पंक्तियों की एक गूढ़ व्याख्या यह की गयी है कि अगर किसी को 'तिल' में पहुँचने का मान प्राप्त हो जाये तो समझो कि उसको जप-तप, तीर्थ-व्रत, दान-पुण्य आदि सब शुभ कर्मों का फल मिल गया। 'तिल' में पहुँच जाना हर तरह के पुण्य कर्मों से ऊँचा दर्जा रखता है। डॉ. शरद चन्द्र वर्मा ने दिल्ली गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी द्वारा छपवाई गयी अपनी पुस्तक 'गुरु नानक एण्ड दि लोगॉस ऑफ़ डिवाईन मैनीफ़ैसटेशन' में इस प्रसंग की टीका इस तरह से की गयी है—तीर्थ, तप, दया और दान का कोई लाभ नहीं, जब तक ज्ञान-चक्षु प्राप्त नहीं होता।*

लेखक तिल का अर्थ समझाता हुआ कहता है कि 'तिल' संस्कृत का शब्द है। इसका अर्थ तिल का दाना है। इस लफ़्ज़ के बहुत गहरे अर्थ हैं। इसे 'आत्मा के नेत्र', 'चौथी सूझ' या 'शिव-नेत्र' के लिए प्रयोग किया गया है। गुरु रामदास जी ने भी इसका प्रयोग इन अर्थों में किया है।† लेखक का इशारा गुरु रामदास जी की वाणी के इस प्रसंग की तरफ़ है जिसमें आपने 'तिल' शब्द का प्रयोग किया है:

---

* By going to Holy places [of pilgrimages], by austerities [devotion practised with abnegations], by kindness [compassion] and giving daan [alms, charitable gifts] the merits are of little consequence [unless one obtains the intellectual eye.][6]

† Tila,s the seed of sesamum plant, a spout, a small quantity, figuratively. The word has a significant meaning and was used for spiritual eye or the fourth sense, the Shiva netra. Refered to as such by Guru Ram Das also; Kutasha, spiritual sight.[7]

मनु खिनु खिनु भरमि भरमि बहु धावै तिलु घरि नही वासा पाईऐ॥
गुरि अंकसु सबदु दारू सिरि धारिओ घरि मंदरि आणि वसाईऐ॥[8]

मन (हाथी की तरह) मुँह-ज़ोर होकर अन्दर से बाहर रचना रूपी भ्रम की तरफ़ दौड़ता है और यह पल-भर के लिए भी अपने असल घर में चैन से नहीं बैठता। मन रूपी हाथी के सिर पर गुरु के शब्द का अंकुश रखा जाये तो यह सहज-रूप से ही घर रूपी मन्दिर में टिककर बैठ जाता है। शब्दार्थ श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में 'तिल घर' के अर्थ इस तरह से किये गये हैं— 'असली घर में, निज घर में, निज स्वरूप में, जहाँ हरि बसता है।'[9]

गुरु साहिब शरीर में आँखों से ऊपर उस नुक़्ते को 'निज घर' कह रहे हैं, जहाँ से उतरकर मन रचना में फैलता है और जहाँ वापस पहुँचकर यह उस प्रभु के दर्शन कर सकता है। इस तरह 'तिल' को आँखों के पीछे स्थित सूक्ष्म स्थान के अर्थों में या अन्दर की आँख या शिव-नेत्र के अर्थों में प्रयोग किया गया प्रतीत होता है। भाई गुरदास ने कबित 204, 213 और 269 में 'तिल' पद का प्रयोग इन उपरोक्त अर्थों में किया है। आप कबित्त 213 में कहते हैं:

प्रीतम की पुतरी मै तनिक तारिका सिआम,
तांको प्रतिबिंब तिल तिलक त्रिलोक को।
बनिता बदन परि प्रगट बनाइ राखिओ,
कामदेव कोटि लोट पोट अविलोक को।
कोटिन कोटान रूप की अनूप रूप छबि,
सकल सिंगार के सिंगार सरब थोक को।
किंचित कटाछ क्रिपा तिल की अतुल सोभा,
सरसुती कोट मान भंग धिआन कोक को॥

आप 'तिल' को प्रियतम की पुतली का प्रतिबिम्ब, त्रिलोकी का तिलक और गुरुमुख जीवात्मा की सुहाग की बिंदी कहकर सराहते हैं। आप कहते हैं कि तिल परम-पवित्र, परम-आकर्षक है। तिल में दाख़िल होने पर आत्मा के शृंगार का वर्णन कर सकना असम्भव है। तिल की

पवित्रता करोड़ों गंगा भाव तीर्थों की पवित्रता का मान तोड़ती है और करोड़ों चन्द्रमा इसके अनुपम प्रकाश का मुक़ाबला नहीं कर सकते। इसकी इस लुभावनी सुन्दरता के कारण अभ्यासी रूहें अपने आप इसकी तरफ़ खिंची चली आती हैं।

गुरु साहिब के समय अनेक शब्द गूढ़ रूहानी अर्थों में प्रयुक्त किये जाते थे। उस समय के लोग इन शब्दों के गूढ़ अर्थों से परिचित थे पर समय पाकर इस प्रकार के अनेक शब्दों के गूढ़ अर्थ लुप्त हो गये। सम्भव है कि गुरु साहिबान ने 'तिल' शब्द का उन अर्थों में प्रयोग किया हो जिनका भाई गुरदास जी की वाणी से संकेत मिलता है।* परन्तु आज इसके सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ कह सकना शायद सम्भव न हो। 'तिल' के जो भी अर्थ हों, इस बात में कोई सन्देह नहीं कि गुरु साहिब नाम के अन्तर्मुख स्नान को हर तरह के बाहरमुखी पुण्य कर्मों से ऊपर मानते हैं।

सभि गुण तेरे मै नाही कोइ॥ विणु गुण कीते भगति न होइ॥ आप नम्रतापूर्वक कहते हैं, हे प्रभु, तू गुणों का भण्डार है जब कि मैं गुणहीन हूँ। आपने पहले कहा है, 'अंतरगति तीरथि मलि नाउ॥' अर्थात् मन की मलिनताओं को उतारने वाला नाम रूपी तीर्थ अन्दर है। अब इशारा कर रहे हैं कि ऐ गुण-निधान परमात्मा! मुझमें तेरे नाम का गुण नहीं है। जब तक मेरी लिव अन्दर तेरे नाम के साथ नहीं जुड़ती, मैं तेरी भक्ति में सफल नहीं हो सकता।

गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं, 'प्रेम पदारथु नामु है भाई माइआ मोह बिनासु॥ तिसु भावै ता मेलि लए भाई हिरदै नाम निवासु॥'[10] परमात्मा का नाम उसके प्रेम और भक्ति का रूप है। जिसके अन्दर नाम प्रकट हो जाता है, उसके अन्दर परमात्मा की भक्ति या प्रेम का ख़ज़ाना भी प्रकट हो जाता है।

गुरु रामदास जी कहते हैं, 'हरि के गुण हरि भावदे से गुरू ते पाए॥'[11] परमात्मा के गुण परमात्मा को अच्छे लगते हैं और उनकी प्राप्ति गुरु

* भाई गुरदास के कबित नं. 204, 213 और 269 की व्याख्या के लिये देखो: कबित्त सवैये भाई गुरदास, टीका पण्डित नरैण सिंह ज्ञानी।

से होती है। गुरु नानक साहिब 'जपुजी' की छठी पउड़ी में कह आये हैं, 'मति विचि रतन जवाहर माणिक जे इक गुर की सिख सुणी॥' सतगुरु की मति पर चलने से अन्दर अनन्त अमूल्य गुणों के भण्डार प्रकट हो जाते हैं। गुरु अर्जुन साहिब कहते हैं, 'रतन जवेहर माणिका अंम्रितु हरि का नाउ॥'[12] नाम ही रत्न, जवाहर, लाल और अमृत है। नाम ही परमात्मा का सच्चा गुण है और नाम ही परमात्मा के प्रेम और भक्ति का वास्तविक आधार है।

सुअसति आथि बाणी बरमाउ॥ सति सुहाणु सदा मनि चाउ॥ ऊपर इन पंक्तियों के अर्थ पढ़ आये हैं कि हे प्रभु, तुझे नमस्कार (सुअसति) है, तू ही माया (आथि) है, तू ही शब्द (बाणी) है और तू ही ब्रह्मा (बरमाउ) या कर्ता है। तू अविनाशी (सति) है, तू सुन्दर (सुहाणु) है और तू आनन्द-रूप (मनि चाउ) है। इन पंक्तियों के अर्थ इस तरह भी किये जाते हैं कि जिस तरह ब्राह्मण आशीर्वाद के लिए सुअसतीवाचक वाणी (सुअसति आथि बाणी) बोलता है, मैं भी अरदास करता हूँ कि तू मेरी प्रार्थना स्वीकार कर ले। तू सत्य है, सुन्दर है और आनन्द-रूप है।

भाई वीर सिंह जी ने इन पंक्तियों के अलग-अलग टीकाकारों द्वारा किये गये अलग-अलग अर्थों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। यहाँ यह वर्णन देने की ज़रूरत महसूस नहीं की गयी।*

सति सुहाणु सदा मनि चाउ॥ हिन्दू धर्म-ग्रन्थों में प्रभु को सत्य, चित्त और आनन्द या 'सच्चिदानन्द' कहा गया है। वह प्रभु सत्य-रूप, ज्ञान-रूप और आनन्द-रूप है। इसी तरह प्रभु को सत्यम्, शिवम् और सुन्दरम् कहा गया है अर्थात् परमात्मा सत्य है, सुन्दर है और कल्याण-रूप (शिवम्) है। गुरु साहिब ने 'जपुजी' की चौथी पउड़ी में कहा है, 'साचा साहिबु साचु नाइ भाखिआ भाउ अपारु॥' वह कुल मालिक सच्चा है, उसका नाम सच्चा है, वह प्रेम की मूरत है। 'जपुजी' के बहुत-से प्रसंगों में उसको सच्चा दाता कहकर सराहा गया है और कई प्रसंगों में उसकी अपार दया-मेहर की महिमा गायी गयी है। गुरु साहिब जगह-जगह प्रभु

* विस्तार के लिये देखें: संथ्या श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी।[13]

की सिफ़त-सलाह द्वारा जीवात्मा के अन्दर उस सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञाता, आनन्द-रूप, प्रेम-रूप और दया-रूप प्रभु का प्रेम जाग्रत करना चाहते हैं।

कवणु सु वेला वखतु कवणु कवण थिति कवणु वारु॥
कवणि सि रुती माहु कवणु जितु होआ आकारु॥
वेल न पाईआ पंडती जि होवै लेखु पुराणु॥
वखतु न पाइओ कादीआ जि लिखनि लेखु कुराणु॥
थिति वारु ना जोगी जाणै रुति माहु ना कोई॥
जा करता सिरठी कउ साजे आपे जाणै सोई॥

हिन्दू धर्म-ग्रन्थों में समय को चार युगों—सतयुग, त्रेता, द्वापर तथा कलियुग—में बाँटा गया है और हर युग की एक निश्चित अवधि बतायी गयी है। किसी भी धर्म-ग्रन्थ में यह नहीं बताया गया कि सृष्टि का आरम्भ कब हुआ और युगों की गिनती कब आरम्भ हुई। गुरु साहिब समझा रहे हैं कि न हिन्दू धर्म-ग्रन्थों में सृष्टि के आरम्भ का समय बताया गया है और न ही इस्लामी धर्म-ग्रन्थों में। न सिद्धों और योगियों को सृष्टि के आरम्भ के बारे में कोई ज्ञान है और न ही किसी और महापुरुष को। 'जा करता सिरठी को साजे आपे जाणै सोई॥' जिस परमात्मा ने सृष्टि की रचना की है केवल उसको पता है कि उसने इसकी रचना कब की। सृष्टि रचे जाने का समय नियत नहीं किया जा सकता, क्योंकि समय का हिसाब सृष्टि रचे जाने के बाद शुरू हुआ। उससे पहले की किसी बात को समय के अनुसार बयान कर सकना असम्भव है।

किव करि आखा किव सालाही किउ वरनी किव जाणा॥
नानक आखणि सभु को आखै इक दू इकु सिआणा॥
वडा साहिबु वडी नाई कीता जा का होवै॥
नानक जे को आपौ जाणै अगै गइआ न सोहै॥

गुरु साहिब कहते हैं कि ऐ कुल मालिक! मुझमें इतना सामर्थ्य नहीं कि मैं तेरे बारे में या तेरी रची हुई सृष्टि के बारे में कुछ कह सकूँ। आप

कहते हैं कि अपनी तरफ़ से अनेक लोग परमात्मा तथा उसकी सृष्टि के बारे में बड़ी-बड़ी बातें करते हैं, पर असल में कोई भी उस कर्ता और उसकी बनाई हुई रचना के बारे में निश्चित रूप से कुछ नहीं कह सकता। आप कहते हैं कि मैं तो केवल इतना ही कह सकता हूँ कि वह मालिक बड़े से बड़ा है। वह सबसे बड़ा है। वह वाहद-हू-लाशरीक है। कोई दूसरा उसका मुक़ाबला नहीं कर सकता। जब कोई दूसरा उसके जैसा नहीं है तो फिर किसी दूसरी चीज़ से तुलना करके उसकी बड़ाई कैसे बयान की जा सकती है? कुल मालिक और उसकी बड़ाई (नाई) कहने-सुनने से परे है। सिर्फ़ इतना समझ लेना ही काफ़ी है कि जो होता है, उस एक सर्वसमर्थ मालिक का किया हुआ होता है और यदि कोई अपने आपको कुछ समझता है तो वह इस हौंमैं के कारण उस कर्ता की नज़रों में शोभा नहीं पाता।

पउड़ी 22

पाताला पाताल लख आगासा आगास॥
ओड़क ओड़क भालि थके वेद कहनि इक वात॥
सहस अठारह कहनि कतेबा असुलू इकु धातु॥
लेखा होइ त लिखीऐ लेखै होइ विणासु॥
नानक वडा आखीऐ आपे जाणै आपु॥

शब्दार्थ: इक वात=एक बात। सहस=हज़ार। कतेबा=सामी धर्मों की चार किताबें— यहूदियों, ईसाइयों और मुसलमानों के धर्म-ग्रन्थ— तौरेत, ज़बूर, इंजील (बाइबल) और क़ुरान।

सरलार्थ: गुरु साहिब ने 21वीं पउड़ी में बताया है कि रचना के अस्तित्व में आने के बारे में केवल वह कर्ता ही जानता है। 22वीं पउड़ी में आप रचना की विशालता पर प्रकाश डालते हैं। आप कहते हैं:

लाखों पाताल हैं, लाखों आकाश हैं। सृष्टि का अन्त कहाँ होता है, खोज करनेवाले इसकी खोज करते-करते थक गये और अन्त में वेदों

और उनके रचने वाले ऋषियों ने यह बात कह दी कि उस कर्ता और उसकी रचना का अन्त नहीं पाया जा सकता। इस्लामी धर्म-ग्रन्थ अठारह हज़ार आलमों (खण्डों-ब्रह्माण्डों) की बात करते हैं पर सबका मूल एक परम सत्य है। रचयिता और रचना दोनों अलेख हैं और अलेख का लेख लिख सकना असम्भव है। उस कर्ता की क़ुदरत बड़ी है पर वह कर्ता उससे भी बड़ा है। रचना की और अपनी बड़ाई केवल वह रचयिता ही जानता है।

व्याख्या

पाताला पाताल लख आगासा आगास॥
ओड़क ओड़क भालि थके वेद कहनि इक वात॥

गुरु साहिब समझा रहे हैं कि न इस रचना के ऊपरी किनारे का पता चलता है, न ही निचले किनारे का। जितना ज़्यादा ऊपर जाते हैं, उतनी ज़्यादा ऊपर जाने की सम्भावना बनी रहती है। जितनी नीचे की तरफ़ डुबकी लगाते हैं, उतनी ज़्यादा नीचे की तरफ़ जाने की सम्भावना क़ायम रहती है। वेदों के रचयिता ऋषियों ने पूरी खोज के बाद अन्त में उस परमात्मा को 'नेति-नेति'[1] कह दिया, अर्थात् उस प्रभु और उसकी रचना का कोई अन्त नहीं।

सहस अठारह कहनि कतेबा असुलू इकु धातु॥ जिस तरह हिन्दू धर्म में सृष्टि के बारे में चर्चा की गयी है, उसी तरह यहूदियों, ईसाइयों और मुसलमानों की चार किताबों (कतेब) में अठारह हज़ार आलमों या खण्डों-ब्रह्माण्डों की तरफ़ इशारा किया गया है, पर सच्ची बात तो यह है कि रचना उस एक परम सत्य का ऐसा अनन्त, अथाह पसारा है, जिसकी थाह पा सकना और पूरा हिसाब लगा सकना असम्भव है। वह कर्ता और उसकी रचना हर तरह के हिसाब और गिनती से ऊपर हैं।

'असुलू इकु धातु' का यह अर्थ किया जाता है कि बेशक अनन्त रंगों-रूपों वाली सृष्टि की थाह पा सकना और इसके रचे जाने के समय

के बारे में कुछ कह सकना असम्भव है पर सृष्टि की रचना एक ही तत्त्व से हुई है।

लेखा होइ त लिखीऐ लेखै होइ विणासु॥ आप पीछे वर्णित विचार को आगे बढ़ाते हुए कहते हैं कि परमात्मा या उसके द्वारा सृजित रचना का हिसाब तभी लिखा जा सकता है यदि दोनों का कोई अन्त हो। जो चीज़ अनन्त है और गिनती से परे है उसकी गिनती और हिसाब लगा सकना असम्भव है। ऐसी चीज़ की गिनती समाप्त हो जाती है, पर उस चीज़ का हिसाब पूरा नहीं हो सकता।

नानक वडा आखीऐ आपे जाणै आपु॥ वह मालिक बड़े से बड़ा है। वह हर तरह के हिसाब-किताब से ऊपर है। उसकी बड़ाई कहने-सुनने से बाहर है। अपनी असल बड़ाई वह प्रभु स्वयं ही जानता है।

इस पउड़ी में परमात्मा द्वारा सृजित अनन्त रचना का वर्णन करते हुए और उस रचयिता की बड़ाई की तरफ़ ध्यान दिलाते हुए यह इशारा करते हैं कि जिस बड़े ने इतनी बड़ी रचना रची है, वह स्वयं कितना बड़ा होगा। 'नानक वडा आखीऐ' का साधारण अर्थ तो यही है कि परमात्मा बड़ा है पर 'आखीऐ' शब्द उस बड़े की बड़ाई करने, उसका यश गाने या उसकी सिफ़त-सलाह करने की प्रेरणा देता है।

22वीं पउड़ी और आज का विज्ञान

22वीं पउड़ी की व्याख्या करते हुए देख आये हैं कि गुरु साहिब ने फ़रमाया है कि लाखों आकाश हैं, लाखों पाताल हैं। वेदों की रचना करनेवाले ऋषि भी सृष्टि का अन्त नहीं पा सके। उन्होंने यह फ़रमाया है कि सृष्टि अथाह, असगाह है। इस्लामी, ईसाई और यहूदी धर्म-ग्रन्थों में अठारह हज़ार खण्डों-ब्रह्माण्डों की बात की गयी है। गुरु साहिब कहते हैं कि सृष्टि का हिसाब-किताब करेंगे तो हमारी गिनती ख़त्म हो जायेगी पर इसके आदि और अन्त का हिसाब पूरा नहीं होगा।

हमें पता है कि सबसे तेज़ रफ़्तार प्रकाश की है। प्रकाश की गति प्रति सेकण्ड 1, 86, 281 मील है। एक वर्ष में 3, 15, 57, 600 सेकण्ड

होते हैं। एक वर्ष में प्रकाश जितना फ़ासला तय करता है उसे एक प्रकाश वर्ष (Light year) कहा जाता है। प्रकाश एक वर्ष में 3, 15, 57, 600 X 1, 86, 281 मील का फ़ासला तय कर लेता है। वैज्ञानिकों ने ऐसे ग्रहों और नक्षत्रों का पता लगाया है जो पृथ्वी से 14 अरब प्रकाश वर्ष दूर हैं। इसका अर्थ है कि यह ग्रह और नक्षत्र हमसे 3, 15, 57, 600 X 1, 86, 281 X 14, 00, 00, 00, 000 मील दूर हैं। विज्ञान आज इस निष्कर्ष पर पहुँचा है जब कि गुरु नानक साहिब ने पाँच सौ साल पहले उपरोक्त वचन फ़रमाये हैं। इससे पता चलता है कि ऋषियों-मुनियों और सन्तों-महात्माओं द्वारा सैकड़ों साल पहले बयान किये गये इस सच को वैज्ञानिक आज जान सके हैं कि सृष्टि का कोई आदि और अन्त नहीं हैं।

आज वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुँच गये हैं कि सृष्टि पूर्ण मौन या पूर्ण शान्ति में से भारी गर्जन, ज़बरदस्त आवाज़ या ज़बरदस्त धमाके के साथ पैदा हुई। सैकड़ों वर्षों से ऋषि-मुनि यह बात कहते चले आ रहे हैं कि सृष्टि पूर्ण शान्ति या परम सुन्न में से महा-नाद, दिव्य-ध्वनि, धुन-धधकार या शब्द की गरज द्वारा पैदा हुई। इसका यह अर्थ हुआ कि विज्ञान सन्तों-महात्माओं और ऋषियों-मुनियों द्वारा समाधि की अवस्था में प्राप्त किये गये सच तक आज पहुँचा है।

आज के सबसे बड़े वैज्ञानिक यह भी कहते हैं कि पूर्ण मौन में से पैदा हुई सृष्टि पूर्ण मौन की तरफ़ दौड़ी जा रही है और कई अरब प्रकाश वर्ष बाद यह वापस उसी में समा जायेगी। गुरु अमर दास जी की वाणी है:

उतपति परलउ सबदे होवै॥ सबदे ही फिरि ओपति होवै॥[2]

शब्द में से उपजी सृष्टि शब्द के सहारे क़ायम है। समय पाकर यह शब्द में समाकर शब्द का रूप हो जाती है और दोबारा शब्द में से ही रूप धारण कर लेती है।

स्पष्ट है कि वैज्ञानिक सन्तों-महात्माओं द्वारा सैकड़ों वर्ष पहले निकाले गये इन निष्कर्षों पर आज पहुँचे हैं कि पूर्ण मौन में से ज़ोरदार

गरज या शक्तिशाली ध्वनि द्वारा अस्तित्व में आयी सृष्टि उसी की ओर ही दौड़ी चली जा रही है।

विज्ञान और रहस्य में अन्तर

यहाँ पहुँचकर विज्ञान चुप हो जाता है। आज के समय के सबसे बड़े वैज्ञानिक कहते हैं कि हमने यह जान लिया है कि सृष्टि अस्तित्व में कब आयी, पर सृष्टि अस्तित्व में क्यों आयी? इसके बारे में हम किसी भी नतीजे पर नहीं पहुँच सकते।*

विज्ञान और रहस्य का वास्तविक अन्तर यहीं से शुरू होता है। संसार के सब सन्तों-महात्माओं ने एक ही स्वर में इस बात पर बल दिया है कि सृष्टि की उत्पत्ति परमात्मा की इच्छा से हुई है। वे कहते हैं कि आदि में परमात्मा सुन्न-समाधि या पूर्ण मौन की अवस्था में था। वह पूर्ण एकता और पूर्ण अद्वैत की अवस्था में था। परमात्मा एक था क्योंकि उसकी यही इच्छा थी। उसके अन्दर गुप्त से प्रकट और एक से अनेक होने की इच्छा पैदा हुई, इसलिए वह गुप्त से प्रकट और एक से अनेक हो गया। उसने उस तरह के जगत् की रचना की, जिस तरह के जगत् की रचना करने की उसकी इच्छा थी। उसने सृष्टि के संचालन के लिए उस तरह के नियम बनाये, जिस तरह के नियम बनाने की उसकी इच्छा थी। जब तक उसकी सृष्टि को चलाने की इच्छा होती है, सृष्टि चलती रहती है। जब वह इसे ख़त्म करना चाहता है, इसे वापस अपने में समेट लेता है। जब उसकी दोबारा सृष्टि की रचना करने की इच्छा या मौज होती है, तो वह दोबारा सृष्टि की रचना कर देता है। गुरु अर्जुन साहिब जी की वाणी है:

आपन खेलु आपि करि देखै॥ खेलु संकोचै तउ नानक एकै॥[3]

---

* We have discovered the how of creation but we can never discover the why of creation.

पूर्ण सन्तों ने हर क़िस्म के दार्शनिक और वैज्ञानिक विरोधाभासों का समाधान परमात्मा की इच्छा में पाया है। वह हर कार्य का कारण परमात्मा की इच्छा को मानते हैं।

पउड़ी 23

सालाही सालाहि एती सुरति न पाईआ॥
नदीआ अतै वाह पवहि समुंदि न जाणीअहि॥
समुंद साह सुलतान गिरहा सेती मालु धनु॥
कीड़ी तुलि न होवनी जे तिसु मनहु न वीसरहि॥

शब्दार्थ: सुरति=ज्ञान। नदीआ...वाह=नदियाँ और नाले; समुंदि=समुद्र में। गिरहा...धनु=पर्वत के बराबर धन-पदार्थ।

सरलार्थ: बाईसवीं पउड़ी में रचना की विशालता दर्शाते हुए कर्ता की बड़ाई की तरफ़ संकेत किया गया है। अब बता रहे हैं कि बड़ाई के क़ाबिल केवल वह कर्ता है पर उसकी बड़ाई कर सकना सम्भव नहीं। आप कहते हैं:

बड़ाई करनेवालों ने परमात्मा की बड़ाई करने का प्रयत्न ज़रूर किया है पर उनमें इतना ज्ञान (सुरति) नहीं कि उसकी पूरी बड़ाई बयान कर सकें। समुद्र में समाने वाली नदियाँ और नाले समुद्र की थाह नहीं पा सकते। वह प्रभु रूपी शहंशाह अथाह समुद्र है। यदि किसी के पास पर्वतों (गिरहा) जितना माल-धन इकट्ठा हो जाये तो वह सारा माल-असबाब और उसको जमा करनेवाला उस जीव के सामने चींटी के तुल्य भी नहीं, जिसके मन में से तू न बिसरे।

व्याख्या

सालाही सालाहि एती सुरति न पाईआ॥ पीछे भी बहुत-सी पउड़ियों में प्रभु और उसके किये कार्यों को अनन्त, असगाह कह आये हैं। यहाँ पर

फिर वही भाव दृढ़ करवा रहे हैं। आपकी वाणी है, 'आखण वाला किआ वेचारा॥ सिफती भरे तेरे भंडारा॥'[1] आप एक अन्य प्रसंग में कहते हैं:

सुणि वडा आखै सभ कोई॥ केवडु वडा डीठा होई॥
कीमति पाइ न कहिआ जाइ॥ कहणै वाले तेरे रहे समाइ॥
वडे मेरे साहिबा गहिर गंभीरा गुणी गहीरा॥
कोई न जाणै तेरा केता केवडु चीरा॥[2]

आप कहते हैं कि हे मेरे गहर-गम्भीर और गुण-निधान (गुणी गहीरा) परमात्मा, तेरी बड़ाई करनेवाले, बड़ाई करते-करते तुझमें समा जाते हैं पर वे तेरा अन्त (चीरा) नहीं पा सकते।

नदीआ अतै वाह पवहि समुंदि न जाणीअहि॥ गुरु साहिब कहते हैं कि जिस तरह समुद्र में समाने वाली नदियाँ और नाले भी समुद्र की थाह नहीं पा सकते, उसी तरह प्रभु के भक्त प्रभु की महिमा करते हुए उसमें समा जाते हैं पर उसकी बड़ाई वे भी बयान नहीं कर सकते क्योंकि उसकी बड़ाई बयान की ही नहीं जा सकती।

समुंद साह सुलतान गिरहा सेती मालु धनु॥
कीड़ी तुलि न होवनी जे तिसु मनहु न वीसरहि॥

कुल मालिक शाहों का शाह है। वह अनन्त दातों का अथाह सागर है। जिस प्रेमी के हृदय में उसकी याद घर कर गयी है, उसके मुक़ाबले में वह व्यक्ति जिसने पर्वतों के बराबर धन-दौलत, मान-बड़ाई, जमा कर ली हैं, मामूली चींटी के समान भी नहीं है। आपका भाव है कि सच्चे प्रभु-भक्तों के सामने माया के पुजारियों की क़ीमत एक कौड़ी के बराबर भी नहीं है। गुरु अमरदास जी इशारा करते हैं, 'नानक नाम रते से धनवंत हैनि निरधनु होरु संसारु॥'[3]

पउड़ी 24

अंतु न सिफती कहणि न अंतु॥ अंतु न करणै देणि न अंतु॥
अंतु न वेखणि सुणणि न अंतु॥ अंतु न जापै किआ मनि मंतु॥
अंतु न जापै कीता आकारु॥ अंतु न जापै पारावारु॥
अंत कारणि केते बिललाहि॥ ता के अंत न पाए जाहि॥
एहु अंतु न जाणै कोइ॥ बहुता कहीऐ बहुता होइ॥
वडा साहिबु ऊचा थाउ॥ ऊचे उपरि ऊचा नाउ॥
एवडु ऊचा होवै कोइ॥ तिसु ऊचे कउ जाणै सोइ॥
जेवडु आपि जाणै आपि आपि॥ नानक नदरी करमी दाति॥

शब्दार्थ: मंतु=इरादा, संकल्प। आकारु=रचना, सृष्टि। पारावारु=इस पार और उस पार। बिललाहि=बिलखते, तड़पते हैं।

सरलार्थ: 23वीं पउड़ी में प्रकट किये गये विचार को आगे बढ़ाते हुए कहते हैं:

न उस कर्ता के गुणों का अन्त है और न ही उन गुणों के कथन या वर्णन का कोई अन्त है। न उसके किये हुए कार्यों का कोई अन्त है और न ही उसकी दी हुई दातों का कोई अन्त है। उस कर्ता का देखना और सुनना अनन्त है। उसके मन में जो संकल्प या योजनाएँ हैं, उनका भी कोई अन्त नहीं। उस कर्ता और उसकी रची हुई रचना (आकार) का कोई अन्त नहीं है। अनेक लोग अन्त (थाह) पाने के लिए तड़पते हैं पर उसका अन्त नहीं पा सकते। उसका अन्त बयान करनेवाले उसका अन्त बयान नहीं कर सकते क्योंकि जितना ज़्यादा वह बयान करते हैं उतना अधिक और बयान करने के लिए बाक़ी बचा रहता है।

वह मालिक बड़े से बड़ा है। उसका स्थान ऊँचे-से-ऊँचा है। उसका नाम भी ऊँचे-से-ऊँचा है। उस ऊँचे से ऊँचे को वही जान सकता है जो उस जितना ऊँचा हो। वह कितना बड़ा और ऊँचा है, वह स्वयं ही जानता है। जो भी दात मिलती है, केवल उसकी नदर या रहमत द्वारा मिलती है।

व्याख्या

अंतु न सिफती कहणि न अंतु॥ अंतु न करणै देणि न अंतु॥ हम अपने प्यार में उस प्रभु के अनेक गुणों, उसके किये हुए अनन्त कार्यों और उसके द्वारा दी गयी अनेक दातों की बड़ाई करते हैं पर उस गुण-निधान के गुणों, उस सर्वशक्तिमान के कार्यों और उस दयालु की दी हुई दातों का हिसाब लगा सकना असम्भव है।

अंतु न वेखणि सुणणि न अंतु॥ अंतु न जापै किआ मनि मंतु॥ गुरु साहिब समझा रहे हैं कि प्रभु का देखना, सुनना और विचार करना, इनसानी सोच से परे है। उसके किसी भी कार्य को, उसके संकल्पों और योजनाओं को मन-बुद्धि द्वारा समझ सकना असम्भव है।

अंतु न जापै कीता आकारु॥ अंतु न जापै पारावारु॥ उस कर्ता द्वारा सृजित सृष्टि (आकारु) अनन्त है। उसका और उसकी रचना का पार और उरवार अर्थात् इधर वाले किनारे को और उधर वाले किनारे को जान सकना असम्भव है। सृष्टि और इसका कर्ता दोनों अनन्त हैं।

अंत कारणि केते बिललाहि॥ ता के अंत न पाए जाहि॥
एहु अंतु न जाणै कोइ॥ बहुता कहीऐ बहुता होइ॥

गुरु अर्जुन साहिब समझाते हैं, 'पिता का जनमु कि जानै पूतु॥'[1] रचना, रचयिता को नहीं समझ सकती। जीव रचना है और प्रभु रचयिता। संसार के समस्त जीव मिलकर और पूरा प्रयत्न करके भी उस कर्ता का वर्णन नहीं कर सकते। उस कर्ता का अन्त पा सकना असम्भव है क्योंकि जितना ज़्यादा उसका वर्णन किया जाता है, उतना ज़्यादा और वर्णन करने की ज़रूरत महसूस होती है। वह परमात्मा कहने-सुनने से परे और ऊपर है।

वडा साहिबु ऊचा थाउ॥ ऊचे उपरि ऊचा नाउ॥ वह प्रभु ऊँचे-से-ऊँचा है, उसका निवास-स्थान भी ऊँचे-से-ऊँचा है और उसका नाम भी ऊँचे-से-ऊँचा है। नाम परमात्मा से मिलाने वाला सच्चा साधन है,

इसलिए गुरु साहिब इसे सबसे ऊँचा और श्रेष्ठ कहकर इसकी सराहना करते हैं।

गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं कि राम से मिलाने वाला राम-नाम, राम से भी बड़ा है:

अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा। अकथ अगाध अनादि अनूपा॥
मोरें मत बड़ नाम दुहू तें। कीऐ जेहिं जुग निज बस निज बूतें॥[2]

निरगुन तें एहि भाँति बड़, नाम प्रभाउ अपार।
कहउँ नामु बड़ राम तें, निज बिचार अनुसार।[3]

परमात्मा और नाम एक हैं इसलिए नाम की बड़ाई भी वास्तव में परमात्मा की ही बड़ाई है। गोस्वामी जी का असल भाव यह है कि व्यवहारिक दृष्टि से जीवात्मा के लिए वास्तविक महत्त्व नाम का है क्योंकि नाम ही सृष्टि की रचना और सम्भाल करता है और नाम ही जीवात्मा को परमात्मा के साथ मिलाने वाला असल साधन है।

एवडु ऊचा होवै कोइ॥ तिसु ऊचे कउ जाणै सोइ॥ जो उस हरि जितना ऊँचा है, वही उसे जान सकता है। गुरु साहिब ऊपर कह आये हैं—'वडा साहिबु ऊचा थाउ॥ ऊचे उपरि ऊचा नाउ॥' भाव परमात्मा के साथ मिलाप करवाने का सामर्थ्य रखनेवाला नाम, ऊँचे-से-ऊँचा है।

'पुरातन टीका' में इस पंक्ति का अर्थ इस तरह किया गया है:

''वह बड़ा साहिब है, ऊँचा उसका स्थान है। ऊँचे-से-ऊँचा उसका नाम है जो उसको प्राप्त करवा देता है। परमात्मा जितना ऊँचा वही होता है, जो परमात्मा के ऊँचे नाम की महिमा जानता है।''[4]

जेवडु आपि जाणै आपि आपि॥ नानक नदरी करमी दाति॥ प्रभु की असल बड़ाई स्वयं प्रभु ही जानता है। जो कुछ होता है, उसका किया होता है और जिसको जो कुछ मिलता है उस दयालु की दया-मेहर द्वारा मिलता है।

पउड़ी 25

बहुता करमु लिखिआ ना जाइ॥ वडा दाता तिलु न तमाइ॥
केते मंगहि जोध अपार॥ केतिआ गणत नही वीचारु॥
केते खपि तुटहि वेकार॥
केते लै लै मुकरु पाहि॥ केते मूरख खाही खाहि॥
केतिआ दूख भूख सद मार॥ एहि भि दाति तेरी दातार॥
बंदि खलासी भाणै होइ॥ होरु आखि न सकै कोइ॥
जे को खाइकु आखणि पाइ॥ ओहु जाणै जेतीआ मुहि खाइ॥
आपे जाणै आपे देइ॥ आखहि सि भि केई केइ॥
जिस नो बखसे सिफति सालाह॥ नानक पातिसाही पातिसाहु॥

शब्दार्थ: तिलु न तमाइ=तिल जितना भी लालच नहीं। खपि...वेकार=विकारों में खचित होकर ख़त्म हो जाते हैं। खाही खाहि=खाते चले जा रहे हैं। खाइकु=मूर्ख, पगला। केई केइ=कोई विरले।

सरलार्थ: इस पउड़ी में प्रभु का दाता के रूप में उल्लेख कर रहे हैं:

उस परमात्मा की दया-मेहर कहने, सुनने और लिखने से बाहर है। वह सबसे बड़ा दाता है, पर उसको तिल जितना भी लालच नहीं। अनगिनत योद्धा उससे शक्ति माँगते हैं। उससे माँगने वालों की गिनती नहीं की जा सकती।

अनेक लोग उससे दातें लेकर विकारों में खचित होकर जीवन बरबाद कर लेते हैं। अनेक लोग उस प्रभु से दातें लेकर भी मुकर जाते हैं। अनेक मूर्ख लोग दाता का शुक्राना किये बिना उसकी दातें खाये चले जा रहे हैं। अनेक ऐसे लोग हैं जिनको हमेशा दु:ख और भूख की मार पड़ती रहती है। दु:ख और भूख की यह मार भी उस दाता की ही दात है।

जो बन्धन में हैं, वे उसके भाणे के कारण हैं, जो मुक्त होते हैं, उसके भाणे से होते हैं। बन्धन में रखने और मुक्ति देने के कार्य में किसी और का कोई दख़ल नहीं है। यदि कोई यह कहने की मूर्खता करे कि

भाणे के बिना मुक्ति (बंदि खलासी) हो सकती है तो वह स्वयं ही देख लेगा कि उसको मुँह पर कितनी चोटें खानी पड़ती हैं।

किसको क्या, कब, कितना और कैसे देना है, यह भी वह दाता स्वयं जानता है और जिसको देता है वह स्वयं ही देता है। यह कहने वाले भी विरले हैं कि जो कुछ देता है, वह दाता देता है। जिसको वह मालिक अपनी सिफ़त-सलाह की दात बख़्श देता है, वह शहंशाहों का शहंशाह है।

व्याख्या

बहुता करमु लिखिआ ना जाइ॥ उस दाता की रहमतों का हिसाब लगा सकना असम्भव है। आप एक अन्य प्रसंग में कहते हैं, 'जेवडु आपि तेवड तेरी दाति॥'[1] जितना बड़ा वह आप है, उतनी बड़ी उसकी दातें हैं।

वडा दाता तिलु न तमाइ॥ वह दाता बिना किसी लालच के बड़ी से बड़ी दातें देता है। वह दातें देते समय उन दातों के बदले न तो कुछ लेने की आशा रखता है, न किसी दात का कोई मूल्य माँगता है और न ही जिसको कुछ देता है, उसके गुण, कर्म और स्वभाव की परवाह करता है। जो चीज़ किसी का गुण, कर्म और स्वभाव देखकर दी जाती है, वह व्यक्ति उसका अधिकारी होता है। जो वस्तु लेनेवाले के गुण-अवगुण देखे बिना दी जाती है, उसमें ही दाता की असल दया होती है। बादशाह भिखारी के कौन-से गुण देखकर उसे दान देता है? बादशाह दान देता है क्योंकि दान देना उसका स्वभाव है। वह परमात्मा दातें बख़्शता है क्योंकि वह दाता और बख़्शिन्द है।

परमात्मा अनन्त गुणों का भण्डार है। वह सर्वशक्तिमान है, सर्वज्ञाता है, सर्वव्यापक है, उसका भाणा अटल है पर शक्ति, ज्ञान और रज़ा का तो किसी के विनाश के लिए भी प्रयोग किया जा सकता है। मानव का कल्याण इस बात में है कि वह परमात्मा प्रेम और दया की मूर्ति है। प्रेम और दया के बिना कोई किसी के अवगुणों को अनदेखा करके उसको बख़्श नहीं सकता और जब तक परमात्मा हमारे गुनाहों के बावजूद हमें

अपने प्रेम और नाम की दात नहीं बख़्शता, हमारा कभी किसी हालत में छुटकारा नहीं हो सकता।

परमात्मा का हुक्म अटल है। जो कुछ होता है उसके भाणे के अनुसार होता है, पर यह भाणा किसी निर्दयी का नहीं, उस प्रेम-रूप और कृपा-रूप बख़्शिन्द दयालु का है। वह परमात्मा अपनी अथाह शक्ति, अपने अथाह ज्ञान और अपने प्रबल भाणे को अपनी अपार दया के प्रसार का साधन बनाकर प्रयोग में लाता है। इसी में मनुष्य के उद्धार का वास्तविक रहस्य छिपा है। इस सम्बन्ध में गोस्वामी तुलसीदास जी द्वारा रचित रामचरितमानस में से कुछ प्रसंग देखते हैं:

कोमल चित अति दीनदयाला। कारन बिनु रघुनाथ कृपाला॥[2]

प्रभु कोमल चित्त है, वह दीन-दुखियों पर अकारण दया करनेवाला है।

जन अवगुण प्रभु मान न काऊ। दीन बंधु अति मृदुल सुभाऊ॥[3]

वह प्रभु अपने दासों के अवगुणों की परवाह नहीं करता, वह दीनदयाल अति कोमल चित्त है। वह ग़रीबों और दीनों पर दया करनेवाला है।

गुरु नानक साहिब 'जपुजी' की अन्तिम पउड़ी में लिखते हैं—'सच खंडि वसै निरंकारु॥ करि करि वेखै नदरि निहाल॥' सचखण्ड में बैठा वह परमात्मा हर क्षण अपनी कायनात पर रहमत की वर्षा कर रहा है।

केते मंगहि जोध अपार॥ केतिआ गणत नही वीचारु॥ आप समझाते हैं कि ऐसे शूरवीरों का, जो उस कर्ता पुरुष से शक्ति और बहादुरी की दात माँग रहे हैं, हिसाब लगा सकना असम्भव है।

केते खपि तुटहि विकार॥ ऐसे लोगों का अनुमान लगा सकना भी सम्भव नहीं, जो विकारों में खचित होकर जीवन बरबाद कर लेते हैं। अनेक ऐसे लोग हैं जो परमात्मा से अनन्त दातें प्राप्त करते हैं, पर दातें लेकर मुकर जाते हैं। वे दाता का उपकार नहीं मानते। वे कृतघ्न हैं। ऐसे लोग अज्ञानी, बेसमझ या मूर्ख हैं क्योंकि वे उस अविनाशी दाता को भुलाकर सिर्फ़ नश्वर दातों के भोग में लिप्त हो रहे हैं।

ऐसे लोग विकारों में प्रवृत्त होकर परमात्मा की दी हुई दातों को बरबाद कर लेते हैं। हम समझते हैं कि हम भोगों को भोग रहे हैं जब कि असल में भोग हमें भोगते हैं। हम जो भी गुनाह करते हैं, अपने विरुद्ध करते हैं क्योंकि देर-सवेर हमें अपने कर्मों का फल ख़ुद ही भुगतना पड़ता है। दाता की दातों को, दाता से मिलाप का साधन बनाने की जगह, किसी दूसरे उद्देश्य की पूर्ति के लिए इस्तेमाल करना, दाता की दातों का दुरुपयोग करना है, जिसका फल ख़ुद ही भुगतना पड़ता है।

केते लै लै मुकरु पाहि॥ केते मूरख खाही खाहि॥ अनेक लोग परमात्मा से कई प्रकार के पदार्थ प्राप्त करते हैं परन्तु उसे दाता नहीं मानते। गुरु साहिब ऐसे लोगों को मूर्ख या अज्ञानी कहते हैं।

हममें से कितने लोग हैं जो परमात्मा से मिल रहे पदार्थों को उसकी बख़्शिश मानते हैं? हम समझते हैं कि हमें जो कुछ मिल रहा है, अपनी मेहनत द्वारा मिल रहा है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि हमें जो कुछ मिलता है, उसके पीछे हमारी मेहनत का भी हाथ है, पर बिना परमात्मा की दया के मेहनत में सफलता नहीं मिल सकती। जो कुछ हो रहा है, उसके पीछे अनेक कारण होते हैं, जिनके बारे में हमें कुछ भी पता नहीं होता। उन कारणों के बारे में सिर्फ़ वह कर्ता ही जानता है।

हमें अपना प्रयास नज़र आता है, कर्ता की दया नज़र नहीं आती। न धरती हमारी पैदा की हुई है, न हवा और न आग। न पानी हमारा पैदा किया हुआ है, न ही आकाश और सूर्य। हम धरती में से लोहा, कोयला और सोना निकालते हैं, उनको ख़ुद पैदा नहीं करते। हम धरती में से हीरे निकालते हैं, उनको बनाते नहीं। हम धरती में से तेल या गैस निकालते हैं, पर उनके निर्माता हम नहीं। बाकी जो कुछ है, वह सबकुछ दाता की बनाई इन दातों पर निर्भर है।

दाता की सबसे बड़ी दात शरीर है। एक बार का ज़िक्र है कि एक ग़रीब किसान पर्वत की चोटी से छलाँग लगाकर आत्म-हत्या करने ही वाला था कि अचानक एक महात्मा ने उसे रोक लिया। महात्मा ने आत्म-हत्या का कारण पूछा तो किसान ने कहा कि मैं इतना ग़रीब हूँ कि मेरे

लिए ज़िन्दगी बर्दाश्त की हद से बाहर हो गयी है। महात्मा कहने लगा तुम थोड़ी देर इन्तज़ार करो तुम जितना धन चाहोगे तुम्हें मिल जायेगा।

थोड़ी देर बाद महात्मा के पास कुछ श्रद्धालु आ गये। महात्मा ने एक श्रद्धालु से कहा कि तेरी एक आँख नहीं है यदि तुम्हें एक आँख इस किसान से दिलवा दें तो तुम इसे कितने रुपये दोगे? उसने कहा कि पाँच लाख। महात्मा ने एक अन्य श्रद्धालु से पूछा कि तेरा एक बाज़ू ठीक नहीं, यदि तुम्हें इस किसान का एक बाज़ू मिल जाये तो तुम इसे कितने रुपये दोगे? उसने कहा कि दो लाख। महात्मा ने किसान से पूछा कि सात लाख काफ़ी हैं या तुम्हारे और अंग भी बेच दें? किसान कहने लगा कि मैं अपना कोई अंग किसी भी क़ीमत पर बेचने को तैयार नहीं। महात्मा ने कहा कि यदि तुम्हारा हर अंग इतना क़ीमती है तो तुम ग़रीब कैसे हुए? किसान महात्मा के चरणों पर गिर पड़ा और परमात्मा का धन्यवाद करता हुआ वापस घर जाकर कड़ी मेहनत करने लगा।

वास्तविक समस्या हमारी वृत्ति, सोच या विचारधारा है। जो कुछ परमात्मा ने हमें दिया है, हम उसके लिए परमात्मा का शुक्रिया भी कर सकते हैं और जो कुछ प्राप्त नहीं है, उसके लिए उसे दोष भी दे सकते हैं। गुरु अर्जुन देव जी की वाणी है:

दस बसतू ले पाछै पावै॥ एक बसतु कारनि बिखोटि गवावै॥
एक भी न देइ दस भी हिरि लेइ॥ तउ मूड़ा कहु कहा करेइ॥
जिसु ठाकुर सिउ नाही चारा॥ ता कउ कीजै सद नमसकारा॥
जा कै मनि लागा प्रभु मीठा॥ सरब सूख ताहू मनि वूठा॥[4]

आप कहते हैं कि मूर्ख प्राणी परमात्मा की दी हुई दस वस्तुओं के लिए उसका धन्यवाद नहीं करता, पर न मिली हुई एक वस्तु का गिला करता है। अज्ञानी मन यह नहीं सोचता कि यदि वह दाता दी हुई दस वस्तुएँ भी छीन ले तो यह क्या कर लेगा। सच्चा सुख उसी को मिलता है, जो दातों को नहीं दाता को प्यार करता है।

केतिआ दूख भूख सद मार॥ एहि भि दाति तेरी दातार॥ संसार के अनेक लोग दु:ख और भूख की मार सहते हैं। गुरु साहिब रहस्य खोल रहे हैं कि यह भी उस कृपालु प्रभु की दात है। मन में बहुत हैरानी होती है कि गुरु साहिब भूख, बीमारी और हर प्रकार के रोगों, दु:खों, संकटों आदि को भी उस परमात्मा की दया और दात कह रहे हैं। हम दु:ख में बार-बार अपने भाग्य और बुरे लेख लिखने वाले विधाता को कोसते हैं। गुरु नानक साहिब हमें अपना दृष्टिकोण बदलने के लिए कह रहे हैं। आपके वचन हैं:

सुखु दुखु पुरब जनम के कीए॥ सो जाणै जिनि दातै दीए॥
किस कउ दोसु देहि तू प्राणी सहु अपणा कीआ करारा हे॥[5]

जो भी सुख-दु:ख आते हैं, उस कर्ता के हुक्म के अनुसार आते हैं और हुक्म या विधान यह है कि जीव को अपने अच्छे और बुरे कर्मों के कारण ही सुख-दु:ख भोगने पड़ते हैं। 'सो जाणै जिनि दातै दीए'—किस कर्म का कब क्या फल देना है, इसका ज्ञान सिर्फ़ उस कर्ता को है। हमें मालूम नहीं कि आज हम कौन-से पूर्व कर्मों के कारण सुखों-दु:खों की चक्की में पिस रहे हैं लेकिन हमारा प्रारब्ध हमारे ही पूर्व जन्मों में किये हुए कर्मों के अनुसार लिखा गया है। कर्मों के इस विधान में उस कर्ता की रहमत छिपी हुई है। यह प्रश्न किया जा सकता है कि इसमें रहमत कैसे छिपी हुई है?

1. जिस व्यक्ति के सिर पर कर्ज़ का बोझ हो, उसे चाहे कठिनाई से उतारना पड़े, पर कर्ज़ उतर जाने से वह कर्ज़ के भार से मुक्त हो जाता है। उस कर्ता की बहुत भारी रहमत है कि वह हमारे सिर पर पड़े कर्ज़ का बोझ हलका कर रहा है।
2. आरम्भ में जब आत्मा मृत्युलोक में उतरी तो यह कर्मों से मुक्त थी। इस पर किसी कर्म का बोझ नहीं था। पर जब इसने पहला कर्म कर लिया तो दूसरे कर्म पर पहले कर्म का और इसी तरह

500वें कर्म पर उससे पहले किये 499 कर्मों का भार या प्रभाव था। हर कर्म साफ़ शीशे पर पड़े मिट्टी के कण के समान है। वर्तमान अवस्था में कर्मों के अनन्त कणों ने आत्मा रूपी शीशे का प्रकाश ढक लिया है। आत्मा जितने बड़े कर्म का भुगतान करती है उतना ज़्यादा उसका शीशा निर्मल होता जाता है। घोर पापों का फल भुगतने के बाद आत्मा का शीशा ज़्यादा साफ़ होता है और इसका प्रकाश बढ़ता है। यह प्रकाश इसके ज्ञान में वृद्धि करता है और इसे अपना मूल स्वभाव समझने में सहायता करता है। यह उस कर्ता की दया है कि वह आत्मा पर पड़े घोर पापों के पत्थर हटाकर इसका प्रकाश बढ़ा रहा है।

3. हरएक का अनुभव है कि सुख में परमात्मा को याद करना तो दूर रहा, हम इनसान को भी इनसान नहीं समझते। इसके विपरीत दु:ख के समय मन में नम्रता आती है। कई बार दु:ख के समय अपने आपकी समीक्षा करते हैं और कई बार ध्यान अपने कर्ता की तरफ़ जाता है। जिस बहाने से भी ध्यान उस कर्ता की तरफ़ जाये, मुबारक (धन्य) है। हाँ, स्वार्थ से भी उस कर्ता का ध्यान करना धन्य है। हम जिस कारण भी पानी से स्नान करें, पानी हमारी मैल उतारता है और हमें शीतलता प्रदान करता है। हम चाहे किसी भी बहाने अपने सृजनहार की तरफ़ मुड़ें, हमें उससे रहमत और सहायता मिलती है। कबीर साहिब लिखते हैं, 'राम नाम को सुमिरतां हंसि कर भावै खीझ। उलटा सुलटा नीपजै ज्यों खेतन में बीज॥'[6] खेत में बीज उलटा पड़े या सीधा, वह अन्त में अंकुरित हो जाता है। अपने कर्ता को जैसे भी याद किया जाये, कल्याणकारी है। गुरु नानक साहिब के अनुसार, 'दुखु दारू सुखु रोगु भइआ॥'[7] परमात्मा की याद भुलाने वाला सुख हानिकारक है और मन में परमात्मा की याद लाने वाला दु:ख लाभदायक है।
4. हम सन्तों-महात्माओं द्वारा वर्णित नरकों का हाल पढ़ते हैं तो आत्मा काँपती है। मन में शंका पैदा होती है कि यदि परमात्मा

दयालु है तो उसने नरकों की इतनी कठोर यातनाएँ क्यों रखी हैं? आप देखें, डाक्टर टूटी हुई हड्डियों को आरी से चीर देते हैं, वे दो-दो, तीन-तीन महीने का पलस्तर लगा देते हैं, जिसमें रोगी अपनी टाँग या बाज़ू हिला भी नहीं सकता। कई बार टाँग सीधी रखने के लिए, टाँग को खींचकर पैर के साथ दस-पन्द्रह किलोग्राम का वज़न बाँध दिया जाता है। सर्जन चीर-फाड़ करके अन्दर की गन्दी नाड़ियाँ काटकर एक तरफ़ फैंक देते हैं। कैंसर के मरीज़ों के बीमार अंगों में से ऐटमी किरणें गुज़ारी जाती हैं, जिनसे रोगी तड़पता है। डाक्टर की यह सारी कार्यवाही निर्दयता और ज़ुल्म की सूचक है या दया और रहम की? डाक्टर की रोगी के साथ दुश्मनी नहीं होती। वह रोगी को स्वस्थ करना चाहता है, जिसके लिए मरीज़ को कड़वी दवाइयाँ पिलाता है, भूखा-प्यासा रखता है और बहुत सख़्त परहेज़ करवाता है।

छुरी पर थोड़ी-सी मैल लगी हो तो उसे मिट्टी के साथ रगड़ लेते हैं। उस पर मोटा ज़ंग लग जाये तो उसे सान पर लगाया जाता है। सान छुरी को सज़ा देने के लिए नहीं, इसका ज़ंग उतारने के लिए होती है। सुनार सोने को कुठाली में गलाकर पहले उसकी मैल निकालता है, फिर उससे मनमर्ज़ी के गहने बनाता है। नरक भी अस्पतालों और सुनारों या लुहारों की भट्ठियों के समान हैं। नरक सज़ा-घर नहीं, सुधार-घर (Reformatories) हैं। ये मन-आत्मा पर चढ़ी घोर पापों की मैल को जलाने के लिए हैं। जैसे टी. बी. सैनिटोरियम (T. B. Sanitorium) विशेष पहाड़ी इलाकों में बनाए जाते हैं, उसी तरह नरक वे अर्ध-सूक्ष्म मण्डल हैं, जिनमें से आत्माओं को अनेक तरह की कठिन यातनाओं में से गुज़ार कर, उन पर चढ़ी पापों की गन्दगी को उतारा जाता है। ऐसा करने का उद्देश्य सज़ा देना नहीं, आत्मा को साफ़ करना होता है ताकि यह दोबारा अपने निर्मल प्रकाश में कर्म करने के क़ाबिल बन जाये।

आत्मा अमर है। इसे न पानी गला सकता है, न तलवार काट सकती है और न ही अग्नि जला सकती है।[8] उस पिता-परमात्मा ने अपनी रहमत से ऐसा क़ुदरती प्रबन्ध कर दिया है कि आत्माओं की सफ़ाई या सुधार का काम निरन्तर चलता रहता है। निर्दयी और ज़ालिम हम हैं जो अपनी आत्मा पर घोर पापों के पर्दे चढ़ाकर इसके प्राकृतिक प्रकाश पर गन्दगी की परतें बढ़ाते चले जा रहे हैं। एक दयालु डाक्टर, सर्जन या सुनार की तरह वह पिता-परमात्मा इसको निरन्तर साफ़ करता रहता है।

5. संसार में बीमारियाँ और महामारियाँ फैलती हैं। संसार में बाढ़ें आती हैं, भूचाल आते हैं। प्रकृति के अन्य अनेक विकराल और विनाशकारी दृश्य देखकर आत्मा काँप उठती है और हम लोग इस सबके लिए प्रभु को दोष देना शुरू कर देते हैं। हम कहते हैं कि अगर प्रभु दयालु है तो जब दुनिया में इतने ज़ुल्म होते हैं और दुनिया भूकम्पों, तूफ़ानों की मार सह रही होती है तो प्रभु कहाँ निश्चिन्त होकर सोया होता है।

हमारी सबसे बड़ी समस्या यह है कि किसी समय भी न तो पूरा इतिहास हमारे सामने होता है और न ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की पूर्ण तस्वीर हमारे सामने होती है। हमारे सामने छोटे-छोटे दृश्य होते हैं, जिस कारण हम विचलित हो जाते हैं। न हमें यह पता होता है कि आज हम कौन-से और कब के किये हुए कर्मों के कारण दुःख भोग रहे हैं और न ही यह पता होता है कि कौन-सी घटना पूर्ण सृष्टि की गति और संचालन के लिए क्यों आवश्यक है। तूफ़ान और भूकम्प आदि कायनात में सन्तुलन क़ायम करने के लिए आते हैं, विनाश के लिए नहीं। मृत्यु और विनाश केवल व्यावहारिक (practical) दृष्टि से है, निरपेक्ष (absolute) दृष्टि से नहीं। निरपेक्ष दृष्टि से विनाश नाम की कोई चीज़ नहीं है। आत्मा तो अमर है ही, भौतिक पदार्थ भी नष्ट नहीं होता, केवल अपनी शक्ल बदलता है। जब मुर्दा जल जाता है तो मिट्टी, पानी, अग्नि, हवा

और आकाश जिन तत्त्वों से शरीर बना होता है, अपने-अपने स्रोत में समा जाते हैं। पदार्थ अपना रूप बदलते हैं, नष्ट नहीं होते। वैज्ञानिकों ने यह बात स्वीकार कर ली है कि ब्रह्माण्ड की सम्पूर्णता कभी घटती-बढ़ती नहीं।* विनाश का विचार केवल भ्रम और अज्ञानता है।

जीव परमात्मा से जो भी गिले-शिकवे करता है, अज्ञानतावश करता है। जैसे-जैसे इसकी चेतना विकसित होती जाती है, जैसे-जैसे इसकी आत्मा संसार और शरीर से सिमटकर अन्दर की तरफ़ मुड़ती है और जैसे-जैसे आत्मा आन्तरिक प्रकाश के सहारे परमात्मा के समीप होती जाती है, इसको स्वयं ही अन्दर से ज्ञान होने लगता है कि परमात्मा प्रेम और दया की मूर्ति है और संसार में जो कुछ हो रहा है, उसमें परमात्मा की रहमत छिपी हुई है।

6. संसार के सब सन्तों-महात्माओं और सब धर्म-ग्रन्थों ने परमात्मा को दयालु, कृपालु और दाता कहा है। अगर वह दयालु है तो उसका कोई कर्म दया से रहित कैसे हो सकता है? या तो परमात्मा दयालु नहीं और या फिर उसका कोई कार्य दया से रहित नहीं। हम अपनी अधूरी समझ या अज्ञान के कारण दु:खों से घबराकर परमात्मा को दोष देना शुरू कर देते हैं। हमें दु:खों में उस कर्ता के आगे अरदास करनी चाहिए कि हे प्रभु! हमारे करोड़ों पाप बख़्श दो, हमारे अन्दर अपना प्रेम और भरोसा पैदा कर दो। हमारा ध्यान अपनी तरफ़ लगा लो। हमें अपना और अपने नाम का बल बख़्शो। हमें अपने प्रेम के रंग में रँग दो और अपने भाणे में ले आओ। जैसे-जैसे मन में प्रभु का प्रेम और नाम का प्रेम पैदा होता है, हमारी सोच बदलनी शुरू हो जाती है और धीरे-धीरे हम उस अवस्था के नज़दीक होते जाते हैं जिसमें उस दयालु के हर कार्य में दया छिपी हुई नज़र आने लगती है। गुरु साहिब लिखते हैं:

---

* Totality of the universe neither increases nor decreases.[9]

हुकमु जिना नो मनाइआ॥ तिन अंतरि सबदु वसाइआ॥[10]

हुकमु बूझै सोई परवानु॥ साचु सबदु जा का नीसानु॥[11]

जैसे-जैसे जीव के अन्दर प्रभु के नाम का प्रेम पैदा होता है और सुरत अन्दर शब्द में लीन होती है, वैसे-वैसे इसे स्वयं ही पहचान होनी शुरू हो जाती है कि उस दयालु प्रभु के हर कार्य में दया समायी हुई है।

बंदि खलासी भाणै होइ॥ होरु आखि न सकै कोइ॥ इन पंक्तियों के अर्थ ये किये जाते हैं कि बन्धन से मुक्ति प्रभु के भाणे द्वारा होती है। बहुत-से टीकाकारों ने इनके ये अर्थ किये हैं कि मनुष्य का बन्धन में पड़ना और बन्धन-मुक्त होना प्रभु की रज़ा के अधीन है। गुरु साहिब ने 'जपुजी' की दूसरी पउड़ी में बताया है, 'इकना हुकमी बखसीस इकि हुकमी सदा भवाईअहि॥' कुल मालिक की रज़ा से इस नाशवान मायामय रचना का अंग बने जीव, केवल उसकी रज़ा से ही आवागमन के बन्धन तोड़कर उस कर्ता से मिलाप कर सकते हैं। गुरु अर्जुन साहिब की वाणी है, 'आपण लीआ जे मिलै विछुड़ि किउ रोवंनि॥'[12] आप कहते हैं:

घाल न मिलिओ सेव न मिलिओ मिलिओ आइ अचिंता॥
जा कउ दइआ करी मेरै ठाकुरि तिनि गुरहि कमानो मंता॥[13]

प्रभु हमारी मेहनत से नहीं, अपनी दया-मेहर द्वारा मिलता है। वह जिसको मिलता है, गुरुमुखों द्वारा बख़्शे गए नाम की कमाई से मिलता है, पर गुरु-मन्त्र की कमाई वही कर सकते हैं, जिन पर उस कर्ता की दया-मेहर होती है। रूहानी करनी और प्राप्ति का आदि, मध्य और अन्त प्रभु की रज़ा या दया-मेहर है।

जे को खाइकु आखणि पाइ॥ ओहु जाणै जेतीआ मुहि खाइ॥ 'खाइकु' का अर्थ मूर्ख करते हुए इस पंक्ति की यह व्याख्या की जाती है कि जो मूर्ख यह समझता है कि मालिक की मौज के बिना भी कुछ हो

सकता है, उसे पछताना पड़ता है। 'खाइकु' का अर्थ 'खानेवाला' करते हुए, इन पंक्तियों की यह व्याख्या भी की गयी है कि जो लोग मालिक का दिया हुआ खाते हैं पर उसका शुक्राना नहीं करते वे स्वयं ही देख लेंगे कि उनको इस कृतघ्नता के कारण कितनी चोटें खानी पड़ती हैं। गुरु अर्जुन साहिब का कथन है, 'अकिरतघणा हरि विसरिआ जोनी भरमेतु॥'[14] जो कृतघ्न उस कर्ता को भुला देते हैं, वे सदा चौरासी की चक्की में पिसते रहते हैं।

आपे जाणै आपे देइ॥ आखहि सि भि केई केइ॥ किसको कब, क्या देना है, इसका ज्ञान भी उस दाता को है और जिसको जब, जो कुछ देता है, वह स्वयं देता है पर उसको दाता मानने वाले बहुत कम हैं। गुरु अमरदास जी कहते हैं, 'दाति पिआरी विसरिआ दातारा॥'[15] ज़्यादा लोग तो दातों में ही मस्त हैं, देनेवाले दाता की तरफ़ उनका ध्यान ही नहीं जाता।

जिस नो बखसे सिफति सालाह॥ नानक पातिसाही पातिसाहु॥ उस दाता की सबसे बड़ी दात उसकी सिफ़त-सलाह है। बाक़ी सबकुछ हमें हमारे कर्मों के अनुसार मिलता है पर अपने प्रेम, भक्ति और सिफ़त-सलाह की दात वह स्वयं दया-मेहर करके देता है। जिसको दाता अपने प्रेम या नाम की दात बख़्श देता है, वह ही सबसे बड़ा शहंशाह है। गुरु अमरदास जी का कथन है, 'नानक होरि पतिसाहीआ कूड़ीआ नामि रते पातिसाह॥'[16] गुरु रामदास जी का वचन है:

पातिसाही भगत जना कउ दितीअनु सिरि छतु सचा हरि बणाइ॥
सदा सुखीए निरमले सतिगुर की कार कमाइ॥
राजे ओइ न आखीअहि भिड़ि मरहि फिरि जूनी पाहि॥
नानक विणु नावै नकी वढी फिरहि सोभा मूलि न पाहि॥[17]

सांसारिक बादशाहतें व्यर्थ हैं। ये न कभी किसी के साथ गयी हैं और न जा ही सकती हैं। इन बादशाहतों की कुल मालिक की दरगाह में कौड़ी क़ीमत नहीं। वह कुल मालिक अपने प्रेमी-भक्तों को सच्ची अमर-

अविनाशी बादशाहत बख़्शता है। उसके नाम के रंग में रँगे उसके भक्त ही लोक-परलोक में सच्चे बादशाह हैं।

पउड़ी 26

अमुल गुण अमुल वापार॥ अमुल वापारीए अमुल भंडार॥
अमुल आवहि अमुल लै जाहि॥ अमुल भाइ अमुला समाहि॥
अमुलु धरमु अमुलु दीबाणु॥ अमुलु तुलु अमुलु परवाणु॥
अमुलु बखसीस अमुलु नीसाणु॥ अमुलु करमु अमुलु फुरमाणु॥
अमुलो अमुलु आखिआ न जाइ॥ आखि आखि रहे लिव लाइ॥
आखहि वेद पाठ पुराण॥ आखहि पड़े करहि वखिआण॥
आखहि बरमे आखहि इंद॥ आखहि गोपी तै गोविंद॥
आखहि ईसर आखहि सिध॥ आखहि केते कीते बुध॥
आखहि दानव आखहि देव॥ आखहि सुरि नर मुनि जन सेव॥
केते आखहि आखणि पाहि॥ केते कहि कहि उठि उठि जाहि॥
एते कीते होरि करेहि॥ ता आखि न सकहि केई केइ॥
जेवडु भावै तेवडु होइ॥ नानक जाणै साचा सोइ॥
जे को आखै बोलुविगाड़ु॥ ता लिखीऐ सिरि गावारा गावारु॥

शब्दार्थ: भाइ=प्रेम। धरमु=नियम, कानून। दीबाणु=दीवान, दरबार। तुलु=तराज़ू (तकड़ी); परवाणु=तोल, बाट। नीसाणु=निशान। फुरमाणु=हुक्म। वखिआण=वर्णन, कथा। बरमे=ब्रह्मा। इंद=इन्द्र। गोपी=गोपियाँ। गोविंद=कृष्ण। ईसर=शिवजी। दानव=दैत्य। सुरि=देवता। गावारु=गवार, मूर्ख।

सरलार्थ: 25वीं पउड़ी में उस प्रभु को महा-कृपालु कहा है। 26वीं पउड़ी में बताते हैं कि प्रभु के गुणों को बयान कर सकना असम्भव है:

उस मालिक के गुण अमूल्य और अमोलक हैं। उसके गुणों का व्यापार भी अमोलक है। जो उसके गुणों का व्यापार करते हैं, वे भी अमूल्य गुणों के भण्डारी बन जाते हैं। जो उस कर्ता के गुणों का व्यापार करने के लिए उसकी तरफ़ आते हैं, वे भी अमूल्य हैं। वे उस दाता से अमूल्य गुणों की दातें ले जाते हैं। जो उससे प्रेम करते हैं और जिनको वह प्यारा लगता है, वे उस अमूल्य परमात्मा में समाकर उसका रूप हो जाते हैं।

परमात्मा का स्थापित किया हुआ धर्मराज भी अमूल्य है और उसके दरबार में कर्मों का हिसाब रखनेवाला चित्रगुप्त भी अमूल्य है। धर्मराज का तराजू भी अमूल्य है और उसके बाट भी अनमोल हैं।

उस अमोलक परमात्मा की बख़्शिश भी अमूल्य है और इस बख़्शिश का निशान भी अमूल्य है। उसकी रहमत भी अमोलक है और उसका हुक्म भी अमोलक है। उस अमूल्य-अमोलक परमात्मा का किसी तरह भी वर्णन नहीं किया जा सकता। उसके गुण गाने वाले, उसके गुण गाते हुए उसमें लिव लगा रहे हैं।

वेद-पुराण और इनका पाठ करनेवाले उसकी महिमा गा रहे हैं। अनेक विद्वान् वेदों-पुराणों को पढ़कर उनकी कथा या व्याख्या कर रहे हैं। ब्रह्मा और इन्द्र उसकी महिमा कर रहे हैं। गोपियाँ, कृष्ण, शिवजी और सिद्ध पुरुष उसकी महिमा कर रहे हैं। उस मालिक के बनाये हुए अनेक बुद्धिमान व्यक्ति उसका यश गा रहे हैं। राक्षस और देवता उसकी महिमा गा रहे हैं। सुर (देवता), नर और मुनि उसकी सेवा करते हुए, उसकी महिमा में मग्न हैं।

अनेक लोग उसकी महिमा गाना चाहते हैं, पर उसकी पूरी महिमा गा नहीं सकते। अनेक लोग उसकी महिमा गाते-गाते थककर यहाँ से चले जाते हैं। जितने लोग मालिक ने पैदा किये हैं, उतने ही और पैदा कर दे तो भी सारे मिलकर उसकी बड़ाई नहीं कर सकते क्योंकि वह जितना बड़ा होना चाहे उतना बड़ा हो सकता है। वह अपनी बड़ाई स्वयं ही जानता है। यदि कोई यह अप्रिय वचन बोले कि मैं उस मालिक की पूरी महिमा गा सकता हूँ तो उसको सब मूर्खों से बड़ा मूर्ख समझना चाहिए।

व्याख्या

अमुल गुण अमुल वापार॥ प्रभु के गुण भी अमूल्य हैं और इन गुणों का व्यापार भी अमूल्य है। वह प्रभु प्रेम-रूप है, दया-रूप है, क्षमा-रूप है, ज्ञान-रूप है और आनन्द-रूप है। आप परमात्मा की भक्ति करनेवालों को भक्ति के व्यापारी कहते हैं। परमात्मा की भक्ति करनेवाले भक्तों में भी उस जैसे गुण पैदा हो जाते हैं।

अमुल वापारीए अमुल भंडार॥ प्रभु के गुणों का व्यापार करनेवाले व्यापारी भी अमूल्य हैं और प्रभु के गुणों के भण्डार भी अमूल्य हैं। गुरु रामदास जी की वाणी है, 'हरि के गुण हरि भावदे से गुरू ते पाए॥'[1] वह हरि नाम-रूप है। जो लोग नाम-रूप हो जाते हैं, वे हरि को अच्छे लगते हैं। गुरु रामदास जी की वाणी है, 'हरि के नाम के वापारी हरि भगत हहि जमु जागाती तिना नेड़ि न जाहु॥'[2] कबीर साहिब की वाणी है:

किनही बनजिआ कांसी तांबा किनही लउग सुपारी॥
संतहु बनजिआ नामु गोबिद का ऐसी खेप हमारी॥
हरि के नाम के बिआपारी॥
हीरा हाथि चड़िआ निरमोलकु छूटि गई संसारी॥[3]

संसार के लोग झूठे मायामय पदार्थों का व्यापार करते हैं, हरि के भक्त नाम-रूपी अविनाशी हीरों का व्यापार करते हैं।

अमुल आवहि अमुल लै जाहि॥ परमात्मा के गुणों को लेने के लिए आनेवाले भी अमूल्य हैं और जो उन गुणों को ले जाते हैं, वे भी अनमोल हैं।

अमुल भाइ अमुला समाहि॥ गुरु नानक साहिब कहते हैं—1. 'जैसा सेवै तैसो होइ॥'[4] 2. 'जिनि जाता सो तिस ही जेहा॥'[5] जो उस अमूल्य प्रभु को अच्छे लगते हैं और जो उस अमूल्य प्रभु के साथ प्रेम करते हैं, वे उसमें समाकर उसका रूप हो जाते हैं।

अमुलु धरमु अमुलु दीबाणु॥ 'धरमु' का अर्थ न्याय भी किया गया है और धर्मराज भी। यह भी कहा गया है कि उस कर्ता का न्याय भी अमूल्य है, उसका धर्मराज भी अमूल्य है और उसका दरबार भी अमूल्य है।

अमुलु तुलु अमुलु परवाणु॥ धर्मराज द्वारा जीवों के कर्मों को तोलने के लिए बनाया गया तराज़ू और बाट भी धन्य हैं। जिस ढंग से धर्मराज जीवों के कर्मों का हिसाब रखता है, जिस ढंग से उनकी परख करता है, वह भी अमूल्य है और जिस ढंग से कर्मों का भुगतान करवाता है, वे भी इनसानी अक़्ल से बाहर है।

अमुलु बखसीस अमुलु नीसाणु॥ परमात्मा द्वारा की जा रही रहमत भी अमूल्य है। उस द्वारा लगाया गया बख़्शिश का निशान भी अमूल्य है। गुरु साहिब 'जपुजी' की 34वीं पउड़ी में कहते हैं:

करमी करमी होइ वीचारु॥ सचा आपि सचा दरबारु॥
तिथै सोहनि पंच परवाणु॥ नदरी करमि पवै नीसाणु॥

वह प्रभु सच्चा है और उसका दरबार भी सच्चा है। जिन भाग्यशाली जीवों पर उस सच्चे प्रभु के सच्चे दरबार में धुर-कर्म या दया-मेहर का निशान लगता है, वे धन्य हैं। गुरु अमरदास जी की वाणी है:

धुरि करमि पाइआ तुधु जिन कउ सि नामि हरि कै लागे॥
कहै नानकु तह सुखु होआ तितु घरि अनहद वाजे॥[6]

गुरु नानक साहिब कहते हैं, 'जेवडु आपि तेवड तेरी दाति॥'[7] उस प्रभु की दात उस जितनी ही बड़ी है। जिस पर वह दया करता है उसको अपने साथ मिलाकर अपने जैसा ही बना लेता है। न प्रभु का मूल्य आँका जा सकता है और न ही उसके भक्तों का मूल्य आँका जा सकता है।

अमुलु करमु अमुलु फुरमाणु॥ उस कर्ता की दया भी अकथ है, उसका हुक्म भी अकथ है और वह जीवों पर इतनी बख़्शिशें करता है कि उनको बयान ही नहीं किया जा सकता।

अमुलो अमुलु आखिआ न जाइ॥ आखि आखि रहे लिव लाइ॥
आखहि वेद पाठ पुराण॥ आखहि पड़े करहि वखिआण॥
आखहि बरमे आखहि इंद॥ आखहि गोपी तै गोविंद॥
आखहि ईसर आखहि सिध॥ आखहि केते कीते बुध॥
आखहि दानव आखहि देव॥ आखहि सुरि नर मुनि जन सेव॥
केते आखहि आखणि पाहि॥ केते कहि कहि उठि उठि जाहि॥

इन पंक्तियों में गुरु साहिब इशारा करते हैं कि धर्म-पुस्तकें, ऋषि-मुनि, ब्रह्मा, विष्णु, शिवजी, बड़े से बड़े बुद्धिमान आदि भी अपनी पूरी कोशिश के बावजूद उस प्रभु का अन्त नहीं पा सकते।

एते कीते होरि करेहि॥ ता आखि न सकहि केई केइ॥ जितने लोग उसकी स्तुति कर रहे हैं, यदि वह उतने ही और पैदा कर दे तो वे सारे मिलकर भी उसकी बड़ाई नहीं कर सकते। गुरु नानक साहिब का कथन है:

जे सभि मिलि कै आखण पाहि॥ वडा न होवै घाटि न जाइ॥[8]

यदि सारी दुनिया के लोग उस कर्ता को बड़ा-बड़ा कहना शुरू कर दें तो उसकी बड़ाई बढ़ नहीं जाती, यदि सभी मिलकर उसकी निन्दा करनी शुरू कर दें तो वह छोटा नहीं हो जाता। वह सदा एक-रंग, एक-रस और एक-रूप रहता है।

जेवडु भावै तेवडु होइ॥ नानक जाणै साचा सोइ॥ गुरु साहिब का इस सत्य को समझाने का यह सुन्दर ढंग है कि उस कर्ता की बड़ाई का वर्णन कर सकना असम्भव है क्योंकि जितनी अधिक कोई उसकी बड़ाई करता है, वह उसको उतना और अधिक बड़ा लगना शुरू हो जाता है। अपनी बड़ाई वह प्रभु आप ही जानता है।

जे को आखै बोलुविगाड़ु॥ ता लिखीऐ सिरि गावारा गावारु॥ यदि कोई अज्ञानवश इस तरह के अप्रिय वचन बोले कि मैं उस प्रभु की

महिमा जान सकता हूँ या उसका वर्णन कर सकता हूँ तो उसे सब मूर्खों से बड़ा मूर्ख समझना चाहिए।

संसार का सबसे बड़ा दार्शनिक सुकरात कहता था कि जब मैं बहुत छोटा था तो यह समझता था कि मुझे सबकुछ पता है। जब मैं थोड़ा बड़ा हुआ तो मुझे महसूस होने लगा कि मुझे कई बातों का पता नहीं। अब बुढ़ापे में पहुँचकर मैंने यह महसूस किया है कि मुझे कुछ भी पता नहीं। जिसे जितना ज़्यादा ज्ञान होता है, उसको महसूस होता है कि उसे कुछ भी ज्ञान नहीं। जिसको जितना कम ज्ञान होता है वह ख़ुद को उतना बड़ा ज्ञानी समझता है। इसी तरह जितना कोई साधक प्रभु के नज़दीक होता जाता है, उतना ज़्यादा अपने आपको तुच्छ महसूस करता है। प्रभु से नज़दीकी ही सच्ची नम्रता की जननी है।

21वीं से 26वीं छह पउड़ियों में अकालपुरुष की महिमा गायी गयी है। हर पउड़ी में इस बात पर बल दिया गया है कि उस कर्ता की महिमा अगम, अगाध और अकथनीय है। 21वीं पउड़ी में कहते हैं कि 'किव करि आखा किव सालाही किउ वरनी किव जाणा॥' यही भाव इन सभी पउड़ियों में चलता है। वाणी के एक अन्य प्रसंग में कहते हैं:

तू सुलतानु कहा हउ मीआ तेरी कवन वडाई॥[9]

आप कहते हैं कि परमात्मा की बड़ाई करना इस तरह है जिस तरह किसी शहंशाह को चौधरी या सरपंच कह दिया जाये। परमात्मा की बड़ाई करना अनन्त का अन्त पाने, अथाह की थाह पाने का यत्न करने के समान है। गुरु अर्जुन देव जी की वाणी है:

सोई अजाणु कहै मै जाना जानणहारु न छाना रे॥[10]

आप बहुत सुन्दर ढंग से समझा रहे हैं कि जो कोई यह समझता है कि मैंने प्रभु को जान लिया है, असल में वह सबसे बड़ा अज्ञानी है। उस अनन्त-असगाह, अगम-अथाह, प्रभु की थाह पा सकना असम्भव है।

पउड़ी 27

सो दरु केहा सो घरु केहा जितु बहि सरब समाले॥
वाजे नाद अनेक असंखा केते वावणहारे॥
केते राग परी सिउ कहीअनि केते गावणहारे॥
गावहि तुहनो पउणु पाणी बैसंतरु गावै राजा धरमु दुआरे॥
गावहि चितु गुपतु लिखि जाणहि लिखि लिखि धरमु वीचारे॥
गावहि ईसरु बरमा देवी सोहनि सदा सवारे॥
गावहि इंद इदासणि बैठे देवतिआ दरि नाले॥
गावहि सिध समाधी अंदरि गावनि साध विचारे॥
गावनि जती सती संतोखी गावहि वीर करारे॥
गावनि पंडित पड़नि रखीसर जुगु जुगु वेदा नाले॥
गावहि मोहणीआ मनु मोहनि सुरगा मछ पइआले॥
गावनि रतन उपाए तेरे अठसठि तीरथ नाले॥
गावहि जोध महाबल सूरा गावहि खाणी चारे॥
गावहि खंड मंडल वरभंडा करि करि रखे धारे॥
सेई तुधुनो गावहि जो तुधु भावनि रते तेरे भगत रसाले॥
होरि केते गावनि से मै चिति न आवनि नानकु किआ वीचारे॥
सोई सोई सदा सचु साहिबु साचा साची नाई॥
है भी होसी जाइ न जासी रचना जिनि रचाई॥
रंगी रंगी भाती करि करि जिनसी माइआ जिनि उपाई॥
करि करि वेखै कीता आपणा जिव तिस दी वडिआई॥
जो तिसु भावै सोई करसी हुकमु न करणा जाई॥
सो पातिसाहु साहा पातिसाहिबु नानक रहणु रजाई॥

शब्दार्थ: नाद=बाजे, शब्द। वावणहारे=बजाने वाले। परी=परियाँ, रागिनियाँ। बैसंतरु=अग्नि। राजा धरमु=धर्मराज। चितु गुपतु=कर्मों का लेखा-जोखा करनेवाला दूत चित्रगुप्त। ईसरु=शिवजी। बरमा=ब्रह्मा। इंद=इंद्र। इदासणि=इंद्र का आसन। जती=ब्रह्मचारी, काम-वासना से

ऊपर उठ चुके। सती=सत्य धारण करनेवाले। वीर करारे=बहादुर सूरमा। रखीसर= बड़े ऋषि। मोहणीआ=मन को मोह लेनेवाली सुन्दरियाँ; मछ=मृत्युलोक। पइआले=पाताल लोक। वरभंडा=ब्रह्माण्ड। धारे=सहारा देकर रखे हुए। नाई=बड़ाई। जिनसी=कई क़िस्मों की। उपाई=पैदा की। रहणु रजाई=रज़ा या भाणे के अनुसार रहना।

सरलार्थः गुरु साहिब ने 24वीं पौड़ी में इशारा किया था, 'वडा साहिबु ऊचा थाउ॥' अब उस स्थान का वर्णन करते हैं, जहाँ बैठकर वह 'बड़ा' अपनी 'बड़ी रहमत' बाँट रहा है। गुरु साहिब कहते हैं:

वह दर, वह द्वार या स्थान बहुत सुन्दर और अद्भुत है जहाँ बैठकर तू सबकी सँभाल कर रहा है। उस सुन्दर और आश्चर्यजनक द्वार पर अनन्त बाजे बज रहे हैं, अनन्त नाद हो रहे हैं और असंख्य वादक वाद्य बजा रहे हैं। वहाँ अनन्त बाजे बजाने वाले हैं। वहाँ अनन्त राग-रागिनियाँ गायी जा रही हैं और अनन्त संगीतज्ञ हैं।

पवन, पानी, अग्नि आदि तेरी स्तुति कर रहे हैं और धर्मराज भी तेरे द्वार पर खड़ा तेरा यश गा रहा है। जीवों के कर्मों का हिसाब लिखने वाला चित्रगुप्त भी, जिसके लिखे हुए पर धर्मराज विचार करता है, तेरा यश गा रहा है। अनेक देवियाँ और शिवजी, ब्रह्मा आदि देवता जो तेरे द्वारा रचित हैं, तेरा यश गा रहे हैं। अपने सिंहासन पर बैठे इन्द्र जैसे देवता, देवियों सहित तेरा यश गा रहे हैं।

समाधि में मग्न सिद्ध और तेरे ध्यान में लीन साधु तेरे बारे में विचार करके तेरा यश गा रहे हैं। यत (संयम, ब्रह्मचर्य) धारण करनेवाले यति, सत्य धारण करनेवाले सत्यनिष्ठ, सन्तोष धारण करनेवाले सन्तोषी और बहादुर शूरवीर तेरा यश गा रहे हैं। वेदों को पढ़ने वाले पण्डित और अनेक ऋषि-मुनि, वेदों सहित युगों-युगों से तेरा गुणगान करते आ रहे हैं।

स्वर्ग-लोक, मृत्यु-लोक (मछ) और पाताल-लोक (पइआले) की मन को मोह लेनेवाली सुन्दरियाँ तेरा यश गा रही हैं। तूने जितने रत्न उत्पन्न किये हैं और अड़सठ तीर्थ बनाये हैं, वे भी तेरी सिफ़त-सलाह कर रहे हैं।

हे प्रभु! बड़े-बड़े महाबली योद्धा और शूरवीर तेरा गुणगान कर रहे हैं और अण्डज, जेरज, स्वेदज, उद्भिज्ज—चारों खानियों के जीव तेरा गुणगान कर रहे हैं। वे सारे खण्ड-ब्रह्माण्ड जिनकी रचना करके तूने सभी को अपनी-अपनी जगह पर टिकाया हुआ है और जिनकी तू सँभाल कर रहा है, तेरा गुणगान कर रहे हैं।

हे प्रभु! तेरा यश वही गाते हैं, जो तुझे अच्छे लगते हैं। जो तुझे अच्छे लगते हैं, वे तेरी भक्ति के रंग में रँगे हुए हैं। वही प्रेमी भक्त तेरा गुणगान कर रहे हैं। हे प्रभु! और भी बहुत-से जीव तेरा यश गाने में लगे हुए हैं, जो मेरे विचार में नहीं आ रहे, इसलिए मैं उनके बारे में क्या कह सकता हूँ?

जिसके द्वार पर ये सब गुणगान हो रहे हैं, वह सदा सत्य-स्वरूप सच्चा बादशाह है। वह भी सच्चा है और उसकी बड़ाई भी सच्ची है। वह आज भी है और आगे भी सदा रहेगा। न वह नाश हो सकता है, न ही कभी नाश होगा। जिसने सारी रचना रची है और जिसने माया की रचना करके यह रंग-बिरंगी सृष्टि पैदा की है, वह सच्चा शहंशाह अपने दरबार में बैठा अपने किये हुए को देख रहा है। वह वैसे ही करता है जैसे उसको अच्छा लगता है। जो कुछ होता है, उसके हुक्म, उसकी रज़ा के अनुसार होता है। उस पर किसी का हुक्म नहीं चल सकता। वह सच्चा बादशाह है, शहंशाहों का शहंशाह है। जो कुछ होता है, उसकी रज़ा के अनुसार होता है। हमें उसकी रज़ा में राज़ी रहना चाहिए और अपनी इच्छा को उसकी रज़ा के अधीन कर देना चाहिए।

व्याख्या

सो दरु केहा सो घरु केहा जितु बहि सरब समाले॥
वाजे नाद अनेक असंखा केते वावणहारे॥
केते राग परी सिउ कहीअनि केते गावणहारे॥

यहाँ गुरु साहिब उस अद्भुत दरबार का वर्णन कर रहे हैं, जहाँ बैठकर वह परमात्मा सारी कायनात की सँभाल कर रहा है। गुरु साहिब उस कर्ता

के दरबार में हो रही शब्द या नाद की अद्भुत धुनों की तरफ़ इशारा कर रहे हैं। पाँचवीं पउड़ी में गुरु साहिब ने फ़रमाया है, 'गुरमुखि नादं गुरमुखि वेदं गुरमुखि रहिआ समाई॥' अर्थात् सच्चे नाद का ज्ञान पूर्ण गुरुमुखों से प्राप्त होता है। पाँचवीं पउड़ी की व्याख्या करते हुए 'नाद' पद के बारे में विचार कर आये हैं। अकालपुरुष के दरबार में अनेक राग-नाद हो रहे हैं और अनेक बाजे बजाने वाले बाजे बजा रहे हैं। 'परी' का अर्थ है रागिनी। उस दरबार में अनेक राग-रागिनियाँ हो रही हैं। न वह दरबार भौतिक या स्थूल रचना है और न ही वहाँ हो रहे राग-रागिनियों की ध्वनियाँ ऐंद्रिय हैं। वह सूक्ष्म आध्यात्मिक मण्डल है और वहाँ अनहद शब्द के सूक्ष्म राग-नाद सहज रूप में हो रहे हैं। अकालपुरुष के दरबार में हो रहे अनहद शब्द के राग-नाद अखण्ड, निरन्तर और स्वयंमेव हैं। गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं:

भाग सुलखणा हरि कंतु हमारा राम॥
अनहद बाजित्रा तिसु धुनि दरबारा राम॥[1]

सौभाग्य से उस प्रियतम से हमारा मिलाप हो गया है जिसके दरबार में अनहद शब्द की ध्वनियाँ हो रही हैं।

सन्तों-महात्माओं ने निजी अनुभव के आधार पर संकेत किया है कि परमात्मा के दरबार में अनहद शब्द निरन्तर बज रहा है:

सरब थान को राजा॥ तह अनहद सबद अगाजा॥[2]

अनहद सबद होत झुनकार॥ जिह पउढ़े प्रभ स्री गोपाल॥[3]

भाई गुरदास जी कहते हैं:

राग नाद अनहद धुनी ओअंकार न गावणहारा॥[4]

अमिउ किरणि निझर झरै अनहद नाद वाइन दरबारी॥[5]

आप इशारा कर रहे हैं कि अनहद नाद परमात्मा का रूप है। यह वर्णन से परे है। उस अकालपुरुष के दरबार में अनेक प्रकार के नाद हो रहे हैं और वहाँ अनेक वादक हैं।

गावहि तुहनो पउणु पाणी बैसंतरु गावै राजा धरमु दुआरे॥
गावहि चितु गुपतु लिखि जाणहि लिखि लिखि धरमु वीचारे॥
गावहि ईसरु बरमा देवी सोहनि सदा सवारे॥
गावहि इंद इदासणि बैठे देवतिआ दरि नाले॥
गावहि सिध समाधी अंदरि गावनि साध विचारे॥
गावनि जती सती संतोखी गावहि वीर करारे॥
गावनि पंडित पड़नि रखीसर जुगु जुगु वेदा नाले॥
गावहि मोहणीआ मनु मोहनि सुरगा मछ पइआले॥
गावनि रतन उपाए तेरे अठसठि तीरथ नाले॥
गावहि जोध महाबल सूरा गावहि खाणी चारे॥
गावहि खंड मंडल वरभंडा करि करि रखे धारे॥

वर्तमान अवस्था में यह संसार हमें अनेकता की आश्चर्यजनक तस्वीर दिखाई देता है। हमारे लिए अनन्त, अथाह सृष्टि को एक नज़र में देख सकना असम्भव है। इन पंक्तियों द्वारा गुरु साहिब इशारा कर रहे हैं कि जब परमात्मा के दरबार में पहुँचते हैं तो सारी सृष्टि खुली हुई किताब की तरह आत्मा की आँख के सामने आ जाती है और सृष्टि से सम्बन्धित सब भेद सहज ही समझ में आ ज़ाते हैं। उस अवस्था में सृष्टि की अनेकता पूर्ण एकता में बदल जाती है। सारी सृष्टि एक इकाई के रूप में दिखाई देती है और एक ही कर्ता की रज़ा के सूत्र में पिरोई हुई प्रतीत होती है। फिर यह आभास होता है कि सबकुछ अपने आप हो रहा है लेकिन कुछ भी विवेकहीन नहीं है।

27वीं पउड़ी की इन पंक्तियों में गुरु साहिब इशारा कर रहे हैं कि पाँच तत्त्व (पवन, पानी, बैसन्तर आदि) तथा इनकी बनी हुई सारी स्थूल रचना; चारों खानियों के सारे जीव; अनन्त सूक्ष्म खण्ड, मण्डल और

वरभंड सहित इनके निवासी; संसार में कर्म और फल के विधान को लागू करनेवाला धर्मराज; कर्मों का हिसाब रखने वाला चित्रगुप्त; कर्मों के भुगतान के लिए बनाए स्वर्ग, नरक, मृत्यलोक, पाताल लोक; स्वर्गों के वासी, अनन्त देवी-देवता; सारे तीर्थ; सृष्टि के सब श्रेष्ठ पदार्थ (चौदह रत्न); सब महाबली, ऋषि-मुनि, सिद्ध-साधक आदि एक परमात्मा के गुण गा रहे दिखाई देते हैं।

समस्त सृष्टि को अकालपुरुष के गुण गा रही दिखाने से गुरु साहिब का असल भाव यह है कि सारी सृष्टि उस कर्ता की रज़ा के अनुसार चल रही है। गुरु सहिब ने वाणी के एक प्रसंग में सृष्टि को कर्ता के हुक्म या भय में बँधी कहा है, कहीं इसे उस कर्ता की भक्ति में लीन दर्शाया है और कहीं इसको कर्ता के गीत गा रही कहा है। गुरु साहिब धनासरी राग की आरती में कहते हैं:

गगन मै थालु रवि चंदु दीपक बने तारिका मंडल जनक मोती॥
धूपु मलआनलो पवणु चवरो करे सगल बनराइ फूलंत जोती॥
कैसी आरती होइ॥ भव खंडना तेरी आरती॥
अनहता सबद वाजंत भेरी॥[6]

'अनहता सबद वाजंत भेरी॥' इन पंक्तियों द्वारा आपने सारी कायनात को अनहद शब्द के ताल पर आरती करते हुए दर्शाया है। समूची कायनात को अकालपुरुष की आरती करते दर्शाना, इसको अकालपुरुष के गुण गाते दर्शाना, इसको अकालपुरुष के हुक्म का पालन करते दर्शाना और इसको उसकी भक्ति में लीन दर्शाना यह भेद खोलता है कि सारी जड़ और चेतन रचना एक अकालपुरुष की रज़ा से पैदा हुई है और उस एक कर्ता द्वारा सौंपे कार्यों को, उसकी रज़ा के अनुसार पूरा करने के कार्य में लगी हुई है।

सेई तुधुनो गावहि जो तुधु भावनि रते तेरे भगत रसाले॥ इस पंक्ति का एक अर्थ यह किया गया है कि उस मालिक का यश वही गाते हैं, जिनके द्वारा यश गाया जाना उसे अच्छा लगता है। इसका दूसरा अर्थ यह

किया गया है कि यश तो मालिक का सभी गाते हैं पर विशेष यश गाना उन प्रेमी भक्तों का है, जो उस मालिक को प्यारे लगते हैं।

होरि केते गावनि से मै चिति न आवनि नानकु किआ वीचारे॥ गुरु साहिब कहते हैं कि हे प्रभु! मैंने तेरा यश गानेवाले अनेक जीवों और वस्तुओं की तरफ़ इशारा किया है पर तेरे यशोगान में लीन सब लोगों और वस्तुओं का वर्णन कर सकना असम्भव है। तेरी महिमा या भक्ति में लीन असंख्य ऐसे जीव हैं जो मन, बुद्धि और विचार के दायरे से परे हैं।

सोई सोई सदा सचु साहिबु साचा साची नाई॥
है भी होसी जाइ न जासी रचना जिनि रचाई॥

गुरु साहिब फ़रमा रहे हैं कि वह परमात्मा सच्चा है और उसकी बड़ाई भी सच्ची है। वह कर्ता जिसने सारी सृष्टि की रचना की है, सदा से क़ायम है और सदा क़ायम रहेगा। वह पहले भी था, आज भी है और भविष्य में भी सदा क़ायम रहेगा।

रंगी रंगी भाती करि करि जिनसी माइआ जिनि उपाई॥
करि करि वेखै कीता आपणा जिव तिस दी वडिआई॥

उस कर्ता ने ही माया पैदा की है और उसने ही अनेक ढंग से अनेक रंगों-रूपों और क़िस्मों वाली रचना की है। यह उस कर्ता की बड़ाई है कि वह अपनी बनाई हुई रचना की सँभाल भी ख़ुद ही कर रहा है। गुरु साहिब ने पउड़ी का अन्त इन पंक्तियों से किया है:

जो तिसु भावै सोई करसी हुकमु न करणा जाई॥
सो पातिसाहु साहा पातिसाहिबु नानक रहणु रजाई॥

गुरु साहिब समझा रहे हैं कि वह कर्ता अपनी रज़ा का मालिक है। सबकुछ उसके हुक्म के अधीन है लेकिन वह किसी के हुक्म के अधीन नहीं है। वह बड़े से बड़ा शहंशाह है और अपनी रज़ा का मालिक है।

आपने 'जपुजी' के आरम्भ में प्रश्न किया है, 'किव सचिआरा होईऐ किव कूड़ै तुटै पालि॥' आप इसके उत्तर में कहते हैं, 'हुकमि रजाई चलणा नानक लिखिआ नालि॥' यहाँ गुरु साहिब 'हुकमु न करणा जाई' और 'नानक रहणु रजाई' द्वारा उपदेश देते हैं कि परमात्मा का हुक्म अटल है और जीव की भलाई इस बात में है कि वह सदा उसकी रज़ा में राज़ी रहे।

पउड़ी 28

मुंदा संतोखु सरमु पतु झोली धिआन की करहि बिभूति॥
खिंथा कालु कुआरी काइआ जुगति डंडा परतीति॥
आई पंथी सगल जमाती मनि जीतै जगु जीतु॥
आदेसु तिसै आदेसु॥
आदि अनीलु अनादि अनाहति जुगु जुगु एको वेसु॥

शब्दार्थ: मुंदा=कुण्डल। सरमु=उद्यम। पतु=पात्त, खप्पर, चिप्पी, कमंडल। खिंथा=गोदड़ी। आई पंथी=योगियों का एक पंथ। सगल जमाती=सबसे प्रेम रखने वाला। आदेसु=नमस्कार। अनीलु=माया रहित। अनाहति= जिसको हत (नाश) न किया जा सके, अविनाशी।

सरलार्थ: 28वीं और 29वीं दो पउड़ियों में गुरु साहिब परमात्मा की प्राप्ति के लिए उस समय के नाथों और योगियों द्वारा अपनाये जानेवाले साधनों का उल्लेख करते हुए सच्चे योग की युक्ति पर प्रकाश डालते हैं। योगी कानों में कुण्डल डालते हैं, शरीर पर भभूत रमाते हैं, गले में गुदड़ी डालते हैं और हाथ में डण्डा रखते हैं। गुरु साहिब कहते हैं:

हमने सन्तोष के कुण्डल पहने हुए हैं, झोली और कमण्डल की जगह, हमने उद्यम को धारण किया हुआ है। हमने ध्यान को भभूत बनाया

हुआ है। मौत की याद और निर्मल (कुआरी) काया हमारी गुदड़ी है। दृढ़ विश्वास और प्रभु-प्राप्ति की युक्ति हमारा डण्डा है। सबसे प्रेम करना और मन पर विजय प्राप्त करके संसार पर विजय प्राप्त करना, हमारा आई पंथ है। हम उस प्रभु का अलख जगाते हैं जो सबका आदि है, जो माया-रहित है, जो अनादि है, अविनाशी है और जो युग-युग अर्थात् हर युग में सदा एक-रंग, एक-रूप और एक-रस रहता है।

व्याख्या

जोग 'योग' का बदला हुआ रूप है। 'योग' शब्द संस्कृत के 'युज' धातु से बना है जिसका अर्थ है जोड़ना। आत्मा को परमात्मा के साथ जोड़ना ही सच्चा योग है। गुरु साहिब योगियों को समझाते हैं कि योग बाहरमुखी क्रियाओं द्वारा शरीर की साधना नहीं, अन्तर्मुखी अभ्यास द्वारा मन की साधना और आत्मा को परमात्मा में लीन करना है, जिसके बारे में आप पउड़ी में कई इशारे करते हैं।

मुंदा संतोखु— जिसको नाथ या योगी योग की दीक्षा देते थे, उसके कानों में कुण्डल डालते थे। गुरु साहिब उपदेश देते हैं कि योगी की असली दीक्षा और पहचान सन्तोष है। कई योगियों में गृहस्थियों के बराबर भी सन्तोष नहीं होता। उनको संशय रहता है कि पता नहीं दोबारा भोजन कब मिलेगा, इसलिए वे ख़ूब पेट भर कर खा लेते हैं। इसी तरह कई लोग दिखावा तो त्यागी होने का करते हैं लेकिन उनका ध्यान धन और पदार्थ इकट्ठा करने में होता है। अविश्वास और लालच परमार्थ की जड़ें काट देते हैं। गुरु नानक साहिब ने मारू राग के शब्द 'मनमुखु लहरि घरु तजि विगूचै अवरा के घर हेरै॥'[1] में ऐसे योगी की हालत का वर्णन किया है जो जोश में आकर घर का त्याग कर देता है पर उसकी मनोवृति पहले से भी मलिन हो जाती है। गुरु साहिब कहते हैं, 'काची पिंडी सबदु न चीनै उदरु भरै जैसे ढोरै॥'[2] जो पशुओं की तरह पेट भर लेता है, वह नाम की साधना कैसे कर सकता है? गुरु गोबिन्द सिंह जी ने कहा था,

'अलप आहार सुलप सी निद्रा।'[3] साधु के लिए कम खाना और कम सोना आवश्यक है। गुरु नानक साहिब ऊपर बताये गये शब्द में कहते हैं:

सो संनिआसी जो सतिगुर सेवै विचहु आपु गवाए॥
छादन भोजन की आस न करई अचिंतु मिलै सो पाए॥
बकै न बोलै खिमा धनु संग्रहै तामसु नामि जलाए॥
धनु गिरही संनिआसी जोगी जि हरि चरणी चितु लाए॥[4]

सच्चा योगी वह है जो तामसिक वृत्ति का त्याग करके अपने अन्दर क्षमा और सन्तोष जैसे गुण धारण करता है। वह प्रारब्ध को कुल मालिक की मौज मानते हुए और कपड़े तथा भोजन की चिन्ता छोड़कर अपना ध्यान कुल मालिक के नाम के साथ जोड़ने का यत्न करता है। गुरु अर्जुन साहिब का फ़रमान है:

बिना संतोख नही कोऊ राजै॥ सुपन मनोरथ ब्रिथे सभ काजै॥[5]

सन्तोष धारण किये बिना न कोई तृप्त हुआ है और न हो ही सकता है। जिसे परमात्मा ने सन्तोष की दात बख़्शी हुई है, वह सबसे बड़ा अमीर है और जिसके अन्दर सन्तोष नहीं, वह सबसे बड़ा कंगाल है। सन्तोष से अभिप्राय यत्न का त्याग नहीं, बल्कि पूरा यत्न करने के बाद प्राप्त हुए फल में सन्तोष रखना है। सच्चे परमार्थी को धैर्यवान और कृतज्ञ होना चाहिए। उसका आदर्श भौतिक प्राप्तियाँ नहीं, परमात्मा की प्राप्ति होना चाहिए।

सरमु पतु झोली—गुरु साहिब कहते हैं कि तुम मेहनत या उद्यम को कमण्डल और झोली बनाओ और द्वार-द्वार पर भिक्षा माँगने के बजाय स्वयं हक़-हलाल की कमाई द्वारा अपना गुज़ारा करो। आप कहते हैं:

गुरु पीरु सदाए मंगण जाइ॥ ता कै मूलि न लगीऐ पाइ॥
घालि खाइ किछु हथहु देइ॥ नानक राहु पछाणहि सेइ॥[6]

जो लोग रूहानी अगुआ होने का दावा करते हैं पर माँगकर पेट भरते हैं, वे सम्मान के पात्र नहीं हैं। परमार्थी अगुआ वही है जो स्वयं हक़-हलाल की कमाई करता है और अपनी मेहनत की कमाई भी साध-संगत के साथ बाँटकर खाता है। गुरु अमरदास जी ने इस विचार पर एक और पहलू से प्रकाश डाला है। आप कहते हैं:

जोगी होवा जगि भवा घरि घरि भीखिआ लेउ॥
दरगह लेखा मंगीऐ किसु किसु उतरु देउ॥[7]

गुरु अर्जुन साहिब की वाणी है:

उदमु करेदिआ जीउ तूं कमावदिआ सुख भुंचु॥
धिआइदिआ तूं प्रभू मिलु नानक उतरी चिंत॥[8]

आप उपदेश देते हैं कि स्वार्थ और परमार्थ दोनों में सफलता का आधार उद्यम और मेहनत है। सच्चा परमार्थी सांसारिक कार्य-व्यवहार भी मेहनत से करता है और नाम की कमाई भी उत्साह भरे उद्यम से करता है। परमार्थ कमाना बेकार और आलसी लोगों का काम नहीं, जी-जान से मेहनत करते हुए नाम की साधना में लगने वाले संग्रामियों का काम है।

धिआन की करहि बिभूति॥ योगी शरीर पर भभूत लगाते हैं। गुरु साहिब उपदेश करते हैं कि बाहर भभूत रमाने से मन वश में नहीं आता। यदि मन को वश में करना चाहते हो तो इस पर ध्यान की भभूत लगाओ।

वास्तव में भभूत नम्रता, त्याग और संसार तथा शरीर को भभूत समान समझने की प्रतीक है। यह शरीर को गर्मी-सर्दी के प्रभाव से बचाने का साधन भी है। गुरु साहिब इशारा कर रहे हैं कि जब ध्यान को संसार और शरीर की ओर से मोड़कर अन्दर नाम से जोड़ देते हैं तो सच्चे त्यागी बन जाते हैं। फिर मन में नम्रता भी पैदा हो जाती है, मन से संसार और शरीर

का मोह भी निकल जाता है और मालिक के भाणे में रहने का बल भी मिल जाता है। इस तरह साधक दुःख और सुख दोनों से ऊपर उठ जाता है।

हम वहाँ होते हैं जहाँ हमारा ध्यान होता है और हम वैसे होते हैं जैसा हमारा ध्यान होता है। जब तक हमारा ध्यान दुनिया और इसके भोगों की तरफ़ है, हम दुनियादार या भोगी हैं। जब ध्यान पिता-परमात्मा की तरफ़ हो जाता है तो हम उसके भक्त बन जाते हैं। गुरु नानक साहिब की वाणी है:

पुरख महि नारि नारि महि पुरखा बूझहु ब्रहम गिआनी॥
धुनि महि धिआनु धिआन महि जानिआ गुरमुखि अकथ कहानी॥
मन महि जोति जोति महि मनूआ पंच मिले गुर भाई॥
नानक तिन कै सद बलिहारी जिन एक सबदि लिव लाई॥[9]

आप समझाते हैं कि जब अन्दर शब्द की ध्वनि सुनाई देती है तो ध्यान एकदम धुन में लग जाता है और परमात्मा का दीदार हो जाता है। गुरु साहिब ने 'पंच' की महिमा करते हुए फ़रमाया है—'पंचा का गुरु एकु धिआनु॥'[10] सन्त-महात्मा हर क्षण उस एक के ध्यान में मग्न रहते हैं। गुरु साहिब समझाते हैं कि योगी की पहचान भभूत नहीं, उसका ध्यान है। सच्चा योग शरीर पर भभूत रमाने पर नहीं, ध्यान या लिव को अन्तर्मुख करने पर निर्भर है।

खिंथा कालु कुआरी काइआ जुगति डंडा परतीति॥ गुरु साहिब उपदेश करते हैं कि यदि सच्चे योगी बनना चाहते हो तो मौत (काल) को निरन्तर याद रखो और निर्मल आचरण (कुआरी काइआ) की गुदड़ी पहनो। मौत को याद रखने का अर्थ प्रभु और बुरे कर्मों का डर है। इसका अर्थ अपने समय को संसार के व्यर्थ के धन्धों में नष्ट करने की जगह, योग में जल्दी से जल्दी सफलता प्राप्त करने का यत्न करना भी है।

कुआरी काइआ—हमारे समाज में जब किसी के आचरण की प्रशंसा करनी होती है तो कहा जाता है, वह तो कुँवारी कन्या के समान निर्मल

है। कुआरी कन्या का ख़याल पर-पुरुष और काम के भाव से ऊपर होता है। गुरु साहिब कहते हैं कि योग में सफलता के लिए मन, वचन और कर्म की निर्मलता आवश्यक है। जब तक मन मलिन भावों और मलिन इच्छाओं का अखाड़ा है, योगी का पहरावा ख़ुद से और संसार से धोखा है। कबीर साहिब की वाणी है:

काम काम सब कोइ कहै काम न चीन्है कोइ॥
जेती मन की कामना काम कहावै सोइ॥[11]

ज़बरदस्ती स्त्री या काम का त्याग कर देना काफ़ी नहीं, मन को हर तरह की कामना से मुक्त करना ही काम-मुक्त होना है। 'कुआरी काइआ' से भी इसी भाव का संकेत मिलता है।

जुगति डंडा परतीति॥ गुरु साहिब कहते हैं कि बाहरी डण्डों से कुत्तों, बिल्लियों को डरा सकते हैं, पर विषय-विकारों के बाघों से बचाव के लिए ध्यान को अन्तर्मुख करके शब्द के साथ जुड़ने की युक्ति सीखनी पड़ेगी। 'परतीति' का अर्थ है, भरोसा या विश्वास। यहाँ गुरु साहिब प्रभु के भरोसे, गुरु के भरोसे और नाम के भरोसे का उपदेश दे रहे हैं, जिसका परमार्थ में सफलता की दृष्टि से बहुत महत्त्व है। इस सम्बन्ध में एक दृष्टान्त इस प्रकार है:

कहा जाता है कि गुरु गोबिन्द सिंह जी महाराज का एक भोला-भाला और अनपढ़ शिष्य भाई बेला अस्तबल में घोड़ों की सेवा बहुत प्यार से करता था। एक दिन गुरु साहिब ने प्रसन्न होकर कहा भाई, तू हमसे प्रतिदिन एक पंक्ति लेकर याद कर लिया कर। भाई बेला जो पंक्ति लेता, बड़े प्यार से सारा दिन रटता रहता और शाम को गुरु जी को सुना देता। एक दिन गुरु साहिब को किसी ज़रूरी काम के लिए बाहर जाना था। वह जाने के लिए तैयार खड़े थे कि भाई बेला दौड़कर पंक्ति पूछने के लिए चला आया। गुरु साहिब कहने लगे, 'वाह भाई बेला, न पछाणे वक़्त, न पछाणे वेला।' भाई बेला सारा दिन यह पंक्ति रटता रहा। सारे शिष्य देखकर हँसते रहे। शाम को जब गुरु साहिब आये तो भाई बेला ने

जाकर पंक्ति सुना दी। गुरु साहिब उसके भरोसे और निश्छलता पर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने उस पर दया-दृष्टि डाली जिससे उसकी रूहानी अवस्था बहुत ऊँची हो गयी। भाई बेला के लिए गुरु महाराज जी का हर शब्द पवित्र था। उसको गुरु साहिब के हर शब्द पर प्रतीति थी। इस तरह एक अनपढ़ प्रेमी गुरु शिष्य जिसको लोग पागल समझते थे, कुछ-का-कुछ बन गया।

परमार्थ की नींव बुद्धि या तर्क पर नहीं, भरोसे पर खड़ी है। हम शुरू में सन्तों-महात्माओं के वचनों पर भरोसा कर लेते हैं कि परमात्मा सचमुच है, मनुष्य-जन्म का असली उद्देश्य प्रभु से मिलाप करना है, जिन गुरुमुखों ने हमें नाम जपने की युक्ति सिखायी है, सचमुच पूर्ण हैं और उनकी नाम की युक्ति भी पूर्ण है। हमें इनमें से किसी बात का निजी अनुभव नहीं होता, हम विश्वास के आधार पर इन सब बातों को मान लेते हैं।

विद्यार्थी इस विश्वास से स्कूल पढ़ने जाता है कि उसके शिक्षक विद्या देने के योग्य हैं। रोगी इस विश्वास से डाक्टर के पास जाता है कि डाक्टर उसका रोग दूर कर देगा। हम इंजीनियर या आर्कीटैक्ट पर विश्वास रखकर उसके बनाये नक़्शे के अनुसार निर्माण करते हैं तो एक दिन सचमुच मकान बन जाता है। संसार में जो कुछ होता है, उसका आरम्भ विश्वास से होता है और जब हम प्रेम और विश्वास के साथ मार्ग पर चलते हैं, तो मंज़िल पर भी पहुँच जाते हैं। मंज़िल पर करनी पहुँचाती है, पर विश्वास के बिना करनी बेजान रहती है। शुरू में मन की पूरी तसल्ली करना ज़रूरी है, पर जब तक मन में विश्वास पैदा नहीं होता, परमार्थ में उन्नति कर सकना असम्भव है। इसलिए योग की युक्ति और युक्ति सिखाने वाले गुरु दोनों में डण्डे के समान दृढ़ विश्वास होना चाहिए।

आई पंथी सगल जमाती॥ 'आई पंथ' योगियों के बारह पंथों में 'आई' नामक योगिन के नाम पर चला एक पंथ है। आई पंथी अपने नाम के पीछे 'आई' प्रत्यय लगाते हैं जैसे 'बालगदाई'। गुरु साहिब 'आई' शब्द को पिता के अर्थों में प्रयोग करते हुए कहते हैं, 'आई पूता इहु जगु

सारा॥'[12] सारा संसार उस हरि रूपी पिता की सन्तान है और उसका ही रूप है। इसलिए सबसे प्रेम करना चाहिए। सगल जमाती होना और सबसे प्रेम करना ही सच्चा आई पंथ है।

संसार की क्या हालत है? योगियों में शारीरिक भेषों के आधार पर अनेक भेदभाव हैं। जैनियों में सफ़ेद वस्त्र पहनने वालों को श्वेताम्बर कहते हैं। वैष्णव भक्तों में पीले वस्त्र पहनने वालों को पीताम्बर और नीले पहनने वालों को नीलाम्बर कहा जाता है। मुसलमानों में बहत्तर फ़िरके हैं। प्रत्येक फ़िरका अपने आपको सच्चा मुसलमान सिद्ध करने का यत्न करता है। सुन्नी, शिया के और शिया, सुन्नी के ख़िलाफ़ हैं। सिक्खों में जाट सिख, अरोड़ा सिख, मज़हबी सिख, दलित सिख आदि में अनेक प्रकार के भेदभाव हैं। हिन्दुओं में भी बहुत भेदभाव हैं। पहले चार वर्ण हैं—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। आगे प्रत्येक वर्ण की हज़ारों उपजातियाँ और गौत्र हैं। इस सम्बन्ध में एक दृष्टान्त है: किसी ग़ैर-हिन्दू ने देखा कि श्राद्धों के दिनों में हिन्दुओं के घरों में खाने को बहुत कुछ मिलता है। वह भी श्राद्ध खाने गये लोगों की एक टोली में मिल गया। घर वालों को शंका हुई। पूछते हैं: कौन धर्म? कहता है: जी, हिन्दू धर्म। पूछते हैं: कौन हिन्दू? कहता है: जी ब्राह्मण। पूछते हैं: कौन ब्राह्मण? कहता है: जी गौड़ ब्राह्मण। पूछते हैं: कौन गौड़? चोरी पकड़ी गयी। कहता है कि हे परमात्मा, मुझे इनसे बचाओ! दौड़कर जान बचाई।

प्रभु ने इनसान पैदा किया था। हमने अपने आपको क़ौमों, मज़हबों, मुल्कों और जातियों में बाँटकर मानवता को टुकड़े-टुकड़े कर दिया है और एक-दूसरे से घृणा को ही सच्चा धर्म समझना शुरू कर दिया है। गुरु साहिब हमें ग़फ़लत की नींद से बेदार करते हुए मानवता के प्रेम का पाठ पढ़ा रहे हैं। गुरु अर्जुन देव जी ने 'एकु पिता एकस के हम बारिक'[13] और 'ना को बैरी नही बिगाना सगल संगि हम कउ बनि आई॥'[14] का उपदेश दिया है।

हज़रत ईसा का फ़रमान है: मेरा पहला और बड़ा हुक्म यह है कि तुम अपने प्रभु को सच्चे दिल से प्यार करो। दूसरा हुक्म जो पहले जैसा

ही है, यह है कि तुम अपने पड़ोसी को उस तरह प्रेम करो, जिस तरह अपने आपको करते हो। यह दो हुक्म हैं जिन पर संसार के सभी पैग़म्बरों ने ज़ोर दिया है।* हमारा पड़ोसी कौन है? पड़ोसी का अर्थ केवल बाएँ-दाएँ और आगे-पीछे के पड़ोसी नहीं। सारा संसार हमारा पड़ोसी है। प्रभु के पैदा किये हुए सब जीव हमारे पड़ोसी हैं। ख़ुदा का इश्क़ और ख़ुदा की कायनात का इश्क़ धर्म की आत्मा है। इसके बिना धर्म मुर्दा जिस्म के समान है।

हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई आदि सब अपने आपको प्रभु के ख़ास जीव मानते हुए यह दावा करते हैं कि केवल हम ही दरगाह में बख़्शे जायेंगे और बाक़ी सब नरकों में जायेंगे। प्रभु के असल जीव, सच्चे हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई और योगी वे हैं जो प्रभु से तथा प्रभु के जीवों से प्रेम करते हैं। केवल वही दरगाह में बख़्शे जायेंगे, बाकी सब कर्मों का लेखा देने के लिए आवागमन के चक्कर में फँसे रहेंगे। इसलिए सच्चे योगी और सच्चे आई पंथी बनने के लिए 'सगल जमाती' होना और सबसे एक जैसा प्यार करना ज़रूरी है।

मनि जीतै जगु जीतु॥ योगी करामातों द्वारा सारे संसार को जीतने या अपने पीछे लगाने का यत्न करते हैं। गुरु साहिब इशारा करते हैं कि सच्ची करामात मन को जीतने में है और जो मन को जीत लेता है, वह सारे संसार पर विजय प्राप्त कर लेता है। जिन सन्तों ने मन को वश में कर लिया, बड़े-बड़े शहंशाह भी उनके आगे सिर झुकाते हैं। आत्मा और प्रभु के बीच असल रुकावट मन है। मन को जीत लेना, जगत् और इसके बनाने वाले को जीत लेना है। योगी मन को वश में करने के लिए कई प्रकार के हठ-कर्म आदि करते हैं। गुरु साहिब समझाते हैं कि घर-गृहस्थी के त्याग, अनेक प्रकार के हठ-कर्म आदि बनावटी साधनों द्वारा मन थोड़ी देर के लिए दब सकता है, पर हमेशा के लिए वश में नहीं आ

* Thou shalt love the Lord thy God with all thy heart, and with all thy soul, and with all thy mind. This is the first and great commandment. And the second is like unto it, Thou shalt love thy neighbour as thyself. On these two commandments hang all the law and the prophets.[15]

सकता। आप समझाते हैं कि मन को वश में करने के लिए इसके स्वभाव को जानना ज़रूरी है। मन बहुत चंचल है। यह बहुत मुँहज़ोर है और विषयों-विकारों की लज़्ज़तों का आशिक़ है। जब तक मन को कोई निश्चल, प्रबल और आनन्दमय आधार नहीं मिलता, मन कभी वश में नहीं आ सकता। गुरु रामदास जी की वाणी है:

> मनु खिनु खिनु भरमि भरमि बहु धावै तिलु घरि नही वासा पाईऐ॥
> गुरि अंकसु सबदु दारू सिरि धारिओ घरि मंदरि आणि वसाईऐ॥[16]

पल-पल माया रूपी भ्रम और विषय-विकारों की तरफ़ दौड़ने वाले हाथी जैसे ज़ोरावर मन के सिर पर गुरु के शब्द का अंकुश रखोगे तो यह सहज ही वश में आ जायेगा। गुरु नानक साहिब की वाणी है:

> घटि घटि वाजै किंगुरी अनदिनु सबदि सुभाइ॥
> विरले कउ सोझी पई गुरमुखि मनु समझाइ॥
> नानक नामु न वीसरै छूटै सबदु कमाइ॥[17]

योगी बाहरी किंगरी से मन को वश में करना चाहते हैं। गुरु साहिब समझाते हैं कि तुम्हारे अन्दर आँखों के पीछे हर क्षण शब्द की आनन्दमय किंगरी बज रही है। तुम गुरुमुखों के उपदेश के अनुसार सुरत को उस किंगरी से जोड़ो। इस तरह तुम्हारा मन वश में आ जायेगा और तुम्हारा चौरासी के चक्कर से छुटकारा हो जायेगा। गुरु नानक साहिब की वाणी है:

> राम नामि मनु बेधिआ अवरु कि करी वीचारु॥
> सबद सुरति सुखु ऊपजै प्रभ रातउ सुख सारु॥[18]

आप फ़रमाते हैं कि हिरन की तरह चंचल मन जब भी बेधा जाता है, नाम के बाण से बेधा जाता है। नाम की कमाई के बिना मन को वश में करने का यत्न करना अपना समय बरबाद करने के तुल्य है।

आदेसु तिसै आदेसु॥ आदि अनीलु अनादि अनाहति जुगु जुगु एको वेसु॥ वह प्रभु आदि और अन्त से ऊपर है, वह माया-रहित है, वह अविनाशी है और सदा एक-रंग, एक-रस और एक-रूप रहता है।

पउड़ी 29

भुगति गिआनु दइआ भंडारणि घटि घटि वाजहि नाद॥
आपि नाथु नाथी सभ जा की रिधि सिधि अवरा साद॥
संजोगु विजोगु दुइ कार चलावहि लेखे आवहि भाग॥
आदेसु तिसै आदेसु॥
आदि अनीलु अनादि अनाहति जुगु जुगु एको वेसु॥

शब्दार्थ: भुगति=भोजन। भंडारणि=भोजन बाँटनेवाली। घटि...नाद=हर हृदय में शब्द की ध्वनि बज रही है। नाथु=मालिक, स्वामी। नाथी=नथी हुई, नियन्त्रण में। रिधि सिधि=ऋद्धियाँ-सिद्धियाँ, करामातें। अवरा साद=घटिया स्वाद।

सरलार्थ: गुरु साहिब पिछली पउड़ी में शुरू की गयी विचारों की शृंखला को आगे बढ़ाते हुये योगियों को उपदेश देते हैं। योगियों के मठों पर सिंगियाँ, संख आदि बजाये जाते हैं और भगवान शिव की आराधना के बाद भण्डारी साधकों में भोजन बाँटता है। गुरु साहिब कहते हैं:

हमारा भोजन ज्ञान है और दया हमारी भण्डारिन है। घट-घट में बज रही नाम की ध्वनि हमारा नाद है। वह कुल मालिक सबका नाथ या स्वामी है; बाक़ी सब उसके नियन्त्रण में हैं, उसके अधीन हैं। हम उस एक सच्चे नाथ का यश गाते हैं। हम ऋद्धियों-सिद्धियों के स्वाद को घटिया (अवरा साद) समझते हैं। कुल मालिक ने जो संयोग-वियोग के नियम बनाये हैं, वे संसार का कार्य-व्यवहार चला रहे हैं। जिसको जो कुछ मिलता है, धुर दरगाह से लिखे लेख के अनुसार मिलता है।

व्याख्या

भुगति गिआनु दइआ भंडारणि घटि घटि वाजहि नाद॥ योगियों के मठों पर भंडारे के समय सिंगी बजाई जाती है और भण्डारी (भंडारणि) चूरमा बाँटता है। गुरु साहिब इशारा करते हैं कि हे भले लोगो! सच्चे योगी बनना चाहते हो तो ज्ञान रूपी भोजन करो। गुरु अर्जन देव जी की वाणी है; 'ब्रहम गिआनी का भोजनु गिआन॥'[1] आपका इशारा ग्रन्थों-शास्त्रों में दर्ज ज्ञान की तरफ़ नहीं, आन्तरिक सहज अनुभव की ओर है। साधक अपनी लिव अन्दर नाम के साथ जोड़कर जो प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करता है, वही सच्चा ज्ञान है। गुरु साहिब ने 'घटि घटि वाजहि नाद' द्वारा स्पष्ट कर दिया है कि घट-घट में हो रही अनहद शब्द की सिंगी ही आत्मा का सच्चा भोजन है।

गुरु साहिब योगियों को समझाते हैं कि शरीर की भूख तो चूरमे से शान्त कर लोगे पर जब तक मन की भूख शान्त नहीं होती, सच्चा योग प्राप्त नहीं हो सकता। मन की भूख अन्तर में अनहद शब्द या नाम का अमृत पीकर ही शान्त होती है। जब नाम का अमृत पीकर मन शान्त हो जायेगा तब आत्मा इसके पंजे से आज़ाद होकर प्रभु से मिल जायेगी। इस तरह तुम सच्चे योगी बन जाओगे।

पाँचवीं पउड़ी में गुरु साहिब ने 'गुरमुखि नादं' द्वारा संकेत दिया है कि सच्चे नाद, शब्द या नाम की पहचान पूरे गुरु द्वारा होती है। गुरुवाणी के अन्य अनेक प्रसंगों में 'नाद' पद 'शब्द', 'नाम' या 'वाणी' के अर्थों में प्रयोग किया गया है। गुरु नानक साहिब की वाणी है:

सतिगुर ते पाए वीचारा॥ सुंन समाधि सचे घर बारा॥
नानक निरमल नादु सबद धुनि सचु रामै नामि समाइदा॥[2]

आप शब्द, नाम, नाद, राम, धुन और सच सबको समान अर्थों में प्रयोग करते हुए कहते हैं कि जब सतगुरु की बतायी हुई युक्ति के मुताबिक़ अभ्यासी पूर्ण समाधि की अवस्था प्राप्त कर लेता है तो वह

शब्द, नाम, राम या नाद की धुन में समाकर प्रभु का रूप हो जाता है। पाँचवीं पउड़ी की व्याख्या में भाई वीर सिंह के विचार पढ़ आये हैं कि अनहद नाद वह है जो एकाग्रता होने पर आत्मा के अनुभव में आता है। यह आत्मा का पूर्ण एकाग्रता की अवस्था का अनुभव है। यह कानों का विषय नहीं। जिस प्रकार यह नाद आत्म-मण्डल का है, वैसे ही इसका अनुभव भी उसी मण्डल का है। इसका प्रमाण मन की एकाग्रता और लिव है, जो सुमिरन द्वारा होती है— 'प्रभ कै सिमरनि अनहद झुनकार'[3]। भाई काहन सिंह नाभा ने अनहद शब्द और अनहद नाद का अर्थ एक शीर्षक के अन्तर्गत इस तरह किया है, ''वह शब्द जो किसी आघात (प्रहार) से पैदा नहीं हुआ। गुरुमत के अनुसार आत्म-मण्डल का संगीत, जो कानों का विषय नहीं; नाम अभ्यासी को मन की एकाग्रता (समाधि) में इसका अनुभव होता है यथा—अनहता सबद वाजंत भेरी॥''[4] गुरु नानक साहिब वाणी के एक और प्रसंग में कहते हैं:

> जेता सबदु सुरति धुनि तेती जेता रूपु काइआ तेरी॥
> तूं आपे रसना आपे बसना अवरु न दूजा कहउ माई॥[5]

आप समझा रहे हैं कि आत्मा और शब्द दोनों में नाद या धुनात्मकता का गुण है और आत्मा तथा शब्द या नाम परमात्मा का ही रूप है। भाई गुरदास जी की वाणी है:

> होई आगिआ आदि आदि निरंजनो॥ नादै मिलिआ नाद हउमै भंजनो॥[6]

आप इशारा कर रहे हैं कि सुरत या आत्मा भी शब्द या नाद-रूप है और प्रभु भी शब्द या नाद-रूप है। जब उस आदि कर्ता का हुक्म होता है, तब जीवात्मा रूपी नाद, प्रभु रूपी नाद में समाकर उसका रूप हो जाता है।

'दइआ भंडारणि'—दया लेना नहीं देना सिखाती है। गुरु साहिब योगियों को समझाते हैं कि तुम माँगने और लेने की वृत्ति त्यागकर, कुछ देने की वृत्ति धारण करो। तुम दूसरों पर बोझ बनने की बजाय उनका

बोझ हलका करने की कोशिश करो। तुम अपना बोझ संसार पर मत डालो, संसार का भार हलका करने की कोशिश करो। जब तुम परमात्मा से मिलाप कर के सच्चे योगी बन जाओगे, तब तुम दया-रूप हो जाओगे। उस अवस्था में पहुँचकर तुम्हें परोपकार से, लोगों की सेवा-सहायता से और उन्हें कर्मों के जाल से मुक्त करवाकर परमात्मा-प्राप्ति के सच्चे मार्ग के लिए प्रेरित करने में ख़ुशी और शान्ति महसूस होगी।

'दया धर्म का मूल है।'[7] दया को धर्म की बुनियाद माना गया है। गुरु साहिब की वाणी है, 'निरदइआ नही जोति उजाला॥'[8] आप फ़रमाते हैं कि निर्दयी हृदय में कभी भी प्रभु का प्रकाश प्रकट नहीं हो सकता। स्वामी शिवदयाल सिंह जी का कथन है, 'कोमल चित दया मन धारो। परमारथ का खोज लगाना॥'[9] आप नसीहत करते हैं कि परमार्थ के रास्ते पर चलने के लिए हृदय में कोमलता और दया के गुण धारण करने ज़रूरी हैं। दया, दूसरों के दुःख को अपना समझकर, उस दुःख को दूर करने का जज़्बा पैदा करती है। एक छोटा-सा दृष्टान्त है: एक बार अमेरिका का राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन बग्घी में अपने दफ़्तर जा रहा था। उसे रास्ते में सूअर का एक छोटा-सा बच्चा दलदल में फँसा तड़पता नज़र आया। उसने कोचवान को फ़ौरन बग्घी रोकने के लिए कहा और भागकर दलदल से उस बच्चे को बाहर निकाल लिया। उसके कपड़े कीचड़ से ख़राब हो गये। वह घर वापस गया और कपड़े बदलकर दफ़्तर पहुँच गया। उसका कोई दोस्त दूर से यह सबकुछ देख रहा था। जब उसकी लिंकन से मुलाकात हुई तो उसने कहा कि तुम में दया भरी हुई है, तुमने सूअर के बच्चे पर दया की है। लिंकन कहने लगा कि मैंने सूअर के बच्चे पर दया नहीं की, उसे दुःख में देखकर मैं इतना दुःखी हो गया कि मैंने अपना दुःख दूर करने के लिए उसे दलदल में से निकाला। मैंने उस पर नहीं, ख़ुद पर दया की है। अमेरिका का राष्ट्रपति उस जानवर को दलदल में से निकालने के लिए अपने कोचवान को भी हुक्म दे सकता था। पर उसमें दया का प्रवाह इतना प्रबल था कि वह अपने आपको रोक न पाया। इसका नाम है दया! गुरु अर्जुन देव जी की वाणी है:

जनम मरण दुहहू महि नाही जन परउपकारी आए॥
जीअ दानु दे भगती लाइनि हरि सिउ लैनि मिलाए॥[10]

सच्चे गुरुमुख ख़ुद जन्म-मरण के बन्धन तोड़ चुके होते हैं। वे बहुत परोपकारी होते हैं। वे आवागमन रूपी आग में जल रहे जीवों पर तरस खाकर संसार में आते हैं। वे लोगों में प्रभु-प्रेम जाग्रत करके, उन्हें प्रभु से मिला देते हैं। पलटू साहिब अपनी एक कुण्डली 'परस्वारथ के कारने संत लिया औतार'[11] में बताते हैं कि सन्त परोपकार के लिए संसार में आते हैं। वे निस्वार्थ भाव से अनेक दु:ख और कष्ट सहकर दिन-रात देश-विदेश में लोगों की सेवा और सहायता के लिए जाते हैं। वे यह सब दया-भाव से करते हैं। गुरु साहिब योगियों को मन में सच्ची दया धारण करने का उपदेश देते हैं। मन में सच्ची दया नाम या प्रभु के साथ लिव जोड़ने से पैदा होती है और सबसे बड़ी दया नाम के साथ लिव जोड़ने की युक्ति सिखाना और नाम के साथ लिव जोड़ने में सहायता देना है। इसलिए अरदास में अक्सर 'दानां सिर दान नाम दान'[12] का जयघोष गूँजता सुनाई देता है।

आपि नाथु नाथी सभ जा की रिधि सिधि अवरा साद॥ योग मत में बड़े योगियों को 'नाथ' कहकर सम्मानित किया जाता है। गुरु साहिब कहते हैं कि सच्चा नाथ वह कर्तापुरुष है जिसने सारी सृष्टि को अपने हुक्म द्वारा वश में किया हुआ है। वह अपने द्वारा रचित कायनात को अपनी रज़ा के अनुसार चला रहा है। 'नाथु' का अर्थ पति और 'नाथी' का अर्थ पत्नियाँ करते हुए इस पंक्ति का यह अर्थ भी किया जाता है कि पति सिर्फ़ वह परमात्मा है, बाकी सब आत्माएँ उसकी पत्नियाँ हैं—'एको प्रिउ सखीआ सभ प्रिअ की जो भावै पिर सा भली'[13]।

रिधि सिधि अवरा साद॥ योगी ऋद्धियों-सिद्धियों और करामातों का मान करते हैं। भाई गुरदास ने अपनी पहली वार में बताया है कि सिद्धों ने गुरु नानक साहिब को कई क़िस्म की करामातें दिखाईं और आपको भी कोई करामात दिखाने के लिए कहा। गुरु साहिब ने जवाब दिया, 'बाझों

सचे नाम दे होर करामात असा ते नाहीं।'[14] अर्थात् हम केवल सच्चे नाम को सच्ची करामात मानते हैं।

ऋद्धियाँ-सिद्धियाँ और करामातें मन के खेल हैं। इनसे मन की शक्तियों का दिखावा किया जा सकता है और भौतिक पदार्थ प्राप्त किये जा सकते हैं, पर रूहानी दृष्टि से करामातें लाभदायक नहीं, हानिकारक हैं। एक महात्मा ने दृष्टान्त दिया है कि करामातों में पड़ना इस तरह है जिस तरह कोई कठोर परिश्रम और अनेक क़ुर्बानियों द्वारा इकट्ठी की गयी दौलत को वेश्याओं के कोठे पर बरबाद करके कंगाल हो जाये। करामातें दिखाने से की हुई कमाई ख़त्म हो जाती है और आगे के लिए तरक़्क़ी भी रुक जाती है। सच्चा परमार्थी स्वप्न में भी करामातों के चक्कर में नहीं पड़ता।

ऋद्धियों-सिद्धियों का आनन्द सच्चा और स्थायी नहीं। करामातों से मन ख़ुश होता है, पर नाम रूपी अमृत से आत्मा तृप्त और शान्त होती है। संसार की सबसे बड़ी करामात मन को वश में करना और प्रभु की रज़ा में रहना है। कहा जाता है कि लाहौर के सूबेदार ने गुरु अर्जुन देव जी को यातनाएँ दीं तो एक सूफ़ी दरवेश ने गुरु साहिब से अर्ज़ की कि आपका हुक्म हो तो मैं राज्य की ईंट-से-ईंट बजा दूँ। गुरु साहिब ने फ़रमाया कि हम यहाँ प्रभु का हुक्म मानने आये हैं, अपना हुक्म चलाने नहीं आये।

गुरु गोबिन्द सिंह जी गुरु तेग़ बहादुर साहिब के बारे में लिखते हैं, 'सीस दीयो उन सिरर न दीना॥'[15] 'सिरर' का अर्थ है आन्तरिक भेद। औरंगज़ेब ने गुरु साहिब से कहा कि या करामात दिखाओ या शीश कटवा लो। गुरु साहिब ने शीश देना क़बूल कर लिया पर करामात दिखाना मंज़ूर न किया। क्या गुरु साहिब करामात नहीं दिखा सकते थे? गुरु अर्जुन देव जी की वाणी है, 'गुरु करता गुरु करणै जोगु॥ गुरु परमेसरु है भी होगु॥'[16] अपनी आत्मा प्रभु में अभेद कर चुका पूर्ण गुरुमुख प्रभु की शक्ति से भरपूर होता है। जो कुछ परमात्मा कर सकता है, सन्त-सतगुरु भी कर सकते हैं। पर जब पूर्ण सन्त देह में होते हैं, प्रभु के शरीक़ नहीं,

प्रभु के दास बनकर रहते हैं। करामात प्रभु से अलग होने की निशानी है। प्रभु के भाणे का अडोल प्रेम, प्रभु के साथ योग (मिलाप) का सूचक है। शक्ति का दिखावा आसान है, लेकिन शक्ति को हज़म करने के लिए बहुत अधिक शक्ति की आवश्यकता होती है। यह शक्ति सिर्फ़ पूर्ण गुरुमुखों में होती है।

करामातें दिखाने वाला परमात्मा का शरीक़ बन जाता है कि देखो जो परमात्मा ने तुम्हें नहीं दिया, मैं दे देता हूँ। सच्चे प्रभु-भक्त का वास्तविक उद्देश्य हौंमैं का नाश करके प्रभु से मिलाप करना होता है, न कि परमात्मा का शरीक़ बनकर उससे मुक़ाबला करना। सच्चा भक्त अपनी अलग हस्ती नहीं क़ायम करना चाहता। वह अपनी ख़ुदी को ख़ुदा में फ़ना कर देता है। नाम का स्वाद सच्चा और मीठा है। ऋद्धियाँ-सिद्धियाँ हौंमैं और द्वैत पैदा करके जीव को चौरासी के चक्कर से बाँधती हैं, जब कि नाम उसे सदा के लिए चौरासी के जाल से मुक्त करके परमात्मा में लीन कर देता है। इसलिए गुरु साहिब ऋद्धियों-सिद्धियों को घटिया और निकम्मा कह रहे हैं।

संजोगु विजोगु दुइ कार चलावहि लेखे आवहि भाग॥ गुरु साहिब ने योगियों को सन्तोष, उद्यम, ध्यान, सच्ची युक्ति, सहज ज्ञान या सहज अनुभव का जो उपदेश दिया है, वह आसानी से समझ आ जाता है। 'संजोगु विजोगु दुइ कार चलावहि लेखे आवहि भाग॥' पंक्ति इस उपदेश में असंगत प्रतीत होती है, पर ध्यान से देखने पर पता चलता है कि ऐसा नहीं है। योगी करामातों द्वारा लोगों की बीमारियाँ दूर करने और उन्हें कई प्रकार के सांसारिक पदार्थ देने की कोशिश करते हैं। गुरु साहिब कहते हैं कि प्रभु का भक्त परमात्मा का भाणा मानता है, परमात्मा के भाणे में दख़ल नहीं देता। गुरु साहिब कहते हैं कि संयोग-वियोग और इनसे पैदा होनेवाला सुख-दुःख भाग्य या मौज से मिलता है। ग़रीबी-अमीरी, बीमारी-तन्दुरुस्ती भी भाग्य या मौज से आती है। योगी वह है, जो मन का नहीं, परमात्मा का भक्त है। वह सदा प्रभु की रज़ा को मुख्य

रखता है, ऋद्धियों-सिद्धियों और करामातों द्वारा कर्मों के लेख में दख़ल नहीं देता।

संयोग-वियोग न सिर्फ़ भाग्य के, बल्कि सृष्टि के संचालन के भी अभिन्न अंग हैं। गुरु अमरदास जी का कथन है, 'संजोगु विजोगु उपाइओनु स्रिसटी का मूलु रचाइआ॥'[17] उस कर्ता ने संयोग-वियोग को सृष्टि के प्रबन्ध का मूल आधार बनाया है। गुरु नानक साहिब का कथन है, 'संजोगी मिलि एकसे विजोगी उठि जाइ॥'[18]

हर संयोग निश्चित समय के लिए होता है। हर संयोग अन्त में वियोग में बदल जाता है। स्टेज पर अनेक ऐक्टर इकट्ठे होते हैं। नाटक ख़त्म होते ही किसी का किसी के साथ कोई सम्बन्ध नहीं रहता। इसी तरह कर्मों के भुगतान के लिए माता-पिता, बहन-भाई, पति-पत्नी, मित्र-सम्बन्धी आदि इकट्ठे होते हैं। जैसै-जैसे कर्मों का भुगतान होता जाता है, सब अपने-अपने रास्ते पर चले जाते हैं और किसी का किसी के साथ कोई सम्बन्ध नहीं रहता।

गुरु साहिब की वाणी है, 'पंच ततु मिलि काइआ कीनी॥'[19] शरीर पाँच तत्त्वों का बना हुआ है। पहले ये तत्त्व अपने-अपने स्रोत से बिछुड़कर एक स्थान पर इकट्ठे होते हैं, फिर यही तत्त्व शरीर को छोड़कर अपने-अपने स्रोत में समा जाते हैं।

समुद्र का पानी भाप बन कर समुद्र से बिछुड़ जाता है। वही पानी अनेक स्थानों पर से गुज़रता हुआ फिर समुद्र में समा जाता है। प्रभु के हुक्म से उससे बिछुड़ी आत्मा कितने ही रूप बदलती है। अन्त में वही आत्मा उस कर्ता की रज़ा के अनुसार वापस उसमें समा जाती है। कण से ब्रह्माण्ड तक, शरीर से आत्मा तक और मृत्युलोक से सतलोक तक संयोग और वियोग का चक्कर चल रहा दिखाई देता है। गुरु अर्जुन साहिब की वाणी है:

कोई जानै कवनु ईहा जगि मीतु॥
जिसु होइ क्रिपालु सोई बिधि बूझै ता की निरमल रीति॥

मात पिता बनिता सुत बंधप इसट मीत अरु भाई॥
पूरब जनम के मिले संजोगी अंतहि को न सहाई॥[20]

आप सावधान करते हैं कि माता-पिता, स्त्री, बेटे-बेटियाँ, मित्र-सम्बन्धी आदि सब पूर्व जन्मों के कर्मों के भुगतान के लिए इकट्ठे हुए हैं। इनमें से न कोई आते हुए साथ आया था और न ही जाते समय साथ जायेगा। इसलिए संयोग और वियोग के कारण पैदा होनेवाले सुखों और दु:खों के प्रभाव से अलिप्त रहते हुए अपना ध्यान कुल मालिक और उसके नाम की तरफ़ रखना चाहिए।

पउड़ी 30

एका माई जुगति विआई तिनि चेले परवाणु॥
इकु संसारी इकु भंडारी इकु लाए दीबाणु॥
जिव तिसु भावै तिवै चलावै जिव होवै फुरमाणु॥
ओहु वेखै ओना नदरि न आवै बहुता एहु विडाणु॥
आदेसु तिसै आदेसु॥
आदि अनीलु अनादि अनाहति जुगु जुगु एको वेसु॥

शब्दार्थ: माई=माया। जुगति=युक्ति से। विआई=प्रसव होना। तिनि... परवाणु=उसके तीन पुत्र पैदा हुए। संसारी=संसार की रचना करनेवाला ब्रह्मा। भंडारी=संसार की पालना करनेवाला विष्णु। लाए दीबाणु= दीवान लगाने वाला भाव मौत का देवता शिवजी। फुरमाणु=हुक्म। विडाणु=आश्चर्य।

सरलार्थ: योगियों में संसार की उत्पत्ति और संचालन के बारे में कई तरह के मत प्रचलित हैं और वे अपनी-अपनी धारणा के अनुसार अलग-अलग इष्टों की पूजा-भक्ति में लगे रहते हैं। गुरु साहिब उनके सामने सृष्टि की

रचना और इसके संचालन का पूर्ण सिद्धान्त पेश करते हुए यह इशारा करते हैं कि पूजा और भक्ति के क़ाबिल वह एक परमपिता-परमात्मा है। आप कहते हैं:

प्रभु की कला (जुगति) द्वारा माया को प्रसूत हुआ और उसके तीन पुत्र (चेले) पैदा हुए—ब्रह्मा, विष्णु और शिवजी। उनमें से एक का काम संसार की रचना करना है, दूसरे का काम इसका पालन-पोषण करना है और तीसरे का काम इसका संहार करना है। उस कर्ता को जैसे अच्छा लगता है, वैसे ही इन तीनों को चलाता है और यह तीनों वैसे ही चलते हैं जैसे उस एक कर्ता का इनको हुक्म होता है। सबसे बड़ा आश्चर्य यह है कि वह प्रभु माया और इसके पुत्रों को देखता है पर इनको वह दिखाई नहीं देता।

व्याख्या

एका माई जुगति विआई तिनि चेले परवाणु॥ प्रभु की कला (जुगति) द्वारा माया रूपी माता के घर तीन पुत्र पैदा हुए—ब्रह्मा, विष्णु और शिव।

इकु संसारी इकु भंडारी इकु लाए दीबाणु॥ ब्रह्मा संसार की उत्पत्ति करता है, विष्णु पैदा किये हुए जीवों का पालन-पोषण करता है और शिव मृत्यु के देवता के रूप में सबका काल बन जाता है।

जिव तिसु भावै तिवै चलावै जिव होवै फुरमाणु॥
ओहु वेखै ओना नदरि न आवै बहुता एहु विडाणु॥

माया और तीनों देवता—ब्रह्मा, विष्णु और शिवजी अकालपुरुष के हुक्म के अनुसार कार्य कर रहे हैं। सबसे बड़ी आश्चर्यजनक बात यह है कि वह प्रभु तो माया और उसके पुत्रों को देख रहा है पर माया और उसके पुत्र उस कर्ता को नहीं देख सकते।

पउड़ी 31

आसणु लोइ लोइ भंडार॥ जो किछु पाइआ सु एका वार॥
करि करि वेखै सिरजणहारु॥ नानक सचे की साची कार॥
आदेसु तिसै आदेसु॥
आदि अनीलु अनादि अनाहति जुगु जुगु एको वेसु॥

सरलार्थ: आप कहते हैं कि उस परमात्मा का हर लोक में निवास या आसन है और उसके भण्डार भी हर लोक में हैं। उस परमात्मा ने सृष्टि के अनन्त लोकों के अनन्त भण्डारों में जो कुछ डालना था एक ही बार में डाल दिया है। वह प्रभु अपनी सृष्टि को देख रहा है और इसकी सँभाल कर रहा है। वह ख़ुद भी सच्चा है और उसका कार्य भी सच्चा है। वह सच्चा जो कुछ करता है, सच ही सच है।

व्याख्या

आसणु लोइ लोइ भंडार॥ वह कर्तापुरुष हर लोक में बसता है और सब खण्ड-ब्रह्माण्ड उस कर्ता द्वारा पैदा किये हुए अखुट भण्डारों से भरे पड़े हैं। गुरु अर्जुन देव जी की वाणी है, 'सिव पुरी ब्रहम इंद्र पुरी निहचलु को थाउ नाहि॥'[1] अलग-अलग लोकों में अलग-अलग देवताओं का निवास है पर ये भी नाशवान हैं। हरएक देवता अपने लोक तक सीमित है, पर वह अकाल पुरुष सारी सृष्टि में व्याप्त है। सारी सृष्टि का प्रतिपालक भी वही है।

जो किछु पाइआ सु एका वार॥ वैज्ञानिकों ने करोड़ों वर्ष पुराने डायनासोर के कंकाल ढूँढे हैं। इससे पता चलता है कि धरती पर करोड़ों वर्ष से जीव रह रहे हैं। हम करोड़ों वर्ष से धरती में से अनन्त पदार्थ निकालते चले आ रहे हैं, पर धरती की कोख कभी भी ख़ज़ानों से ख़ाली नहीं होती। संसार की आबादी कितनी बढ़ गयी है, पर पानी के भण्डार असीम हैं। संसार में से न कभी हवा ख़त्म होती है और न ही आग समाप्त होती है। पदार्थ, रंग-रूप, रस सब अनन्त हैं। जब तक सृष्टि को

क़ायम रहना है तब तक के लिए आवश्यक भण्डार पैदा कर दिये गये हैं। ख़ूबसूरती यह है कि उस कर्ता को जो कुछ बनाना था एक ही बार बना दिया।

16वीं पउड़ी में 'कीता पसाउ एको कवाउ' के बारे में विचार करते हुए पढ़ आये हैं कि परमात्मा की रज़ा या हुक्म द्वारा कुल रचना एक ही बार में अस्तित्व में आ गयी। आम तौर पर यह प्रश्न किया जाता है कि पहले मुर्ग़ी बनी या अण्डा, पहले स्त्री बनी या पुरुष? गुरु साहिब समझाते हैं कि परमात्मा ने स्त्री और पुरुष, मुर्ग़ी और अण्डा इकट्ठे बना दिये और उसके बाद उनसे सन्तान की उत्पत्ति का नियम भी साथ ही बना दिया। गुरु अर्जुन साहिब के समकालीन महात्मा दादू दयाल जी लिखते हैं:

एक सबद सभ कुछ कीआ, ऐसा समरथ सोइ।
आगैं पीछैं तो करै, जो बल-हीणा होइ॥[2]

आप समझाते हैं कि परमेश्वर के शब्द ने जो कुछ बनाना था एक ही बार में बना दिया। कोई चीज़ पहले और कोई चीज़ बाद में बनाने का सवाल तो तब पैदा होता जब कि उसमें सबकुछ एक ही बार में पैदा करने की ताक़त न होती।

विज्ञान गुरु साहिब से सैकड़ों साल बाद इस परिणाम पर पहुँचा है कि ब्रह्माण्ड की सम्पूर्णता कभी घटती-बढ़ती नहीं। गुरु साहिब ने आन्तरिक रूहानी अनुभव के आधार पर सैकड़ों साल पहले इस महावाक्य का उच्चारण कर दिया कि उस कर्ता को जो कुछ करना था एक ही बार में कर दिया है।

करि करि वेखै सिरजणहारु॥ नानक सचे की साची कार॥ वह सृजनहार भी सत्य है और जो कुछ भी वह अपनी रज़ा के अनुसार करता है वह भी सत्य या ठीक है। वह सच्चा कर्ता अपने द्वारा सृजित रचना को देख-देख कर ख़ुश हो रहा है। गुरु नानक साहिब कहते हैं, 'हुकमो वरतै जो तिसु भावै॥'[3] गुरु साहिब ने 'जपुजी' के अन्त में लिखा है, 'सच

खंडि वसै निरंकारु॥ करि करि वेखै नदरि निहाल॥' वह अविनाशी परमात्मा सचखण्ड से अपनी पूर्ण कायनात पर दया-दृष्टि डाल रहा है और इसको अपने हुक्म के अनुसार चल रही देखकर प्रसन्न हो रहा है। हिन्दू धर्म-ग्रन्थों में उसे 'दृष्टा' या 'साक्षी' कहा गया है। वह सबका कर्ता है, पर सबसे निर्लेप है। गुरु अर्जुन साहिब जी की वाणी है, 'आदि निरंजनु प्रभु निरंकारा॥ सभ महि वरतै आपि निरारा॥'[4] वह परमात्मा सारी रचना में व्याप्त होने के बावजूद इससे न्यारा होकर अपनी रचना का नज़ारा देख रहा है।

28वीं से 31वीं तक की चार पउड़ियाँ

ये चारों पउड़ियाँ योगियों को सम्बोधित करके लिखी गयी हैं। ये गहन विचार की माँग करती हैं।

गुरु साहिब ने योगियों द्वारा अपनाये जानेवाले साधनों की आलोचना किये बिना योगियों को सच्चे योग का साधन और मार्ग समझा दिया है। गुरु साहिब उन्हें सच्चे ज्ञान का प्रकाश दिखा देते हैं और ठीक-ग़लत का निर्णय उन पर छोड़ देते हैं। सूफ़ी दरवेशों ने रूहानी उन्नति के चार पड़ाव माने हैं: शरीअत, तरीक़त, मार्फ़त और हक़ीक़त। गुरु अर्जुन देव जी ने अपने शब्द 'अलह अगम खुदाई बंदे'[5] में इन पड़ावों की बहुत सुन्दर व्याख्या की है।

इन चार पड़ावों को मुख्य रूप से बाहरमुखी कर्मकाण्ड (शरीअत), सदाचारिक गुणों का निर्माण (तरीक़त), रूहानी अभ्यास द्वारा प्राप्त होनेवाले निजी रूहानी अनुभव (मार्फ़त) और प्रभु रूपी सत्य की प्राप्ति (हक़ीक़त) का नाम दिया जाता है। इनको शारीरिक निर्मलता से सदाचारिक निर्मलता, सदाचारिक निर्मलता से मन की निर्मलता, मन की निर्मलता से आत्मा की निर्मलता और आत्मा की निर्मलता से निर्मल परमात्मा की प्राप्ति तक का सफ़र भी कहा जा सकता है।

सूफ़ी दरवेशों के कलाम और गुरु साहिब की वाणी से पता चलता है कि शरीअत या कर्मकाण्ड सफ़र की शुरुआत है, मंज़िल नहीं। शरीअत,

तरीक़त में दाख़िल होने की तैयारी के लिए है। तरीक़त, मार्फ़त में उन्नति करने में सहायता देने के लिए है और मार्फ़त, हक़ीक़त की मंज़िल पर पहुँचने का साधन है।

धर्म-स्थानों पर जाना, धर्म-ग्रन्थों का पढ़ना और सुनना; तीर्थों का स्नान; रोज़ा या व्रत; पुण्य-दान; हवन-यज्ञ; अनेक प्रकार के हठ-कर्म; ख़ास क़िस्म या ख़ास रंग के पहरावे; ख़ास क़िस्म के चिह्न या भेष जैसे धोती, टीका, जनेऊ, जटाएँ, लम्बे या छोटे केश आदि सबका सम्बन्ध शरीर से है। यह सब इस तरह हैं जिस तरह बच्चे के अन्दर घर के मोह की जगह स्कूल जाने का प्यार पैदा किया जाये। इन सबका असली उद्देश्य जीव की वृत्ति में परिवर्तन लाना है। यह कार्य परमार्थ की पहली कक्षा है। कोई भी विद्यार्थी हमेशा प्रथम कक्षा में ही नहीं बैठा रहता।

दूसरा पड़ाव सदाचारिक निर्मलता का है। परमार्थ के स्कूल में दाख़िल हुए साधक को दोहरा उपदेश दिया जाता है—पारमार्थिक उन्नति में रुकावट डालने वाले अवगुणों का त्याग और पारमार्थिक उन्नति में सहायक गुणों का विकास। परमार्थी को विषय-विकारों, इन्द्रियों के भोगों, ईर्ष्या, वैर-विरोध, निन्दा, मांस-शराब और नशे वाले पदार्थ के त्याग की ताक़ीद की जाती है। उसे क्षमा, शील, सन्तोष, विवेक, नम्रता, सेवा, त्याग, प्रेम, अहिंसा, साधु-संगति का प्रेम आदि गुणों के विकास की प्रेरणा दी जाती है।

तीसरा पड़ाव रूहानी अभ्यास का है। इसमें पूर्ण गुरुमुखों के उपदेश के अनुसार नाम के सुमिरन और सतगुरु के स्वरूप के ध्यान की सहायता से मन-आत्मा को आँखों से निचले भाग से इकट्ठा करके आँखों के ऊपर और बीच में एकाग्र और स्थिर करने की प्रेरणा दी जाती है। इस रूहानी अभ्यास द्वारा साधक बाहरी स्थूल जगत् से अन्दर के सूक्ष्म जगत् में दाख़िल हो जाता है। उसे अन्दर अनेक प्रकार के रूहानी अनुभव प्राप्त होते हैं। उसके मन-आत्मा निर्मल होते जाते हैं। उसकी बुद्धि सूक्ष्म होती जाती है। उसके ज्ञान में वृद्धि होती है। उसके अन्दर अद्भुत मानसिक और आध्यात्मिक शक्तियाँ पैदा हो जाती हैं।

चौथा पड़ाव आँखों के पीछे एकाग्र हुए मन-आत्मा को शब्द या नाम से जोड़कर अन्दर का रूहानी सफ़र तय करते हुए निज घर या सचखण्ड पहुँचने का है। इस सफ़र में उन्नति द्वारा दूसरे रूहानी मण्डल में पहुँचकर मन अपने स्रोत में समा जाता है। इसको मन-आत्मा की गाँठ खुलने, जड़-चेतन की गाँठ खुलने, आत्मा की पहचान या मन पर विजय प्राप्त करने की अवस्था कहा गया है। इसके बाद मन के पंजे से आज़ाद हुई आत्मा सहज ही सबसे ऊँचे रूहानी मण्डल में पहुँचकर पिता-परमात्मा में अभेद हो जाती है।

गुरु साहिब योगियों को उपदेश देना चाहते हैं कि योग का असली अर्थ परमात्मा से बिछुड़ी आत्मा को परमात्मा से जोड़ना है। योग शरीर का नहीं, आत्मा का धर्म है। तुम शरीर की साधना तक ही न रुके रहो। कानों में कुण्डल या बालियाँ तो पाँच साल की बालिका भी पहन सकती है। हाथ में कमण्डल पकड़कर भिक्षा तो भिखारी भी माँगते हैं। गले में गुदड़ी तो कोई भी पहन सकता है। हाथ में डण्डा तो पाँच साल का बालक भी पकड़ सकता है। शरीर पर भभूत रमाना कोई कठिन कार्य नहीं है। बाहर शंख, घड़ियाल या सिंगी तो कोई भी बजा सकता है। भण्डारे में बाँटे जानेवाला भोजन तो कोई भी खा सकता है। हे सिद्धो! सारी उम्र क, ख, ग ही न पढ़ते रहो, ऊँची शिक्षा के लिए भी यत्न करो। तुम सदाचारिक पवित्रता और मन की निर्मलता की तरफ़ का सफ़र भी शुरू करो।

गुरु साहिब उपदेश देते हैं कि तुम अपने अन्दर सन्तोष और उद्यम के गुण धारण करो। तुम दूसरों पर निर्भर होने की बजाय, उनका भला करो। तुम कुछ देकर खाओ पर किसी से कुछ लेकर मत खाओ। तुम कारोबार या रोज़ी-रोटी कमाने को धर्म कमाने में रुकावट न समझो, इसको प्रभु की भक्ति में सफलता का साधन बनाओ। तुम शरीर द्वारा किये जानेवाले त्याग की जगह मन-आत्मा के त्याग और संन्यास का मार्ग चुनो। अपने अन्दर परमात्मा, गुरु और नाम का विश्वास पैदा करो। तुम हर पल, हर स्वाँस मृत्यु को याद रखो ताकि बुरे कर्मों से बचते हुए परमार्थ का सफ़र

जल्दी से जल्दी पूरा करने के लिए प्रयत्न कर सको। तुम काया रूपी कुँवारी कन्या को विकारों की मैल से बचाकर रखो। तुम ग्रन्थ-शास्त्रों में दर्ज ज्ञान को पढ़कर या सुनकर ही सन्तुष्ट न हो जाओ। अपना ध्यान अन्दर एकाग्र करके स्वयं अन्दर से रूहानी अनुभव प्राप्त करने की कोशिश करो। तुम करामातों के चक्कर में न पड़ो। करामातों का स्वाद झूठा है। करामातें रूहानी उन्नति में रुकावट डालती हैं। ये हमें हमारे सच्चे घर जाने से रोकती हैं। ये उस आनन्द-स्वरूप प्रभु के साथ मिलकर उसका रूप बनने के रास्ते में विघ्न डालती हैं। इसलिए तुम इन झूठी करामातों में से मन को निकालकर प्रभु के प्रेम और प्रभु के नाम की सच्ची करामात का चमत्कार देखने का यत्न करो। यह करामात तुम्हें परमात्मा में अभेद करके परमात्मा का रूप बना देगी।

गुरु साहिब उपदेश देते हैं कि हे योगियो! तुम बाहरी भोजन तक ही सीमित न रहो। प्रभु रूपी दयालु भण्डारी तुम्हारे अन्दर आँखों के पीछे शब्द के अमृत का भोजन बाँट रहा है। वह भोजन करो ताकि तुम्हारी जन्मों-जन्मों की तृष्णाएँ शान्त हो जायें। तुम बाहरी सिंगियाँ बजाने तक ही सीमित न रहो। तुम्हारे अन्दर आँखों के पीछे हर पल परमात्मा के नाम की सूक्ष्म सिंगी बज रही है। उस सिंगी के साथ ध्यान को जोड़ो। तुम नाम का भोजन करो, नाम की सिंगी सुनो। नाम प्रभु का रूप है। उसमें प्रभु जितनी शक्ति है। नाम परमात्मा की तरह आनन्द-रूप है। जब नाम का भोजन ग्रहण करोगे, जब नाम का अमृत पियोगे तो मन पर विजय प्राप्त हो जायेगी। तुम्हारे अन्दर तुम्हारा आत्मिक स्वरूप जाग्रत हो जायेगा और तुम आत्मदर्शी बन जाओगे। फिर तुम शरीरों के आधार पर लोगों की परख नहीं करोगे। तुम्हें संसार के हर प्राणी के अन्दर एक ही परमात्मा का प्रकाश दिखाई देने लगेगा। इस तरह तुम्हारे अन्दर उस कर्ता द्वारा सृजित कुल कायनात का प्रेम पैदा हो जायेगा। फिर तुम 'सगल जमाती' हो जाओगे और सच्चे 'आई पंथी' बन जाओगे।

इसके साथ ही गुरु साहिब योगियों को उपदेश देते हैं कि सच्ची भक्ति करनी है तो उस सर्वशक्तिमान परमात्मा की करो। आपका उपदेश

है कि आत्मा परमात्मा का अंश है। ईसाई मत और इस्लाम आदि में यह विश्वास प्रचलित है कि परमात्मा ने मनुष्य की रचना करने के बाद सब फ़रिश्तों (देवताओं) को उसके आगे सजदा करने (माथा टेकने) के लिए कहा। सूफ़ी फ़क़ीरों ने इनसान को अशरफ़-उल-मख़्लूकात कहकर इसकी सराहना की है। भाव यह है कि मनुष्य का दर्जा देवी-देवताओं से भी ऊँचा है। कबीर साहिब की वाणी है, 'इस देही कउ सिमरहि देव॥ सो देही भजु हरि की सेव॥'[6] आप उपदेश करते हैं कि देवी-देवता भी मनुष्य जन्म पाने के लिए तरसते हैं क्योंकि प्रभु-भक्ति द्वारा प्रभु की प्राप्ति केवल मनुष्य-शरीर में ही सम्भव है। गुरु नानक साहिब की वाणी है:

माइआ मोहे देवी सभि देवा॥ कालु न छोडै बिनु गुर की सेवा॥
ओहु अबिनासी अलख अभेवा॥[7]

देवी-देवता माया और काल के घेरे में हैं और केवल वह अमर-अविनाशी प्रभु ही हमारी पूजा या भक्ति के योग्य है।

गुरु साहिब का उपदेश केवल योगियों के लिए नहीं है। यह उपदेश संसार की सब क़ौमों, मज़हबों, मुल्कों के लोगों के लिए है। गुरु साहिब ने 'आसा दी वार' के साथ जोड़े गये अपने श्लोकों में हिन्दुओं, मुसलमानों, योगियों और जैनियों आदि को बाहरमुखी शरीअत से ऊपर उठकर अपने सदाचारिक, मानसिक और आत्मिक विकास की तरफ़ ध्यान देने की प्रेरणा दी है। बाहर से अन्दर और अन्दर से ऊपर जाने के लिए, स्थूल से सूक्ष्म और सूक्ष्म से परम चेतन अवस्था की तरफ़ जाने या शरीर से मन, मन से आत्मा और आत्मा से परमात्मा की तरफ़ सफ़र तय करने का गुरु साहिब का उपदेश, किसी ख़ास समय और ख़ास स्थान के लोगों के लिए नहीं है। यह सर्वदेशीय और सर्वकालीन उपदेश सम्पूर्ण मानवता के लिए सच्चे परमार्थी प्रकाश का अविनाशी स्तम्भ है।

पउड़ी 32

इक दू जीभौ लख होहि लख होवहि लख वीस॥
लखु लखु गेड़ा आखीअहि एकु नामु जगदीस॥
एतु राहि पति पवड़ीआ चड़ीऐ होइ इकीस॥
सुणि गला आकास की कीटा आई रीस॥
नानक नदरी पाईऐ कूड़ी कूड़ै ठीस॥

शब्दार्थ: पवड़ीआ=सीढ़ियाँ। इकीस=ईश्वर के साथ एक होना। कीटा... रीस=कीड़े भी नकल करते हैं। कूड़ी...ठीस=झूठ बोलने वालों की झूठी बातें या शेखियाँ।

सरलार्थ: इस पउड़ी में परमात्मा के सुमिरन को उसकी प्राप्ति का साधन बताते हुए कहते हैं:

अगर हमारी एक जिह्वा से लाख और लाख से बीस लाख जिह्वाएँ बन जायें तो हमें चाहिए कि हर जिह्वा द्वारा लाख-लाख बार उस जगदीश का नाम जपते रहें। नाम का जाप पति-परमात्मा के महल की सीढ़ियों के समान है, जिन पर चढ़कर उसके साथ एक हो जाते हैं। उस मालिक के बारे में ऊँची और बड़ी-बड़ी बातें सुनकर प्रभु के नाम से ख़ाली कीड़ों के समान जीव भी (नाम के प्रेमी गुरुमुखों की) नकल करके परमात्मा के साथ मिलाप करने की बातें करते हैं। झूठी दुनिया के झूठे पदार्थों में लगे कूड़िआर चाहे लाखों शेखियाँ बघारें, वे अपने आप परमात्मा के साथ मिलाप नहीं कर सकते। परमात्मा का मिलाप उसकी दया-मेहर द्वारा ही सम्भव है। मनुष्य की शेखियाँ झूठी हैं।

व्याख्या

इक दू जीभौ लख होहि लख होवहि लख वीस॥
लखु लखु गेड़ा आखीअहि एकु नामु जगदीस॥
एतु राहि पति पवड़ीआ चड़ीऐ होइ इकीस॥

इस पउड़ी में गुरु साहिब यह उपदेश देते हैं कि सम्पूर्ण रूहानी साधना का सार परमात्मा के नाम का सुमिरन है। गुरु अर्जुन देव जी की वाणी है, 'प्रभ कै सिमरनि अनहद झुनकार॥ सुखु प्रभ सिमरन का अंतु न पार॥'[1] सुमिरन से ही ध्यान जाग्रत होता है और सुमिरन द्वारा ही अनहद की ध्वनि प्रकट होती है। जिसका सुमिरन कच्चा है, उसकी साधना कच्ची है। जिसका सुमिरन पक्का है, उसकी साधना पक्की है। गुरु साहिब की वाणी है, 'गुरमुखि रोमि रोमि हरि धिआवै॥ नानक गुरमुखि साचि समावै॥'[2] जब साधक सुमिरन करता हुआ, सुमिरन का रूप हो जाता है, तो उसके अन्दर परमात्मा का प्रकाश भर जाता है और सुरत अन्दर अनहद शब्द से जुड़ जाती है। शब्द की ध्वनि चुम्बक की तरह आत्मा को अपनी ओर खींचती है, जिससे आत्मा का रुख़ ऊपरी रूहानी मण्डलों की ओर हो जाता है। शब्द के प्रकाश को देखती हुई आत्मा आगे बढ़ती जाती है और अन्त में परमात्मा रूपी सत्य में समा जाती है।

अनेकता से एकता में जाने का साधन सुमिरन है। शब्द की ध्वनि और शब्द के प्रकाश के साथ जुड़ने का साधन सुमिरन है। परमात्मा के नाम का सुमिरन परमात्मा के महलों को लगी सीढ़ी है।

गुरु साहिब 6वीं पउड़ी में 'मति विचि रतन जवाहर माणिक जे इक गुर की सिख सुणी' का उपदेश दे आये हैं। गुरु की एकमात्र शिक्षा क्या है? नाम का सुमिरन करो, नाम का सुमिरन करो, नाम का सुमिरन करो। गुरु की दया नाम है, गुरु का प्रसाद या दान नाम है और गुरु का उपदेश नाम है। गुरु अर्जुन देव जी का कथन है, 'नानक कै घरि केवल नामु॥'[3] आप कहते हैं कि गुरु-घर ने केवल एक उपदेश दिया है और वह उपदेश है नाम का सुमिरन, नाम की कमाई।

इस पउड़ी में गुरु साहिब समझा रहे हैं कि प्रभु से मिलाप का साधन प्रभु के नाम का सुमिरन है। आपने 'जपुजी' की चौथी पउड़ी में फ़रमाया है, 'अंम्रित वेला सचु नाउ वडिआई वीचारु॥' यहाँ इशारा करते हैं कि परमात्मा के नाम का जितना सुमिरन किया जाये, थोड़ा है। यह सुमिरन उस कर्ता के महलों को लगी सीढ़ी के समान है, जिसके द्वारा उस प्रभु से

बिछुड़ी आत्मा वापस उसके साथ एक (इकीस) हो सकती है। गुरु अर्जुन देव जी की वाणी है:

ऊठत बैठत सोवत जागत सासि सासि सासि हरि जपने॥[4]

ऊठत बैठत सोवत जागत हरि धिआईऐ सगल अवरदा जीउ॥[5]

आप उपदेश करते हैं कि 'स्वाँस-स्वाँस' से सुमिरन करो। कितना समय? 'सगल अवरदा।' सारी उम्र सुमिरन करो और पल-भर के लिए भी सुमिरन से ख़ाली न रहो। गुरु नानक साहिब 'सिध गोस्ट' की 27वीं पउड़ी में कहते हैं, 'गुरमुखि रोमि रोमि हरि धिआवै॥ नानक गुरमुखि साचि समावै॥'[6] गुरु नानक साहिब की वाणी है:

ए मन मेरिआ बिनु पउड़ीआ मंदरि किउ चड़ै राम॥
ए मन मेरिआ बिनु बेड़ी पारि न अंबड़ै राम॥
पारि साजनु अपारु प्रीतमु गुर सबद सुरति लंघावए॥
मिलि साधसंगति करहि रलीआ फिरि न पछोतावए॥[7]

आप कहते हैं कि बिना सीढ़ियों के महल पर चढ़ सकना असम्भव है और बिना किश्ती के दरिया से पार जा सकना असम्भव है। वह अपरम्पार, अगम-अगाह प्रीतम दूर-से-दूर है। वह ऊँचे-से-ऊँचे महलों का निवासी है। भवसागर को पार करके उस तक पहुँचने का एकमात्र रास्ता लिव को नाम के साथ जोड़ना है।

सुमिरन

हमारा मन पल-पल संसार के शक़्लों और पदार्थों का सुमिरन करता रहता है। यह करोड़ों जन्मों से संसार का सुमिरन करता-करता संसार का रूप हो चुका है। जिसको जितना याद करते हैं, उससे उतना अधिक प्यार पैदा हो जाता है और जिससे जितना ज़्यादा प्यार करते हैं उसको उतना ज़्यादा याद करते हैं। वर्तमान अवस्था में हमें परमात्मा की याद भूल चुकी है और

हमारे अन्दर उसका प्रेम निर्बल हो चुका है। इस समस्या का एकमात्र समाधान यह है कि भूली हुई याद को सुमिरन द्वारा ताज़ा किया जाए और अन्त:करण में प्रभु के सुप्त प्रेम को सुमिरन द्वारा पुन: जाग्रत किया जाए।

सुमिरन सम्पूर्ण रूहानी साधना की नींव है। गुरु अर्जुन देव जी की वाणी है, 'प्रभ कै सिमरनि अनहद झुनकार॥ सुखु प्रभ सिमरन का अंतु न पार॥'[8] सुमिरन द्वारा ही अन्दर नाम की ध्वनि प्रकट होती है, सुमिरन द्वारा ही अन्दर ध्यान जाग्रत होता है, सुमिरन द्वारा ही सहज-समाधि की अवस्था प्राप्त होती है और सुमिरन द्वारा प्रेम रूपी पंख लग जाते हैं, जिनके सहारे आत्मा अपने निज घर की तरफ़ वापस उड़ान भरती है।

'सुखमनी' की पहली अष्टपदी में और 'जपुजी' की 32वीं पउड़ी में दर्ज उपदेश के अनुसार सुमिरन को जीवन का अभिन्न अंग बना लिया जाये तो लोक-परलोक दोनों सहज ही सँवर जायेंगे। पहली अष्टपदी के दो पद नीचे दिये जा रहे हैं। गुरु साहिब की भाषा इतनी सरल और स्पष्ट है कि किसी क़िस्म की व्याख्या की आवश्यकता नहीं।

सिमरउ सिमरि सिमरि सुखु पावउ॥ कलि कलेस तन माहि मिटावउ॥
सिमरउ जासु बिसुंभर एकै॥ नामु जपत अगनत अनेकै॥
बेद पुरान सिंम्रिति सुधाख्यर॥ कीने राम नाम इक आख्यर॥
किनका एक जिसु जीअ बसावै॥ ता की महिमा गनी न आवै॥
काखी एकै दरस तुहारो॥ नानक उन संगि मोहि उधारो॥[9]

सुखमनी सुख अंम्रित प्रभ नामु॥ भगत जना कै मनि बिस्राम॥
प्रभ कै सिमरनि गरभि न बसै॥ प्रभ कै सिमरनि दूखु जमु नसै॥
प्रभ कै सिमरनि कालु परहरै॥ प्रभ कै सिमरनि दुसमनु टरै॥
प्रभ सिमरत कछु बिघनु न लागै॥ प्रभ कै सिमरनि अनदिनु जागै॥
प्रभ कै सिमरनि भउ न बिआपै॥ प्रभ कै सिमरनि दुखु न संतापै॥
प्रभ का सिमरनु साध कै संगि॥ सरब निधान नानक हरि रंगि॥[10]

गुरु अर्जुन साहिब कहते हैं:

संत की सेवा नामु धिआईऐ॥[11]

नानक कउ गुरि दीआ नामु॥ संतन की टहल संत का कामु॥[12]

सन्तों की संगति का वास्तविक उद्देश्य उनसे नाम प्राप्त करना है और सन्तों की सेवा का असली अर्थ उनके उपदेश के अनुसार नाम का सुमिरन या ध्यान करना है। गुरु अमरदास जी की वाणी है, 'करमु होवै सतिगुरू मिलाए॥ सेवा सुरति सबदि चितु लाए॥'[13] आप उपदेश करते हैं कि जिस पर उस कर्ता की दया हो जाती है, उसका गुरुमुखों से मिलाप हो जाता है और गुरुमुख उसको नाम के सुमिरन की सेवा में लगा देते हैं। सन्तों की दया, सन्तों का दान, सन्तों का प्रसाद नाम का सुमिरन है। सन्त शिष्य से नामदान की क्या क़ीमत माँगते हैं? नाम का सुमिरन। नाम का सुमिरन ही सन्तों की असली सेवा है और नाम का सुमिरन ही परमात्मा की सच्ची सेवा है।

भाई वीर सिंह के विचार

नाम के सुमिरन के सम्बन्ध में 'सुणिऐ' और 'मंनै' की पउड़ियों की व्याख्या करते हुए भाई वीर सिंह के विचार पीछे भी पढ़ आये हैं। आप कहते हैं:

''नाम वाहेगुरु जी के साथ अभेद उसकी कोई अपनी कला व्यापक वस्तु है; उसकी तरह ही माया-रहित है और उसकी तरह ही अलख है। फिर यह इनसान के हृदय में भी व्याप्त है। उसको लखना है और लखता गुरु से मिलती है। जो उसको हृदय में (दिखा) लखा देगा। गुरु किस तरह से दिखाता है—गुरु प्रसाद से और अपने बताये गये अभ्यास से। इससे पता चला कि हमारा 'नाम सुमिरन' हमें उस व्यापक और हृदय के अन्दर बसते व्यापक नाम के साथ जोड़ देगा; मानो व्यापक नाम और सुमिरे जा रहे नाम दोनों का संगम होता है और उस संगम को भी नाम ही कहा जाता है।

इससे पता चला कि नाम केवल संज्ञा-मात्र नहीं, नाम जप है। नाम सुमिरन है। नाम लिव है। नाम व्यापक नाम में पहुँचकर तदरूप होता है।

अन्त नाम और नामी की अभेदता है। अर्थात् नाम प्रेमी नामी (वाहेगुरु) को प्राप्त हो जाता है।''[14]

स्पष्ट है कि सुमिरन किये जानेवाला नाम ही जीवात्मा को अन्दर पल-पल धुनकारें दे रहे नाम के साथ जोड़कर अन्त में नामी के साथ मिला देता है। इसी में 'एकु नामु जगदीस' और 'चड़ीऐ होइ इकीस' का असली भेद छिपा है।

सुणि गला आकास की कीटा आई रीस॥
नानक नदरी पाईऐ कूड़ी कूड़ै ठीस॥

जब मनमुख लोग ये ऊँची और बड़ी बातें सुनते हैं कि प्रभु के सुमिरन द्वारा उससे मिलाप हो जाता है तो देखा-देखी वे भी शेखी बघारते हैं कि हम भी इस ढंग से परमात्मा के साथ मिलाप कर लेंगे। बाबा फ़रीद का कलाम है:

हंसा देखि तरंदिआ बगा आइआ चाउ॥
डुबि मुए बग बपुड़े सिरु तलि उपरि पाउ॥[15]

आप कहते हैं कि गुरुमुखों (हंसा) को भवसागर से पार जाता देखकर मनमुखों (बगा=बगुलों) के मन में भी भवसागर से पार जाने का शौक़ पैदा हुआ। उन्होंने मनमर्ज़ी के साधनों द्वारा पार जाने की कोशिश की। परिणाम यह हुआ कि वे बीच में ही डूबकर मर गये। आपका भाव है कि किसी कामिल मुर्शिद द्वारा समझायी गयी भजन-सुमिरन की युक्ति के बिना कोई जीव कभी भवसागर से पार नहीं जा सकता।

गुरु नानक साहिब कहते हैं:

चड़ि कै घोड़ड़ै कुंदे पकड़हि खूंडी दी खेडारी॥
हंसा सेती चितु उलासहि कुकड़ दी ओडारी॥[16]

आप कहते हैं कि घुड़सवार खेल तो पोलो का खेलना चाहता है पर हाथ से उसने घोड़े की काठी को पकड़ा हुआ है। ऐसा खिलाड़ी पोलो कैसे खेल सकता है? जिसकी उड़ान मुर्ग़े के समान है, वह हंसों के साथ बराबर कैसे उड़ सकता है? जो मनमुख दुनिया के मोहजाल में क़ैद है

और जो काग-वृत्ति के अधीन माया में लिप्त है, वह नाम के मोती चुगने वाले हंसों या सच्चे गुरुमुखों की तरह उड़ान नहीं भर सकता। गुरु साहिब कहते हैं—(1) 'नदरि करे ता सिमरिआ जाइ॥'[17] (2) 'नदरि करे जे आपणी आपे लए रलाइ जीउ॥'[18] गुरु अर्जुन साहिब की वाणी है, 'करि किरपा जिसु आपनै नामि लाए॥ नानक चउथे पद महि सो जनु गति पाए॥'[19] जिस पर वह कर्ता दया करता है, वही उसके सुमिरन द्वारा उसके साथ मिलाप की बड़ाई प्राप्त कर सकता है।

पउड़ी 33

आखणि जोरु चुपै नह जोरु॥ जोरु न मंगणि देणि न जोरु॥
जोरु न जीवणि मरणि नह जोरु॥ जोरु न राजि मालि मनि सोरु॥
जोरु न सुरती गिआनि वीचारि॥ जोरु न जुगती छुटै संसारु॥
जिसु हथि जोरु करि वेखै सोइ॥ नानक उतमु नीचु न कोइ॥

सरलार्थ: इस पउड़ी में गुरु साहिब समझा रहे हैं कि इनसान हर कार्य में मनमर्ज़ी करना चाहता है पर वास्तव में वह अपने ज़ोर या हठ से कुछ भी नहीं कर सकता:

न कोई अपने ज़ोर से कुछ कह सकता है और न ही अपने ज़ोर या हठ से चुप रह सकता है। न कोई ज़ोर से कुछ ले सकता है और न ही ज़ोर से कुछ दे सकता है। न कोई अपने ज़ोर से ज़िन्दा रह सकता है और न ही मर सकता है। न कोई अपनी शक्ति से राज-पाट, धन-दौलत ले सकता है और न ही सूरमा या विजयी बन सकता है।

न कोई ज़ोर से लिव या ध्यान लगा सकता है और न ही ज्ञान का विचार करनेवाला बन सकता है। ज़ोर से न तो युक्ति मिल सकती है और न ही संसार से मुक्ति मिल सकती है। यदि कोई यह समझता है कि मेरे हाथ में ज़ोर है तो वह अपना ज़ोर आज़मा कर देख ले कि उसके ज़ोर से कुछ हो सकता है या नहीं। यहाँ न कोई उत्तम है और न नीच।

व्याख्या

आखणि जोरु चुपै नह जोरु॥ गुरु साहिब समझा रहे हैं कि जीव में परमात्मा की सिफ़त-सलाह करने का भी ज़ोर नहीं और चुप्पी साध कर समाधि लगाने का भी ज़ोर नहीं। 32वीं पउड़ी में सुमिरन की महिमा की गयी है। गुरु साहिब यहाँ यह इशारा कर रहे हैं कि प्रभु का सुमिरन कर सकना या न कर सकना, अपने वश में नहीं है।

जोरु न मंगणि देणि न जोरु॥ इस पंक्ति का एक अर्थ यह किया गया है कि अगर कोई चाहे कि किसी से बलपूर्वक कुछ ले ले या ज़बरदस्ती किसी को कुछ दे दे तो वह ऐसा नहीं कर सकता। इसका दूसरा अर्थ यह किया गया है कि कोई अपनी ताक़त से न मालिक से कुछ ले सकता है और न ही उसे कुछ दे सकता है। इसका यह अर्थ भी किया गया है कि न किसी में दान देने का बल है और न ही दान लेने का।

जोरु न जीवणि मरणि नह जोरु॥ न इनसान की अपनी ज़िन्दगी और मृत्यु उसके अपने हाथ में है और न ही दूसरे की ज़िन्दगी या मृत्यु। कायनात के हर प्राणी का जन्म और मृत्यु परमात्मा के हाथ में है।

जोरु न राजि मालि मनि सोरु॥ अगर कोई चाहे कि वह अपनी ताक़त से धन-दौलत, राज-पाट आदि हासिल कर ले या अपनी मर्ज़ी से बड़ा योद्धा और सूरमा बन जाये तो यह बात उसके वश में नहीं। 'मनि सोरु' का यह अर्थ भी किया जाता है कि मन में जो शोर है वह भी अपनी मर्ज़ी से पैदा नहीं होता। बोलने में भी मालिक की शक्ति कार्य करती है और चुप रहने में भी।

जोरु न सुरती गिआनि वीचारि॥ इस पंक्ति का एक अर्थ यह किया गया है कि वह सुरति, ध्यान या बुद्धि जिससे ज्ञान का विचार हो सके, बलपूर्वक नहीं मिल सकती। इसका यह अर्थ भी किया गया है कि श्रुति अर्थात् वेदों का ज्ञान भी अपने ज़ोर से हासिल नहीं किया जा सकता।

जोरु न जुगती छुटै संसारु॥ गुरु साहिब समझा रहे हैं कि वह युक्ति जिससे संसार के बन्धनों से छूट जायें और मुक्ति प्राप्त हो जाये,

बलपूर्वक हासिल नहीं हो सकती। अपने बल से न युक्ति प्राप्त हो सकती है और न ही मुक्ति।

जिसु हथि जोरु करि वेखै सोइ॥ नानक उतमु नीचु न कोइ॥ इन पंक्तियों के एक अर्थ ये किये गए हैं कि जो यह समझता है कि उसके हाथ में शक्ति है, वह अपना ज़ोर लगाकर देख ले। उसे स्वयं ही पता चल जायेगा कि उसका ज़ोर कुछ नहीं कर सकता। इसमें छोटे और बड़े का कोई अन्तर नहीं, सब एक जैसे निर्बल हैं। इन पंक्तियों के दूसरे अर्थ ये किये गये हैं कि जिस मालिक के हाथ में सारी शक्ति है, वही सबकुछ करता है और अपने किये हुए को देखता है। 'करे कराए आपि प्रभु सभु किछु तिस ही हाथि॥'[1] जो कुछ होता है, उस एक कर्ता का किया होता है। इनसान का किया कुछ नहीं होता।

इस पउड़ी में गुरु साहिब यह भाव दृढ़ करवाते हैं कि इनसान सोचता है कि वह जो चाहे कर सकता है पर असलियत यह है कि इनसान के हाथ में कुछ नहीं है। जो कुछ होता है, परमात्मा का किया होता है, इनसान के करने से कुछ नहीं होता। गुरु रामदास जी का कथन है:

> इकि दाते इकि भेखारी जी सभि तेरे चोज विडाणा॥
> तूं आपे दाता आपे भुगता जी हउ तुधु बिनु अवरु न जाणा॥[2]

वह कर्ता अपनी रज़ा का मालिक है। वह किसी को भी, कुछ भी दे सकता है। गुरु अर्जुन साहिब जी कहते हैं, 'ना को मूरखु ना को सिआणा॥ वरतै सभ किछु तेरा भाणा॥'[3] न कोई अपनी मूर्खता के कारण प्रभु से दूर है और न ही कोई अपनी चतुराई के कारण प्रभु के नज़दीक है। जिसको वह अपने हुक्म द्वारा नज़दीक कर लेता है वह उसके नज़दीक हो जाता है, जिसको वह अपने हुक्म द्वारा दूर रखता है, वह उससे दूर रह जाता है। गुरु अर्जुन देव जी सुखमनी में कहते हैं:

> कहु मानुख ते किआ होइ आवै॥ जो तिसु भावै सोई करावै॥
> इस कै हाथि होइ ता सभु किछु लेइ॥ जो तिसु भावै सोई करेइ॥

अनजानत बिखिआ महि रचै॥ जे जानत आपन आप बचै॥
भरमे भूला दह दिसि धावै॥ निमख माहि चारि कुंट फिरि आवै॥
करि किरपा जिसु अपनी भगति देइ॥ नानक ते जन नामि मिलेइ॥[4]

आप समझा रहे हैं कि यदि इनसान के वश में हो तो वह सारी कायनात का मालिक बनकर बैठ जाए। यदि इसके वश में हो तो यह माया के ज़हर में क्यों डूबा रहे? यदि इसके वश में हो तो एकदम मालिक से मिलाप कर ले और भ्रमों में फँसकर जगह-जगह भटकता न फिरे। इसका मन पल-भर में सारी दिशाओं में घूमकर आ जाता है। लेकिन इसे सार-तत्त्व की प्राप्ति नहीं होती। इनसान के हाथ में हो तो नाम के साथ लिव जोड़कर शीघ्र ही निज घर वापस पहुँच जाये लेकिन नाम के साथ लिव केवल वही जोड़ सकता है जिस पर उस कर्ता की दया-मेहर होती है। जो कुछ भी होता है, उस कर्ता का किया होता है, इनसान के हाथ में कुछ भी नहीं है। गुरु नानक साहिब कहते हैं:

दाती साहिब संदीआ किआ चलै तिसु नालि॥
इक जागंदे ना लहंनि इकना सुतिआ देइ उठालि॥[5]

यदि मालिक देना चाहता है तो सोये हुए को या अचेत को उठाकर भी दे देता है, यदि नहीं देना चाहता तो जागते हुए या सुचेत भी ख़ाली रह जाते हैं।

पउड़ी 34

राती रुती थिती वार॥ पवण पाणी अगनी पाताल॥
तिसु विचि धरती थापि रखी धरम साल॥
तिसु विचि जीअ जुगति के रंग॥ तिन के नाम अनेक अनंत॥
करमी करमी होइ वीचारु॥ सचा आपि सचा दरबारु॥
तिथै सोहनि पंच परवाणु॥ नदरी करमि पवै नीसाणु॥
कच पकाई ओथै पाइ॥ नानक गइआ जापै जाइ॥

शब्दार्थ: राती=रात। रुती=ऋतु, मौसम। थिती=तिथि, तारीख़।

सरलार्थ: गुरु साहिब 34वीं से 37वीं तक की चार पउड़ियों में परमात्मा द्वारा धरती की रचना की विधि, धरती के सृजन के उद्देश्य, धरती के प्रबन्ध में काम कर रहे कर्म और फल के नियम पर प्रकाश डालते हुए, आन्तरिक सूक्ष्म रूहानी जगत् की झाँकी पेश कर रहे हैं।

गुरु साहिब ने सारी स्थूल और सूक्ष्म सृष्टि को पाँच भागों में बाँटते हुए इसको धर्म खण्ड, ज्ञान खण्ड, सरम खण्ड, कर्म खण्ड और सचखण्ड का नाम दिया है। धर्म खण्ड के दो भाग हैं। एक यह मृत्युलोक जिसको आपने 'धरती धरमसाल' का नाम दिया है। इसका सारा कार्य-व्यवहार कर्म और फल के नियम के अनुसार चल रहा है। इससे ऊपर सूक्ष्म रचना है। सूक्ष्म रचना के शुरू में ही कर्म और फल को लागू करनेवाला धर्मराज अपना कार्य कर रहा है। जैसे-जैसे ऊपर की तरफ़ जाते हैं, अधिक सूक्ष्म और चेतन आत्मिक जगत् में पहुँचते जाते हैं। 34वीं पउड़ी में कहते हैं:

उस मालिक ने दिन-रात, तारीख़ें, ऋतुएँ या मौसम, हवा, पानी, अग्नि और पाताल बनाकर इसमें धरती को धर्मशाला के रूप में स्थित कर दिया है। इस धरती पर अनन्त नामों वाले रंग-बिरंगे, भाँति-भाँति के जीव हैं जो अनेक युक्तियों के अनुसार जीवन व्यतीत कर रहे हैं। कुल मालिक के दरबार में जीवों के कर्म देखे जाते हैं और कर्मों को भुगतवाने का प्रबन्ध किया जाता है। वह मालिक भी सच्चा है, उसका दरबार भी सच्चा है। उसके दरबार में पंच सुशोभित हैं। जिस पर उस मालिक की दया-दृष्टि होती है, उस पर ही उसकी बख़्शिश का निशान लगता है। कौन कच्चे हैं और कौन पक्के, इसके बारे में पूरा पता वहाँ जाकर ही लगता है।

व्याख्या

पहले भी पढ़ आये हैं कि संसार में दो तरह की सोच वाले लोग हैं। एक वे हैं जो इस संसार को अन्तिम सत्य मानकर इसके सुखों को जीवन का मूल उद्देश्य समझते हैं। वे स्वादिष्ट भोजन, शराब-कबाब, तरह-तरह के

नशों, स्त्रियों-पुरुषों की संगति, राग-रंग की महफ़िलों, थियेटरों, क्लबों, ज़मीनों-जायदादों, महल-कोठियों, ऊँचे पदों आदि की प्राप्ति को जीवन का मूल उद्देश्य समझते हैं। ऐसे लोग इस बात की परवाह नहीं करते कि संसार अपने आप बना है या किसी रचयिता की रचना है। वे यह नहीं मानते कि संसार के रचयिता ने ख़ास उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सृष्टि की रचना की है और जीवों को ख़ास उद्देश्य की पूर्ति के लिए संसार में भेजा है।

दूसरी तरफ़ वे सन्त-महात्मा हैं जो संसार को परमात्मा की रचना मानते हैं। वे इस बात पर ज़ोर देते हैं कि आत्मा परमात्मा का अंश है। इनसान की हस्ती का वास्तविक आधार आत्मा है, शरीर नहीं। परमात्मा ने मनुष्य को एक ख़ास उद्देश्य की पूर्ति के लिए संसार में भेजा है। वह उद्देश्य आत्मा को परमात्मा में अभेद करके पूर्णता प्राप्त करना है। इस उद्देश्य की पूर्ति के बिना न सच्चा और स्थायी सुख मिल सकता है और न ही जीवन सही अर्थों में सफल हो सकता है। इस दृष्टि से 34वीं पउड़ी का गुरु साहिब की विचारधारा में विशेष स्थान है। इसमें प्रकट विचारों में गुरु साहिब की विचारधारा का सार समाया हुआ है।

राती रुती थिती वार॥ पवण पाणी अगनी पाताल॥ पहले 'पवण पाणी अगनी पाताल' के बारे में विचार करते हैं। गुरु साहिब समझा रहे हैं कि यह सृष्टि उस कर्ता की रचना है। उस कर्ता ने पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और आकाश रूपी पाँच तत्त्वों द्वारा इसकी रचना की है। दूध की बनी बर्फ़ी में दूध के गुण होते हैं। इमली की बनी हुई चटनी में इमली का असर होता है। इसी तरह पाँचों तत्त्वों की बनी सृष्टि में पाँचों तत्त्वों का प्रभाव होता है।

गुरु रामदास जी कहते हैं, 'पंच ततु करि तुधु स्रिसटि सभ साजी कोई छेवा करिउ जे किछु कीता होवै॥'[1] उस कर्ता ने पाँच तत्त्वों द्वारा सृष्टि की रचना की है। यदि किसी में ताक़त है तो छठा तत्त्व पैदा करके दिखाये। आपका भाव है कि परमात्मा द्वारा बनायी गयी सृष्टि को किसी तरह से भी कम या ज़्यादा कर सकना असम्भव है।

आज विज्ञान बहुत उन्नति कर चुका है। पर सोचने वाली बात यह है कि क्या वैज्ञानिक परमात्मा द्वारा बनाये गए तत्त्वों के प्रयोग के बिना और परमात्मा द्वारा सृजित सृष्टि की सहायता के बिना कोई चीज़ बना सकते हैं? वैज्ञानिक परमात्मा द्वारा संसार को चलाने के लिए बनाये गये नियमों की खोज करके उनसे लाभ उठा सकते हैं पर स्वयं नये नियमों के अनुसार चलने वाली नई सृष्टि की रचना नहीं कर सकते। खूँटे से बँधी गाय केवल उतनी दूर ही जा सकती है जितनी लम्बी रस्सी हो। मनुष्य केवल उस हद तक ही कुछ कर सकता है, जिस हद तक उस रचयिता ने उसको कुछ कर सकने की ताक़त दी है। इसलिए गुरु साहिब कहते हैं कि अगर किसी के वश में है तो कोई नई चीज़ बनाकर दिखाये।

मूल रूप में तत्त्व पाँच ही रहते हैं पर इनकी मात्रा के घटने-बढ़ने से जिस्मों या आकारों के स्वभाव बदल जाते हैं। वनस्पति अर्थात् वृक्षों और पौधों में पानी का तत्त्व प्रधान होता है, शेष तत्त्व नाम-मात्र होते हैं। कीड़े-मकोड़ों आदि में पृथ्वी और अग्नि के तत्त्व प्रधान होते हैं तथा बाकी तीन तत्त्व नाम-मात्र होते हैं। पक्षियों में तीन तत्त्व प्रधान होते हैं और चौपायों में चार तत्त्व। इनसान में पाँचों तत्त्व पूर्ण मात्रा में होते हैं इसलिए उसे पाँच तत्त्वों का पुतला कहा जाता है। फिर अलग-अलग लोगों में पाँच तत्त्वों की मात्रा में अन्तर होता है, जिस कारण उनके स्वभाव अलग-अलग होते हैं। गुरु साहिब के समझाने का भाव है कि जीवों के शरीरों सहित सृष्टि के सब आकार पाँच तत्त्वों की रचना है और वे सभी इन तत्त्वों के प्रभाव के अधीन हैं। गुरु नानक साहिब कहते हैं, 'पहिला पाणी जीउ है जितु हरिआ सभु कोइ॥'[2] वायु और पानी के बिना जीवन असम्भव है। सारे अनाज और मेवे धरती से पैदा होते हैं। सभी धातुएँ और खनिज-पदार्थ धरती से निकलते हैं। सारी वनस्पति, चारों खानियों के जीव, थल, पर्वत और सागर सब धरती के सहारे खड़े हैं। इसी तरह अग्नि और आकाश का सृष्टि और जीवन की गति-प्रगति में ख़ास स्थान है।

वास्तव में ये पाँचों तत्त्व एक-दूसरे के दुश्मन हैं और केवल परमात्मा के हुक्म के कारण इकट्ठे मिलकर चलते हैं। जब प्रभु सृष्टि का विनाश

करना चाहता है तो धरती पानी में घुल जाती है, पानी को अग्नि ख़ुश्क कर देती है, अग्नि को वायु उड़ाकर ले जाती है और वायु को आकाश खा जाता है। यहाँ गुरु साहिब सबसे पहले सृष्टि की रचना और इसके संचालन में काम कर रहे तत्त्वों के महत्त्व पर प्रकाश डालते हैं।

राती रुती थिती वार॥ परमात्मा ने सृष्टि को समय के अधीन रखा है। पल, क्षण, घड़ी, रात, दिन, वार और ऋतुएँ समय के निरन्तर प्रवाह की तरफ़ संकेत करती हैं। समय का प्रवाह दोहरा है। समय आगे की तरफ़ भी चल रहा है और चक्कर की तरह भी चल रहा है। दिन के बाद रात, रात के बाद दिन, एक ऋतु के बाद दूसरी ऋतु। इसी तरह पल-क्षण से शुरू होकर युगों तक पहुँच जाते हैं। सतयुग के बाद त्रेता, त्रेता के बाद द्वापर, द्वापर के बाद कलियुग और कलियुग के बाद फिर सतयुग। समय के चक्करमय वेग की सबसे बड़ी ख़ूबसूरती यह है कि जितना एक बिंदु से दूर होते जाते हैं उतना ही उसके पास भी होते चले जाते हैं। चक्कर में चल रहे हैं इसलिए जितना सतयुग से दूर जा रहे हैं, उतना ही सतयुग के नज़दीक भी होते जा रहे हैं।

समय का दूसरा अर्थ परिवर्तन है और परिवर्तन निरन्तर है। दिन से रात की तरफ़ और रात से दिन की तरफ़, जन्म से मृत्यु की तरफ़ और मृत्यु से जन्म की तरफ़, एक निरन्तर प्रवाह चल रहा है। गुरु नानक साहिब का वचन है, 'आगै देखउ डउ जलै पाछै हरिओ अंगूरु॥'[3] आप संकेत करते हैं कि संसार रूपी जंगल में एक अजीब तमाशा नज़र आ रहा है— अगली तरफ़ जंगल को आग लगी हुई है और पिछली तरफ़ नई पनीरी उग रही है। आप का भाव है कि एक तरफ़ अनेक लोग मर रहे हैं और दूसरी तरफ़ अनेक लोग जन्म ले रहे हैं। जो विकास कर रहा है, वह विनाश की तरफ़ जा रहा है। जो विनाश की तरफ़ जा रहा है, वह दोबारा जीवन धारण कर रहा है। इस तरह जीवन और मृत्यु एक दूसरे के साथ इस तरह बँधे हुए हैं कि दोनों को अलग नहीं किया जा सकता।

गुरु साहिब सावधान कर रहे हैं कि संसार और जीवन पर परिवर्तन और विनाश का पहरा है। न तो संसार की कोई वस्तु स्थिर है और न ही मानव-देह स्थिर है। जब तक जीवात्मा गति और प्रगति, परिवर्तन और

विनाश के नियम को नहीं समझती, इसे संसार और जीवन की असलियत का ज्ञान नहीं हो सकता। परिवर्तन और विनाश के नियम को समझे बिना, जीव न तो परिवर्तन-रहित सत्य की प्राप्ति की ज़रूरत महसूस कर सकता है और न ही उस सत्य की प्राप्ति के लिए उद्यम कर सकता है।

तिसु विचि धरती थापि रखी धरम साल॥ यह धरती न तो अपने आप बनी है और न ही अपने आप चल रही है। धरती को सृष्टि के विशाल फैलाव में एक ख़ास युक्ति के अनुसार और एक ख़ास उद्देश्य की पूर्ति के लिए 'थापिआ' या स्थापित किया गया है।

पुराने समय में सराय या विश्राम-घर को भी धर्मशाला कहते थे। धर्मस्थान को भी धर्मशाला कहा जाता था। भाई गुरदास जी लिखते हैं कि जहाँ भी गुरु नानक साहिब जाते थे वहाँ नई धर्मशाला बन जाती थी:

जिथे बाबा पैर धरि पूजा आसणु थापणि सोआ॥

. . . . . .

घरि घरि अंदरि धरमसाल होवै कीरतनु सदा विसोआ॥[4]

गुरु नानक साहिब ने सारी धरती को ही धर्म कमाने वाली धर्मशाला का नाम दिया है।

सच्चा धर्म अन्तर्मुखी है, बाहरमुखी नहीं। इसका सम्बन्ध आत्मा से है, शरीर से नहीं। आत्मा के अनेक धर्म नहीं हैं। आत्मा का एकमात्र धर्म परमात्मा का प्रेम है और इस धर्म का एकमात्र उद्देश्य परमात्मा के नाम द्वारा परमात्मा से मिलाप करना है।

मन्दिरों, मस्जिदों, गिरजा-घरों आदि में जाना; जप-तप, पूजा-पाठ, पुण्य-दान आदि अनेक प्रकार के बाहरमुखी कर्म अन्तर्मुखी धर्म को प्रफुल्लित होने में सहायता देने के लिए हैं। गुरु गोबिन्द सिंह जी ने अनेक प्रकार के बाहरमुखी कर्मों का उल्लेख करने के बाद यह परिणाम निकाला है, 'साच कहों सुन लेओ सभै जिन प्रेम कीओ तिन ही प्रभ पायो॥'[5] मन में प्रभु का प्रेम पैदा करनेवाले कर्म धन्य हैं, पर केवल बाहरमुखी कर्म सच्चे अन्तर्मुखी धर्म का स्थान नहीं ले सकते। गुरु रविदास जी की वाणी है:

फल कारन फूली बनराइ॥ फलु लागा तब फूलु बिलाइ॥
गिआनै कारन करम अभिआसु॥ गिआनु भइआ तह करमह नासु॥
घ्रित कारन दधि मथै सइआन॥ जीवत मुकत सदा निरबान॥
कहि रविदास परम बैराग॥ रिदै रामु की न जपसि अभाग॥[6]

आप समझाते हैं कि फूल फल की ख़ातिर होता है। जब फल लग जाता है तो फूल मुरझा जाता है। गृहिणी तब तक दूध मथती है, जब तक मक्खन नहीं निकलता। इसी तरह हर प्रकार के शुभ कर्म परमार्थ की शुरुआत हैं। ये परमार्थ की पहली श्रेणी हैं। इनका वास्तविक उद्देश्य जीव की वृत्ति को स्वार्थी के बजाय परमार्थी बनाना है और प्रभु रूपी सत्य के निजी अनुभव की प्राप्ति में सहायता करना है। जब आत्मा नाम को पकड़कर नामी में समा जाती है तो इसे सत्य का निजी अनुभव हो जाता है। फिर यह हर तरह के कर्म से आज़ाद हो जाती है। 'कहि रविदास परम बैराग॥ रिदै रामु की न जपसि अभाग॥' हृदय में राम-नाम को धारण करना ही सच्चा प्रेम और सच्चा वैराग्य है और यही सच्ची मुक्ति, सच्चे निर्वाण और सच्चे ज्ञान की प्राप्ति का असली साधन है। गुरु अर्जुन साहिब 'सुखमनी' में कहते हैं:

गुण गोबिंद नाम धुनि बाणी॥ सिम्रिति सासत्र बेद बखाणी॥
सगल मतांत केवल हरि नाम॥ गोबिंद भगत कै मनि बिस्राम॥[7]

आप इशारा कर रहे हैं कि सभी धर्मों और सभी धर्म-ग्रन्थों के उपदेश का सार लिव अन्दर नाम की ध्वनि के साथ जोड़ना है। आप 'सुखमनी' में ही कहते हैं:

सरब धरम महि स्रेसट धरमु॥ हरि को नामु जपि निरमल करमु॥[8]

सगल उदम महि उदमु भला॥ हरि का नामु जपहु जीअ सदा॥[9]

सगल थान ते ओहु ऊतम थानु॥ नानक जिह घटि वसै हरि नामु॥[10]

आप समझाते हैं कि सब धर्मों से उत्तम धर्म और सब कर्मों से उत्तम कर्म नाम के साथ लिव जोड़ना है। सबसे निर्मल हृदय वह है जिसके अन्दर परमात्मा का नाम समाया हुआ है।

गुरु नानक साहिब की वाणी है, 'गुरमुखि धरती साचै साजी॥ तिस महि ओपति खपति सु बाजी॥'[11] धरती बनाये जाने का वास्तविक उद्देश्य गुरुमुख या भक्त पैदा करना है। आप दूसरे प्रसंग में कहते हैं, 'संत हेति प्रभि त्रिभवण धारे॥ आतमु चीनै सु ततु बीचारे॥'[12] अर्थात् उस प्रभु ने आत्मा की पहचान द्वारा परमात्मा की पहचान करनेवाले साधु, सन्तों, गुरुमुखों के निर्माण के लिए त्रिलोकी की रचना की है। गुरु अर्जुन देव जी की वाणी है:

हरि सिमरनि धारी सभ धरना॥ सिमरि सिमरि हरि कारन करना॥
हरि सिमरनि कीओ सगल अकारा॥ हरि सिमरन महि आपि निरंकारा॥[13]

आप कहते हैं कि प्रभु-परमात्मा ने धरती की रचना इसलिए की है कि जीवात्मा परमात्मा के नाम के सुमिरन द्वारा परमात्मा में अभेद होकर पूर्ण पुरुष का पद प्राप्त कर ले। गुरु अर्जुन साहिब की वाणी है:

भई परापति मानुख देहुरीआ॥ गोबिंद मिलण की इह तेरी बरीआ॥
अवरि काज तेरै कितै न काम॥ मिलु साधसंगति भजु केवल नाम॥
सरंजामि लागु भवजल तरन कै॥ जनमु ब्रिथा जात रंगि माइआ कै॥[14]

आप उपदेश करते हैं कि परमात्मा द्वारा सौंपे गये मूल कार्य को त्यागकर मनमर्ज़ी के अनेक कार्यों में व्यस्त रहना व्यर्थ है। बाबा फ़रीद कहते हैं:

फरीदा चारि गवाइआ हंढि कै चारि गवाइआ संमि॥
लेखा रबु मंगेसीआ तू आंहो केहे कंमि॥[15]

आप ख़बरदार करते हैं कि परमात्मा द्वारा सौंपे गये कार्य को भूलने वाले व्यक्ति से परमात्मा लेखा माँगेगा कि ऐ भले मानुष! तुझे भेजा किस काम के लिए था और तू वहाँ करता क्या रहा!

तिसु विचि जीअ जुगति के रंग॥ तिन के नाम अनेक अनंत॥ देहधारी आत्मा को जीवात्मा कहा जाता है। दुनिया केवल निर्जीव शक्लों-पदार्थों का खेल नहीं है। इसमें अनन्त प्रकार के और अनन्त ढंगों से विचरने वाले चेतन जीव भी बस रहे हैं। वास्तव में धरती, पर्वत, सागर, वनस्पति आदि सब वस्तुएँ और पदार्थ जीवात्मा के लिए पैदा किये गये हैं। पाँच तत्त्वों की कुल कायनात मनुष्य की सेवा-सहायता के लिए पैदा की गयी है ताकि वह नाम-सुमिरन द्वारा प्रभु-प्राप्ति का अपना उद्देश्य पूरा कर सके।

करमी करमी होइ वीचारु॥ सचा आपि सचा दरबारु॥ हमें यहाँ नाम के सुमिरन द्वारा पिता-परमात्मा से मिलाप करने के लिए भेजा गया है, पर यह कार्य कोई विरला ही करता है। गुरु तेग़ बहादुर साहिब कहते हैं:

निसि दिनु माइआ कारने प्रानी डोलत नीत॥
कोटन मै नानक कोऊ नाराइनु जिह चीति॥[16]

संसार में माया के पुजारी अनेक हैं, परमात्मा का पुजारी कोई-कोई है। जो लोग परमात्मा के नाम को भूलकर मनचाहे खेलों में मस्त हैं, उनके हर कर्म का हिसाब रखा जाता है और उन्हें हर कर्म का फल दिया जाता है। नाम की कमाई करनेवाले के लिए धरती 'धरमसाल' है, मनमर्ज़ी करनेवालों के लिए यह कर्म-भूमि या 'करमा संदड़ा खेतु'[17] है, जिसमें 'आपे बीजि आपे ही खाहु'[18] और 'नानक हुकमी आवहु जाहु'[19] का नियम लागू होता है।

उस सच्चे दरबार में स्त्री-पुरुष, जाति-पाँति, रंग-रूप, क़ौम, मज़हब, मुल्क, अमीर-ग़रीब, विद्वत्ता-निरक्षरता आदि के आधार पर नहीं, कर्मों के आधार पर जीव की परख की जाती है। उस दरबार में सच्चा न्याय होता है। वहाँ कोई कटौती या बढ़ोतरी नहीं की जाती। यह समझना निपट अज्ञानता है कि हमें उस दरबार में केवल इसलिए बख़्श दिया जायेगा क्योंकि हम किसी ख़ास धर्म, जाति, सम्प्रदाय या मुल्क के रहनेवाले हैं। यह समझना कि हमें दरगाह में इसलिए बख़्श दिया जायेगा क्योंकि हमारा अपने समय के या पूर्व समय में हुए किसी सन्त-महात्मा, गुरु-पीर, अवतार-पैग़म्बर आदि में विश्वास है, हमारे मन का धोखा है।

'तिसु विचि धरती थापि रखी धरम साल' को 'करमी करमी होइ वीचारु' से मिलाकर पढ़ने से यह संकेत मिलता है कि यह धरती कर्म-भूमि है। यहाँ इनसान कर्मों की खेती बोता और काटता है। गुरु साहिब कहते हैं, 'जैसा बीजै सो लुणे जो खटे सो खाइ॥'[20] गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं, 'जैसा बीजै सो लुणै करम इहु खेतु॥'[21] बाबा फ़रीद कहते हैं:

फरीदा लोड़ै दाख बिजउरीआं किकरि बीजै जटु॥
हंढै उंन कताइदा पैधा लोड़ै पटु॥[22]

संसार का प्रत्येक प्राणी कर्म भी मनमर्ज़ी के करने चाहता है और फल भी मनमर्ज़ी के लेना चाहता है। यह किसी तरह भी सम्भव नहीं है। जो मिर्चों की फ़सल बोता है, मिर्चें ही पायेगा और जो सेब का पौधा लगायेगा, सेब खाने का अधिकारी हो जायेगा।

संसार में हर समय और हर जगह अनेक रावण, दुर्योधन और हिरण्यकशिपु दिखाई देते हैं। सच तो यह है कि हम सब ही रावण, दुर्योधन और हिरण्यकशिपु हैं। जब परायी स्त्री पर नज़र रखते हैं तो रावण हैं, जब पराया अधिकार मारना चाहते हैं तो दुर्योधन हैं और जब हौंमैं के वश होकर अपने रचयिता को भूल जाते हैं, उस कर्ता के हुक्म से निडर हो जाते हैं और स्वयं प्रभु की पूजा करने की बजाय अपनी पूजा करवाना चाहते हैं तो हिरण्यकशिपु हैं। हम ज़ुल्म, ज़बरदस्ती, अन्याय आदि जो भी कुकर्म करते हैं, इस भ्रम के अधीन करते हैं कि हमें किये हुए कर्मों की सज़ा नहीं भोगनी पड़ेगी। इस अज्ञान को जितनी जल्दी छोड़ दिया जाये, अच्छा है।

गुरु साहिब ने जीव को सावधान किया है कि कर्म और फल का नियम अटल है। हमारा प्रारब्ध हमारे ही पूर्व में किये हुए कर्मों का फल है और पुनर्जन्म, आवागमन या चौरासी के चक्कर में भटकने का कारण भी किये हुए कर्म हैं। साथ ही आपने यह समझाने का प्रयत्न किया है कि पुण्य, पापों का नाश नहीं कर सकते। पुण्य और पाप दोनों ही जीव को आवागमन के चक्कर से बाँधकर रखते हैं। जीव को आवागमन के चक्कर

से छुड़ाने वाला और पुण्य-पाप, सुख-दुःख के द्वैत से सदा के लिए मुक्ति देनेवाला साधन परमात्मा का नाम है। आप 'आसा दी वार' में कहते हैं:

नानक जीअ उपाइ कै लिखि नावै धरमु बहालिआ॥
ओथै सचे ही सचि निबड़ै चुणि वखि कढे जजमालिआ॥
थाउ न पाइनि कूड़िआर मुह काल्है दोजकि चालिआ॥
तेरै नाइ रते से जिणि गए हारि गए सि ठगण वालिआ॥
लिखि नावै धरमु बहालिआ॥[23]

गुरु साहिब समझा रहे हैं कि झूठी माया में डूबे रहनेवाले कूड़िआर किये हुए कर्मों के अनुसार नरकों-स्वर्गों में चले गये और नाम की कमाई करने वाले गुरुमुख जीवन की बाज़ी जीतकर निज घर पहुँच गये।

तिथै सोहनि पंच परवाणु॥ उस सच्ची दरगाह में असली शोभा या मान-बड़ाई पंचों, गुरुमुखों और साधु-सन्तों को मिलती है। पुण्य करनेवाले पुण्यों का फल भोगने के लिए और पाप करनेवाले पापों का फल भोगने के लिए आवागमन के चक्कर से बँधे रहते हैं पर नाम के साथ लिव जोड़ने वाले गुरुमुख घर-दर में पहुँचकर पिता-परमात्मा से मिलाप कर लेते हैं।

नदरी करमि पवै नीसाणु॥ इस पंक्ति का यह अर्थ किया जाता है कि कर्म का निशान उन पर ही लगता है, जिन पर उस मालिक की दया-दृष्टि होती है। हम सभी यही चाहते हैं कि गुरुमुख बनकर परमात्मा में अभेद हो जायें पर ऐसा कर सकना हमारे अपने हाथ में नहीं है—'दातै दाति रखी हथि अपणै'[24]। वह परमात्मा गुरुमुख की पदवी उसे बख़्शता है, जिस पर वह स्वयं दया-मेहर करता है। प्रभु-प्राप्ति की बड़ाई मनुष्य के यत्न या चतुराई पर नहीं, प्रभु की रहमत पर निर्भर है।

कच पकाई ओथै पाइ॥ इस पंक्ति का यह अर्थ किया जाता है कि जो लोग यहाँ कच्चे हैं, वे वहाँ जाकर पक जाते हैं। इसका यह अर्थ भी किया जाता है कि कच्चे और पक्के, पुण्य करनेवाले और पाप करनेवाले या दुनियादार और भक्त का निर्णय वहाँ पहुँच कर होता है। इस बात का निर्णय भी वहाँ पहुँचकर होता है कि कौन कच्चा है और कौन पक्का?

नानक गइआ जापै जाइ॥ गुरु साहिब कहते हैं कि जो लोग यहाँ नासमझी और लापरवाही के कारण मनमर्ज़ी करते हैं और प्रभु-भक्ति या नाम की कमाई की तरफ़ से लापरवाह रहते हैं, वहाँ जाकर चकित रह जाते हैं कि यह क्या हो गया! जब उनके सामने उनके कर्मों का लेखा रखा जाता है तो उनको ख़ुद ही पता चल जाता है कि कर्म और फल का नियम कोरी कल्पना नहीं, एक ठोस हक़ीक़त है। गुरु अर्जुन देव जी नीचे लिखे शब्द में जीव को सावधान करते हैं:

बिरखै हेठि सभि जंत इकठे॥ इकि तते इकि बोलनि मिठे॥
असतु उदोतु भइआ उठि चले जिउ जिउ अउध विहाणीआ॥
पाप करेदड़ सरपर मुठे॥ अजराईलि फड़े फड़ि कुठे॥
दोजकि पाए सिरजणहारै लेखा मंगै बाणीआ॥
संगि न कोई भईआ बेबा॥ मालु जोबनु धनु छोडि वञेसा॥
करण करीम न जातो करता तिल पीड़े जिउ घाणीआ॥
खुसि खुसि लैदा वसतु पराई॥ वेखै सुणे तेरै नालि खुदाई॥
दुनीआ लबि पइआ खात अंदरि अगली गल न जाणीआ॥
जमि जमि मरै मरै फिरि जंमै॥ बहुतु सजाइ पइआ देसि लंमै॥
जिनि कीता तिसै न जाणी अंधा ता दुखु सहै पराणीआ॥[25]

संसार में अलग-अलग स्वभाव और वृत्तियों वाले लोग अलग-अलग क़िस्म के कर्म करते हैं। बुरे कर्म करनेवालों को धर्मराज नरकों में भेजता है। उनको वहाँ ऐसे पेरा जाता है जैसे कोल्हू में तिलों को।

'जपुजी' के अन्त में यह श्लोक दर्ज है:

पवणु गुरू पाणी पिता माता धरति महतु॥
दिवसु राति दुइ दाई दाइआ खेलै सगल जगतु॥
चंगिआईआ बुरिआईआ वाचै धरमु हदूरि॥
करमी आपो आपणी के नेड़ै के दूरि॥
जिनी नामु धिआइआ गए मसकति घालि॥
नानक ते मुख उजले केती छुटी नालि॥

इस श्लोक की 34वीं पउड़ी के साथ आश्चर्यजनक समानता है। ये पाँच तत्त्वों की रचना समय, काल या परिवर्तन के नियम के अनुसार चल रही है। यहाँ जीव अच्छे कर्म भी करते हैं और बुरे कर्म भी कमाते हैं। धर्मराज उन सब पुण्यों और पापों का लेखा रखता है और फल देता है। जो गुरुमुख नाम की कमाई करते हैं, वे स्वयं भी भवसागर से पार हो जाते हैं और उनके उपदेश से लाभ उठाकर नाम की कमाई करनेवाले अन्य अनगिनत जीव भी परमात्मा से मिलाप करके सदा के लिए आवागमन के चक्कर से मुक्त हो जाते हैं।

पउड़ी 35

धरम खंड का एहो धरमु॥ गिआन खंड का आखहु करमु॥
केते पवण पाणी वैसंतर केते कान महेस॥
केते बरमे घाड़ति घड़ीअहि रूप रंग के वेस॥
केतीआ करम भूमी मेर केते केते धू उपदेस॥
केते इंद चंद सूर केते केते मंडल देस॥
केते सिध बुध नाथ केते केते देवी वेस॥
केते देव दानव मुनि केते केते रतन समुंद॥
केतीआ खाणी केतीआ बाणी केते पात नरिंद॥
केतीआ सुरती सेवक केते नानक अंतु न अंतु॥

शब्दार्थ: कान=कृष्ण। महेस=शिवजी। के=अनेक। वेस=स्वरूप, शक्लें। मेर=सुमेर पर्वत। धू=ध्रुव। इंद=इन्द्र। देव=देवता। दानव=राक्षस। पात=पातशाह। नरिंद=राजा। सुरती=आत्माएँ। सेवक=दास।

सरलार्थ: 34वीं पउड़ी में अपनी विचारधारा प्रकट करके गुरु साहिब अगली पउड़ियों में उन सूक्ष्म रूहानी मण्डलों की झाँकी प्रस्तुत करते हैं, जिनमें से गुज़रकर नाम जपने वाले गुरुमुख धुर-घर या सचखण्ड में पहुँचते हैं। गुरु साहिब कहते हैं:

ऊपर धर्म खण्ड के धर्म, नियम या स्वभाव का वर्णन हो चुका है। अब ज्ञान खण्ड के कर्म, स्वभाव और स्वरूप का वर्णन किया जाता है। ज्ञान खण्ड में पहुँचकर पता चलता है कि अनेक प्रकार की अग्नि, वायु और पानी हैं। अनेक कृष्ण, महादेव या शिवजी हैं। रचना रचने वाले अनेक ब्रह्मा हैं, जो अनेक प्रकार के रंग-रूप और वेश बना रहे हैं। अनेक कर्म-भूमियाँ हैं, अनेक पर्वत हैं, अनेक ध्रुव भक्ति का उपदेश पाकर भक्ति में लगे हुए हैं। अनेक इन्द्र, चाँद, सूर्य, मण्डल और देश हैं। अनेक सिद्ध, बुद्ध और नाथ हैं। अनेक वेशों वाली देवियाँ हैं। अनेक देवता, राक्षस और ऋषि-मुनि हैं। अनेक समुद्र और रत्न हैं। अनेक प्रकार की खानियाँ और वाणियाँ हैं। अनेक बादशाह और राजा हैं। अनेक सुरतियाँ (आत्माएँ) और सेवक हैं, जिनका कोई अन्त नहीं है।

व्याख्या

धरम खंड का एहो धरमु॥ गिआन खंड का आखहु करमु॥ आप फ़रमा रहे हैं कि पिछली पउड़ी में धर्म खण्ड के बारे में बयान किया जा चुका है अब ज्ञान खण्ड के बारे में चर्चा की जा रही है। ज्ञान खण्ड रूहानी यात्रा का पहला पड़ाव है। यहाँ पहुँचकर सारी त्रिलोकी किताब की तरह सामने खुली दिखाई देती है। ज्यों-ज्यों रूहानी तरक़्क़ी होती है मन, बुद्धि और आत्मा निर्मल होते जाते हैं और आत्मा के ज्ञान, शक्ति और आनन्द में वृद्धि होती जाती हैं।

केते पवण पाणी वैसंतर केते कान महेस॥
केते बरमे घाड़ति घड़ीअहि रूप रंग के वेस॥

धरती रूपी धर्मशाला में मनुष्य की दृष्टि बहुत सीमित होती है और उसकी सोच का दायरा बहुत छोटा होता है। ज्ञान खण्ड में पहुँचकर उसको दिव्य-दृष्टि प्राप्त हो जाती है। वह सहज-ज्ञान के क्षेत्र में दाख़िल हो जाता है जिससे उसके ज्ञान का दायरा बहुत विशाल हो जाता है। वहाँ पहुँचकर जीवात्मा को उस कर्ता की अनन्त रचना का साक्षात् रूहानी अनुभव प्राप्त होता है। इस खण्ड में पहुँचकर पता लगता है कि उस कर्ता की तरह उसके

द्वारा सृजित अति सुन्दर रचना की थाह पा सकना असम्भव है। वर्तमान अवस्था में हम पाँच तत्त्वों, तीन गुणों और तीन देवताओं की रचना देखते हैं। गुरु साहिब समझाते हैं कि ज्ञान खण्ड में पहुँचकर यह पता चलता है कि सृष्टि में काम कर रही शक्तियों का हिसाब लगा सकना असम्भव है।

केते बरमे घाड़ति घड़ीअहि रूप रंग के वेस॥ इसका यह अर्थ भी किया जाता है कि अनेक ब्रह्मा भाँति-भाँति की रचना करने में लगे हुए हैं। इसका यह अर्थ भी किया जाता है कि वहाँ अनेक ब्रह्माओं की रचना की जा रही दिखाई देती है।

केतीआ करम भूमी मेर—इसका एक अर्थ यह किया जाता है कि वहाँ अनेक प्रकार के कर्म हैं और अनेक प्रकार की धरती और पर्वत हैं। इसका यह अर्थ भी किया जाता है कि हम इस धरती को कर्म-भूमि मानते हैं पर वहाँ अनेक अन्य कर्म-भूमियाँ दिखाई देती हैं, जिन पर हमारी धरती की तरह ही कर्म और फल का नियम लागू है।

केते केते धू उपदेस॥ केते इंद चंद सूर केते केते मंडल देस॥ हम एक ध्रुव, एक चाँद और एक सूर्य की बात करते हैं, ज्ञान खण्ड में पहुँचकर अनेक ध्रुव, इन्द्र, चाँद, सूर्य और खण्ड-ब्रह्माण्ड दिखाई देते हैं।

केते सिध बुध नाथ केते केते देवी वेस॥
केते देव दानव मुनि केते केते रतन समुंद॥

ज्ञान खण्ड में पहुँचकर अनेक देवी-देवताओं, सिद्धों-बुद्धों और नाथों के बारे में पता चलता है। इस धरती रूपी धर्मशाला में हमें एक समुद्र को मथ कर निकाले गये चौदह रत्नों के बारे में बताया जाता है, ज्ञान खण्ड में पहुँचकर अनेक समुद्रों और रत्नों का ज्ञान हो जाता है।

केतीआ खाणी केतीआ बाणी केते पात नरिंद॥ हम चार खानियों— अण्डज, जेरज, स्वेदज और उद्भिज्ज और चार क़िस्म की वाणी— परा पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी के बारे में जानते हैं। इसी तरह हमें दुनिया में कुछेक राजा राज्य करते दिखाई देते हैं। ज्ञान खण्ड में पहुँचकर अनेक प्रकार की खानियों, वाणियों, राजाओं और बादशाहों का ज्ञान होता है।

केतीआ सुरती सेवक केते नानक अंतु न अंतु॥ ज्ञान खण्ड में पहुँचकर पता चलता है कि परमात्मा की सेवा और भक्ति में लगी सुरतियों (आत्माओं) और सेवकों की गिनती कर सकना असम्भव है।

इस पउड़ी में जिस ज्ञान की प्राप्ति की बात की गयी है, न वह ज्ञान बाहरमुखी है और न ही उसकी प्राप्ति का साधन बाहरमुखी है। यहाँ ज्ञान से अभिप्राय उस अन्तर्मुखी अनुभव से है, जिसकी प्राप्ति का साधन लिव, ध्यान, एकाग्रता या समाधि है। जब जीवात्मा रूहानी अभ्यास द्वारा शरीर के नौ द्वार ख़ाली करके ज्ञान खण्ड में पहुँचती है तो इस पर चढ़े स्थूल पर्दे उतरने शुरू हो जाते हैं और इसकी चेतना का विस्तार होना शुरू हो जाता है। जैसे-जैसे चेतना सूक्ष्म होती है, वैसे-वैसे यह अन्तर्मुख होती जाती है और इसके लिए सूक्ष्म सृष्टि की अनन्तता को आन्तरिक आँख से देखना आसान होता जाता है।

पउड़ी 36

गिआन खंड महि गिआनु परचंडु॥ तिथै नाद बिनोद कोड अनंदु॥
सरम खंड की बाणी रूपु॥ तिथै घाड़ति घड़ीऐ बहुतु अनूपु॥
ता कीआ गला कथीआ ना जाहि॥ जे को कहै पिछै पछुताइ॥
तिथै घड़ीऐ सुरति मति मनि बुधि॥ तिथै घड़ीऐ सुरा सिधा की सुधि॥

शब्दार्थ: परचंडु=तेज़। बिनोद=आनन्द। कोड=करोड़ों। अनूपु=अद्भुत। सुरा=देवताओं। सिधा=सिद्ध पुरुषों। सुधि=उत्तम वृत्ति।

सरलार्थ: गुरु साहिब आगे कहते हैं:

ज्ञान खण्ड में ज्ञान प्रबल है। वहाँ ज्ञान बहुत प्रचण्ड और तेजपूर्ण है। वहाँ नाद (शब्द) का बिलास है और अनन्त प्रकार का आनन्द है।

सरम खण्ड की वाणी (शब्द, नाम) बहुत सुन्दर है। वहाँ अति सुन्दर रचना की जाती है। उस मण्डल का हाल वर्णन से परे है। यदि कोई उसका वर्णन करने का यत्न करेगा तो उसको लज्जित होना पड़ेगा। वहाँ

सुरति (आत्मा), मति, मन और बुद्धि बनायी जाती है और वहाँ देवताओं और सिद्धों वाली विवेक शक्ति बनायी जाती है।

व्याख्या

गिआन खंड महि गिआनु परचंडु॥ तिथै नाद बिनोद कोड अनंदु॥ 35वीं पउड़ी में शुरू हुआ ज्ञान खण्ड का वर्णन 36वीं पउड़ी में जारी रहता है। गुरु साहिब कहते हैं कि ज्ञान खण्ड में आध्यात्मिक ज्ञान (शब्द) का प्रकाश कहने-सुनने से परे है। गुरु अमरदास जी की वाणी है:

गुरमुखि सबदु पछाणीऐ हरि अंम्रित नामि समाइ॥
गुर गिआनु प्रचंडु बलाइआ अगिआनु अंधेरा जाइ॥[1]

'गिआनु प्रचंडु बलाइआ' और 'गिआन खंड महि गिआनु परचंडु' शब्द के अलौकिक प्रकाश की तरफ़ संकेत करते हैं। कबीर साहिब की वाणी है:

बारसि बारह उगवै सूर॥ अहिनिसि बाजे अनहद तूर॥
देखिआ तिहूं लोक का पीउ॥ अचरजु भइआ जीव ते सीउ॥[2]

आप कहते हैं कि जब रूहानी अभ्यास द्वारा अन्दर जाते हैं तो आत्मा का प्रकाश बारह सूर्यों के बराबर हो जाता है और त्रिलोकीनाथ के दर्शन हो जाते हैं। गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं, 'नामु जपत कोटि सूर उजारा बिनसै भरमु अंधेरा॥'[3] यह वर्णन काव्यिक या अलंकारिक अतिशयोक्ति वाला नहीं, यह एक शुद्ध रूहानी तथ्य है कि आन्तरिक मण्डलों में लाखों-करोड़ों सूर्य का प्रकाश है। जैसे-जैसे आत्मा ऊपर जाती है प्रकाश में वृद्धि होती जाती है। यह सूक्ष्म आध्यात्मिक प्रकाश बाहरी भौतिक प्रकाश से बिल्कुल भिन्न है।

गुरु साहिब मन-बुद्धि, दलील, फ़लसफ़े या ग्रन्थों-शास्त्रों के पाठ-विचार से प्राप्त होनेवाले ज्ञान का नहीं, रूहानी अभ्यास द्वारा आत्मा को आन्तरिक मण्डलों में प्राप्त होनेवाले सूक्ष्म आध्यात्मिक ज्ञान का उल्लेख कर रहे हैं। कबीर साहिब की वाणी है:

इहु मनु सकती इहु मनु सीउ॥ इहु मनु पंच तत को जीउ॥
इहु मनु ले जउ उनमनि रहै॥ तउ तीनि लोक की बातै कहै॥[4]

जब मन अन्दर की तरफ़ मुड़कर उन्मनी अवस्था में पहुँच जाता है तो इसको तीनों लोकों और तीनों कालों की समझ आ जाती है। मौलाना रूम फ़रमाते हैं:

यक नज़र दो गज़ हमीं बीनद ज़ राह,
यक नज़र दो कौन दीदा रूए शाह।[5]

आप कहते हैं कि पहले मेरी नज़र केवल दो गज़ तक देख सकती थी। अब यह हालत हो गयी है कि यह दोनों जहानों को पार करके उस शहंशाह के मुख तक पहुँच रही है।

तिथै नाद बिनोद कोड अनंदु॥ आपने 'गिआनु परचंडु' द्वारा शब्द के प्रकाश की ओर संकेत किया है और 'नाद' द्वारा शब्द की ध्वनि की तरफ़ इशारा किया है। आप कहते हैं कि शब्द का प्रकाश और शब्द की आवाज़ उस मण्डल में आश्चर्यजनक आनन्द पैदा करते हैं।

'गिआन खंड', 'धरम खंड', 'सरम खंड' तथा 'सच खंडि' के वर्णन से पता चलता है कि पूर्ण सन्त इन मण्डलों में प्राप्त जिस आनन्द की तरफ़ संकेत करते हैं, वह भौतिक या ऐंद्रिय नहीं। वह सूक्ष्म आत्मिक आनन्द है जिसकी इस संसार की किसी वस्तु से तुलना कर सकना असम्भव है। सन्त-महात्मा यह नहीं कहते कि इन्द्रियों के सुख थोड़े हैं और आत्मिक आनन्द अधिक है। वे दोनों तरह के सुखों का मात्रा के (quantitative) आधार पर नहीं, गुण के (qualitative) आधार पर अन्तर समझाते हैं। वे कहते हैं कि इन्द्रियों के सुख आत्मिक आनन्द से भिन्न हैं। ऐंद्रिय सुख न केवल क्षणभंगुर और नाशवान हैं बल्कि इनका प्रभाव और अन्त भी अच्छा और कल्याणकारी नहीं होता। गुरु साहिब की वाणी है:

बहु सादहु दूखु परापति होवै॥ भोगहु रोग सु अंति विगोवै॥
हरखहु सोगु न मिटई कबहू विणु भाणे भरमाइदा॥[6]

भौतिक या ऐंद्रिय सुख को दुःख की जामन लगी होती है। इसकी जड़ में दुःख समाया होता है। इन्द्रियों के भोग और विषय-विकार न केवल अकह शारीरिक और मानसिक दुःखों का कारण बनते हैं, बल्कि जीवात्मा को अनन्त काल के लिए आवागमन के चक्कर से भी बाँध देते हैं। इसके विपरीत नाम से प्राप्त होनेवाला सूक्ष्म सुख आत्मा को सच्चा आनन्द प्रदान करता है और मन को इन्द्रियों के भोगों की तरफ़ से उपराम करता है। यह जीव को शारीरिक, मानसिक और आत्मिक तीनों तरह के संतापों से मुक्त करके सदा के लिए आनन्द-रूप प्रभु में अभेद कर देता है।

सरम खंड की बाणी रूपु॥ इस पंक्ति का एक अर्थ यह किया जाता है कि सरम खण्ड की बनावट बहुत सुन्दर है या सरम खण्ड अलौकिक सुन्दरता का देश है। इसका अर्थ यह भी किया जाता है कि सरम खण्ड में शब्द का प्रकाश अलौकिक सुन्दरता से भरपूर है। गुरु साहिब ज्ञान खण्ड का वर्णन करते हुए कह आये हैं कि ज्ञान खण्ड में शब्द का प्रबल प्रकाश है और शब्द की आनन्ददायक ध्वनि है। इसलिए ये अर्थ स्वाभाविक लगता है कि सरम खण्ड में शब्द सुन्दरता का रूप है। यह प्रकाश अत्यन्त आकर्षक है।

तिथै घाड़ति घड़ीऐ बहुतु अनूपु॥ वहाँ पर जीवों की अद्भुत गढ़त गढ़ी जाती है। वहाँ पहुँचकर साधकों की अवस्था पूरी तरह बदल जाती है और उनके अन्दर अनेक नैतिक और आध्यात्मिक गुण आ जाते हैं।

ता कीआ गला कथीआ ना जाहि॥ जे को कहै पिछै पछुताइ॥ उस मण्डल का और वहाँ पहुँच चुकी रूहों की सुन्दरता का वर्णन कर सकना असम्भव है। अगर कोई सरम खण्ड और वहाँ पहुँच चुकी आत्माओं की अवस्था का वर्णन करने का यत्न करेगा तो उसे पछताना पड़ेगा क्योंकि वह अवस्था बयान से बाहर है।

तिथै घड़ीऐ सुरति मति मनि बुधि॥ तिथै घड़ीऐ सुरा सिधा की सुधि॥ वहाँ मन, बुद्धि और आत्मा तीनों परम-सूक्ष्म और परम-चेतन हो जाते हैं। मन पूरी तरह से निर्मल हो जाता है और आत्मा मन-माया तथा कर्मों-संस्कारों के पर्दे उतारकर अपना शुद्ध आत्मिक स्वरूप प्राप्त कर लेती है। वहाँ पहुँचने वाले जीवों में देवताओं और सिद्ध पुरुषों वाले गुण पैदा हो जाते हैं।

पउड़ी 37

करम खंड की बाणी जोरु॥ तिथै होरु न कोई होरु॥
तिथै जोध महाबल सूर॥ तिन महि रामु रहिआ भरपूर॥
तिथै सीतो सीता महिमा माहि॥ ता के रूप न कथने जाहि॥
ना ओहि मरहि न ठागे जाहि॥ जिन कै रामु वसै मन माहि॥
तिथै भगत वसहि के लोअ॥ करहि अनंदु सचा मनि सोइ॥
सच खंडि वसै निरंकारु॥ करि करि वेखै नदरि निहाल॥
तिथै खंड मंडल वरभंड॥ जे को कथै त अंत न अंत॥
तिथै लोअ लोअ आकार॥ जिव जिव हुकमु तिवै तिव कार॥
वेखै विगसै करि वीचारु॥ नानक कथना करड़ा सारु॥

शब्दार्थ: महिमा माहि=सिफ़त-सलाह करने में। भगत...लोअ=भक्तों के अनेक लोक बसे हुए दिखाई देते हैं। खंड=हिस्से, भाग। वरभंड=ब्रह्माण्ड। विगसै=प्रसन्न होता है। करड़ा=सख़्त। सारु=लोहा।

सरलार्थ: गुरु साहिब जीव की आन्तरिक रूहानी यात्रा में आनेवाले पड़ावों (मण्डलों), ज्ञान खण्ड और सरम खण्ड का हाल बयान कर चुके हैं। यहाँ आप उनसे ऊँचे मण्डलों का हाल बयान कर रहे हैं:

कर्म खण्ड की वाणी ज़ोर या शक्ति से भरपूर है। वहाँ और कोई नहीं, सिवाय उन बख़्शे हुए सूरमाओं और महाबलियों के, जिनमें राम भरपूर है। वहाँ भक्तों की आत्माएँ परमात्मा की महिमा में मग्न हैं। उनके रूप कहने-सुनने से परे हैं। वहाँ पहुँचे हुए भक्त, जिनके मन में वह कर्ता रूपी राम बस रहा है, न मरते हैं और न ही ठगे जाते हैं। वहाँ भक्तों के कई लोक या देश बसे हुए हैं। उनके मन में सच्चा आनन्द-स्वरूप प्रभु समा रहा है।

सचखण्ड में उस निरंकार का निवास है। वह कुल सृष्टि को अपनी कृपा-दृष्टि से निहाल कर रहा है। वहाँ अनन्त खण्ड, मण्डल और ब्रह्माण्ड हैं; यदि कोई उनका कथन करने लगे तो सफल नहीं होगा

क्योंकि उनका कोई अन्त नहीं। वहाँ के लोक (मण्डल) भक्तों से भरे हुए हैं। वहाँ सारा कार्य उस कर्तापुरुष के हुक्म के अनुसार चल रहा है और सब लोग अपने कर्ता के हुक्म के अनुसार कार्य कर रहे हैं। वह मालिक सबको देखकर प्रसन्न होता है। उसका वर्णन कर सकना लोहे को चबाने के समान सख़्त या कठिन कार्य है।

व्याख्या

करम खंड की बाणी जोरु ॥ इस पंक्ति का एक अर्थ यह किया जाता है कि कर्म खण्ड की रचना बहुत प्रबल है अर्थात् वहाँ पहुँची हुई आत्माओं में राम का बल भरपूर है। इसका यह अर्थ भी किया जाता है कि कर्म खण्ड में शब्द की धारा बहुत प्रबल है।

तिथै होरु न कोई होरु ॥ तिथै जोध महाबल सूर ॥
तिन महि रामु रहिआ भरपूर ॥

वहाँ केवल ऐसे सूरमा भक्त ही ठहर सकते हैं, जिनके रोम-रोम में राम या शब्द समाया हुआ है।

तिथै सीतो सीता महिमा माहि ॥ ता के रूप न कथने जाहि ॥ इन पंक्तियों के अर्थ यह किये जाते हैं कि वहाँ आत्माएँ परमात्मा की महिमा में लीन हैं और उनकी शोभा या सुन्दरता का वर्णन कर सकना असम्भव है। इन पंक्तियों के दूसरे अर्थ ये किये जाते हैं कि वहाँ ऐसी सतवन्ती आत्माएँ हैं जो सीता के समान निर्मल हैं और जिनमें सीता की तरह राम (प्रभु) का प्रेम समाया हुआ है। ऐसी निर्मल आत्माओं की शब्दों में महिमा कर सकना असम्भव है। 'जनमु साखी हरि जी' में इस पंक्ति का यह अर्थ किया गया है, 'ऊहाँ सीता ही सीता हैं। तिन की महिमा ऐसी है जि तीन भवनि महि छाहि रही है। तिन कै ऐसे रूप हैं जिन के रूप की छबि बरनी नहीं जाती।'[1]

ना ओहि मरहि न ठागे जाहि ॥ जिन कै रामु वसै मन माहि ॥ जिस तरह सीता को कोई ठग नहीं सका था और वह सदा अपने धर्म पर अटल रही, इसी तरह कर्म खण्ड में पहुँचीं निर्मल आत्माओं को मन, माया और विकार आदि ठग नहीं सकते। उनके अन्दर सदा एक राम (प्रभु) समाया रहता है।

तिथै भगत वसहि के लोअ ॥ करहि अनंदु सचा मनि सोइ ॥ वहाँ भक्तों के अनेक लोक (मण्डल) बसे हुए हैं। वहाँ भक्त आनन्द-मग्न हैं और उनके मन में सदा वह आनन्द-स्वरूप प्रभु समाया रहता है।

सच खंडि वसै निरंकारु ॥ करि करि वेखै नदरि निहाल ॥ सतलोक में उस निरंकार का निवास है। वह सबको पैदा करके अपनी दया-दृष्टि से उन्हें निहाल कर रहा है।

तिथै खंड मंडल वरभंड ॥ जे को कथै त अंत न अंत ॥ वहाँ पहुँचकर अनन्त खण्ड-मण्डल और ब्रह्माण्ड दिखाई देते हैं, जिनका वर्णन कर सकना असम्भव है।

तिथै लोअ लोअ आकार ॥ जिव जिव हुकमु तिवै तिव कार ॥ वहाँ अनेक लोक (मण्डल) बसे हुए हैं और उनमें अनन्त भक्त-आत्माओं का निवास है। वहाँ बस रहे भक्त उस कर्ता-पुरुष के हुक्म के अनुसार कार्य में लगे हुए हैं।

वेखै विगसै करि वीचारु ॥ नानक कथना करड़ा सारु ॥ सतलोक में बैठा वह मालिक अपनी सृष्टि को अपने हुक्म के अनुसार चलता हुआ देखकर प्रसन्न होता है। उस मालिक और उसके देश की महिमा कर सकना लोहे को चबाने के समान असम्भव कार्य है।

गुरु साहिब द्वारा किये गये खण्डों के वर्णन में 35वीं पउड़ी में शुरू हुआ ज्ञान खण्ड का वर्णन 36वीं पउड़ी की पहली दो पंक्तियों तक चलता है। शेष पउड़ी में सरम खण्ड का वर्णन है। इसी तरह 37वीं पउड़ी में कर्म खण्ड और सचखण्ड का इकट्ठा वर्णन किया गया है। इससे पता चलता है कि ये मण्डल आपस में जुड़े हुए हैं। इनके बारे में केवल इतना जान

लेना ही काफ़ी है कि जैसे-जैसे ऊपर की तरफ़ जाते हैं, अधिक चेतन, प्रकाश-रूप, ज्ञान-रूप और आनन्द-रूप सूक्ष्म रूहानी वातावरण में पहुँच जाते हैं, जिससे आत्मा में भी ये गुण प्रवेश करते जाते हैं। अन्त में जीवात्मा शब्द या नाम की कमाई द्वारा रूहानी उन्नति करती हुई अपने निज घर सचखण्ड में पहुँच जाती है। यह सारा सूक्ष्म रूहानी सफ़र जीवात्मा अन्दर तय करती है।

'जपुजी' की पहली पउड़ी में गुरु साहिब ने सचिआर बनने की युक्ति का वर्णन किया था। 37वीं पउड़ी में सचिआर होने के फल या लाभ का वर्णन कर रहे हैं:

'नानक कथना करड़ा सारु'—आप कहते हैं कि सचखण्ड या सत्पुरुष के बारे में कुछ कह सकना लोहे को चबाने के समान है। आपका भाव है कि सचखण्ड और उसके मालिक उस पिता-परमात्मा के बारे में कुछ कह सकना असम्भव है। कबीर साहिब कहते हैं:

कहु कबीर गूंगै गुड़ु खाइआ पूछे ते किआ कहीऐ॥[2]

गुरु नानक साहिब का कथन है:

जिन चाखिआ सेई सादु जाणनि जिउ गुंगे मिठिआई॥
अकथै का किआ कथीऐ भाई चालउ सदा रजाई॥[3]

पाँच खण्ड

गुरु साहिब द्वारा बयान किये गए पाँच खण्डों के बारे में कुछ बातें सामने रखनी ज़रूरी है। पहली बात यह है कि यह मण्डल ख़याल या कल्पना की उपज नहीं, रूहानी वास्तविकता हैं। ये सब मण्डल शरीर के आँखों से ऊपरी भाग में हैं, पर हम शरीर की चीर-फाड़ करके नहीं, आत्मा की आँख खोलकर इनको देख सकते हैं। ये भौतिक या स्थूल नहीं, सूक्ष्म हैं। इनका अनुभव शारीरिक या ऐंद्रिय नहीं, आत्मिक है। गुरु अमरदास जी की वाणी है, 'मेरै करतै इक बणत बणाई॥ इसु देही विचि सभ वथु पाई॥'[4] आप कहते हैं:

काइआ अंदरि सभु किछु वसै खंड मंडल पाताला॥

. . . . . .

इसु काइआ अंदरि नउ खंड प्रिथमी हाट पटण बाजारा॥[5]

सन्त पीपा जी कहते हैं, 'जो ब्रहमंडे सोई पिंडे जो खोजै सो पावै॥ पीपा प्रणवै परम ततु है सतिगुरु होइ लखावै॥'[6] गुरु नानक साहिब का कथन है, 'जो ब्रहमंडि खंडि सो जाणहु॥ गुरमुखि बूझहु सबदि पछाणहु॥'[7] जो कुछ सारे ब्रह्माण्ड में है, वह शरीर में भी है। इसकी पहचान गुरु के शब्द द्वारा होती है।

गुरु अमरदास जी कहते हैं, 'अंदरि महल अनेक हहि जीउ करे वसेरा॥'[8] आन्तरिक रूहानी सफ़र में अनेक मण्डल आते हैं। जब तक जीवात्मा एक मण्डल में रहकर शब्द के अभ्यास द्वारा ऊपर के मण्डल में जाने के योग्य नहीं बनती, तब तक उसे उस मण्डल में विश्राम करना पड़ता है। गुरु नानक साहिब की वाणी है:

देही नगरी ऊतम थाना॥ पंच लोक वसहि परधाना॥
ऊपरि एकंकारु निरालमु सुंन समाधि लगाइआ॥
देही नगरी नउ दरवाजे॥ सिरि सिरि करणैहारै साजे॥
दसवै पुरखु अतीतु निराला आपे अलखु लखाइआ॥[9]

शरीर के आँखों से निचले भाग में स्थित नौ दरवाज़े सांसारिक कार्य व्यवहार के लिए हैं। वह कर्तापुरुष अन्दर दसवें द्वार से परे है। अन्दर अनेक मण्डल हैं, जिनमें पाँच प्रधान या मुख्य हैं। सचखण्ड में कर्तापुरुष का निवास है।

दूसरी बात यह है कि अन्दर के सूक्ष्म जगत् का अलग-अलग महात्माओं ने अपने-अपने ढंग से वर्णन किया है। कुछ सन्तों ने बाईस सुन्नों की ओर इशारा किया है। कुछ ने चौदह भवनों की तरफ़ संकेत किया है। गुरु नानक साहिब कहते हैं, 'चउदसि भवन पाताल समाए॥'[10] गुरु अमरदास जी कहते हैं, 'चउदह भवण तेरे हटनाले॥'[11] गुरु नानक

साहिब ने 37वीं पउड़ी में कर्म खण्ड का वर्णन करते हुए कहा है, 'तिथै भगत वसहि के लोअ॥' कर्म खण्ड में अनेक लोक या देश हैं, जिनमें भक्तों का निवास है। जैसे दिल्ली एक शहर है, पर उसके कितने ही उपनगर हैं, उसी तरह एक-एक मण्डल के अनेक भाग हैं।

अमृतसर से दिल्ली तक के रेलगाड़ी के सफ़र में जालन्धर, लुधियाना, अम्बाला और करनाल को मुख्य स्टेशन मान लें तो पाँचवाँ स्टेशन दिल्ली है। यदि रास्ते में आनेवाले सारे छोटे-छोटे स्टेशन गिने जायें तो गिनती बहुत बढ़ जायेगी। गुरु नानक साहिब, कबीर साहिब और अन्य बहुत-से सन्तों ने पाँच प्रमुख मण्डलों की तरफ़ संकेत किया है। कुछ सन्तों ने इनको सहस्रदलकमल, त्रिकुटी, दसम द्वार, भँवरगुफा और सतलोक कहकर पुकारा है। कुछ सन्तों ने इनके अन्य नाम भी रखे हैं। कुछ सन्तों ने ब्रह्म और पारब्रह्म दो मण्डलों की तरफ़ संकेत किया है।

सूफ़ी दरवेशों ने चौदह तबक़ों की ओर भी संकेत किया है और पाँच आलमों (मण्डलों) की ओर भी। वे पहले मण्डल को तीन भागों में बाँटते हैं—आलमे नासूत, आलमे मलकूत (फ़रिश्तों का देश) और आलमे जबरूत। उससे ऊपर के चार मण्डलों को वे लाहूत, हाहूत, हूतलहूत और हूत कहते हैं। गुरु नानक साहिब ने इनको धर्म खण्ड, ज्ञान खण्ड, सरम खण्ड, कर्म खण्ड और सचखण्ड का नाम दिया है। गुरु साहिब के द्वारा रखे गए पाँच खण्डों के नामों के विद्वानों ने कई तरह से अर्थ किये हैं। इन नामों का असली रहस्य तो गुरु महाराज आप ही जानते हैं, पर मन-बुद्धि के घाट पर बैठे हम लोग मुख्य तौर पर इनके अर्थ इस तरह से समझने का यत्न कर सकते हैं:

धर्म कमाकर सच्चे धर्मी या धर्मात्मा बना सकने वाली धरती धर्मशाला को 'धरम खंड' कहा गया है। इसे इसलिए भी धर्म खण्ड कहा गया है क्योंकि यहाँ धर्मराज किये हुए कर्मों का फल धर्म अर्थात् न्याय या विधि के अनुसार देता है।

'गिआन खंड' बाहरमुखी भौतिक और ऐंद्रिय ज्ञान की बजाय अन्तर्मुखी सूक्ष्म रूहानी ज्ञान का देश है। यहाँ नाम के प्रकाश के आधार

पर आत्मा को तीनों लोकों और तीनों कालों की पहचान हो जाती है। सूक्ष्म आत्मिक ज्ञान के इस देश को ज्ञान खण्ड कहा गया है।

'सरम खंड' को उद्यम, मेहनत, करनी या प्रयत्न का देश कहा गया है। उद्यम तो हम मृत्युलोक में भी करते हैं, पर हमारा उद्यम बाहरमुखी, स्वार्थी और सांसारिक है। ज्ञान खण्ड को पार करके सच्चे आत्म-ज्ञान में स्नान कर चुके गुरुसिख का उद्यम अलग तरह का होता है। गुरु रामदास जी के अनुसार:

> गुर सतिगुर का जो सिखु अखाए सु भलके उठि हरि नामु धिआवै॥
> उदमु करे भलके परभाती इसनानु करे अंम्रित सरि नावै॥
> उपदेसि गुरू हरि हरि जपु जापै सभि किलविख पाप दोख लहि जावै॥
> फिरि चड़ै दिवसु गुरबाणी गावै बहदिआ उठदिआ हरि नामु धिआवै॥
> जो सासि गिरासि धिआए मेरा हरि हरि सो गुरसिखु गुरू मनि भावै॥
> जिस नो दइआलु होवै मेरा सुआमी तिसु गुरसिख गुरू उपदेसु सुणावै॥
> जनु नानकु धूड़ि मंगै तिसु गुरसिख की जो आपि जपै अवरह नामु जपावै॥[12]

ऐसे गुरु के शिष्य के उद्यम की दिशा अन्तर्मुखी होती है। वह लिव अन्दर जोड़कर नाम के सच्चे सरोवर में स्नान करता है जिससे मन-आत्मा पर चढ़ी जन्म-जन्म के पापों की मैल उतर जाती है। उसकी बुद्धि निर्मल हो जाती है, उसका मन निर्मल हो जाता है और उसकी सुरत निर्मल हो जाती है। उसकी वृत्ति परमार्थी और परोपकारी हो जाती है। वह स्वयं नाम जपता है और दूसरों को भी नाम जपने की प्रेरणा देता है। साधक को इस तरह के सच्चे उद्यम में परिपक्व करनेवाले इस देश को 'सरम खण्ड' कहा गया है।

'करम खंड'—कर्म फ़ारसी का शब्द है जिसका अर्थ है बख़्शिश या दया-मेहर। कर्म-खण्ड को शायद इसलिए बख़्शिश का देश नहीं कहा गया है कि इसमें बख़्शिश से पहुँचते हैं या यहाँ ज़्यादा बख़्शिश होती है। विचार किया जाये तो जहाँ कहीं, जो कुछ होता है बख़्शिन्द की बख़्शिश

द्वारा होता है और उसकी बख़्शिश हर जगह, हर समय हो रही है। यह बख़्शिश का देश है क्योंकि यहाँ बख़्शी जा चुकी आत्माओं का निवास है। यहाँ पहुँच चुकी आत्माएँ आवागमन के चक्कर से मुक्त हो जाती हैं। उनको न माया ठग सकती है, न काल मार सकता है और न मन बहका सकता है। वे जीवन-मुक्त हो जाती हैं। ऐसी बख़्शी जा चुकी निर्मल और अमर आत्माओं के देश को 'करम खंड' कहा गया है।

सच खंडि वसै निरंकारु—बहुत-से भारतीय सन्तों ने इस मण्डल को 'सतलोक' कहा है। सूफ़ी दरवेशों ने इसको 'मुक़ामे-हक़' का नाम दिया है। 'हक़' का अर्थ भी सत्य है। इस मण्डल में पहुँचकर आत्मा उस निर्मल सत्य में समाकर उसका रूप हो जाती है, जिसकी प्राप्ति का आदर्श लेकर इसने मृत्युलोक रूपी 'धर्मसाल' से अपना सफ़र शुरू किया था और यह सचिआर बनने के लिए धरती रूपी धर्मशाला से चली थी। सचिआर वह है जिसको सत्य प्राप्त हो चुका है। परमात्मा में समा गयी आत्मा सच्चे अर्थों में सचिआर बन जाती है। जहाँ वह सच्चा रहता है और उसका रूप हो चुके सचिआर रहते हैं, उस मण्डल को 'सच खंड' कहा गया है। ये सब सूक्ष्म रूहानी मण्डल हैं और इनका अनुभव भी सूक्ष्म और आत्मिक है, स्थूल और ऐंद्रिय नहीं। गुरु अंगद साहिब की वाणी है:

> अखी बाझहु वेखणा विणु कंना सुनणा॥
> पैरा बाझहु चलणा विणु हथा करणा॥
> जीभै बाझहु बोलणा इउ जीवत मरणा॥
> नानक हुकमु पछाणि कै तउ खसमै मिलणा॥[13]

हमें उस पति-परमात्मा के दरबार में पहुँचना है, जहाँ बाहरी हाथ-पैर, कान, आँखें और जिह्वा काम नहीं आती। हम हुक्म, शब्द या नाम की पहचान के द्वारा उस तक पहुँच सकते हैं। गुरु अर्जुन साहिब कहते हैं, 'नानक से अखड़ीआं बिअंनि जिनी डिसंदो मा पिरी॥'[14] अर्थात् परमात्मा को आत्मा की सूक्ष्म आँख से देख सकते हैं, बाहरी स्थूल आँखों से नहीं।

गुरु अमरदास जी की वाणी है, 'दिब द्रिसटि जागै भरमु चुकाए॥ गुर परसादि परम पदु पाए॥'[15] अर्थात् आन्तरिक नेत्र खुलने से दिव्य दृष्टि जाग्रत हो जाती है और परम पद में पहुँचकर सत्पुरुष के दर्शन करने का सामर्थ्य प्राप्त हो जाता है। गुरु अमरदास जी का कथन है:

> तिनि करतै इकु खेलु रचाइआ॥ काइआ सरीरै विचि सभु किछु पाइआ॥
> सबदि भेदि कोई महलु पाए महले महलि बुलावणिआ॥[16]

आप फ़रमाते हैं कि उस कर्ता ने सार-पदार्थ शरीर के अन्दर रखा हुआ है। जो कोई शब्द के साथ लिव जोड़ता है, वह महल-दर-महल या मण्डल-दर-मण्डल सचखण्ड रूपी सबसे ऊँचे महल में पहुँच जाता है, जहाँ उस कर्तापुरुष का निवास है।

गुरु साहिब की रूहानी स्व:जीवनी

हम सन्तों-महात्माओं के जीवन के बाहरी हालात बहुत ध्यान से पढ़ते हैं पर उनकी रूहानी यात्रा का हाल ध्यानपूर्वक पढ़ने का प्रयत्न नहीं करते। गुरु नानक साहिब द्वारा 'जपुजी' में वर्णित उपरोक्त रूहानी यात्रा आपकी रूहानी स्व:जीवनी है, जिसमें आपने अपने पूर्ण रूहानी सफ़र और मंज़िल तक पहुँचने का हाल बयान किया है। इस स्व:जीवनी द्वारा गुरु साहिब ने हमें क्या प्रेरणा दी है? हम दुनिया के लोग अनन्त जन्मों से पूर्ण और स्थायी शान्ति की तलाश में बाहर भटक रहे हैं। हम बेटे-बेटियों, ज़मीनों-जायदादों, धन-दौलत, सांसारिक मान-बड़ाई, बड़े-बड़े पदों, राग-रंग की महफ़िलों, फ़िलासफ़ी, विद्या, कला, संगीत, नृत्य, प्रकृति के अद्भुत नज़ारों में सुख ढूँढ़ते हैं। गुरु साहिब हमें अपना ध्यान कुल मालिक द्वारा हमारे अन्दर रखे गये पूर्ण और अविनाशी आनन्द के स्रोत की तरफ़ मोड़ने की प्रेरणा देते हैं। आप बाहरमुखी भौतिक विकास के विरोधी नहीं हैं, पर हमारा ध्यान अन्तर्मुख रूहानी विकास की अद्भुत सँभावनाओं की तरफ़ खींचते हैं। आप प्रेरणा देना चाहते हैं कि हम जितनी मेहनत और भाग-दौड़ भौतिक विकास के लिए करते हैं, अगर उसका दसवाँ भाग भी

परमार्थी विकास के लिए करें तो सहज ही पूर्णता के शिखर पर पहुँच सकते हैं।

बेगम पुरा सहर को नाउ

गुरु नानक साहिब की विचारधारा को गहराई और विशालता से समझने के लिए गुरु रविदास जी के शब्द 'बेगम पुरा सहर को नाउ' पर विचार करते हैं। इस शब्द में आप कहते हैं:

> बेगम पुरा सहर को नाउ॥ दूखु अंदोहु नही तिहि ठाउ॥
> नां तसवीस खिराजु न मालु॥ खउफु न खता न तरसु जवालु॥[17]

आप सचखण्ड को 'बेगम पुरा' कह रहे हैं। आप फ़रमाते हैं कि यह ऐसा विशुद्ध रूहानी मण्डल है जिसमें दुःख और चिन्ता का नामो-निशान भी नहीं है। यहाँ किये हुए कर्मों का न कोई टैक्स या महसूल भरना पड़ता है, न धन-दौलत सँभालने की चिन्ता है, न कोई ग़लती या अपराध हो जाने का डर है और न ही ऊँचे पद या श्रेष्ठ योनि से नीचे गिरने का ख़तरा है।

जिस मृत्युलोक के हम वर्तमान अवस्था में वासी हैं, सन्तों-महात्माओं ने उसे दुःखों का घर कहा है। यहाँ हर इनसान दुःख, क्लेश और चिन्ता का शिकार है। यहाँ रोज़ी-रोटी कमाने की चिन्ता है, सन्तान का पालन-पोषण करने की चिन्ता है तथा रिश्ते और दोस्ती निभाने की चिन्ता है। गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं:

> जिसु ग्रिहि बहुतु तिसै ग्रिहि चिंता॥
> जिसु ग्रिहि थोरी सु फिरै भ्रमंता॥[18]

जिन्हें सांसारिक धन-पदार्थ प्राप्त नहीं, वे उनकी तलाश में भटकते हैं तथा जिन्हें धन-दौलत और जायदादें प्राप्त हैं, उन्हें इनके सँभालने और इनके खो जाने की चिन्ता है। जिनके कोई सन्तान नहीं, वे सन्तान के लिए परेशान हैं और सन्तान वालों को उनकी सन्तान ने दुःखी किया हुआ है।

यहाँ जवानी आती बाद में है और बुढ़ापे में पहले बदल जाती है। सारा संसार बुढ़ापे, बीमारी और मौत की चक्की में पिस रहा है। इसके अलावा यह संसार कर्म-भूमि है। यहाँ इनसान जाने-अनजाने में जो भी कर्म कर बैठता है, उनका फल इसे ख़ुद भुगतना पड़ता है। किये हुए कर्मों के कारण न केवल हमारी आत्मा कुत्ते-बिल्ले, सूअर-भेड़िए, कीड़े-पतंगे और पेड़-पौधों की योनि में जा सकती है, बल्कि इसे नरकों की आग में भी जलना पड़ता है।

यह मृत्युलोक संघर्ष और छीना-झपटी का देश है। पानी में बड़ी मछली, छोटी मछली को खा जाती है, आकाश में बाज़ चिड़ियों को खा जाता है। धरती पर भेड़-बकरियाँ घास-फूस खा जाती हैं, भेड़-बकरियों को शेर, भेड़िए खा जाते हैं और इनसान हर जीव को अपनी ख़ुराक बना लेता है। इस दुनिया में शक्तिशाली, निर्बल को निगल जाते हैं, चालाक लोग भोले-भाले लोगों को ठग लेते हैं और हर कोई अपना महल बनाना चाहता है चाहे इसके लिए उसे लाखों झोंपड़ियाँ गिरानी पड़ जायें। संघर्ष, ख़ुदगर्ज़ी, परिवर्तन, विनाश, कर्म और फल के इस दुःख भरे जगत् में, किसी को भी सच्चा सुख और सच्ची शान्ति नसीब नहीं होती। गुरु नानक साहिब ने 'नानक दुखीआ सभु संसारु'[19] का जो महावाक्य फ़रमाया है, सौ फ़ीसदी सच है।

इस दृश्यमान मृत्युलोक से लेकर त्रिलोकी की चोटी तक परिवर्तन विनाश, कर्म और फल का नियम लागू है। इसके विपरीत सचखण्ड मन-माया और काल की हद से परे है। वहाँ परिवर्तन, बुढ़ापे, संघर्ष और विनाश का दख़ल नहीं है। वहाँ क्रम और प्रतिक्रम या कर्म और फल के नियम के लिए कोई स्थान नहीं। वह पूर्ण प्रेम, पूर्ण क्षमा, पूर्ण दया और सहज आनन्द का निहचल धाम है, जिसमें दुःख, क्लेश और चिन्ता का दख़ल नहीं। गुरु रविदास जी आगे कहते हैं:

> काइमु दाइमु सदा पातिसाही॥ दोम न सेम एक सो आही॥
> आबादानु सदा मसहूर॥ ऊहां गनी बसहि मामूर॥

तिउ तिउ सैल करहि जिउ भावै॥ महरम महल न को अटकावै॥
कहि रविदास खलास चमारा॥ जो हम सहरी सु मीतु हमारा॥[20]

आप अपना निजी अनुभव बयान करते हुए कहते हैं कि मैं सचखण्ड रूपी उस सुन्दर और सुखदायक धाम में पहुँच गया हूँ जहाँ सदैव आनन्द है। न वहाँ राज्य बदलता है और न ही वहाँ लागू कानून बदलते हैं। वहाँ हमेशा एक परमपिता परमात्मा का राज्य चलता है और हमेशा ही प्रेम, दया और आनन्द का प्रवाह जारी रहता है। उस देश में द्वैत के लिए कोई जगह नहीं, सबको समान हक़ और परम सुख के समान अवसर प्राप्त हैं।

मृत्युलोक में क़ौम, मज़हब, मुल्क, जाति-पाँति, अमीर-ग़रीब, अनपढ़-विद्वान्, राजा-प्रजा, गोरे-काले, सुन्दर-कुरूप, औरत-मर्द आदि के अनेक दु:खदायक भेदभाव हैं। सचखण्ड रूपी पूर्ण समानता के देश में इन भेदभावों के लिए कोई जगह नहीं। वहाँ न कोई पहले दर्जे का नागरिक है और न ही कोई दूसरे या तीसरे दर्जे का। वहाँ न कोई धनवान है और न ही कोई निर्धन या कंगाल है। वहाँ सब बराबर हैं और सभी सचखण्ड की विरासत के समान रूप से वारिस और हक़दार हैं। मृत्युलोक में एक मुल्क के लोग बिना इजाज़त दूसरे मुल्क में नहीं जा सकते पर सचखण्ड रूपी अथाह देश में, आत्माओं के एक जगह से दूसरी जगह जाने पर कोई पाबन्दी नहीं। जो कोई एक बार उस महल में दाख़िल हो जाता है, वह इसकी सैर के लिए कहीं भी जा सकता है।

यह मृत्युलोक मैं-मेरी का देश है। यहाँ मेरा मज़हब, मेरा मुल्क, मेरी क़ौम, मेरे पुत्र, मेरी पत्नी, मेरा दोस्त, मेरा राज्य आदि के भाव प्रधान हैं। उस देश में आत्माओं में प्रेम का रिश्ता है। वहाँ सभी अपने हैं, कोई भी पराया नहीं। वहाँ भेदभाव, वैर-विरोध और मेरी-तेरी तथा उनसे पैदा होनेवाले क्लेशों के लिए कोई जगह नहीं। वहाँ सभी प्रेम के अटूट रिश्ते में बँधे हुए हैं।

गुरु नानक साहिब और गुरु रविदास जी इनसान को शारीरिक और मानसिक सीमाएँ पार करके उस विशुद्ध अध्यात्मिक जगत् तक रसाई

करने की प्रेरणा देते हैं, जहाँ पहुँचकर इनसान परिवर्तन, विनाश और द्वैत के हर क़िस्म के दु:खदायक संकटों से मुक्त हो जाता है। उस अवस्था को प्राप्त करके ही मनुष्य सच्चे अर्थों में पूर्ण मनुष्य बनता है। ऐसा मनुष्य हर क़िस्म की निर्बलताओं से मुक्त हो जाता है। वह शरीर और संसार में रहता हुआ भी पूर्ण शक्ति, पूर्ण ज्ञान, पूर्ण प्रेम और पूर्ण आनन्द की मूरत बन जाता है। ऐसा इनसान स्वयं भी पूर्णता प्राप्त कर लेता है और लाखों दूसरे लोगों को भी मंज़िल पर पहुँचने में सहायता देता है। गुरु साहिब ने 'जपुजी' का अन्त इन पंक्तियों से किया है:

जिनी नामु धिआइआ गए मसकति घालि॥
नानक ते मुख उजले केती छुटी नालि॥[21]

गुरु साहिब एक अन्य प्रसंग में कहते हैं:

गुरमुखि कोटि असंख उधारे॥[22]

स्वयं पूर्णता प्राप्त कर चुका पूर्ण पुरुष, दूसरे अनेक लोगों को भी पूर्णता प्राप्त करने में सहायता देता है।

परमात्मा का स्वरूप

सच खंडि वसै निरंकारु॥ करि करि वेखै नदरि निहाल॥ गुरु साहिब इशारा कर रहे हैं कि सचखण्ड में पहुँचकर परमात्मा के प्रत्यक्ष दर्शन होते हैं और सारी कायनात पर उसकी रहमत की वर्षा हो रही दिखाई देती है। आप 27वीं पउड़ी में परमात्मा के दरबार का वर्णन कर आये हैं जहाँ बैठकर वह प्रभु सारी कायनात की सँभाल कर रहा है। ये दोनों वर्णन पढ़कर मन में प्रश्न उठता है कि परमात्मा का स्वरूप कैसा है? गुरु अमरदास जी कहते हैं, 'अदिसटु अगोचरु अलखु निरंजनु सो देखिआ गुरमुखि आखी॥'[23] आप कहते हैं कि मैंने गुरुमुखों की सहायता से प्रभु के साक्षात् दर्शन किये हैं। गुरु अर्जुन देव जी का कथन है, 'भला भला भला तेरा रूप॥ अति सुंदर अपार अनूप॥'[24] आप कहते हैं कि हे प्रभु,

तेरा रूप अपरम्पार, बहुत सुन्दर और मनमोहक है। मन में प्रश्न उठता है कि जब सन्त-महात्मा परमात्मा के दर्शन करते हैं तो उनको प्रभु किस रूप में दिखाई देता है।

सन्तों-महात्माओं ने परमात्मा को अकथ या लाबयान कहा है। इसका यह भाव है कि परमात्मा का अनुभव किया जा सकता है पर उस अनुभव का वर्णन नहीं किया जा सकता। परमात्मा का स्वरूप ज़रूर है पर वह स्वरूप अकथ है। गुरु गोबिन्द सिंह जी का कथन है, 'चक्र चिहन अरु बरन जाति अरु पाति नहिन जिह॥ रूप रंग अरु रेख भेख कोऊ कहि न सकत किह॥'[25] आप संकेत करते हैं कि परमात्मा का न कोई रंग-रूप या चिह्न-चक्र है, न ही कोई जाति-पाँति, रेख-भेख आदि है। सन्तों-महात्माओं ने परमात्मा को अरंग और अरूप कहा है। अरंग का भाव है कि उस परमात्मा का गोरा या काला, लाल या पीला आदि रंगों की सहायता से वर्णन नहीं किया जा सकता। अरूप से भाव है कि उसको लम्बा या छोटा, गोल या चौड़ा आदि के घेरे में नहीं ला सकते इसलिए उसको निराकार कहा गया है।

सन्तों-महात्माओं ने परमात्मा को निरंजन कहा है। अंजन का अर्थ है माया या पदार्थ। निरंजन का अर्थ है माया से रहित। संसार की प्रत्येक वस्तु किसी न किसी पदार्थ की बनी हुई है। परमात्मा ऐसे किसी पदार्थ का बना हुआ नहीं है।

सन्तों ने परमात्मा को सर्वव्यापक पर निर्लिप्त कहा है। गुरु तेग़ बहादुर साहिब की वाणी है:

काहे रे बन खोजन जाई॥
सरब निवासी सदा अलेपा तोही संगि समाई॥
पुहप मधि जिउ बासु बसतु है मुकर माहि जैसे छाई॥
तैसे ही हरि बसे निरंतरि घट ही खोजहु भाई॥[26]

आप इशारा करते हैं कि परमात्मा सर्वव्यापक होते हुए भी निर्लिप्त है। सूर्य की किरणें फूलों पर भी पड़ती हैं और गन्दगी के ढेर पर भी। वे

किरणें न फूलों की सुगन्ध से प्रभावित होती हैं और न ही गन्दगी की दुर्गन्ध से। सूर्य की किरणें सारे संसार पर पड़ रही हैं पर वे निर्लिप्त हैं। फूल की सुगन्ध अनुभव कर सकते हैं पर उसका कोई रूप या आकार नहीं होता। शीशे में पड़ रही परछाईं को देख सकते हैं पर पकड़ नहीं सकते। हम कमरे में पड़ रहे प्रकाश को देखते हैं पर उस प्रकाश का स्वरूप बयान नहीं कर सकते। इसी तरह परमात्मा घट-घट में और रचना के कण-कण में व्याप्त होने पर भी निर्लिप्त है। वह अन्दर-बाहर, ऊपर-नीचे हर जगह है पर किसी भी जगह से बँधा हुआ नहीं है।

उपरोक्त वर्णन के बावजूद परमात्मा के स्वरूप के बारे में प्रश्न क़ायम रहता है। इस प्रश्न का उत्तर जानने के लिए सन्तों-महात्माओं द्वारा परमात्मा के स्वरूप का वर्णन करने के लिए प्रयोग किये गये कुछ अन्य संकेत सामने रखते हैं। गुरु नानक साहिब कहते हैं:

पसरी किरणि जोति उजिआला॥ करि करि देखै आपि दइआला॥
अनहद रुण झुणकारु सदा धुनि निरभउ कै घरि वाइदा॥[27]

आप संकेत करते हैं कि उस परमात्मा से अथाह प्रकाश निकल रहा है और शब्द की ध्वनि निकल रही है। गुरु अर्जुन देव जी का कथन है:

सहज गुफा महि आसणु बाधिआ॥
जोति सरूप अनाहदु वाजिआ॥[28]

आप कहते हैं कि परमात्मा सहज गुफा में विराजमान है। वह ज्योति-स्वरूप है और उसमें से अनहद शब्द की ध्वनि निकल रही है। कबीर साहिब कहते हैं:

अगम द्रुगम गड़ि रचिओ बास॥ जा महि जोति करे परगास॥
बिजुली चमकै होइ अनंदु॥ जिह पउढ़े प्रभ बाल गोबिंद॥
. . . . . .
अनहद सबद होत झुनकार॥ जिह पउढ़े प्रभ स्री गोपाल॥[29]

आप संकेत करते हैं कि परमात्मा एक अलख, अगम किले के अन्दर विराजमान है। वहाँ उसकी ज्योति भरपूर है और शब्द की ध्वनि गूँज रही है। सन्त नामदेव जी की वाणी है:

जह झिलि मिलि कारु दिसंता॥ तह अनहद सबद बजंता॥
जोती जोति समानी॥ मै गुर परसादी जानी॥
रतन कमल कोठरी॥ चमकार बीजुल तही॥
नेरै नाही दूरि॥ निज आतमै रहिआ भरपूरि॥[30]

आप कहते हैं कि परमात्मा का निवास-स्थान हीरों की तरह चमक रहे कमलों से भरा हुआ है। जब मैं वहाँ पहुँचा तो मुझे अनहद शब्द सुनाई दिया और मेरी ज्योति उस परम ज्योति में समा गयी।

स्वामी शिवदयाल सिंह जी लिखते हैं:

अब सत्पुरुष के स्वरूप का वर्णन करता हूँ कि एक-एक रोम उसका इस क़दर मुनव्वर[क] है कि करोड़ों सूरज और चाँद शरमिन्दा हैं। जब कि एक रोम की ऐसी सिफ़त है तो तमाम रोमों की क्या सिफ़त लिखने में आवे और जिस्म की तारीफ़ की कहाँ गुंजाइश,... महज़[ख] नूर ही नूर है, नूर का समुद्र कहूँ तो नहीं बनता। ...दराज़ी[ग] और वुसअत[घ] सत्तलोक की किस क़दर बड़ी हुई कि क़यास[ङ] काम नहीं कर सकता और रूहें पाक[च] कि जिनको हंस कहते हैं वहाँ बसती हैं और सत्पुरुष का दर्शन करती हैं और नवाय[छ] बीना जा-ब-जा सुन रही हैं व गिज़ाय[ज] अमी[झ] हमेशा खाती रहती हैं।[31]

इस वर्णन में भी सत्पुरुष को नूर का अथाह सागर कहा गया है और सतलोक को अगम-असगाह कहकर बयान किया गया है। वहाँ शब्द की

क. **मुनव्वर**=प्रकाशवान। ख. **महज़**=सिर्फ़। ग. **दराज़ी**=लम्बाई। घ. **वुसअत**=चौड़ाई। ङ. **क़यास**=कल्पना। च. **पाक**=निर्मल। छ. **नवाय**=ध्वनि, आवाज़। ज. **गिज़ाय**=भोजन। झ. **अमी**=अमृत।

वीणा जैसी आवाज़ हमेशा हो रही है। यह प्रकाश और ध्वनि ही निर्मल आत्माओं का भोजन है।

गुरु नानक साहिब, गुरु अर्जुन साहिब, कबीर साहिब, सन्त नामदेव जी और स्वामी शिवदयाल सिंह जी परमात्मा के प्रत्यक्ष दर्शन करके अपना अनुभव बयान कर रहे हैं। इसलिए इन पूर्ण पुरुषों के परमात्मा के स्वरूप के बारे में किये गये वर्णन में पूर्ण समानता है। इन पूर्ण पुरुषों के वर्णन से दिशा लेकर एक उदाहरण सामने रखते हैं। हम आसमान में सूर्य देखते हैं। सूर्य से प्रकाश निकल रहा है। सूर्य गोलाकार है। आओ, क्षण-भर के लिए ऐसे सूर्य की कल्पना करें, जिसका आदि, मध्य और अन्त न हो। हमें उस सूर्य का प्रकाश तो दिखाई देता हो पर यह पता न लगे कि उसका उरला और परला, नीचे वाला और ऊपर वाला, दायाँ और बायाँ किनारा कौन-सा है। परमात्मा सूक्ष्म प्रकाश का ऐसा सूर्य या सागर है, जिसका न आदि है न अन्त। उस सूर्य या सागर से शब्द की ध्वनि निकल रही है पर यह कह सकना सम्भव नहीं कि प्रकाश में से ध्वनि क्यों और कैसे निकल रही है। उस प्रकाश और ध्वनि का अनुभव किया जा सकता है पर स्वरूप बयान नहीं किया जा सकता।

परमात्मा सूक्ष्म प्रकाश का वह अथाह, असगाह स्रोत है जिसमें से निकल रहा प्रकाश और नाद ही सम्पूर्ण कायनात का कर्ता, प्रतिपालक और आधार है। वह नादमय प्रकाश या प्रकाशमय नाद ही सम्पूर्ण सृष्टि का रचयिता या विधाता है। ऊपर पढ़ आये हैं, 'सच खंडि वसै निरंकारु॥ करि करि वेखै नदरि निहाल॥' परमात्मा सचखण्ड में विराजमान है पर उसमें से निकल रहा प्रकाशमय नाद या नादमय प्रकाश कुल कायनात के ज़र्रे-ज़र्रे, कण-कण पर पड़ रहा है। वह नादमय प्रकाश या प्रकाशमय नाद अचेत नहीं, सुचेत या चेतन है। वह ज्ञान-रूप और इच्छा-रूप है। वह परमात्मा की करतारी शक्ति है और वह परमात्मा की दया और प्रेम का रूप है। उसमें शक्तिशाली आकर्षण है। उसने कुल कायनात को अपनी ओर आकर्षित किया हुआ है और वह सारी सृष्टि का संचालन कर रहा है।

वैज्ञानिक एक शक्ति द्वारा सृष्टि की रचना किया जाना स्वीकार करते हैं पर वे इस शक्ति को चेतन, ज्ञान-रूप और इच्छा-रूप नहीं मानते क्योंकि विज्ञान के पास उस शक्ति के अनुभव का सामर्थ्य नहीं है। वैज्ञानिक, सन्तों द्वारा परमात्मा के स्वरूप के बारे में दिये गये उपरोक्त संकेत भली-भाँति समझ लें तो सृष्टि के रचयिता, रचना की विधि, रचना के संचालन-विधान आदि के बारे में विज्ञान के सामने खड़ी अनेक समस्याएँ हल हो सकती हैं और हमारे लिए भी परमात्मा की हस्ती को बेहतर ढंग से समझना सम्भव हो सकता है।

पउड़ी 38

जतु पाहारा धीरजु सुनिआरु ॥ अहरणि मति वेदु हथीआरु ॥
भउ खला अगनि तप ताउ ॥ भांडा भाउ अंम्रितु तितु ढालि ॥
घड़ीऐ सबदु सची टकसाल ॥ जिन कउ नदरि करमु तिन कार ॥
नानक नदरी नदरि निहाल ॥

शब्दार्थ: जतु=इन्द्रियों को वश में कर लेना। पाहारा=दुकान। अहरणि=जिस पर रखकर सुनार गहने पर चोट करता है। हथीआरु=हथौड़ा, औज़ार। खला=धौंकनी। तप ताउ=तपाना। भांडा=कुठाली; भाउ=प्रेम। नदरि=दया-दृष्टि।

सरलार्थ: गुरु साहिब 'जपुजी' की अन्तिम पउड़ी में सुनार के गहने घड़ने की विधि के दृष्टान्त द्वारा अपनी सम्पूर्ण विचारधारा का इस तरह से वर्णन करते हैं:

जत (ऐंद्रिय संयम) की दुकान होनी चाहिए। धीरज और दृढ़ता का सुनार होना चाहिए। अचल और अडोल मति की अहरन, ज्ञान (वेद) का हथौड़ा, भय की धौंकनी, तप की अग्नि, प्रेम या लगन की कुठाली होनी चाहिए और उसमें नाम रूपी अमृत ढालना चाहिए। शब्द आत्मा की

घाड़त घड़ने वाली सच्ची टकसाल है। जिन पर उस प्रभु की दया-दृष्टि होती है, वही इस कार्य में लगकर सफलता प्राप्त करते हैं। वह दयालु प्रभु अपनी दया-दृष्टि से सबको निहाल करता है और कर रहा है।

व्याख्या

इस पउड़ी का 'जपुजी' में ही नहीं, गुरु-घर की सम्पूर्ण वाणी में अपना विशेष स्थान है। इस पउड़ी में गुरु साहिब द्वारा 'जपुजी' में परमात्मा की प्राप्ति के लिए बयान की गयी नैतिक रहनी और रूहानी साधना का ही नहीं, बल्कि गुरु साहिब की सम्पूर्ण आध्यात्मिक विचारधारा का सार समाया हुआ है।

गुरु साहिब ने अपनी और बहुत-सी वाणी की तरह इस पउड़ी को भी सूत्रक शैली में लिखा है। ऋषि-मुनि सूत्र रचते थे, जिनमें उनके गहरे अनुभवों का सार समाया होता था। उन सूत्रों को ऐसे फ़ार्मूले कह सकते हैं, जिनका भाव समझने के लिए लम्बी व्याख्या की ज़रूरत होती है।

'जपुजी' की 28 से 31 तक की चार पउड़ियाँ योगियों को सम्बोधित हैं। इनमें सारी बात सूत्रों के रूप में की गयी है। 28वीं पउड़ी में मुंदा संतोखु, सरमु पतु झोली, धिआन की करहि बिभूति, खिंथा कालु, कुआरी काइआ, जुगति डंडा परतीति—सब छोटे-छोटे सूत्र हैं। आप कई सूत्र जोड़कर एक सूत्र बना देते हैं। वाणी के एक अन्य प्रसंग में जनेऊ की रस्म अदा करने के इच्छुक पण्डित से कहते हैं:

दइआ कपाह संतोखु सूतु जतु गंढी सतु वटु ॥
एहु जनेऊ जीअ का हई त पाडे घतु ॥[1]

श्री आदि ग्रन्थ में 'सहसक्रिति सलोक' शीर्षक के अन्तर्गत दर्ज गुरु अर्जुन साहिब की वाणी इस तरह के सूत्रों का बहुत सुन्दर उदाहरण है। 'जपुजी' की 38वीं पउड़ी भी इसी शैली में रची गयी है। इस पउड़ी में रचे गये सूत्रों के प्रमुख अंग हैं—जतु पाहारा; धीरजु सुनिआरु; अहरणि

मति; वेदु हथीआरु; भउ खला; अगनि तप ताउ; भांडा भाउ; अंम्रितु तितु ढालि; घड़ीऐ सबदु सची टकसाल; जिन कउ नदरि करमु तिन कार; नानक नदरी नदरि निहाल।

गुरु नानक साहिब सुनार के गहने बनाने की विधि के उदाहरण द्वारा आत्मा की घाड़त घड़ने की पूर्ण साधना पर प्रकाश डालते हैं। सुनार अपनी दुकान में सोने के गहने बनाता है। वह सोने को कुठाली में डाल कर भट्ठी में तपाता है। वह धौंकनी से आग को तेज़ करता है, पिघले हुए सोने को साँचे में डालता है और अहरन पर रखकर हथौड़े से इस पर चोट करके इसे गहने का रूप देता है।

जतु पाहारा—'जतु' का शाब्दिक अर्थ इन्द्रियों को वश में करना है। 'पाहारा' का अर्थ सुनार की दुकान है। गुरु साहिब के समय योगमत, बौद्धमत और जैनमत में मुक्ति अथवा निर्वाण प्राप्ति के लिए घर-गृहस्थी का त्याग करके वैरागी, त्यागी, भिक्षु या संन्यासी बनने पर ज़ोर दिया जाता था। इन सब सम्प्रदायों में काम और स्त्री को परमार्थ के मार्ग की सबसे बड़ी रुकावट माना जाता था और ब्रह्मचर्य के पालन पर ज़ोर दिया जाता था। इसके विपरीत निर्गुणधारा के सन्तों ने वासना या कामना से मुक्त होने को सच्चा ब्रह्मचर्य माना है। कबीर साहिब कहते हैं:

काम काम सब कोइ कहै, काम न चीन्है कोय।
जेती मन की कल्पना, काम कहावै सोय॥[2]

कामना ही काम है। गुरु साहिब 'जतु पाहारा' द्वारा उपदेश देते हैं कि जत या ब्रह्मचर्य का सम्बन्ध घर-गृहस्थी के त्याग से नहीं, वासना या कामना के त्याग से है। 'नारी' अथवा 'काम' बाहर नहीं है, हमारे मन के अन्दर हैं। जब तक मन में कामना या वासना की जड़ है, घर-बाहर के त्याग के बावजूद जीव भोगी है। जिसने मन को कामना या वासना से मुक्त कर लिया है चाहे वह बड़ा गृहस्थ ही क्यों न हो, वही सच्चा जती, ब्रह्मचारी, त्यागी या संन्यासी है। कबीर साहिब सावधान करते हैं:

ग्रिहु तजि बन खंड जाईऐ चुनि खाईऐ कंदा॥
अजहु बिकार न छोडई पापी मनु मंदा॥[3]

गुरु अर्जुन साहिब कहते हैं:

पूंअर ताप गेरी के बसत्रा॥ अपदा का मारिआ ग्रिह ते नसता॥
देसु छोडि परदेसहि धाइआ॥ पंच चंडाल नाले लै आइआ॥[4]

योगी ने घर त्याग दिया, वस्त्रों का रंग बदल लिया, कानों में छेद करवा लिए, पर अन्दर बैठे पाँच चांडालों से न बच सका। गुरु नानक साहिब ने इशारा किया है:

जैसे जल महि कमलु निरालमु मुरगाई नै साणे॥
सुरति सबदि भव सागरु तरीऐ नानक नामु वखाणे॥[5]

कमल का फूल पानी और कीचड़ में रहता हुआ भी इनके प्रभाव से मुक्त रहता है। मुर्ग़ाबी पानी में रहती है, पर इसके पंख सूखे रहते हैं। इस तरह शब्द या नाम में लीन रहनेवाला साधक घर-गृहस्थ की ज़िम्मेदारियाँ निभाता हुआ सच्चे वैरागी, त्यागी या संन्यासी की तरह सहज ही भवसागर से पार हो जाता है। गुरु अर्जुन देव जी का कथन है:

नानक सतिगुरि भेटीऐ पूरी होवै जुगति॥
हसंदिआ खेलंदिआ पैनंदिआ खावंदिआ विचे होवै मुकति॥[6]

आप विश्वास दिलाते हैं कि पूर्ण गुरुमुखों के बताये हुए उपदेश पर चलने से घर-गृहस्थी की सभी ज़िम्मेदारियाँ पूरी करते हुए भी मुक्ति प्राप्त की जा सकती है।

गुरु अमरदास जी की वाणी है, 'नामि रते परम हंस बैरागी निज घरि ताड़ी लाई हे॥'[7] जिन्होंने नाम से लिव जोड़ी हुई है और जिनका ध्यान सदा कुल मालिक की तरफ़ है, वही सच्चे वैरागी, त्यागी, संन्यासी या ब्रह्मचारी हैं।

'पुरातन टीका' में 'जतु' के यह अर्थ किये गए हैं:

''गृहस्थ का जत यह है कि पर-स्त्री की तरफ़ ध्यान न दे और साधु का यह जत है कि स्त्री या पुरुष किसी को भी काम-भाव से न देखे।''[8]

गुरु गोबिन्द सिंह जी कहते हैं कि मेरे पिता गुरु तेग़ बहादुर साहिब ने यह उपदेश दिया है:

निज नारी के साथ नेह तुम नित्ति बढैयहु।
पर नारी की सेज भूलि सपनेहूँ न जैयहु।[9]

आप साधारण गृहस्थ की तरह जीवन व्यतीत करते हुए पर-नारी और पर-पुरुष से परहेज़ करने का उपदेश देते हैं।

ऊपर भी कह आये हैं कि 'पाहारा' का अर्थ सुनार की दुकान है। गुरु साहिब यह भावपूर्ण संकेत देना चाहते हैं कि इन्द्रियों का संयम परमार्थ की शुरुआत है। कहावत है: पहले साल चट्टी, दूसरे साल हट्टी, तीसरे साल खट्टी। गुरु साहिब उपदेश कर रहे हैं कि जब तक मन का बहाव इन्द्रियों के भोगों और विषय-विकारों की तरफ़ है ऐसा समझना चाहिए कि अभी परमार्थ की दुकान ही शुरू नहीं हुई, लाभ की तो बात ही दूर रही। सन्त शिवदयाल सिंह जी की वाणी है:

मन इन्द्री कुछ बस कर राखो। पीओ घूंट गुरु जाम से॥[10]

आप कहते हैं कि गुरु के प्याले से नाम रूपी अमृत पीना चाहते हो तो मन और इन्द्रियों को विषय-विकारों की ओर जाने से रोको।

'जतु' यानी इन्द्रियों के संयम द्वारा गुरु साहिब यह उपदेश दे रहे हैं कि मन-इन्द्रियों के दास बनकर न रहो, इन्हें अपना दास बनाकर रखो। घोड़ा, घुड़सवार के लिए होता है, घुड़सवार घोड़े के लिए नहीं होता। हथियार कारीगर के लिए होते हैं, कारीगर हथियारों के लिए नहीं होता। सन्त चरनदास जी कहते हैं:

इन्द्रिन के बस मन रहै, मन के बस रहै बुद्ध।
कहो ध्यान कैसे लगै, ऐसा जहाँ विरुद्ध॥[11]

आप कहते हैं कि जब तक आत्मा, मन और इन्द्रियों के वश में है, नाम के साथ लिव जोड़ सकना असम्भव है। रूहानी अभ्यास द्वारा इस सारे सिलसिले को उलटने की ज़रूरत है। जब आत्मा बलवान होती है तो यह बुद्धि को वश में कर लेती है; बुद्धि मन को वश में कर लेती है; मन इन्द्रियों को वश में कर लेता है और इन्द्रियाँ भोगों को वश में कर लेती हैं। इस अवस्था में पहुँचकर ही व्यक्ति सच्चे अर्थों में इनसान बनता है। जब तक आत्मा मन-इन्द्रियों के वश में है, इनसान वास्तव में हैवानों के स्तर पर जी रहा है।

साधक को शुरू में मन को समझा-बुझाकर इन्द्रियों के भोगों और विषय-विकारों की ओर जाने से रोकना पड़ता है, पर जैसे-जैसे सुरत जाग्रत होती है, मन और इन्द्रियों की पकड़ अपने आप ढीली पड़ती जाती है। जब आत्मा नाम में समाकर नाम का रूप हो जाती है तो मन और इन्द्रियाँ सदा के लिए वश में आ जाती हैं और अन्दर ऐसा निर्मल संयम, सन्तोष और विवेक जाग्रत हो जाता है कि मन और इन्द्रियाँ कभी सपने में भी आत्मा को कुमार्ग पर नहीं ले जा सकतीं। गुरु अमरदास जी की वाणी है:

अनेक जतन करे इंद्री वसि न होई॥ कामि करोधि जलै सभु कोई॥
सतिगुर सेवे मनु वसि आवै मन मारे मनहि समाइदा॥[12]

आप समझाते हैं कि अपने यत्न से मन और इन्द्रियों को वश में कर सकना असम्भव है। ये जब भी वश में आती हैं केवल सतगुरु के उपदेश के अनुसार सुरत को अन्दर नाम में लीन करने से आती हैं।

धीरजु सुनिआरु— गुरु साहिब उपदेश देते हैं 'धीरजु' का सुनार होना चाहिए अर्थात् रूहानी तरक़्क़ी के लिए धैर्य की ज़रूरत है। अंग्रेज़ी की कहावत है 'रोम शहर रातो-रात ही नहीं बन गया था।'* रूहानी तरक़्क़ी झट मँगनी और पट शादी वाला कार्य नहीं। जितनी बड़ी प्राप्ति का लक्ष्य लेकर चलते हैं, उतने अधिक लम्बे और धैर्यपूर्ण यत्न की ज़रूरत होती है। साधक का लक्ष्य युगों-युगों से परमात्मा से बिछुड़ी आत्मा को वापस परमात्मा में लीन करना है। यह संसार का सबसे बड़ा

* Rome was not built in a day.

और सबसे मुश्किल कार्य है। क़ुदरती तौर पर इस कार्य के लिए बहुत अधिक धैर्य की ज़रूरत है। जो व्यक्ति सफलता के लिए उतावला हो जाता है, वह शीघ्र ही हिम्मत हार जाता है।

जिस व्यक्ति ने सिर पर भारी बोझ उठा रखा हो, वह तेज़ नहीं दौड़ सकता। इसी तरह जीवात्मा के सिर पर अनन्त जन्मों के अनगिनत कर्मों का भारी बोझ होता है, जिस कारण उसकी तरक़्क़ी की रफ़्तार बहुत धीमी होती है। इसलिए उसे धैर्य की ज़रूरत है। शुरू में तो और भी अधिक धैर्य की आवश्यकता होती है क्योंकि साधक मन को सांसारिक भोगों की ओर जाने से रोकता है पर उसे अन्दर से रूहानी अमृत का रस नहीं मिलता। उस वक़्त साधक की हालत शून्य में लटक रहे व्यक्ति जैसी होती है— जिन भोगों में से उसे पहले रस मिलता था, उनकी तरफ़ वह जाना नहीं चाहता और जिस अन्तर्मुख रस की उसे तलाश है, वह उसे मिलता नहीं। संघर्ष की इस अवस्था में सबसे ज़्यादा ज़रूरत धैर्य की होती है।

साईं बुल्लेशाह की एक काफ़ी है, 'चीणा ईं छड़ींदा यार।' जिस तरह गुरु साहिब ने सुनार की दुकान के दृष्टान्त द्वारा रूहानी अभ्यास में सफलता की युक्ति समझाने का यत्न किया है, उसी तरह साईं बुल्लेशाह ने रूहानी अभ्यास को ओखली में चीना छड़ाने के दृष्टान्त द्वारा समझाने का यत्न किया है। साईं जी कहते हैं:

पहले उखली साफ़ कराईं, रोड़ा, मिट्टी, धूड़ हटाईं।
फिर उखली विच चीणा पाईं, छज्ज सबर दा रखीं तैयार।
चीणा ईं छड़ींदा यार।[13]

गन्दे मन की ओखली में भक्ति का चीना नहीं छाँटा जा सकता। सबसे पहले मन की ओखली को काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, आशा-तृष्णा, ईर्ष्या आदि विकारों के कंकर-पत्थरों से साफ़ करने की ज़रूरत है। जब ओखली साफ़ हो जाये तो उसमें चीना छड़ कर उसे साफ़ करने के लिए धैर्य का छाज चाहिए। आपका भी यही भाव है कि इस कार्य में धैर्य, मेहनत और दृढ़ता की ज़रूरत है।

अभ्यास में कई उतार-चढ़ाव आते हैं। कई बार मन भजन में बिल्कुल नहीं लगता। इसमें पूर्व कर्मों, वर्तमान यत्न, वातावरण और मनोवृत्ति आदि कई बातों का प्रभाव होता है। भाई गुरदास जी लिखते हैं, 'सिल आलूणी चटणी।'[14] अर्थात् शुरू में भजन पत्थर चाटने की तरह रूखा, बेस्वाद या नीरस होता है, पर जब धैर्य और दृढ़ता से प्रतिदिन भजन करते हैं तो धीरे-धीरे इसमें रस आने लगता है। एक महात्मा ने लिखा है कि जल्दी शैतान का काम है। आम कहावत है: Easy got, easy spent. अर्थात् जो बिना यत्न के जल्दी मिल जाता है, वह शीघ्र ही ख़र्च भी हो जाता है, क्योंकि उसकी क़द्र नहीं होती। जो धीरे-धीरे और बड़े प्रयत्न से मिलता है, उसकी क़द्र होती है और वह स्थायी भी होता है। महात्मा समझाते हैं कि भजन-सुमिरन में उन्नति के लिए जल्दबाज़ी मन या शैतान का काम है जब कि धैर्य और दृढ़ता दैवी गुण है।

जिस मन में नाम का अमृत डालना होता है, उसकी तैयारी में समय लगना स्वाभाविक है। इसलिए फल की प्राप्ति को कर्ता की रज़ा या मौज के अधीन करके धैर्य से मार्ग पर चलते रहना चाहिए। कुल मालिक बेहतर जानता है कि हमें किस समय क्या देना है। कबीर साहिब समझाते हैं:

धीरे धीरे रे मना, धीरे सब कछु होय।
माली सींचै सौ घड़ा, ऋतु आये फल होय।[15]

जब तक सीढ़ी का एक भी डण्डा बाकी है, छत पर नहीं पहुँचा जा सकता। रस्सी एक फ़ुट भी छोटी हो तो बरतन कुएँ के पानी तक नहीं पहुँच सकता। इसी तरह जब तक अभ्यास में पूर्णता प्राप्त नहीं होती, मंज़िल पर नहीं पहुँच सकते। मंज़िल जितनी दूर होती है और सफ़र जितना ज़्यादा मुश्किल होता है, उसे तय करने में उतना अधिक समय लगता है पर यदि लगातार चलते रहें तो छोटे-छोटे क़दमों से भी लम्बे से लम्बा सफ़र तय कर लेते हैं।

अहरणि मति वेदु हथीआरु॥ सुनार का काम बहुत बारीकी का है। उसकी युक्ति भी पूर्ण होनी चाहिए और अहरन भी अडोल होना चाहिए।

इसी तरह साधक की युक्ति भी पूर्ण होनी चाहिए और उसका ज्ञान भी पूरी तरह निर्मल, अचल और अडोल होना चाहिए। परमार्थ में उन्नति के लिए मनमत या दुर्मति को छोड़कर गुरुमत धारण करना और जीवन को विवेकपूर्ण ढंग से ढालना ज़रूरी है। गुरु नानक साहिब का कथन है:

ऊंधो कवलु सगल संसारै॥ दुरमति अगनि जगत परजारै॥
सो उबरै गुर सबदु बीचारै॥[16]

सारा संसार दुर्मति या मनमत की अग्नि में जल रहा है। सारे संसार के जीवों का हृदय-कमल उलटा पड़ा है। लोगों के मन-आत्मा का झुकाव अन्दर और ऊपर की बजाय बाहर और नीचे की तरफ़ है। केवल गुरुमत धारण करनेवाले भाग्यशाली जीव ही संसार रूपी अग्नि-सागर को तैर कर पार जा सकते हैं।

गुरु साहिब 28वीं पउड़ी में 'जुगति डंडा परतीति' का इशारा कर आये हैं। युक्ति यत्न से बड़ी होती है। मेहनत, मज़दूर ज़्यादा करता है लेकिन मज़दूरी राज मिस्तरी को ज़्यादा मिलती है क्योंकि उसके पास युक्ति है। कबीर साहिब का कथन है:

तन थिर मन थिर बचन थिर, सुरत निरत थिर होय।
कहि कबीर इस पलक को, कलप न पावै कोय॥[17]

आप उपदेश देते हैं कि तन, मन और वचन को, आत्मा की शब्द-धुन को सुनने की शक्ति सुरत और शब्द के प्रकाश को देखने की शक्ति निरत को स्थिर करके किये गए पल-भर के अभ्यास द्वारा जितना लाभ होता है, उतना हिलते-जुलते शरीर, चंचल मन और फैले हुए ध्यान द्वारा किये गए लाखों वर्ष के अभ्यास से भी नहीं होता।

एक साधक मनमर्ज़ी से अभ्यास करता है। वह पाँच घण्टे रोज़ अभ्यास करता है पर वह बार-बार आसन बदलता है, अभ्यास के समय उसका मन बाहर भटकता रहता है या वह अभ्यास के समय सोया रहता है। इसके विपरीत दूसरा साधक सतगुरु द्वारा बताई युक्ति के अनुसार रोज़

अढ़ाई घण्टे अभ्यास करता है। वह अडोल आसन में बैठता है। वह बाहर भटकते मन को घेरकर अन्दर लाता है और ध्यान को आँखों के ऊपर और मध्य स्थिर करके सावधानी से अभ्यास करता है। स्वाभाविक ही असल प्राप्ति उसी को होगी। गुरु साहिब ठीक युक्ति के अनुसार और सावधानीपूर्वक किये गये अभ्यास का महत्त्व समझा रहे हैं।

वेदु हथीआरु—गुरु साहिब 'जपुजी' की पाँचवीं पउड़ी में संकेत कर आये हैं—'गुरमुखि नादं गुरमुखि वेदं॥' अर्थात् सच्चे नाम या शब्द का भेद भी गुरुमुखों से मिलता है और सच्चे ज्ञान की प्राप्ति भी गुरुमुखों से होती है। भाई गुरदास की वाणी है:

बेद गिरंथ गुर हटि है जिसु लगि भवजल पारि उतारा॥
सतिगुर बाझु न बुझीऐ जिचरु धरे न प्रभु अवतारा॥[18]

संसार में क़दम-क़दम पर मोह और माया के जाल बिछे हुए हैं। बाबा फ़रीद सावधान करते हैं, 'सरवर पंखी हेकड़ो फाहीवाल पचास॥'[19] जीव निर्बल और अकेला है। उसको भरमाने, भटकाने और ग़लत रास्ते पर डालने वाली शक्तियाँ अनेक हैं। जीवन में क़दम-क़दम पर ऐसे मौक़े आते हैं जब सामयिक लाभ, झूठी चमक-दमक और क्षणभंगुर भोगों की लालसा, सच्ची, स्थायी और स्थिर प्राप्ति की इच्छा पर हावी हो जाती है। ऐसे मौक़ों पर निश्चल बुद्धि और निर्मल ज्ञान जीव की रक्षा करते हैं। इसलिए गुरु साहिब जीव को हर क़दम गुरुमत द्वारा प्राप्त निर्मल बुद्धि और पूर्ण विवेक के आधार पर उठाने की प्रेरणा देते हैं और अपना जीवन गुरुमत रूपी सच्ची युक्ति के अनुसार ढालने की ताक़ीद करते हैं।

भउ खला—'खला' का अर्थ है धौंकनी। धौंकनी आग की तपिश बढ़ाती है और आग को बुझने नहीं देती। 'भउ' यानी भय का अर्थ है डर।

मरीज़, डाक्टर द्वारा बताये गये परहेज़ का उल्लंघन करने से डरता है। बीमारी दवा से दूर होती है पर बिना परहेज़ के दवाई असर नहीं करती। रूहानी तरक़्क़ी भजन-सुमिरन द्वारा होती है पर गुरु द्वारा बताये गये परहेज़ के पालन के बिना भजन-सुमिरन का लाभ नहीं होता। कबीर साहिब का कथन है:

कबीर मन तो एक है, भावै तहाँ लगाय।
भावै गुरु की भक्ति कर, भावे विषय कमाय॥[20]

विकारों में प्रवृत्त रहना और भजन में तरक़्क़ी की आशा रखना, दिन और रात को इकट्ठा करने की कोशिश करना है।

भय या डर के दो रूप हैं। एक डर सज़ा का होता है और दूसरा प्रियतम के नाराज़ हो जाने का। गुरु नानक साहिब अपनी वाणी के एक अन्य प्रसंग में फ़रमाते हैं:

भउ मुचु भारा वडा तोलु॥ मन मति हउली बोले बोलु॥
सिरि धरि चलीऐ सहीऐ भारु॥ नदरी करमी गुर बीचारु॥
भै बिनु कोइ न लंघसि पारि॥ भै भउ राखिआ भाइ सवारि॥
भै तनि अगनि भखै भै नालि॥ भै भउ घड़ीऐ सबदि सवारि॥
भै बिनु घाड़त कचु निकच॥ अंधा सचा अंधी सट॥[21]

आप रूहानी उन्नति में 'भउ' का महत्त्व दर्शाते हुए इशारा करते हैं— 1. 'भै बिनु कोइ न लंघसि पारि॥'— परमात्मा का डर जीव को सही मार्ग पर रखने में बहुत सहायता करता है। 2. 'भै भउ घड़ीऐ सबदि सवारि॥'— डर और प्रेम, शब्द द्वारा आत्मा की घाड़त घड़ने में भारी सहायता करते हैं। 3. 'भै बिनु घाड़त कचु निकच॥'—भय के बिना सच्ची घाड़त नहीं घड़ी जा सकती। 4. 'अंधा सचा अंधी सट॥'—भय-रहित साधन कच्चा है और भय-रहित यत्न जीव को मंज़िल पर नहीं पहुँचा सकता। बच्चा पिता की आज्ञा से बाहर जाने से डरता है। वह इसलिए नहीं डरता कि उसका पिता निर्दयी है या पिता उसे सज़ा देगा। वह इसलिए डरता है क्योंकि उसके मन में पिता के लिए प्यार और सत्कार है। जिसके हृदय में प्रभु का जितना अधिक प्रेम होता है, वह उतना अधिक प्रभु को अच्छे न लगने वाले कार्य करने से डरता है। प्रभु के सच्चे भक्त का 'भउ' अति निर्मल और उज्ज्वल होता है। यह 'भउ' अति पवित्र और कल्याणकारी है क्योंकि यह 'भउ' जीवात्मा को उस 'निरभउ' से मिलाकर हमेशा के लिए मृत्यु और आवागमन के भय से मुक्त कर देता है।

अगनि तप ताउ—आप समझाते हैं कि ठीक युक्ति और डर के साथ-साथ तप की अग्नि का होना ज़रूरी है। साधना में सफलता प्राप्त करने के लिए साधक को जिस हठ से काम लेना पड़ता है, उसे गुरु साहिब तप या तपस्या की अग्नि का नाम देते हैं। साधक में हठ का प्रेम नहीं होता, प्रेम का हठ होता है। दुनिया का कौन-सा रिश्ता है जिसे बिना हठ या दृढ़ता से निभाया जा सकता है? दुनिया का कौन-सा काम है, जिसमें बिना हठ या दृढ़ता के सफलता प्राप्त की जा सकती है? यही उसूल परमार्थ में भी लागू होता है।

शुरू में साधक को थोड़े हठ से काम लेना पड़ता है। बच्चे को उसकी मर्ज़ी के विरुद्ध स्कूल भेजा जाता है। इसी तरह साधक को सतगुरु द्वारा समझाई गयी विधि के अनुसार तन और मन को स्थिर करने के लिए संघर्ष करना पड़ता है। प्राप्ति न होने के बावजूद संघर्ष में दृढ़ता के साथ लगे रहना ही वास्तविक तपस्या है। वर्जित भोजन का त्याग करना, पराये धन और पराये तन से बचना, बुरे कर्मों और बुरी वासनाओं से बचना, मन को निरन्तर सुमिरन में लगाने का यत्न करना, बाहर भटकते मन को बार-बार अन्दर स्थिर करने का यत्न करना, बहुत बड़ा तप है। तप, धूनियों की आग तापने में नहीं, वासनाओं की आग से बचने में है। हठ-कर्मों का पालन, तप नहीं। वास्तविक तप मालिक की रज़ा में रहना और हर प्रकार के उतार-चढ़ाव के बावजूद भजन-सुमिरन में निरन्तर लगे रहना है।

भांडा भाउ अंम्रितु तितु ढालि॥ यहाँ गुरु साहिब अमृत की प्राप्ति के लिए 'भाउ' या प्रेम की महिमा का वर्णन कर रहे हैं। 'भाउ' द्वारा आप यह सन्देश दे रहे हैं कि हमारे भजन-सुमिरन या साधना का आधार प्रेम होना चाहिए। हम यह भी कह सकते हैं कि नाम की कमाई प्रेम, लगन, तड़प और उत्साह के साथ करनी चाहिए और यह भी कह सकते हैं कि सच्चा प्रेम, वैराग्य या विरह ही जीवात्मा को नाम रूपी अमृत से मिलाने का कार्य करता है।

गुरु साहिब समझाते हैं कि रूहानी साधना में युक्ति, भय और तप का भारी महत्त्व है लेकिन साधना में रस पैदा करनेवाला तत्त्व 'भाउ' या प्रेम

है। प्रेम के बिना हृदय का बरतन नाम के अमृत के लिए तैयार नहीं होता। प्रेम के बिना सेवा या साधना एक बोझ है। जहाँ प्रेम होता है, वहाँ त्याग और क़ुर्बानी होती है। प्रेमी को लाखों मील का सफ़र भी लम्बा नहीं लगता, लेकिन अगर प्रेम न हो तो मजबूरी में उठाया गया हर क़दम लाखों मील लम्बा महसूस होता है। माता-पिता को बच्चों के लिए बड़ी से बड़ी क़ुर्बानी देने की शक्ति प्रेम देता है। लोग परिवार, समाज, धर्म, जाति, देश आदि के लिए जो भी क़ुर्बानी करते हैं, प्यार के जज़्बे के अधीन करते हैं। हज़रत ईसा का फ़रमान है: परमात्मा प्रेम है। जो प्रेम में समाया हुआ है, परमात्मा में समाया हुआ है और परमात्मा उसमें समाया हुआ है।* प्रेम सब गुणों की खान है। जहाँ प्रेम है, वहाँ सबकुछ है, जहाँ प्रेम नहीं, वहाँ कुछ भी नहीं। गुरु अर्जुन देव जी का कथन है:

अति सुंदर कुलीन चतुर मुखि डिआनी धनवंत॥
मिरतक कहीअहि नानका जिह प्रीति नही भगवंत॥[23]

आप कहते हैं कि परमात्मा के प्रेम से ख़ाली ऊँचे कुल में जन्मा, सुन्दर, धनवान, ज्ञानी और चतुर या बुद्धिमान व्यक्ति मृतक के समान है। जीव का असल जीवन प्रेम है, जीव की असल आत्मा प्रेम है। सन्त चरनदास जी की वाणी है:

सब मत अधिकी प्रेम बतावैं। जोग जुगत सूँ बड़ा दिखावैं॥
प्रेमहि सूँ उपजै बैराग। प्रेमहिं सूँ उपजै मन त्याग॥
प्रेम भक्ति सूँ उपजै ज्ञाना। होय चाँदना मिट अज्ञाना॥
दुरलभ प्रेम जु हाथ न आवै। हरि किरपा करि दें तो पावै॥
प्रेम प्रीत के बस भगवाना। सकल सास्तर कियो बखाना॥
भक्त हिये में प्रेम जो जागै। तौ हरि दरसन रहैं जो आगे॥
सकल सिरोमनि प्रेमहिं जानो। चरनदास निस्चै मन आनो॥[24]

---

* ... God is love; and he that dwelleth in love dwelleth in God, and God in him.[22]

आपका मत है कि सभी धर्मों और धर्म-ग्रन्थों में प्रेम को शिरोमणि माना गया है। आप कहते हैं कि प्रेम से ही वैराग्य और त्याग पैदा होता है और प्रेम-भक्ति द्वारा ही सच्चे ज्ञान की प्राप्ति होती है। जिस हृदय में प्रेम जाग्रत हो जाता है उसमें प्रभु की मूरत साफ़ दिखाई देने लगती है। 'प्रेम प्रीत के बस भगवाना।' आप कहते हैं कि प्रेम में प्रभु को वश में कर लेने की शक्ति है।

गुरु साहिब उपदेश देना चाहते हैं कि साधना निपट मशीनी कार्यवाही नहीं होनी चाहिए। जिस तरह प्रेमी के मिलाप के लिए घर से चली प्रेमिका के मन में लगन, उत्साह और उमंग होती है, उसी तरह साधक के उद्यम में प्रेम की उमंग और तरंग होनी चाहिए। सिर्फ़ प्रेम के पंखों में ही लम्बी और ऊँची उड़ान भरने की शक्ति है। इसलिए गुरु साहिब प्रेमपूर्वक अभ्यास करने की नसीहत करते हैं। गुरु अंगद साहिब लिखते हैं:

बधा चटी जो भरे ना गुणु ना उपकारु॥
सेती खुसी सवारीऐ नानक कारजु सारु॥[25]

बेगारियों की तरह बेदिली से नाम जपने का कोई लाभ नहीं। केवल प्रेम भरी करनी द्वारा ही कार्य में सफलता प्राप्त होती है। बाबा फ़रीद की वाणी है:

बिरहा बिरहा आखीऐ बिरहा तू सुलतानु॥
फरीदा जितु तनि बिरहु न ऊपजै सो तनु जाणु मसानु॥[26]

जिस हृदय में विरह की तड़प नहीं, वह श्मशान की तरह मनहूस है। वियोग की तड़प और मिलाप की इच्छा हर तरह की करनी की सरताज है। प्रेम के बिना हर तरह की करनी व्यर्थ है और प्रेम किसी दूसरी करनी के अधीन नहीं। गुरु नानक साहिब फ़रमाते हैं:

भै क़ीआ देहि सलाईआ नैणी भाव का करि सीगारो॥
ता सोहागणि जाणीऐ लागी जा सहु धरे पिआरो॥[27]

प्रेम (भाव) और डर (भै) का शृंगार करनेवाली जीवात्मा रूपी प्रेमिका ही प्रभु रूपी प्रियतम को प्यारी लगती है। इस भाव को गुरु अमरदास जी इस तरह प्रकट करते हैं:

कामणि गुणवंती हरि पाए॥ भै भाइ सीगारु बणाए॥[28]

प्रेम साधन भी है और मंज़िल भी। 'प्रेम पराइण प्रीतम राउ'[29]—प्रभु प्रेम-रूप है। जब आत्मा में उसका सच्चा प्रेम पैदा होता है तो आत्मा एकदम परमपिता परमात्मा के चरणों में पहुँच जाती है। यही कारण है कि गुरुमत को नाम-मार्ग या प्रेम-भक्ति का मार्ग भी कहा जाता है। ध्यान से देखा जाये तो संसार के सब पूर्ण सन्तों और कामिल दरवेशों की सम्पूर्ण फ़िलासफ़ी का दो शब्दों में सार यह है कि संसार का प्रेम जीवात्मा को संसार से बाँधकर रखता है और परमात्मा का प्रेम उसको संसार से मुक्त करके परमात्मा से मिला देता है। गुरु नानक साहब लिखते हैं, 'मन रे किउ छूटहि बिनु पिआर॥'[30] अर्थात् परमात्मा के प्रबल प्रेम के बिना जीवात्मा कभी भी संसार के मोह से मुक्त नहीं हो सकती। सन्त नामदेव जी लिखते हैं, 'नामे प्रीति नाराइण लागी॥ सहज सुभाइ भइओ बैरागी॥'[31] जब मन में परमात्मा की सच्ची प्रीति जाग उठती है तो आत्मा में सहज ही संसार के प्रति वैराग्य या त्याग पैदा हो जाता है।

प्रेम क्या है? प्रेम ऐसा अहसास और जज़्बा है जिसे शब्दों में बयान कर सकना असम्भव है। मुख्य तौर पर किसी चीज़ की ज़बरदस्त कशिश उस चीज़ का प्रेम है। जिसे प्रेम करते हैं बेतहाशा उसकी तरफ़ खिंचे चले जाते हैं, अपने आपको भूल जाते हैं और जिसे प्रेम करते हैं, उसका रूप बन जाते हैं। अपनी इच्छा को प्रियतम की इच्छा के अधीन कर देते हैं। प्रियतम की ख़ुशी को अपनी ख़ुशी समझते हैं। यहाँ तक कि अपनी हस्ती उसमें मिटा देना चाहते हैं और अपना आपा मिटाकर उसका ही रूप हो जाना चाहते हैं। 'रांझा रांझा करदी नी मैं आपे रांझा होई। सद्दो नी मैंनू धीदो रांझा हीर न आखो कोई॥'[32] वाली अवस्था हो जाती है।

जिसे प्रेम करते हैं हमेशा उसके तसव्वुर या ध्यान में खोये रहते हैं और मन में बार-बार उसकी याद आती है। वह याद दिलो-दिमाग़ पर इस तरह छा जाती है कि उसके सिवाय और कुछ अच्छा नहीं लगता। उसके बिना जीना दूभर हो जाता है।

गुरु साहिब समझाना चाहते हैं कि अपनी हस्ती या ख़ुदी को प्रभु रूपी प्रियतम में फ़ना कर देना ही प्रेम है। प्रेम, अपनी रज़ा को प्रियतम की रज़ा में नाबूद कर देना है। संसार को छोटा और प्रियतम को बड़ा समझना ही प्रेम है। प्रभु के सुमिरन और उसके ध्यान में खोकर उसका रूप हो जाना प्रेम है। भजन-सुमिरन, पूजा-भक्ति जो कुछ करते हैं, उसका असल उद्देश्य हृदय में परमात्मा रूपी प्रियतम के प्रेम की ज्वाला को प्रचण्ड करना है। जब अन्तर में प्रेम की ज्वाला प्रचण्ड होती है तो हर तरह की सांसारिक तृष्णाएँ और सांसारिक मोह-ममता जल कर राख हो जाती हैं। लोग दुनियावी प्रेम की ख़ातिर क़ौमों, मज़हबों, मुल्कों, ज़मीनों-जायदादों और हुकूमतों की क़ुर्बानी दे देते हैं। परमात्मा के प्यारे उसके प्रेम में संसार ही नहीं, अपना आपा भी क़ुर्बान कर देते हैं। गुरु साहिब 32वीं पउड़ी में कहते हैं:

इक दू जीभौ लख होहि लख होवहि लख वीस॥
लखु लखु गेड़ा आखीअहि एकु नामु जगदीस॥
एतु राहि पति पवड़ीआ चड़ीऐ होइ इकीस॥

गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं, 'गुरमुखि रोमि रोमि हरि धिआवै॥ नानक गुरमुखि साचि समावै॥'[33] आप कहते हैं, 'प्रभ कै सिमरनि अनहद झुनकार॥'[34] प्रभु के प्रेमी, प्रभु के नाम के सुमिरन में इस तरह खो जाते हैं कि उनके अन्दर अनहद शब्द की ध्वनि प्रकट हो जाती है। वे अपनी आत्मा शब्द या नाम की ध्वनि में अभेद कर देते हैं। वह ध्वनि उन्हें अपने में समाकर उस प्रियतम में अभेद कर देती है, जिसमें से वह आ रही है। 'भांडा भाउ अंम्रितु तितु ढालि' द्वारा गुरु साहिब यह सन्देश दे रहे हैं कि प्रभु के प्रेम द्वारा मन को संसार की आसा-मनसा और इच्छा-तृष्णा की मलिनता से पूरी तरह निर्मल करके, मन के अन्दर नाम का अमृत

डालो। संसार के सब सन्तों-महात्माओं के उपदेश का सार यह है कि मन जब भी संसार के मोह की मलिनता से मुक्त होता है, परमात्मा के प्रेम द्वारा होता है और इसके अन्दर नाम का अमृत सिर्फ़ परमात्मा की निर्मल प्रीति द्वारा ही डाला जा सकता है। गुरु अर्जुन देव जी का कथन है:

प्रेम पदारथु नामु है भाई माइआ मोह बिनासु॥
तिसु भावै ता मेलि लए भाई हिरदै नाम निवासु॥[35]

आप इशारा करते हैं कि परमात्मा प्रेम-रूप है और परमात्मा का रूप होने के कारण उसका नाम भी प्रेम का रूप है। जो व्यक्ति अपनी लिव नाम के साथ जोड़ता है, उसके अन्दर प्रभु के प्रेम की प्रबल तरंगे उठने लगती हैं और प्रभु का प्रेम उसे जगत् के बन्धनों से मुक्त करके जगदीश से मिला देता है। मानवता का सच्चा प्रेम भी परमात्मा के प्रेम में से पैदा होता है। जो परमात्मा से प्रेम करता है, वह सबसे प्रेम करता है। सूफ़ी दरवेश राबया बसरी के वचन हैं कि मेरे अन्दर ख़ुदा का प्रेम इस क़दर घर कर चुका है कि इसमें नफ़रत के लिए जगह ही बाक़ी नहीं है। गुरु अर्जुन देव जी का कथन है:

पंथा प्रेम न जाणई भूली फिरै गवारि॥[36]

गुरु साहिब कहते हैं कि हम कितने मूर्ख या अज्ञानी हैं कि हम परमात्मा के महल को जानेवाले प्रेम के सच्चे और ठीक रास्ते को छोड़कर अन्य अनेक कच्चे और ग़लत मार्गों पर भटक रहे हैं। कोई कर्म-मार्ग में प्रवृत्त है और कोई ज्ञान-मार्ग या हठ-मार्ग में। कोई त्यागी और वैरागी बन रहा है तथा कोई व्रत, तीर्थ-यात्रा और दान-पुण्य आदि में लगा हुआ है। गुरु साहिब सावधान करते हैं कि जो व्यक्ति, जब कभी, जहाँ कहीं परमात्मा से मिलाप करने में सफल होगा, प्रेम-मार्ग पर चलकर होगा। हज़रत ईसा ने कहा था कि मेरा पहला और बड़ा हुक्म यह है कि तुम प्रभु से सच्चे दिल से प्रेम करो।* सन्तों-महात्माओं ने प्रभु-प्राप्ति के लिए सिर्फ़ प्रेम पर ज़ोर

* And thou shalt love the lord thy God with all thy heart, and with all thy soul.[37]

दिया है। इसी लिए उनके उपदेश को प्रेम-मार्ग, भक्ति-मार्ग, प्रेम-भक्ति का मार्ग या इश्क़े-हक़ीक़ी (सच्चे इश्क़) का मार्ग आदि कहा जाता है।

अंम्रितु तितु ढालि—सुनार कुठाली में सोना ढालता है। गुरु साहिब उपदेश करते हैं कि प्रेम के बरतन में अमृत रूपी पदार्थ को ढालो। गुरु साहिब कहते हैं:

अंम्रितु हरि का नाउ आपि वरताइसी॥
चलिआ पति सिउ जनमु सवारि वाजा वाइसी॥[38]

प्रभु का नाम सच्चा अमृत है और यह अमृत प्रभु स्वयं बाँटता है। गुरु साहिब सावधान करते हैं:

जिन वडिआई तेरे नाम की ते रते मन माहि॥
नानक अंम्रितु एकु है दूजा अंम्रितु नाहि॥[39]

एको नामु अंम्रितु है मीठा जगि निरमल सचु सोई॥
नानक नामु प्रभू ते पाईऐ जिन कउ धुरि लिखिआ होई॥[40]

धावतु थंम्हिआ सतिगुरि मिलिऐ दसवा दुआरु पाइआ॥
तिथै अंम्रित भोजनु सहज धुनि उपजै
जितु सबदि जगतु थंम्हि रहाइआ॥[41]

नाम ही एकमात्र सच्चा अमृत है। यह अमृत प्रभु की कृपा द्वारा उसे मिलता है जिसका धुर-कर्म हो। यह अमृत ध्यान को दसवें द्वार में एकाग्र करने से मिलता है।

घड़ीऐ सबदु सची टकसाल॥ जतु, धीरजु, मति, वेदु (ज्ञान), तप, भउ और भाउ सभी आत्मा की घाड़त की तैयारी का सामान हैं। घाड़त घड़ने वाली वास्तविक शक्ति शब्द है— 'घड़ीऐ सबदु सची टकसाल॥' जिस तरह टकसाल में तैयार हुई मोहर को पास करके उस पर निशान लगा दिया जाता है, उसी तरह शब्द की टकसाल में घड़ी हुई आत्मा निर्मल और बलवान होकर परमात्मा के दरबार में पहुँचने के क़ाबिल बन जाती है।

गुरु साहिब ने पहली पउड़ी में 'हुकमि रजाई चलणा' द्वारा समझाया है कि प्रभु-प्राप्ति का सच्चा साधन हुक्म की पहचान है। 'जपुजी' के अन्त में 'घड़ीऐ सबदु सची टकसाल' द्वारा आप अपने उपदेश को पूर्णता प्रदान करते हुए कहते हैं कि हुक्म रजाई चलने से भाव आत्मा को शब्द या नाम में लीन करना है। शब्द या नाम का अमृत ही जीवात्मा पर से हौंमैं की मैल उतार कर इसे परमात्मा से मिलने के क़ाबिल बनाता है। इस कार्य में परमात्मा की दया-मेहर से सफलता प्राप्त होती है, इस सम्बन्ध में आप आगे इशारा करते हैं।

जिन कउ नदरि करमु तिन कार॥ रूहानी साधना के लिए जतु, धीरजु, मति, वेदु (ज्ञान), भउ, तप, भाउ और सबदु ज़रूरी हैं लेकिन इसमें सफलता परमात्मा की दया-मेहर से ही प्राप्त होती है। जो कुछ मिलता है यत्न, अभ्यास या साधना द्वारा मिलता है पर साधना में सफलता का आदि, मध्य और अन्त परमात्मा की दया है। उस सर्वशक्तिमान और सर्वज्ञाता प्रभु को कोई कभी भी अपने यत्न और अपने ज्ञान से प्राप्त नहीं कर सकता। वह सर्वशक्तिमान और सर्वज्ञाता प्रभु जिसे भी मिलता है, अपनी दया-मेहर से मिलता है।

रूहानी अभ्यास, पारमार्थिक उन्नति और परमात्मा की प्राप्ति को ऐसा फ़ार्मूला नहीं बनाया जा सकता कि हम अपने यत्न, अपनी निर्मल रहनी, निर्मल बुद्धि, भक्ति और कमाई द्वारा परमात्मा के साथ मिलाप कर सकते हैं। यह 'इतना गुड़ और इतना मीठा' जैसा कार्य नहीं है। आत्मिक उन्नति और प्रभु की प्राप्ति का समूचा कार्य परमात्मा की दया-मेहर पर निर्भर है। परमात्मा की दया होती है तो जीव के अन्दर ठीक सोच जाग्रत होती है और उसे ठीक साधन और मार्ग की प्राप्ति होती है। प्रभु की दया होती है तो जीव की रहनी निर्मल बनती है। प्रभु की दया होती है तो निश्चल बुद्धि और निर्मल विवेक की प्राप्ति होती है। प्रभु ही दया करे तो निर्बल जीव उसके भाणे में रहता हुआ गुरुमत धारण करके नाम की कमाई में लगता है। प्रभु की अपार दया होती है तब ही जीव के अन्दर रचना की

जगह रचयिता का प्रेम जाग्रत और प्रफुल्लित होता है और प्रभु की दया द्वारा ही जीव नाम या शब्द से लिव जोड़कर प्रभु से मिलाप का सौभाग्य प्राप्त कर सकता है।

नानक नदरी नदरि निहाल॥ वह परमपिता, परम दयालु है। उसकी दया निरन्तर और अखुट है। उसकी दया न तो रुकती है और न ही ख़त्म होती है। उसकी रहमत हर जगह और हरएक पर सदा बरस रही है।

सचखण्ड से आ रही परमात्मा की शक्ति की किरणें समस्त रचना को जीवन प्रदान कर रही हैं, रचना का संचालन कर रही हैं और दया-रूप होकर जीव को रचना से मुक्त करके रचयिता से मिलाने का कार्य भी कर रही हैं।

गुरु साहिब ने 'नानक नदरी नदरि निहाल' को 'सच खंडि वसै निरंकारु॥ करि करि वेखै नदरि निहाल॥' के साथ जोड़ा है। ये दोनों वर्णन जीव को यह महत्त्वपूर्ण सन्देश देते हैं कि यह सोचकर हाथ पर हाथ रख कर नहीं बैठे रहना चाहिए कि जब प्रभु की दया होगी तब ही प्रभु की प्राप्ति के लिए यत्न शुरू करेंगे। 'नानक नदरी नदरि निहाल' और 'करि करि वेखै नदरि निहाल' से स्पष्ट सन्देश मिलता है कि प्रभु की 'नदरि', रहमत या दया निरन्तर है। उसकी रहमत की वर्षा निरन्तर हो रही है।

पिता-परमात्मा दया-रूप है। वह दया की मूर्ति है। उसकी दया कभी नहीं थमती। हमें उसकी रहमत का सहारा लेकर शीघ्र से शीघ्र, आज और अभी से अपना कार्य आरम्भ कर देना चाहिए। गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं, 'आपण हथी आपणा आपे ही काजु सवारीऐ॥'[42] आपका कथन है:

उदमु करेदिआ जीउ तूं कमावदिआ सुख भुंचु॥
धिआइदिआ तूं प्रभू मिलु नानक उतरी चिंत॥[43]

स्वार्थ और परमार्थ, लोक और परलोक दोनों में सफलता का साधन उद्यम या पुरुषार्थ है। दया निरन्तर है। कमी है तो उद्यम की। जैसे-जैसे उद्यम करते हैं, पल-पल बरस रही दया का अहसास बढ़ता जाता है। हमें चाहिए कि दया की निरन्तर वर्षा से लाभ उठाकर शीघ्र से शीघ्र पिता-

परमात्मा के साथ मिलाप करने के लिए यत्न करें। हमारा उद्यम ज़रूर सफल होगा क्योंकि हमारा पिता परम दयालु है। हमारा पिता रहमत भरी नज़रों से हमारा इन्तज़ार कर रहा है कि हम कब उसकी तरफ़ छोटे-छोटे क़दम उठायें ताकि वह हमारे छोटे-छोटे क़दमों में बड़ी-बड़ी दातों के फूल बिछा दे।

38वीं पउड़ी में प्राप्त उपदेश पर ध्यान से विचार करने पर पता लगता है कि गुरु साहिब द्वारा समझायी गयी युक्ति में कर्म, ज्ञान और भक्ति का संगम है। आपने साधक को निर्मल रहनी (जतु), यत्न की दृढ़ता और निरन्तरता (धीरजु), विवेक और ज्ञान (अहरणि मति वेदु हथीआरु), परमात्मा की रज़ा (भउ) और परमात्मा के प्रेम (भाउ) के गुण धारण करते हुए सुरत को परमात्मा के शब्द या नाम में लीन करने का उपदेश दिया है। आप समझाते हैं कि परमार्थी बनने के लिए यत्न, उद्यम, ज्ञान, विवेक, युक्ति, रज़ा और नाम का प्रेमपूर्वक अभ्यास, सब गुण ज़रूरी हैं। आपने कर्म, ज्ञान और भक्ति तीनों को परमात्मा की दया पर निर्भर बताया है।

॥ सलोकु ॥

पवणु गुरू पाणी पिता माता धरति महतु॥*
दिवसु राति दुइ दाई दाइआ खेलै सगल जगतु॥
चंगिआईआ बुरिआईआ वाचै धरमु हदूरि॥
करमी आपो आपणी के नेड़ै के दूरि॥
जिनी नामु धिआइआ गए मसकति घालि॥
नानक ते मुख उजले केती छुटी नालि॥

शब्दार्थ: महतु=बड़ा, महत्त्व रखनेवाला। धरमु=न्याय करनेवाला। मसकति=कड़ी मेहनत। केती=अनेक।

* वेदान्त में 'महतु' के अर्थ ब्रह्मण्डी मन किये गये हैं। ब्रह्मण्डी मन आकाश तत्त्व को जन्म देता है, जिससे अन्य सभी तत्त्व जन्म लेते हैं।

सरलार्थ: 'जपुजी' के आरम्भ में दिये गये श्लोक में उस कर्ता की महिमा है। 'जपुजी' के अन्त में दिये गये श्लोक में संसार में रहने और परमात्मा के साथ मिलाप करने की युक्ति का वर्णन है। एक तरह से इस श्लोक में 'जपुजी' की पूरी विचारधारा का सार समाया हुआ है। आप इस श्लोक द्वारा समझाते हैं:

संसार पाँच तत्त्वों का बना हुआ है। इसमें पवन गुरु समान है, पानी पिता है, महान धरती माता है। दिन और रात दाई और दाया के समान हैं। जीव जो-जो अच्छाइयाँ-बुराइयाँ, अच्छे-बुरे कर्म या पुण्य-पाप करते हैं, वे धर्मराज के दरबार में देखे जाते हैं। अपनी करनी के कारण कोई परमात्मा के समीप है, कोई उससे दूर है। देर-सवेर प्रत्येक को अपने कर्मों का फल प्राप्त होता है। जो भाग्यशाली जीव परमात्मा के नाम का ध्यान करते हैं, उसके नाम से लिव जोड़ते हैं, उनकी मेहनत सफल होती है। कुल मालिक की दरगाह में उनके मुख उज्ज्वल होते हैं और उनके ज़रिये अन्य अनेक जीव आवागमन के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं।

व्याख्या

पवणु गुरू पाणी पिता माता धरति महतु॥ जिस तरह परमार्थ में गुरु का सबसे ऊँचा स्थान है, उसी तरह संसार के जीवों के लिए वायु का दर्जा सबसे ऊँचा है क्योंकि वायु या प्राणों के बिना शरीर क़ायम नहीं रह सकता। पानी पिता के समान है क्योंकि यह जीवन दाता है। धरती माता के समान बड़ी है क्योंकि यह सबकी परवरिश करती है। कुछ विद्वानों ने 'महतु' को पानी के साथ जोड़ा है और यह अर्थ किये हैं कि महान पानी पिता है।

दिवसु राति दुइ दाई दाइआ खेलै सगल जगतु॥ दिन और रात समय या काल के सूचक हैं। ये दाई और दाया के समान हैं; सारा संसार इनकी गोद में खेल रहा है। समय का प्रभाव हरएक पर पड़ता है। समय

से परिवर्तन आता है। समय से कर्म उदय होते हैं। समय के अनुसार उतार-चढ़ाव आते हैं। समय जीवन को चलाता है। काल द्वारा पैदा किया जीव, काल की गोद में खेलता है और अन्त में काल ही इसको खा जाता है।

चंगिआईआ बुरिआईआ वाचै धरमु हदूरि॥ इस पंक्ति का एक अर्थ यह किया जाता है कि हरएक के अच्छे और बुरे कर्म धर्मराज के दरबार में देखे जाते हैं और हरएक को उसके किये हुए कर्मों का फल मिलता है। कोई अपने किये हुए कर्मों के कारण स्वर्गों में पहुँच जाता है और कोई किये हुए कर्मों के कारण नरकों में पहुँच जाता है। इस पंक्ति का यह अर्थ भी किया जाता है कि हर किसी के कर्म धर्मराज के दरबार में देखे जाते हैं और देर-सवेर हर किसी को अपने कर्मों का फल भुगतना पड़ता है। अच्छे कर्म करनेवाले भी और बुरे कर्म करनेवाले भी धर्मराज के दायरे में क़ैद रहते हैं। अच्छे और बुरे दोनों तरह के कर्म बन्धनकारी हैं। कर्म, कर्म के फल से मुक्त नहीं कर सकता।

करमी आपो आपणी के नेड़ै के दूरि॥ इस पंक्ति का एक अर्थ यह किया गया है कि अपनी-अपनी करनी के अनुसार कोई तो प्रभु के नज़दीक है और कोई दूर है। यहाँ करनी का अर्थ नाम की कमाई है। जो उस कर्ता के हुक्म के अनुसार और उसकी दया द्वारा नाम की कमाई में लग जाता है, वह उस कर्ता के नज़दीक पहुँच जाता है और जो नाम की कमाई में नहीं लगता वह उससे दूर रह जाता है।

जिनी नामु धिआइआ गए मसकति घालि॥
नानक ते मुख उजले केती छुटी नालि॥

जो लोग ख़ूब मेहनत से नाम की कमाई करते हैं, वे स्वयं भी जन्म-मरण के दुःखदायी बन्धनों से सदा के लिए मुक्त हो जाते हैं और उनसे प्रेरणा, दिशा या उपदेश लेकर नाम की कमाई करनेवाले दूसरे अनेक लोग भी जीवन-मुक्त हो जाते हैं।

सन्देश

'जपुजी' के अन्त में दिये गये इस श्लोक का गुरु साहिब की वाणी में विशेष महत्त्व है क्योंकि इसमें मनुष्य के दुःख के मूल कारण और सच्चे सुख की प्राप्ति के सच्चे साधन का जो संक्षिप्त और सरल वर्णन आपने किया है, वह अपनी मिसाल आप है।

मनुष्य की मूल समस्या यह है कि वह अनन्त काल से परिवर्तन और विनाश के चक्र में क़ैद है जो कर्म और फल के नियम के अनुसार चल रहा है। कर्म और फल का नियम आवागमन के कभी न समाप्त होनेवाले चक्र को जन्म देता है। मनुष्य को पूर्ण और स्थायी सुख की तलाश है, पर उसे कभी न समाप्त होनेवाले दुःख मिलते हैं।

मनुष्य दृश्यमान संसार, इसके शक़्लों-पदार्थों, धन-दौलत, ज़मीनों-जायदादों, रिश्ते-नातों, मान-बड़ाइयों, पदों और प्राप्तियों, इन्द्रियों के भोगों आदि में सुख ढूँढ़ता है। ये सब चीज़ें अधूरी, अस्थिर और नाशवान हैं, जिस कारण इनसे प्राप्त होनेवाला सुख भी अधूरा, अस्थिर और नाशवान है। जितना ज़्यादा मनुष्य बाहरी मायामय संसार में सच्चे और स्थायी सुख की तलाश के लिए कोशिश करता है, उतना अधिक दुःख के दलदल में फँसता चला जाता है। गुरु साहिब समझाते हैं कि जीव की समस्या का समाधान और उसके लक्ष्य की प्राप्ति का एकमात्र साधन यह है कि वह अपना ध्यान अधूरे, अनित्य और नश्वर जगत् से हटाकर अन्दर परमात्मा के पूर्ण, नित्य और अविनाशी नाम के साथ जोड़े।

नाम से लिव जोड़ने के लिए क़ौम, मज़हब, मुल्क, जाति, धन, विद्या, पद न सहायक हैं और न ही बाधक। नाम से लिव जोड़ने के लिए कोई कर्मकाण्ड या शरीअत धारण करने या त्यागने की ज़रूरत भी नहीं है। यही नहीं इसमें बलवान और निर्बल या नेक और बद का भेदभाव भी नहीं है क्योंकि नाम में निर्बल को बलवान बना लेने और हर बुराई को नेकी में बदल देने का अपार सामर्थ्य है।

अमीर-ग़रीब, अनपढ़-विद्वान्, रोगी-निरोग, गोरे-काले, सुन्दर-कुरूप, औरत-मर्द, हिन्दू-मुसलमान, मूर्ख-अक़्लमन्द, अच्छे-बुरे आदि हम अपने किये हुए कर्मों के कारण हैं, परन्तु उस दयालु पिता ने प्रेम और नाम की दौलत अपने हर बच्चे को एक जैसी बख़्शी है। संसार का जो व्यक्ति जहाँ भी और जब भी, अपने अन्दर प्रभु के प्रेम को जाग्रत करके अपनी लिव नाम के साथ जोड़ लेता है, वह कर्म और फल तथा आवागमन के चक्कर से भी मुक्त हो जाता है और सच्चे तथा पूर्ण आनन्द के अमर-अविनाशी स्रोत की प्राप्ति भी कर लेता है। उसकी अनन्त काल से चली आ रही हौंमैं और अज्ञान की भाग-दौड़, भटकन या अस्थिरता समाप्त हो जाती है और वह पूर्ण स्थिरता या पूर्ण विश्राम की अवस्था में पहुँच जाता है। उसका लोक और परलोक सँवर जाता है:

ईहा सुखु आगै मुख ऊजल मिटि गए आवण जाणे ॥[1]

ईहा सुखु दरगह जैकारु ॥[2]

गुरु साहिब अज्ञानी जीव को सावधान करते हैं कि तुम मन के अधीन होकर अनन्त काल से बाहरी जगत् में सच्चे और स्थायी सुख की तलाश में बहुत भटक चुके हो, अब अपने कर्ता का हुक्म पहचान कर उस जगह पूर्ण और अविनाशी शान्ति की तलाश के लिए प्रयत्न करो जहाँ तुम्हारे कर्ता ने उसका अथाह भण्डार तुम्हारे लिए सुरक्षित रखा हुआ है। जब तुम माया की ज़हर से ध्यान हटाकर अन्दर नाम का अमृत पियोगे तो जीवन और रचना की पहेली भी सुलझा लोगे और रचना के दु:खदायक खेल से निकलकर रचयिता की सुखदायक गोद में भी पहुँच जाओगे। यही 'जपुजी' और गुरु-घर का सन्देश है और यही संसार के सम्पूर्ण परमार्थी साहित्य का सन्देश है।

'जपुजी' और परमात्मा

'जपुजी' परमार्थी वाणी है। इसका उद्देश्य मनुष्य को परमात्मा से मिलाप की युक्ति और उससे प्राप्त होनेवाले आत्मिक आनन्द के बारे में सचेत करना है।

'जपुजी' बात तो मनुष्य से करता है पर यह बात परमात्मा की करता है। यह बार-बार परमात्मा की तरफ़ लौटता है ताकि मनुष्य का ध्यान रचना की बजाय रचयिता की तरफ़ ले जाया जा सके। यह सृष्टि की बात करता है पर परमात्मा की रचना के रूप में। इस वर्णन में महत्त्व रचना का नहीं, रचयिता का है। 'जपुजी' मनुष्यों के आपसी रिश्तों की बात भी परमात्मा द्वारा सृष्टि के संचालन के लिए बनाये गये कर्म और फल के नियम की पृष्ठभूमि में करता है। 'जपुजी' का आदि, मध्य और अन्त परमात्मा के गुणों का वर्णन है।

'जपुजी' मनुष्य के आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक हालात में दख़ल नहीं देता। यह मनुष्य को पूर्ण परमात्मा में अभेद होकर पूर्ण पुरुष बनने की प्रेरणा देता है। पूर्ण पुरुष हर तरह से पूर्ण होता है। 'जपुजी' परमात्मा को शक्ति, ज्ञान, प्रेम, दया और आनन्द के अमर, अथाह स्रोत के रूप में प्रस्तुत करता है। आत्मा, परमात्मा रूपी स्रोत में समाकर उसकी तरह ही शक्ति, ज्ञान, प्रेम, दया और आनन्द का रूप बन जाती है। इसलिए 'जपुजी' मनुष्य को पूर्णता की प्राप्ति की प्रेरणा देता है।

'जपुजी' का आरम्भ 'मूल-मन्त्र' से होता है। 'मूल-मन्त्र' में परमात्मा को सर्वशक्तिमान कर्ता और विधाता कहा गया है। वह प्रभु एक है। वह सदा क़ायम रहनेवाला सत्य है। वह नाम-रूप है। वह अनुपम कर्ता है, अपने जैसा आप है। कोई दूसरा उस जैसा नहीं। वह निर्भय और निर्वैर है। वह समय, स्थान या देश-काल के हर तरह के बन्धन और परिवर्तन

से ऊपर है। वह अकाल है। वह परिवर्तन और विनाश से मुक्त है। वह सदा एक-रंग, एक-रूप और एक-रस रहता है। वह अपना आधार आप है। वह जन्म-मरण के दु:खों से परे और ऊपर है। ऐसे अद्‌भुत गुणों से परिपूर्ण परमात्मा की प्राप्ति, सतगुरु से प्रसाद-रूप में होती है।

मूल-मन्त्र के बाद के श्लोक में परमात्मा के अस्तित्व को अविनाशी सत्य बताया गया है। जब कुछ नहीं था, परमात्मा था। परमात्मा आज भी है और आगे भी होगा। जब कुछ नहीं होगा तब भी परमात्मा होगा।

'जपुजी' की पहली पउड़ी में मनुष्य द्वारा परमात्मा से मिलाप के लिए अपनायी जानेवाली अनेक मनचाही युक्तियों का वर्णन करते हुए गुरु साहिब यह संकेत देते हैं कि सृष्टि के आरम्भ से ही संसार के हर मनुष्य के लिए परमात्मा के साथ मिलाप का साधन और मार्ग स्वयं परमात्मा द्वारा बनाया गया है। उस साधन और मार्ग की पहचान परमात्मा के हुक्म की पहचान है और यही इस कूड़ या नश्वर संसार में क़ैद होकर कूड़िआर बन चुके जीव के लिए परमात्मा रूपी सत्य में समाकर सचिआर बनने का वास्तविक साधन है। इस पउड़ी में यूँ तो बात अलग-अलग साधनों की हो रही है पर इन साधनों का सम्बन्ध परमात्मा की प्राप्ति से है। इसके अतिरिक्त यहाँ यह संकेत भी दिया गया है कि परमेश्वर की प्राप्ति का साधन स्वयं परमात्मा द्वारा निर्धारित किया गया है, इसलिए वास्तव में यह पउड़ी परमात्मा से ही सम्बन्धित है।

दूसरी पउड़ी में परमात्मा के सर्वशक्तिमान हुक्म की बात की गयी है। गुरु साहिब संकेत करते हैं कि जिसको इस सत्य का ज्ञान हो जाता है कि जो कुछ हो रहा है उस एक सर्वशक्तिमान कर्ता के हुक्म के अनुसार हो रहा है, उसकी हौंमैं या अज्ञान का नाश हो जाता है।

तीसरी से सातवीं तक की पाँच पउड़ियाँ परमात्मा की महिमा गाती हैं। तीसरी पउड़ी में बताया गया है कि करोड़ों लोग, करोड़ों ढंग से परमात्मा की स्तुति कर रहे हैं पर उसकी पूरी स्तुति कर सकना असम्भव है। जिसे जो कुछ मिल रहा है, उस दाता का दिया हुआ मिल रहा है और संसार में जो कुछ हो रहा है, उस एक कर्ता के हुक्म के अनुसार हो रहा है।

चौथी पउड़ी में कहा गया है कि हम उस दाता को उसकी दी हुई दातों में से किसी भी दात से प्रसन्न नहीं कर सकते। उसकी प्रसन्नता प्राप्त करने का वास्तविक साधन उसके हुक्म को मानते हुए लिव अन्दर नाम के साथ जोड़ना है।

पाँचवीं पउड़ी में गुरु साहिब इस बात पर ज़ोर देते हैं कि वह परमात्मा न किसी के द्वारा बनाया या स्थापित किया गया है और न ही उसके हुक्म की पहचान के बिना उसकी प्राप्ति हो सकती है। उसकी वास्तविक भक्ति उसके नाम के साथ लिव जोड़ना है। परमात्मा के नाम के साथ लिव जोड़ने से सब दु:खों का नाश हो जाता है और परम सुख की प्राप्ति हो जाती है। उस परमात्मा का बोध पूर्ण गुरुमुख की सहायता से होता है। सच्चा गुरुमुख शब्द या नाम का रूप होता है और उसके अन्दर बैठकर वह कर्ता स्वयं जीवों को अपने साथ मिलाने का कार्य करता है।

गुरु साहिब छठी पउड़ी में संकेत करते हैं कि परमात्मा की प्राप्ति के लिए तीर्थों पर स्नान आदि जैसे कोई भी साधन अपनाने का लाभ तभी है यदि ये साधन परमात्मा को स्वीकार हों। जो साधन परमात्मा को पसन्द नहीं, उससे परमात्मा की प्राप्ति कैसे हो सकती है? संसार में जिसको जो कुछ मिलता है, उस कर्ता की दया या हुक्म से मिलता है।

सातवीं पउड़ी में बताते हैं कि लोग लम्बी आयु, मान-बड़ाई आदि की कामना करते हैं पर परमात्मा की दया के बिना इनका एक कौड़ी जितना भी मूल्य या महत्त्व नहीं। सच्ची बड़ाई वही है, जो परमात्मा स्वयं दया-मेहर से प्रदान करे।

8 से 11 तक की चार पउड़ियों में परमात्मा के नाम के साथ लिव जोड़ने से प्राप्त होनेवाले अनेक अलौकिक गुण बयान किये गये हैं और अगली चार पउड़ियों में लिव को नाम में लीन करके नाम का रूप हो चुके साधक की अद्‌भुत अवस्था का वर्णन किया गया है। बात साधना की हो रही है पर साधना परमात्मा के नाम की है और साध्य परमात्मा है।

16 से 19 तक की चार पउड़ियों में अनन्त प्रकार की सृष्टि का उल्लेख है पर प्रत्येक पउड़ी के अन्त में 'कुदरति कवण कहा वीचारु॥

वारिआ न जावा एक वार॥ जो तुधु भावै साई भली कार॥ तू सदा सलामति निरंकार॥' की ध्वनि गूँजती है। चर्चा रचना की चल रही है, परन्तु स्तुति रचयिता की हो रही है। रचना अनन्त रंग-रूपों वाली और अथाह है पर जो कुछ भी हुआ है, उस एक अमर, अविनाशी कर्ता और उसके हुक्म या नाम द्वारा ही हुआ है। उसका हुक्म या नाम उसकी तरह ही सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापक है।

20वीं पउड़ी फिर नाम और नामी की महिमा की तरफ़ लौटती है। गुरु साहिब उपदेश देते हैं कि मन की मलिनताओं को धोने का साधन उस रचयिता का सच्चा नाम है। सृष्टि उस कर्ता द्वारा स्थापित किये गये कर्म और फल के नियम के अनुसार चल रही है।

21वीं पउड़ी में गुरु साहिब कहते हैं कि वह परमात्मा अनन्त गुणों का भण्डार है। जब तक उस जैसे गुण धारण नहीं किये जाते तब तक उसकी भक्ति नहीं हो सकती। 'सति सुहाणु सदा मनि चाउ॥' वह परमात्मा अमर-अविनाशी है। वह सुन्दर से सुन्दर, प्यारे से प्यारा है। वह प्रसन्नता और आनन्द की प्रतिमा है। वह सच्चा रचयिता है। उसने अपनी मौज से सृष्टि की रचना की है। उसने यह रचना कब की, इसके बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता।

सृष्टि की रचना के आरम्भ के बारे में लाखों अनुमान लगाये जाते हैं पर इसका वास्तविक ज्ञान केवल रचयिता को ही है। रचना 'काल' में है पर कर्ता 'अकाल' है। जब रचना नहीं थी तब केवल रचयिता था। इसलिए कोई दूसरा इसके रचे जाने के समय के बारे में कुछ नहीं कह सकता। गुरु साहिब कहते हैं कि लोग बहुत चालाक और बुद्धिमान बनते हैं तथा रचयिता और उसकी रचना के बारे में बढ़-चढ़ कर बातें करते हैं पर वास्तव में न उस बड़े की थाह पाई जा सकती है, न उसकी बड़ाई की और न ही उसके द्वारा सृजित सृष्टि की।

22वीं पउड़ी में 21वीं पउड़ी के भाव को आगे बढ़ाते हुए गुरु साहिब बताते हैं कि अलग-अलग धर्मों और धर्म-ग्रन्थों में सृष्टि के विस्तार का अलग-अलग ढंग से वर्णन किया गया है। कुछ धर्मों में अठारह हज़ार

खण्डों-ब्रह्माण्डों की बात की गयी है पर सच्चाई यह है कि लाखों आकाश हैं, लाखों पाताल हैं। उस असीम प्रभु द्वारा रचित सृष्टि असीम, अनन्त और अथाह है। 'नानक वडा आखीऐ आपे जाणै आपु॥' अपनी और अपनी रचना की बड़ाई, वह बड़े से बड़ा परमात्मा स्वयं ही जानता है, किसी दूसरे को इसके बारे में कुछ पता नहीं।

23वीं से 26वीं तक की चार पउड़ियों में भी परमात्मा की महिमा की गयी है। 23वीं पउड़ी में गुरु साहिब फ़रमाते हैं कि नदियाँ समुद्र में समाकर समुद्र का रूप हो सकती हैं पर समुद्र की पूरी बड़ाई वे भी बयान नहीं कर सकतीं। इसी तरह परमात्मा के भक्त परमात्मा में समाकर परमात्मा का रूप बन सकते हैं, पर परमात्मा की पूर्ण महिमा वे भी बयान नहीं कर सकते क्योंकि उसकी महिमा कहने और सुनने से परे है।

24वीं पउड़ी में कहते हैं कि परमात्मा के गुण, कर्म, स्वभाव का वर्णन कर सकना असम्भव है। 'अंत कारणि केते बिललाहि॥ ता के अंत न पाए जाहि॥' अनेक लोग उसका अन्त पाने का प्रयत्न करते हैं, पर कोई भी इस प्रयत्न में सफल नहीं होता। वह परमात्मा और उसका नाम इतना बड़ा, अगम और अथाह है कि उसकी थाह पा सकना असम्भव है। आप फ़रमाते हैं, 'एवडु ऊचा होवै कोइ॥ तिसु ऊचे कउ जाणै सोइ॥' परमात्मा की बड़ाई वही जान सकता है जो परमात्मा जितना बड़ा हो। जब कोई दूसरा उसके जितना ऊँचा और बड़ा नहीं है, तो फिर उसकी बड़ाई कौन जान या बयान कर सकता है? 'जेवडु आपि जाणै आपि आपि॥ नानक नदरी करमी दाति॥' उस अगम, अथाह दाता की बड़ाई वह दाता स्वयं ही जानता है पर इतनी बात ज़रूर कही जा सकती है कि जिसको जो कुछ मिलता है, उसकी दया-मेहर से मिलता है।

25वीं पउड़ी में संकेत करते हैं कि वह परमात्मा सबसे बड़ा दाता है। वह ऐसा अद्भुत दाता है जो सबकुछ बिना किसी मूल्य और लोभ या स्वार्थ के देता है। वह इतना बख़्शिन्द और दयालु है कि केवल नेक लोगों पर ही दया नहीं करता, वह मूर्खों और दातें लेकर दाता को भूल जानेवाले कृतघ्नों पर भी दया करता है। जिसको जो कुछ देता है, वह दाता देता है और वह जिसको जो कुछ देता है, बिना किसी स्वार्थ या मूल्य के देता है।

26वीं पउड़ी में फ़रमाते हैं कि उस परमात्मा के गुण भी अमूल्य हैं और उसके गुणों के व्यापारी उसके प्रेमी-भक्त भी धन्य हैं। उस प्रभु के भक्त उसके गुणों का व्यापार करते हुए, उसमें समाकर उसका ही रूप बन जाते हैं।

आप कहते हैं कि उस अगम, अथाह और अमूल्य परमात्मा द्वारा जीवों के कर्मों का हिसाब रखने के लिए स्थापित किया गया धर्मराज भी धन्य है, धर्मराज द्वारा जीवों के कर्मों को तोलने के लिए प्रयोग किया जानेवाला तराज़ू या विधि भी धन्य है और इस तराज़ू में प्रयोग किये जानेवाले बाट या नियम भी धन्य हैं। लाखों ग्रन्थ-शास्त्र, लाखों देवी-देवता, ऋषि-मुनि, गुणी-ज्ञानी, बुद्धिमान और सिद्ध पुरुष अनेक ढंग से परमात्मा की बड़ाई करने का प्रयत्न करते हैं पर वे इस प्रयत्न में कभी सफल नहीं हो सकते। आप कहते हैं:

केते आखहि आखणि पाहि॥ केते कहि कहि उठि उठि जाहि॥
एते कीते होरि करेहि॥ ता आखि न सकहि केई केइ॥
जेवडु भावै तेवडु होइ॥ नानक जाणै साचा सोइ॥

आप समझाते हैं कि अनेक लोग परमात्मा की महिमा कर रहे हैं। अगर परमात्मा इतने ही लोग और पैदा कर दे तो सबके सब मिलकर भी उसकी बड़ाई बयान नहीं कर सकते। क्योंकि जितना अधिक वे उसकी बड़ाई का वर्णन करते हैं, उनको परमात्मा उतना और अधिक बड़ा प्रतीत होने लगता है। अपनी बड़ाई वह परमात्मा आप ही जानता है।

27वीं पउड़ी का 'जपुजी' में अपना एक विशेष स्थान है। यह 'जपुजी' की सबसे लम्बी पउड़ी है। 'सो दरु केहा सो घरु केहा जितु बहि सरब समाले॥' इस पउड़ी में उस दरबार या निवास-स्थान का वर्णन है जहाँ बैठकर परमात्मा अपने द्वारा सृजित सृष्टि की सँभाल कर रहा है।

गुरु साहिब कहते हैं कि उस दरबार या घर में अनेक प्रकार के नाद या शब्द गूँज रहे हैं। उस दरबार में पहुँचकर पूरी सृष्टि किताब की तरह खुली और परमात्मा के हुक्म की डोरी में पिरोयी हुई दिखाई देती है।

वहाँ पहुँचकर यह साफ़ दिखाई देता है कि सारे देवी-देवता, पाँचों तत्त्व, धर्मराज, ऋषि-मुनि, जपी-तपी, ज्ञानी-ध्यानी ही नहीं, सारे खण्ड-ब्रह्माण्ड भी परमात्मा के साथ लिव जोड़कर उसके हुक्म के अनुसार अपना-अपना कार्य कर रहे हैं। सारी सृष्टि परमात्मा के हुक्म के अनुसार चल रही है पर परमात्मा किसी के हुक्म के अधीन नहीं है। आप कहते हैं:

करि करि वेखै कीता आपणा जिव तिस दी वडिआई॥
जो तिसु भावै सोई करसी हुकमु न करणा जाई॥
सो पातिसाहु साहा पातिसाहिबु नानक रहणु रजाई॥

जिस परमात्मा ने अनन्त रंगों-रूपों वाली अथाह रचना रची है, वह इसको अपनी इच्छा या मौज के अनुसार चला रहा है। वह सारी रचना का कादिर भी है और हाकिम, मालिक या स्वामी भी। सृष्टि में जो कुछ हो रहा है, सब उस एक शहंशाह के हुक्म के अनुसार हो रहा है।

28वीं से 31वीं तक की चार पउड़ियाँ योगियों को सम्बोधित करके लिखी गयी हैं। योगी योग-साधना या परमात्मा से मिलाप के लिए अनेक क़िस्म के भेष धारण करते हैं और अनेक क़िस्म के बाहरमुखी साधन अपनाते हैं। गुरु साहिब उन्हें बाहरमुखी साधनों की बजाय मन की साधना के अन्तर्मुख साधन का उपदेश देते हैं। इन चार पउड़ियों में वर्णन परमात्मा की प्राप्ति के सच्चे साधन और मार्ग का हो रहा है पर हर पउड़ी के अन्त में यह ध्वनि गूँजती है, 'आदेसु तिसै आदेसु॥ आदि अनीलु अनादि अनाहति जुगु जुगु एको वेसु॥' गुरु साहिब योगियों को अनेक प्रकार के दूसरे इष्टों की पूजा और भक्ति त्यागकर उस एक, अनादि और अविनाशी परमात्मा की पूजा और भक्ति का सन्देश देते हैं जो माया से अलिप्त है तथा जन्म-मरण से परे और ऊपर है। आप समझाते हैं कि बाक़ी सब इष्ट काल के दायरे में हैं, इसलिए हमारी पूजा और भक्ति के योग्य केवल एक अमर-अविनाशी अकालपुरुष है। वह कर्ता सर्वव्यापक है। उसका हर मण्डल में निवास है। हर मण्डल उसकी पैदा की हुई दातों से भरपूर है। उस सर्वशक्तिमान को जो कुछ बनाना था, उसने एक ही बार में बना दिया।

28वीं से 31वीं तक की चार पउड़ियों में योगियों द्वारा परमात्मा की प्राप्ति के साधनों की तुलना में परमात्मा की प्राप्ति के सच्चे मार्ग का उल्लेख करने के बाद 32वीं पउड़ी में संकेत करते हैं कि परमात्मा की प्राप्ति का असल साधन परमात्मा के सच्चे नाम का सुमिरन है। परमात्मा के नाम से लिव जोड़कर ही अनादि काल से परमात्मा से बिछुड़ी आत्मा उस एक से अभिन्न होकर द्वैत से एकता में पहुँच सकती है।

33वीं पउड़ी में इशारा करते हैं कि मनुष्य अपने प्रयत्न और अपनी मर्ज़ी से कुछ नहीं कर सकता। जीव का चुप रहना और बोलना, उसका जीना और मरना, उसका माँगना और देना, उसका राज-पाट या धन-दौलत प्राप्त कर सकना, सुरति को बलवान और निर्मल बना सकना या ज्ञान और रूहानी अनुभव प्राप्त कर सकना, उत्तम या नीच बन सकना आदि कुछ भी उसके अपने हाथ में नहीं है। सृष्टि में जो कुछ हो रहा है, उस सर्वशक्तिमान कर्ता की रज़ा के अनुसार हो रहा है।

34वीं पउड़ी में गुरु साहिब सृष्टि के संचालन के लिए परमात्मा द्वारा स्थापित किये गये कर्म और फल के नियम का वर्णन करते हैं। आप समझाना चाहते हैं कि जो व्यक्ति इस नियम की पहचान करके लिव अन्तर में नाम के साथ जोड़ लेता है, उसकी परमात्मा के दरबार की ओर यात्रा शुरू हो जाती है।

35 से 37 तक की तीन पउड़ियों में उन प्रमुख रूहानी मण्डलों का उल्लेख किया गया है जिनको पार करके साधक अन्ततः अपनी मंज़िल सचखण्ड में पहुँच जाता है। इन पउड़ियों में वर्णन रूहानी मण्डलों का है पर लक्ष्य वह परमपिता परमात्मा है। गुरु साहिब परमात्मा के दरबार सचखण्ड के बारे में कहते हैं:

> सच खंडि वसै निरंकारु॥ करि करि वेखै नदरि निहाल॥
> तिथै खंड मंडल वरभंड॥ जे को कथै त अंत न अंत॥
> तिथै लोअ लोअ आकार॥ जिव जिव हुकमु तिवै तिव कार॥
> वेखै विगसै करि वीचारु॥ नानक कथना करड़ा सारु॥

सचखण्ड में पहुँचकर उस निरंकार के साक्षात् दर्शन होते हैं और यह पता चलता है कि बाहरी स्थूल सृष्टि की तरह आन्तरिक सूक्ष्म सृष्टि भी अनन्त, अथाह और असगाह है। न बाहरी स्थूल रचना का कोई आदि और अन्त है और न ही आन्तरिक सूक्ष्म रचना का। वहाँ पहुँचकर यह प्रत्यक्ष अनुभव हो जाता है कि यह सम्पूर्ण सूक्ष्म और स्थूल रचना उस एक निरंकार के हुक्म के अनुसार चल रही है और वह एक इसे अपनी इच्छा के अनुसार चलता देखकर प्रसन्न हो रहा है। वहाँ पहुँचकर रचयिता, रचना और हुक्म का त्रिकोण समाप्त हो जाता है और सबकुछ उस एक का रूप दिखाई देने लग जाता है। पहले यह अवस्था एक ऐसा संकल्प या आदर्श था जिसका आधार विश्वास था। यहाँ पहुँचकर वह विश्वास प्रत्यक्ष अनुभव में बदल जाता है। पहली पउड़ी में प्रभु-प्राप्ति के सच्चे साधन के वर्णन से आरम्भ हुआ सफ़र 37वीं पउड़ी में प्रभु-प्राप्ति के निजी अनुभव के वर्णन से समाप्त हो जाता है।

38वीं पउड़ी में उस सम्पूर्ण रूहानी साधना का वर्णन किया गया है जिसके द्वारा आत्मा, परमात्मा से अपनी अनादि काल की जुदाई को उसके साथ सदा के मिलाप में बदल सकती है। इस पउड़ी के अन्त में कहते हैं:

> घड़ीऐ सबदु सची टकसाल॥ जिन कउ नदरि करमु तिन कार॥
> नानक नदरी नदरि निहाल॥

गुरु नानक साहिब फ़रमाते हैं कि आत्मा को परमात्मा के साथ मिलाप की बड़ाई परमात्मा के नाम या शब्द द्वारा प्राप्त होती है पर शब्द या नाम का अभ्यास केवल वह आत्मा ही कर सकती है, जिस पर उस कर्ता की रहमत होती है। परमात्मा से मिलाप साधना या अभ्यास द्वारा होता है, पर साधना में सफलता का आधार परमात्मा की दया-मेहर है। पहली पउड़ी में बात परमात्मा के हुक्म से शुरू हुई थी। 38वीं पउड़ी में बात परमात्मा की दया पर पहुँच जाती है। यहाँ पहुँचकर पता लगता है कि हुक्म और दया एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। परमात्मा का हुक्म असल में उसकी दया को बाँटने का साधन है और इस हुक्म की पहचान परमात्मा की दया के साथ होती है।

'जपुजी' के आरम्भ में दिये गये श्लोक में परमात्मा रूपी सत्य का वर्णन किया गया है। 'जपुजी' के अन्त में लिखे श्लोक में 'जपुजी' की सम्पूर्ण विचारधारा पर प्रकाश डालते हुए गुरु साहिब फ़रमाते हैं कि परमात्मा द्वारा सृजित सृष्टि कर्म और फल के नियम के अनुसार चल रही है। यहाँ हर जीव को देर-सवेर अपने हर कर्म का फल भोगना पड़ता है। जो लोग इस धरती रूपी धर्मशाला में नाम के साथ लिव जोड़ने का सच्चा धर्म कमाते हैं, वे कर्म और फल और उससे पैदा होनेवाले आवागमन के बन्धन तोड़ लेते हैं। उनको इस लोक में भी सच्चा सुख और सम्मान प्राप्त होता है और वे निर्मल और पवित्र होकर परमात्मा के दरबार में भी पहुँच जाते हैं। ऐसे गुरुमुख स्वयं भी भवसागर से पार हो जाते हैं और उनसे प्रेरणा और मार्ग-दर्शन लेनेवाले अन्य अनगिनत लोग भी उनकी तरह ही रचना के बन्धनों से मुक्त होकर रचयिता से मिलाप करने के योग्य बन जाते हैं।

उपरोक्त व्याख्या से पता चलता है कि सम्पूर्ण 'जपुजी' परमात्मा की महिमा करता है। इसमें सृष्टि को जो भी महत्त्व प्राप्त है, रचयिता की रचना और ऐसी धर्मशाला होने के नाते है, जहाँ जीवात्मा परमात्मा के हुक्म या नाम की पहचान करके परमात्मा से अनन्त काल के वियोग को परमात्मा के स्थायी मिलाप में बदल सकती है। 'जपुजी' की प्रत्येक पउड़ी और प्रत्येक पंक्ति में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से परमात्मा और उसके नाम या हुक्म की ध्वनि गूँजती सुनाई देती है। 'जपुजी' रचयिता से रचना की तरफ़ और रचना से रचयिता की तरफ़ चलता है। यह परमात्मा से आत्मा की तरफ़ और आत्मा से परमात्मा की तरफ़ चलता है। यह परमात्मा की दया से परमात्मा के हुक्म की तरफ़ और परमात्मा के हुक्म से परमात्मा की दया की तरफ़ चलता है। 'जपुजी' परमात्मा से परमात्मा की तरफ़ चलता है।

'जपुजी' और हुक्म

'जपुजी' की पहली चार पउड़ियों पर विचार करते हुए 'हुक्म' के बारे में चर्चा कर आये हैं पर इस विषय के महत्त्व को देखते हुए 'जपुजी' में प्रकट 'हुक्म' के स्वरूप के बारे में गुरु साहिब के विचारों पर पुनः दृष्टि डालते हैं।

हुकमि रजाई चलणा

गुरु साहिब ने 'जपुजी' के आरम्भ में दिये श्लोक में परमात्मा को एकमात्र सत्य स्वीकार किया है। आपने 'जपुजी' की पहली पउड़ी में रचना रूपी कूड़ (असत्य) के मोह में खचित कूड़ियार को परमात्मा रूपी सत्य में अभेद होने का सन्देश दिया है। 'हुकमि रजाई चलणा नानक लिखिआ नालि॥' आप समझाते हैं कि असत्य की दीवार गिराकर सचियार बनने का साधन परमात्मा के हुक्म के अन्दर चलना या उसके हुक्म का पालन करना है। आप 'जपुजी' की 37वीं पउड़ी में सचखण्ड का वर्णन करते हुए कहते हैं:

> सच खंडि वसै निरंकारु॥ करि करि वेखै नदरि निहाल॥
> तिथै खंड मंडल वरभंड॥ जे को कथै त अंत न अंत॥
> तिथै लोअ लोअ आकार॥ जिव जिव हुकमु तिवै तिव कार॥
> वेखै विगसै करि वीचारु॥ नानक कथना करड़ा सारु॥

परमेश्वर के निज-धाम सचखण्ड में अनगिनत खण्ड-ब्रह्माण्ड दिखाई देते हैं। वहाँ पहुँचकर यह समझ आती है कि सारी सृष्टि में उस कर्ता का हुक्म चल रहा है और वह अपनी सृजित सृष्टि को अपने हुक्म के अनुसार चलता देखकर प्रसन्न हो रहा है। 'नानक कथना करड़ा सारु॥' से

यह भाव है कि सचखण्ड में पहुँचकर कर्ता के दर्शन किये जा सकते हैं और उसके हुक्म का चलन भी देखा जा सकता है पर दोनों को ही बयान नहीं किया जा सकता है।

पहली पउड़ी को 37वीं पउड़ी के साथ मिलाकर पढ़ने से स्पष्ट हो जाता है कि 'जपुजी' में प्रकट गुरु साहिब की रहस्यवादी विचारधारा में 'हुक्म' को केन्द्रीय स्थान प्राप्त है। 'जपुजी' गुरु साहिब की विचारधारा के इस बुनियादी अंग पर प्रकाश डालता है कि कूड़ियार से सचियार बनने का साधन परमात्मा के हुक्म की पहचान है और हुक्म की पहचान परमात्मा की रज़ा पर निर्भर है। इस प्रकार 'जपुजी' हुक्म से हुक्म तक फैला हुआ है।

गुरु साहिब ने अपना मूल विचार तो पहली पउड़ी में ही प्रकट कर दिया है, बाकी सारा 'जपुजी' इस विचार का ही विस्तार है।

हुकमै अंदरि सभु को

गुरु साहिब दूसरी पउड़ी में 'हुकम' शब्द को परमात्मा की रज़ा, उसकी सृजनात्मक शक्ति और संसार का संचालन करने के लिए उसके द्वारा सृजित 'विधान', 'नियम' या 'युक्ति' के मिले-जुले अर्थों में प्रयोग करते हुए कहते हैं कि संसार के सब आकार और सब जीव परमात्मा की रज़ा के अनुसार किसी विधि या युक्ति के अनुसार रूप धारण करते हैं और संसार में हर किसी के ऊँचा-नीचा, बड़ा-छोटा, अच्छा-बुरा आदि होने के पीछे भी परमात्मा की रज़ा छिपी होती है। परमात्मा के साथ मिलाप की बड़ाई भी विधि के विधान के अनुसार प्राप्त होती है और जीव के आवागमन के चक्कर के साथ बँधे रहने के पीछे भी विधि या विधान काम कर रहा होता है। आप कहते हैं, 'हुकमु न कहिआ जाई॥' जो कुछ होता है किसी विधि, नियम या विधान के अनुसार ही होता है पर उस विधि, नियम या विधान को मन और बुद्धि द्वारा समझ सकना असम्भव है। जीवात्मा परमात्मा के साथ मिलाप करके उसका दर्शन भी कर सकती है और उसके हुक्म को कार्यान्वित होता हुआ भी देख सकती है पर कर्ता या उसके हुक्म को मन और बुद्धि के स्तर पर समझ सकना और शब्दों

में वर्णन कर सकना असम्भव है। संसार में कुछ भी विवेकहीन नहीं है पर वह विवेक मन और बुद्धि की पहुँच से परे है।

गुरु साहिब का परमेश्वर को 'हुकमी' और 'रजाई' कहना बहुत भावपूर्ण है। वह परमेश्वर इच्छा, रज़ा या हुक्म का रूप है, उसका हुक्म भी उसकी रज़ा से उत्पन्न होता है और उसकी रज़ा या उसका हुक्म उसके समान ही सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापक है।

हुकमी हुकमु चलाए राहु

तीसरी पउड़ी में गुरु साहिब कहते हैं:

गावै को ताणु होवै किसै ताणु॥ गावै को दाति जाणै नीसाणु॥
गावै को गुण वडिआईआ चार॥ गावै को विदिआ विखमु वीचारु॥
गावै को साजि करे तनु खेह॥ गावै को जीअ लै फिरि देह॥
गावै को जापै दिसै दूरि॥ गावै को वेखै हादरा हदूरि॥
कथना कथी न आवै तोटि॥ कथि कथि कथी कोटी कोटि कोटि॥
देदा दे लैदे थकि पाहि॥ जुगा जुगंतरि खाही खाहि॥
हुकमी हुकमु चलाए राहु॥ नानक विगसै वेपरवाहु॥

ऊपर से देखने से इस पउड़ी में 'हुकम' सम्बन्धी केवल एक पंक्ति प्राप्त है पर गहराई से देखने पर पता चलता है कि सारी पउड़ी ही हुक्म से सम्बन्धित है। गुरु साहिब समझा रहे हैं कि इनसान परमात्मा और उसके हुक्म को समझ सकने या वर्णन कर सकने में समर्थ नहीं है। गुरु साहिब बार-बार यह विचार दृढ़ करवाते हैं कि जीवात्मा का अपनी वर्तमान अवस्था में परमात्मा और उसके हुक्म की बड़ाई को समझ सकना सम्भव नहीं पर इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि रचना अपने आप बनी है, अपनी मर्ज़ी से और बिना किसी विधान या नियम के चल रही है। 'हुकमी हुकमु चलाए राहु॥ नानक विगसै वेपरवाहु॥'—वह रचयिता अपनी रची हुई सृष्टि को अपनी रज़ा के अनुसार विशेष ढंग से, विशेष विधान के अनुसार और विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए चला रहा है और

वह हुक्मी अपनी सृजित सृष्टि को अपने हुक्म के अनुसार चल रहा देखकर प्रसन्न होता है।

नानक एवै जाणीऐ

मन में प्रश्न उठता है कि रचयिता, रचना और इसका संचालन-विधान तीनों अकथ हैं तो गुरु साहिब की सम्पूर्ण रूहानी शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य क्या है? गुरु साहिब चौथी पउड़ी में इशारा करते हैं कि कर्ता का वर्णन कर सकना असम्भव है पर उस से मिलाप कर सकना असम्भव नहीं। प्रश्न उत्पन्न होता है कि उससे मिलाप कैसे किया जाये? गुरु साहिब उत्तर देते हैं:

अंम्रित वेला सचु नाउ वडिआई वीचारु॥
करमी आवै कपड़ा नदरी मोखु दुआरु॥
नानक एवै जाणीऐ सभु आपे सचिआरु॥

आप उस कर्ता के हुक्म की पहचान की विधि समझाते हैं। आप कहते हैं कि मन और बुद्धि के द्वारा उस कर्ता की बड़ाई समझने के यत्न त्यागकर उसके नाम से लिव जोड़ो। इस प्रकार उसकी रहमत से आप रचना से मुक्त होकर रचयिता में समाकर उसका रूप हो जाओगे। गुरु साहिब मनुष्य को यह भरोसा दे रहे हैं कि परमात्मा की दया के द्वारा उसके साथ मिलाप भी किया जा सकता है और उसके हुक्म को भी समझा जा सकता है।

गुरा इक देहि बुझाई

पाँचवीं पउड़ी में भी उस हुक्मी की बात चलती है। वह हुक्मी अपने आप से आप है। वह निरंजन माया के लेश से मुक्त है। उससे प्रेम हो जाये तो दु:खों का नाश हो जाता है और सच्चे सुख की प्राप्ति हो जाती है। प्रश्न उठता है कि उसकी प्राप्ति कैसे हो? गुरु साहिब उत्तर देते हैं, 'गुरमुखि नादं गुरमुखि वेदं गुरमुखि रहिआ समाई॥' उस कर्ता की समझ ऐसे पूर्ण गुरुमुख द्वारा होती है जो सच्चे ज्ञान का स्रोत हो और जिसमें शब्द और परमेश्वर समाया हुआ हो। जिसको ऐसे पूर्ण गुरुमुख की शरण

प्राप्त हो जाये, वह देवी-देवताओं और दूसरे इष्टों की पूजा-भक्ति की निर्भरता से मुक्त हो जाता है। ऐसे समर्थ गुरुमुख के आगे क्या विनती करनी चाहिए? 'गुरा इक देहि बुझाई॥ सभना जीआ का इकु दाता सो मै विसरि न जाई॥' गुरु साहिब ऐसे गुरुमुख के आगे केवल एक प्रार्थना करने का उपदेश दे रहे हैं। वह प्रार्थना है: हे सतगुरु! मुझ पर कृपा करके परमात्मा के साथ मिला दो और यह दया भी कर दो कि मैं उस कर्ता को कभी स्वप्न में भी न भूलूँ।

इस पउड़ी में गुरु साहिब यह महत्त्वपूर्ण संकेत करते हैं कि मनुष्य अपनी बल-बुद्धि द्वारा उस सर्वशक्तिमान् और सर्वज्ञ हुक्मी का भेद नहीं पा सकता। ''धुरि खसमै का हुकमु पइआ विणु सतिगुर चेतिआ न जाइ॥''[1] उस कर्ता का अपना हुक्म है कि जब भी उसकी समझ आयेगी, पूरे गुरुमुखों की दया-मेहर से आयेगी।

विणु भाणे कि नाइ करी

चौथी और पाँचवीं पउड़ी में 'नाम' और गुरुमुख की महिमा सुनकर मन में प्रश्न पैदा होता है कि संसार में उस हुक्मी को जानने के जो अनेक साधन प्रचलित हैं, उनका क्या महत्त्व है? गुरु साहिब उत्तर देते हैं, 'तीरथि नावा जे तिसु भावा विणु भाणे कि नाइ करी॥' आप दो शब्दों का प्रयोग कर रहे हैं, 'भावा' और 'भाणे'। जो साधन उस हुक्मी को नहीं भाते हैं या उसकी रज़ा के अनुकूल नहीं हैं, उनका हुक्मी की नज़र में कोई महत्त्व नहीं। वह हुक्मी स्व:शासित है। जीवात्मा उसको अपनी मर्ज़ी के अधीन नहीं कर सकती। इसलिए उसे अपनी मर्ज़ी को उस हुक्मी की रज़ा के अधीन कर देना चाहिए। गुरु साहिब इशारा करते हैं, 'मति विचि रतन जवाहर माणिक जे इक गुर की सिख सुणी॥' अन्य सभी साधनों में से ध्यान निकालकर गुरुमुखों की शिक्षा के अनुसार नाम से लिव जोड़नी चाहिए क्योंकि उस हुक्मी ने अपने साथ मिलाप का यही साधन निश्चित किया है। गुरु साहिब कहते हैं:

जे जुग चारे आरजा होर दसूणी होइ॥
नवा खंडा विचि जाणीऐ नालि चलै सभु कोइ॥
चंगा नाउ रखाइ कै जसु कीरति जगि लेइ॥
जे तिसु नदरि न आवई त वात न पुछै के॥
कीटा अंदरि कीटु करि दोसी दोसु धरे॥
नानक निरगुणि गुणु करे गुणवंतिआ गुणु दे॥
तेहा कोइ न सुझई जि तिसु गुणु कोइ करे॥

इनसान की उम्र चाहे लाखों वर्ष की हो जाये और चाहे उसका त्रिलोकी में नाम हो जाये तो भी परमात्मा की दया के बिना वह उसके दरबार में परवान नहीं हो सकता बल्कि दया और हुक्म से जुदा होने के कारण उसकी हालत कीड़ों के समान हो जाती है।

अन्य यत्नों से लम्बी उम्र और प्रसिद्धि प्राप्त करने में सफल हो सकते हैं पर इस प्रकार न उस कर्ता की दया प्राप्त हो सकती है और न ही आवागमन का चक्कर समाप्त हो सकता है। 'कीटा अंदरि कीटु करि दोसी दोसु धरे॥' परमात्मा के हुक्म को भूलने से बड़ा और दोष कोई नहीं। गुरुमुख और नाम को भुलाने वाला जीव, उस सर्वशक्तिमान और सर्वज्ञ परमेश्वर को अपनी इच्छा के अधीन करने का यत्न करता है, परिणाम स्वरूप उसकी हालत बद से बदतर होती जाती है।

सुणिऐ, मंनै

पहली सात पउड़ियों में हुक्मी और हुक्म की महिमा वर्णन करके और हुक्मी और हुक्म की पहचान की युक्ति समझाकर गुरु साहिब उस युक्ति के अनुसार लिव नाम से जोड़कर नाम में अभेद हो जानेवाले साधक की अद्‌भुत अवस्था पर प्रकाश डालते हैं। दूसरे शब्दों में आप हुक्मी के हुक्म का पालन करनेवाले साधक की अवस्था का वर्णन करके हुक्मी के हुक्म का पालन करने की प्रेरणा दे रहे हैं।

8 से 15 तक आठ पउड़ियों का केवल 'जुपजी' को ही नहीं, गुरु साहिब की सम्पूर्ण रहस्यवादी विचारधारा को भली-भाँति समझने के लिए विशेष महत्त्व है। गुरु साहिब इन पउड़ियों द्वारा जीव को यह भरोसा दिलाते हैं कि मन में यह डर पालते रहने के बजाय कि परमात्मा और उसके हुक्म को जान सकना असम्भव है, जीवात्मा को पूरा ध्यान नाम की कमाई की ओर लगाना चाहिए। वर्तमान अवस्था में जीवात्मा के लिए हुक्म का व्यावहारिक अर्थ जीवन के हर प्रकार के हालात को कुल मालिक की रज़ा या मौज मानते हुए, मन का सन्तुलन बनाये रखना है क्योंकि अगर दुःखों में बह जायेंगे या सुखों में खचित हो जायेंगे तो कभी भी मालिक की भक्ति या नाम की कमाई नहीं कर सकेंगे।

सचखण्ड में विराजमान परमात्मा निर्लेप और निराकार है, पर वह नाम द्वारा कर्ता, प्रतिपालक, रक्षक और मुक्तिदाता होकर रचना के कण-कण में समा रहा है। नाम ही परमात्मा की रज़ा और दया का रूप बन कर कार्यान्वित होता है। परमात्मा जो कुछ करता है, अपनी सृजनात्मक शक्ति नाम द्वारा करता है। उसके हुक्म का कार्यान्वयन नाम द्वारा होता है और उसकी दया का कार्यान्वयन भी नाम द्वारा होता है।

ये आठ पउड़ियाँ जीवात्मा को भरोसा दिलाती हैं कि जिस परमात्मा को हम अलख, अगम और अकथ कहते हैं, वह वास्तव में हमसे दूर भी नहीं है और हमारी पहुँच से बाहर भी नहीं है। स्कूल की पहली कक्षा में दाख़िल हुए विद्यार्थी को बी. ए., एम. ए. की डिग्री अपनी पहुँच से बाहर प्रतीत होती है पर उसका यह डर वास्तव में निर्मूल होता है। ज्यों-ज्यों उसकी चेतना विकसित होती है, ऊँची से ऊँची विद्या उसकी पहुँच में आती जाती है। इसी प्रकार ज्यों-ज्यों नाम के अभ्यास द्वारा साधक की चेतना विकसित होती जाती है, न केवल रचना के सारे रहस्य उस पर खुलते जाते हैं बल्कि वह उस रचयिता के भी समीप होता जाता है। 'सुणिऐ सिध पीर सुरि नाथ॥', 'मंनै सुरति होवै मनि बुधि॥ मंनै सगल भवण की सुधि॥', 'मंनै पति सिउ परगटु जाइ॥' आदि सब संकेत जीवात्मा को भरोसा दिलाते हैं कि परमात्मा ऐसा कठोर-हृदय पिता नहीं

है, जिसने अपने रहस्य और अपना सामर्थ्य केवल अपने तक ही छिपा रखा हो। दयालु पिता केवल इस इन्तज़ार में है कि उसकी सन्तान, मनमर्ज़ी की राह छोड़कर उसकी रज़ा में आ जाये। 'मंनै परवारै साधारु॥ मंनै तरै तारे गुरु सिख॥' जब पुत्र पिता की रज़ा के अनुसार उसके नाम से लिव जोड़ लेता है तो उसको रचना की पहेली भी समझ में आ जाती है, उसका रचयिता से मिलाप भी हो जाता है और उसको अन्य अनगिनत जीवों को हुक्मी के हुक्म की पहचान करवाकर परम पद प्राप्त करवा सकने का सामर्थ्य भी प्राप्त हो जाता है।

जो तुधु भावै साई भली कार

सोलहवीं पउड़ी में 'पंच' के अर्थ गुरुमुख किये जायें तो नाम की कमाई द्वारा परमात्मा के दरबार में पहुँचकर परवान हो चुके महापुरुषों की बढ़ाई सामने आती है। अगर 'पंच' के अर्थ पाँच शब्द किये जायें तो परमात्मा के दरबार में पहुँचाने वाले पाँच शब्दों की महिमा उभरती है। 'जे को कहै करै वीचारु॥ करते कै करणै नाही सुमारु॥' गुरु साहिब फिर उस हुक्मी और उसके हुक्म द्वारा सृजित रचना को अनन्त और अकथ कह रहे हैं। आप कहते हैं कि जिस कर्ता ने अपने हुक्म की तेज़ चल रही कलम से अनेक प्रकार की रचना की है, उसकी शक्ति, उसकी सुन्दरता और उसकी दातों का हिसाब कर सकना किसी के वश में नहीं है। आप कहते हैं:

कीता पसाउ एको कवाउ॥ तिस ते होए लख दरीआउ॥
कुदरति कवण कहा वीचारु॥ वारिआ न जावा एक वार॥
जो तुधु भावै साई भली कार॥ तू सदा सलामति निरंकार॥

आप फ़रमाते हैं कि वह हुक्मी कर्ता, अपर-अपार सामर्थ्य का मालिक है। उसके आश्चर्यमय सामर्थ्य का तनिक-सा इशारा इस बात से मिलता है कि उसने अपने हुक्म के द्वारा एक बार में ही इस विशाल, रंग-बिरंगी और अगम-अथाह सृष्टि की रचना कर दी। 'कवाउ' शब्द को हुक्म के अर्थों में प्रयोग करते हुए गुरु साहिब रचना के अस्तित्व में आने

की प्रक्रिया पर प्रकाश डाल रहे हैं। जिस बात को वैज्ञानिक सैकड़ों वर्षों से, बेशुमार धन ख़र्च करके और अनेक प्रकार की प्रयोगशालाएँ बनाकर समझने का यत्न करते चले आ रहे हैं, गुरु साहिब ने बड़े सहजभाव और सरल ढंग से उसका वर्णन कर दिया है। जहाँ विज्ञान आज तक नहीं पहुँच सका, गुरु साहिब उससे भी आगे जाते हैं। आप समझा रहे हैं कि जब परमात्मा की सृष्टि की रचना करने की मौज या रज़ा हुई तो उसने अपने अन्दर स्थित अथाह शक्ति को कार्यशील कर दिया, जिससे अनन्त, अथाह सृष्टि, विकास की अनगिनत और असीम सम्भावनाओं सहित अस्तित्त्व में आ गयी। 'जो तुधु भावै साई भली कार॥' के द्वारा आप परमेश्वर के किये हुए हर कार्य को अच्छा या ठीक समझने और जीवन के हर तरह के हालात में परमात्मा के भाणे में राज़ी रहने का उपदेश दे रहे हैं।

जिव फुरमाए तिव तिव पाहि

सत्रहवीं से उन्नीसवीं तक तीन पउड़ियाँ फिर उस हुक्मी कर्ता द्वारा सृजित अनन्त प्रकार की रंग-बिरंगी रचना का उल्लेख करती हैं। तीनों पउड़ियों के ही अन्त में 'कुदरति कवण कहा वीचारु॥ वारिआ न जावा एक वार॥ जो तुधु भावै साई भली कार॥ तू सदा सलामति निरंकार॥' की ध्वनि गूँजती है। आप बार-बार परमात्मा की अथाह शक्ति और उसके उसी के समान सर्वशक्तिमान् भाणे का उल्लेख करते हैं। उन्नीसवीं पउड़ी के अन्त में कहते हैं:

अखरी नामु अखरी सालाह॥ अखरी गिआनु गीत गुण गाह॥
अखरी लिखणु बोलणु बाणि॥ अखरा सिरि संजोगु वखाणि॥
जिनि एहि लिखे तिसु सिरि नाहि॥ जिव फुरमाए तिव तिव पाहि॥
जेता कीता तेता नाउ॥ विणु नावै नाही को थाउ॥
कुदरति कवण कहा वीचारु॥ वारिआ न जावा एक वार॥
जो तुधु भावै साई भली कार॥ तू सदा सलामति निरंकार॥

सोलहवीं पउड़ी में 'कीता पसाउ एको कवाउ' की ओर इशारा है। उन्नीसवीं पउड़ी में 'जेता कीता तेता नाउ॥ विणु नावै नाही को थाउ॥'

की ओर इशारा कर रहे हैं। परमेश्वर की रज़ा द्वारा उसकी नाम रूपी शक्ति ने न केवल सम्पूर्ण सृष्टि ही रची है बल्कि वह शक्ति सृष्टि के कण-कण में समाकर इसका आधार भी बन गयी है। इस प्रकार परमेश्वर की रज़ा नाम के रूप में कार्यशील हुई और नाम सृष्टि के कण-कण में समा गया। गुरु साहिब इस रहस्य पर प्रकाश डाल रहे हैं कि प्रभु की रज़ा द्वारा प्रकट सृष्टि के कण-कण में प्रभु की रज़ा कार्यशील है। सृष्टि के वर्तमान स्वरूप का कारण प्रभु की रज़ा है और इसके संचालन के लिए बनाये गये नियमों का आधार भी प्रभु की रज़ा है। प्रभु इच्छा-रूप है और सृष्टि में कुछ भी ऐसा नहीं, जिसमें उसकी इच्छा काम न कर रही हो।

आपे बीजि आपे ही खाहु

उन्नीसवीं पउड़ी में यह बता चुके हैं कि सृष्टि की रचना करके नाम इस के ज़र्रे-ज़र्रे में समा गया है। बीसवीं पउड़ी में गुरु साहिब पहला इशारा यह करते हैं: 'भरीऐ मति पापा कै संगि॥ ओहु धोपै नावै कै रंगि॥' नाम केवल सृष्टि का रचयिता ही नहीं है, पापों की मैल धोकर जीवात्मा को निर्मल बना कर, मालिक के हुक्म की पहचान करवाने वाला साधन भी है। आप दूसरा इशारा यह करते हैं:

> पुंनी पापी आखणु नाहि॥ करि करि करणा लिखि लै जाहु॥
> आपे बीजि आपे ही खाहु॥ नानक हुकमी आवहु जाहु॥

आप कहते हैं कि पुण्य और पाप केवल कहने-सुनने की बातें नहीं हैं। कर्म और फल का नियम सृष्टि के संचालन के लिए हुक्मी परमेश्वर द्वारा स्थापित विधान का अभिन्न और आवश्यक अंग है। आवागमन या पुनर्जन्म का नियम भी इस विधान का ही अंग है।

गुरु साहिब ने दूसरी पउड़ी में 'हुकमी उतमु नीचु', 'हुकमि लिखि दुख सुख पाईअहि' और 'इकना हुकमी बखसीस इकि हुकमी सदा भवाईअहि॥' की ओर इशारा किया था। इस विचार को बीसवीं पउड़ी में प्रकट उपरोक्त विचार के साथ जोड़ने से पता चलता है कि जीवों के उत्तम या नीच, ऊँचा

या नीचा होने का कारण भी उनके कर्म हैं और उनके आवागमन के जाल में बँधे रहने का कारण भी उनके कर्म हैं। 'कर्म और फल' तथा 'आवागमन' का विधान परमेश्वर ने बनाया है पर मनुष्य का भाग्य उसके अपने कर्मों पर आधारित होता है। दूसरे शब्दों में परमेश्वर का हुक्म भाग्य के रूप में प्रकट होता है। इस प्रकार गुरु साहिब परमात्मा के हुक्म द्वारा अस्तित्व में आयी सृष्टि में उसकी रज़ा द्वारा लागू कर्म और फल के नियम की ओर ध्यान खींच रहे हैं। आप जीवात्मा को सचेत करना चाहते हैं कि कर्म और फल का नियम कोरी कल्पना, अनुमान या विचार न होकर एक वास्तविकता है। जब कर्ता की दरगाह में पहुँचकर कर्म और फल के नियम की अटलता का भेद खुलता है तो जीवात्मा को बहुत पश्चात्ताप होता है।

आपे जाणे सोई

इक्कीसवीं पउड़ी में तीन इशारे मिलते हैं: 1. 'अंतरगति तीरथि मलि नाउ॥' मन-आत्मा पर चढ़ी मैल उतारने का साधन परमात्मा का नाम है और नाम हरएक के अन्दर है। 2. 'सुअसति आथि बाणी बरमाउ॥' माया भी परमात्मा की रचना है, वाणी, शब्द या नाम भी परमात्मा का रूप है और सृष्टि की रचना करनेवाली शक्ति भी परमात्मा का रूप है। आपने द्वैत के भाव को पूरी तरह रद्द कर दिया है। 3. जा करता सिरठी कउ साजे आपे जाणै सोई॥ लोग सृष्टि की रचना के समय के बारे में अनेक प्रकार के विचार प्रकट करते हैं पर इसकी वास्तविकता का ज्ञान केवल उस कर्ता को है जिसने अपने हुक्म द्वारा इसका सृजन किया है।

बंदि खलासी भाणै होइ

बाईसवीं से छब्बीसवीं तक पाँच पउड़ियों में भी रचयिता और उसकी रचना के अगम-अथाह होने का भाव दृढ़ करवाया गया है। पच्चीसवीं पउड़ी में कहते हैं, 'बंदि खलासी भाणै होइ॥ होरु आखि न सकै कोइ॥' दूसरी पउड़ी में 'इकना हुकमी बखसीस इकि हुकमी सदा भवाईअहि॥' का जो भाव दर्शाया गया है, वही भाव यहाँ दोहरा रहे हैं। छब्बीसवीं

पउड़ी में एक और सुन्दर संकेत करते हैं, 'जेवडु भावै तेवडु होइ॥ नानक जाणै साचा सोइ॥' आप कहते हैं कि परमात्मा अपनी मर्ज़ी के अनुसार बड़ा हो सकता है और अपनी बड़ाई वह बड़ा आप ही जानता है। यहाँ भी उस हुक्मी और उसकी रज़ा की बड़ाई का वर्णन कर रहे हैं।

जो तिसु भावे सोई करसी

सत्ताईसवीं पउड़ी में कहते हैं कि ऋषियों-मुनियों, सिद्धों-नाथों, देवी-देवताओं सहित अनेक प्रकार की रचना परमात्मा का यश गा रही है। आप पउड़ी के अन्त में कहते हैं:

करि करि वेखै कीता आपणा जिव तिस दी वडिआई॥
जो तिसु भावै सोई करसी हुकमु न करणा जाई॥
सो पातिसाहु साहा पातिसाहिबु नानक रहणु रजाई॥

परमात्मा जो कुछ करता है अपनी रज़ा के अनुसार करता है। सारी सृष्टि उसके हुक्म के अधीन है पर वह शहँशाह किसी दूसरे के हुक्म के अधीन नहीं है। इस प्रकार इस पउड़ी में भी उस हुक्मी और उसके हुक्म की ही महिमा की ध्वनि गूँजती है।

जिव तिसु भावै तिवै चलावै

अट्ठाईसवीं से इकतीसवीं तक चार पउड़ियाँ योगियों को सम्बोधित करके लिखी गयी हैं पर हर पउड़ी के अन्त में 'आदि अनीलु अनादि अनाहति' द्वारा उस हुक्मी परमेश्वर की उपमा की गयी है। उनतीसवीं पउड़ी में 'संजोगु विजोगु दुइ कार चलावहि लेखे आवहि भाग॥' द्वारा सृष्टि के संचालन-विधान में चल रहे संयोग और वियोग के नियम का उल्लेख कर रहे हैं। तीसवीं पउड़ी में कहते हैं:

एका माई जुगति विआई तिनि चेले परवाणु॥
इकु संसारी इकु भंडारी इकु लाए दीबाणु॥
जिव तिसु भावै तिवै चलावै जिव होवै फुरमाणु॥

माया और माया द्वारा सृजित तीनों देवता—ब्रह्मा, विष्णु और शिवजी—उस हुक्मी के हुक्म के अधीन अपना-अपना कार्य कर रहे हैं।

नानक नदरी पाईऐ

बत्तीसवीं पउड़ी में उस कर्ता के नाम के सुमिरन की बड़ाई का वर्णन करके पउड़ी के अन्त में कहते हैं, 'नानक नदरी पाईऐ कूड़ी कूड़ै ठीस॥' परमेश्वर की प्राप्ति, परमेश्वर की दया द्वारा ही सम्भव है, इनसान के वश में कुछ भी नहीं है। यहाँ 'दया' शब्द द्वारा रज़ा का ही भाव दर्शाया गया है। परमेश्वर की रज़ा और उसकी दया एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

जोरु न जीवणि मरणि नह जोरु

तैंतीसवीं पउड़ी में कहते हैं:

आखणि जोरु चुपै नह जोरु॥ जोरु न मंगणि देणि न जोरु॥
जोरु न जीवणि मरणि नह जोरु॥ जोरु न राजि मालि मनि सोरु॥
जोरु न सुरती गिआनि वीचारि॥ जोरु न जुगती छुटै संसारु॥
जिसु हथि जोरु करि वेखै सोइ॥ नानक उतमु नीचु न कोइ॥

इस पउड़ी में भी ज़ोर (जोरु) शब्द एक तरफ़ इनसान की मर्ज़ी का और दूसरी तरफ़ परमात्मा की रज़ा का ही भाव दृढ़ करवा रहा है। गुरु साहिब समझा रहे हैं कि इनसान के वश में कुछ भी नहीं है। जो कुछ हो रहा है, उस परमेश्वर के हुक्म या रज़ा के अनुसार हो रहा है।

नानक गइआ जापै जाइ

गुरु साहिब ने बीसवीं पउड़ी में कर्म और फल के नियम की ओर इशारा किया है। आप चौंतीसवीं पउड़ी में धरती को ऐसी धर्मशाला कहते हैं जिसमें अनेक रूप-रंग वाले और अनेक ढंग से जीवन व्यतीत करनेवाले जीव विचर रहे हैं। आप कहते हैं:

करमी करमी होइ वीचारु॥ सचा आपि सचा दरबारु॥
तिथै सोहनि पंच परवाणु॥ नदरी करमि पवै नीसाणु॥
कच पकाई ओथै पाइ॥ नानक गइआ जापै जाइ॥

आप सृष्टि के अनेक प्रकार के मनुष्यों को दो भागों में बाँटते हैं। एक वे जो परमात्मा की दया द्वारा नाम से लिव जोड़कर उससे मिलाप कर लेते हैं। दूसरे वे हैं जिन्होंने नाम को भुलाया हुआ है और इस कारण उन्हें अपने किये हुए कर्मों का फल भुगतना पड़ता है। इस प्रकार इस पउड़ी में प्रभु की रज़ा से उत्पन्न कर्म और फल के नियम को और विस्तार दे रहे हैं।

जिव जिव हुकमु तिवै तिव कार

पैंतीसवीं से सैंतीसवीं तक तीन पउड़ियों में उन रूहानी मण्डलों की झाँकी पेश की गयी है जिनमें से नाम की कमाई करनेवाले साधक गुज़रते हैं। 'सुणिऐ' और 'मंनै' की आठ पउड़ियों में नाम की साधना द्वारा प्राप्त होनेवाले अलौकिक फल बयान किये गये हैं और पैंतीसवीं से सैंतीसवीं पउड़ी तक नाम की कमाई करनेवाले साधुओं की रूहानी यात्रा का दृश्य पेश किया गया है। सैंतीसवीं पउड़ी के अन्त में गुरु साहिब कहते हैं:

सच खंडि वसै निरंकारु॥ करि करि वेखै नदरि निहाल॥
तिथै खंड मंडल वरभंड॥ जे को कथै न अंत न अंत॥
तिथै लोअ लोअ आकार॥ जिव जिव हुकमु तिवै तिव कार॥
वेखै विगसै करि वीचारु॥ नानक कथना करड़ा सारु॥

सचखण्ड में पहुँचकर उस निराकार के दर्शन होते हैं और सम्पूर्ण रचना उसके हुक्म की डोर में पिरोयी हुई नज़र आती है। वर्तमान अवस्था में हम संशय का रूप हैं। हम पूछते हैं: मालिक ने सृष्टि की रचना क्यों और कैसे की? यह सारी कायनात एक कर्ता के हुक्म में कैसे चल रही है? उस कर्ता ने आत्मा को सचखण्ड से इस मातलोक में क्यों भेजा? वह कर्ता अपने से बिछुड़ी आत्मा को पुनः अपने साथ कैसे मिलाता है?

ऐसे अनेक प्रश्न हमें बेचैन करते हैं। सचखण्ड में पहुँचकर हर प्रकार के प्रश्न और शंकाएँ शान्त हो जाती हैं। आत्मा, विचार और अनुमान की सीमा पार करके प्रत्यक्ष अनुभव के देश में पहुँच जाती है। यह द्वैत, अज्ञानता और हौंमैं से मुक्त हो जाती है। उस अवस्था में यह सहज-ज्ञान, सहज-आनन्द और सहज-प्रेम का ही नहीं, दैवी-रज़ा का भी रूप बन जाती है। फिर इसे परमेश्वर का किया हर काम उचित और उत्तम प्रतीत होता है और यह विस्मित होकर पुकार उठती है:

चहु दिसि हुकमु वरतै प्रभ तेरा चहु दिसि नाम पतालं॥
सभ महि सबदु वरतै प्रभ साचा करमि मिलै बैआलं॥[2]

जिन कउ नदरि करमु तिन कार

अड़तीसवीं पउड़ी में गुरु साहिब अपनी विचारधारा का सार समझाते हुए निर्मल रहनी, धैर्य, ज्ञान, सही युक्ति, भउ, तपस्या, प्रेम और शब्द की कमाई का महत्त्व समझाकर अन्त में कहते हैं, 'जिन कउ नदरि करमु तिन कार॥ नानक नदरी नदरि निहाल॥' आप कहते हैं कि उपरोक्त गुणों को धारण करके प्रभु से मिलाप करने की बड़ाई उसकी दया-मेहर द्वारा प्राप्त होती है।

स्पष्ट है कि सैंतीसवीं पउड़ी में की गयी हुक्म की महिमा अड़तीसवीं पउड़ी में दया की महिमा में बदल जाती है। आपका भाव है कि परमात्मा का हुक्म उसकी दया-मेहर से भरपूर है। वर्तमान अवस्था में जीवन मुश्किलों, संकटों, दुःखों, कष्टों का रूप नज़र आता है पर सचखण्ड में पहुँचकर पता लगता है कि उस दयालु प्रभु का कोई भी कार्य दया-मेहर से ख़ाली नहीं है और उस हुक्मी के हर कार्य में उसकी दया छिपी होती है।

जिनी नामु धिआइआ

'जपुजी' के अन्त में दिये गये श्लोक में गुरु साहिब फिर इस बात पर ज़ोर देते हैं कि इस धरती धर्मशाल में कर्म और फल का नियम लागू है। जो लोग परमात्मा के हुक्म की पहचान द्वारा उसके नाम से ध्यान जोड़

लेते हैं, वे रचना से मुक्त होकर रचयिता के साथ मिल जाते हैं। वे ख़ुद भी तर जाते हैं और अनेक लोगों के लिए भी प्रेरणा और मुक्ति का साधन बन जाते हैं। इस प्रकार पहली पउड़ी से अन्तिम श्लोक तक 'जपुजी' परमात्मा के हुक्म की महिमा करता हुआ उस हुक्म की पहचान की विधि और उससे होनेवाले परमार्थी लाभ पर प्रकाश डालता है। स्पष्ट है कि शुरू से अन्त तक जपुजी में हुक्म की ही ध्वनि गूँजती है।

हुक्म और आज़ादी

अक्सर सन्देह व्यक्त किया जाता है कि सबकुछ परमात्मा के हुक्म के अनुसार होता है तो जीव को भी कुछ आज़ादी प्राप्त है या नहीं और जीव के कर्म का क्या महत्त्व है? जीव को प्राप्त आज़ादी के बारे में पहले भी चर्चा कर आये हैं। असल सवाल तो यह है कि जीव आज़ादी की माँग क्यों करता है और वह किस चीज़ की आज़ादी चाहता है? पूर्ण आज़ादी केवल रचयिता को ही हो सकती है, रचना को नहीं। जो न अपना कर्ता है, न जगत् का कर्ता है और न ही जगत् के संचालन के लिए बनाये गये विधान या नियमों का कर्ता है, वह आज़ादी की आशा कैसे रख सकता है? खूँटे से बँधा हुआ पशु उतनी दूर तक ही जा सकता है, जितनी लम्बी रस्सी उसके मालिक ने उसके गले में डाली हुई है। इनसान को भी केवल उतनी ही आज़ादी हो सकती है जितनी कि मालिक उसको देता है। उदाहरण के तौर पर ताश के पत्ते इच्छानुसार नहीं मिलते पर खेल इच्छानुसार खेला जा सकता है। ज़मीन और मौसम इच्छानुसार नहीं हो सकते पर बीज, खाद, पानी और गुड़ाई मर्ज़ी मुताबिक हो सकते हैं। देश, क़ौम, जाति, माता-पिता, बहन-भाई, विद्या, पद, परिस्थितियाँ और साधन अपनी मर्ज़ी के नहीं हो सकते पर इनका उपयोग अपनी मर्ज़ी के अनुसार किया जा सकता है। रचना की ओर से देखने पर कुछ आज़ादी प्रतीत होती है पर सचखण्ड से नीचे की ओर देखते है तो सब कुछ हुक्म का खेल दिखाई देता है।

हम आध्यात्मिक विचारधारा को पूरी तरह से स्वीकार कर सकते हैं या अस्वीकार कर सकते हैं। जो लोग इस विचारधारा को स्वीकार करते

हैं, उनके लिए यह बात समझ लेनी ज़रूरी है कि सृजित जगत् में केवल रचयिता की रज़ा ही चल सकती है। सर्वशक्तिमान् दो नहीं हो सकते, इसलिए सृजित जगत् में दो रज़ाएँ कार्यशील नहीं हो सकतीं, दो हुक्म नहीं चल सकते। या परमात्मा है ही नहीं और या जो कुछ हो रहा है उसका किया हो रहा है। इसी प्रकार यह भी कह सकते हैं कि या परमात्मा सर्वज्ञ नहीं है या वह कुछ भी ग़लत नहीं कर सकता।

हम आज़ादी क्यों चाहते हैं

दूसरा प्रश्न यह है कि हम आज़ादी चाहते क्यों हैं? आदम और हव्वा के दृष्टान्त में यह विचार पढ़ चुके हैं कि जब आदम और हव्वा ने शैतान या मन का कहा मानकर उस कर्ता के हुक्म की उल्लंघना की तो उन्होंने एक प्रकार से परमात्मा की शक्ति, उसके ज्ञान, उसके प्रेम और उसकी दया में अविश्वास प्रकट कर दिया। क्या हमारी आज़ादी की माँग भी इस भाव की सूचक नहीं है कि हम परमेश्वर से अधिक बुद्धिमान हैं? उसके बेटे-बेटियाँ होने के नाते हमें यह पूर्ण भरोसा क्यों नहीं है कि वह हमारी रक्षा कर सकने में पूरी तरह सक्षम है; उसको पूर्ण ज्ञान है कि हमारा असल भला किस बात में है; उसको हमारे साथ इतना प्रेम है कि वह कभी भी, कुछ भी ऐसा नहीं कर सकता जिससे हमारा नुक़सान होता हो और उसका कोई कार्य दया-मेहर से ख़ाली नहीं हो सकता। परमेश्वर के अस्तित्व में विश्वास न होने की बात समझी जा सकती है पर परमेश्वर में विश्वास प्रकट करना और आज़ादी की माँग करना परस्पर विरोधी बातें हैं।

इस बात पर एक और दृष्टि से भी विचार करते हैं। परमात्मा ने हमें कौन-सी चीज़ नहीं दी है, जो हम अपनी मर्ज़ी से लेना चाहते हैं? मनुष्य-जन्म की अमूल्य दात भी जाने दें, सृष्टि के अनन्त भण्डारों की दात भी जाने दें, परमात्मा ने तो हमें परमात्मा बन सकने का सामर्थ्य भी बख़्शा है और इनसान से भगवान बनने के लिए ऊँच-नीच, बड़े-छोटे, अमीर-ग़रीब, अनपढ़-विद्वान, औरत-मर्द, हिन्दू-मुस्लिम आदि किसी प्रकार की शर्त भी नहीं रखी। इतिहास पर नज़र डालने से पता चलता है

कि मेहनत और मज़दूरी करनेवाले, कपड़ा बुननेवाले, कपड़ा बेचनेवाले, जूते गाँठकर गुज़ारा करनेवाले, खेती-बाड़ी करनेवाले ही नहीं, बड़े-बड़े चोर, डाकू, ठग, हत्यारे और कसाई भी अपनी लिव अन्तर में नाम के साथ जोड़कर परमात्मा में अभेद हो गये।

परमात्मा कहता है: अपना ध्यान बाहर से अन्दर करके नाम से जोड़ो और मेरा रूप बन जाओ। जीवात्मा परमात्मा के साथ लिव जोड़कर परमात्मा के समान शक्ति-रूप, ज्ञान-रूप, प्रेम-रूप, दया-रूप और आनन्द-रूप बन सकती है। उस अवस्था को प्राप्त करके यह न केवल ख़ुद द्वैत, हौंमैं, अज्ञान और उनसे पैदा होनेवाले सब दुःखों से सदा के लिए मुक्त हो जाती है बल्कि अन्य अनेक जीवों का उद्धार कर सकने के भी योग्य बन जाती है। हम इससे बड़ी और कौन-सी प्राप्ति के लिए और किस तरह की आज़ादी की माँग करते हैं?

आज़ादी की माँग हौंमैं की उपज है

हमारी अज़ादी की माँग हौंमैं या अज्ञान की उपज है। हमारे आज तक के सारे संकटों का एकमात्र कारण यही है कि हम जबसे रचना में आये हैं, मनमर्ज़ी के कर्म करते आये हैं, जिनका फल भोगने के लिए सदा आवागमन के बन्धनों में जकड़े रहते हैं। कर्म की आज़ादी ही फल भोगने की मजबूरी को जन्म देती है। हमें आवश्यकता कर्म करने की आज़ादी की नहीं, कर्म करने से आज़ाद होने की है। जब अपनी इच्छा को परमात्मा की इच्छा के अधीन कर देते हैं तो कर्मों के फल से भी मुक्त हो जाते हैं।

पूर्ण आज़ादी केवल एक को हो सकती है, दो को नहीं। पूर्ण महात्मा सचखण्ड में पहुँचकर भी एक कर्ता के हुक्म में रहते हैं क्योंकि सबसे बड़ा सामर्थ्य भी उस एक का भाणा मानना है और सबसे बड़ा गुण भी उस एक का हुक्म परवान करना है। गुरु-घर में शिष्यों-सेवकों को 'भला जी', 'भाणा जी' और 'भुल्ला जी' का सरल और सुन्दर उपदेश दिया जाता था। गुरु-घर से मन की मर्ज़ी के विरुद्ध मिले हुक्म को भी अच्छा समझना, सुखों को ही नहीं, दुःखों, कष्टों को भी कुल मालिक की दात

समझकर, हँसकर स्वीकार कर लेना और अपनी मन-बुद्धि के अनुसार अपने आपको सही समझने के बावजूद दूसरे को नीचा दिखाने की बजाय ख़ुद झुक जाना, परमार्थी की रहनी के अभिन्न अंग माने जाते हैं। असल भाव यह है कि जब हम अपने आपको ठीक समझ रहे होते हैं तो यह आवश्यक नहीं कि हम ठीक ही हों और जब किसी बात को दुःखदायी समझ रहे होते हैं तो ज़रूरी नहीं कि वह हमारे अन्तिम भले के लिए न हो। 'भाई बाले वाली जन्म-साखी' में गुरु साहिब सय्यद जलाल को उपदेश देते हैं:

सय्यद जलाल ने पूछा कि गुरुमुख कौन और मनमुख कौन है तो गुरुदेव ने उत्तर दिया, भाई! जो सच्चे परमेश्वर का किया हुआ न फेरे और उसका भाणा माने और उसका हुक्म मीठा करके माने और दुःख-सुख एक समान जाने और हरएक में साईं जानै और सन्तों के अधीन रहे। सुन दरवेश जिन में यह लक्षण हैं उनको गुरुमुख कहते हैं और जो उसके किये पर शक करें, उसके किये को नहीं मानें, वे बेमुख हैं।[3]

सूफ़ियों में दो तरह के दरवेश माने गये हैं, अहले-दुआ और अहले-रज़ा। अहले-रज़ा का दर्ज़ा, अहले-दुआ से बहुत ऊँचा माना जाता है। अहले-दुआ इबादत या भक्ति करते हैं तो एक ख़ुदा की और कुछ माँगते हैं तो एक ख़ुदा से। अहले रज़ा ख़ुदा की इबादत, ख़ुदा के प्रेम के लिए ही करते हैं। वह न तो किसी फल की इच्छा करते हैं और न ही किसी इच्छा की पूर्ति के लिए ही कभी कोई प्रार्थना करते हैं। वह कहते हैं कि ख़ुदा से कुछ माँगना, ख़ुदा में अविश्वास प्रकट करना है क्योंकि जो परमात्मा दे सकता है, वह जान भी सकता है कि क्या देना है और कब देना है। जो परमात्मा जान नहीं सकता, वह दे भी नहीं सकता। सूफ़ी दरवेश कहते हैं कि ख़ुदा के अस्तित्त्व में भरोसा रखना, ख़ुदा के इश्क़ की शुरुआत है और अपनी मर्ज़ी ख़ुदा की रज़ा में फ़नाह कर देना, इस इश्क़ की इन्तहा यानी शिखर है। राबिआ बसरी को किसी ने कहा था कि दरवेश वह है जो दुःख और सुख को समान रूप में मान ले। राबिआ ने कहा कि इस में ख़ुदी या हौंमैं की बू आती है। दरवेश वह है जिसको दुःख और सुख में अन्तर ही महसूस न हो।

गुरु गोबिन्द सिंह जी गुरु तेग़ बहादुर जी के बारे में लिखते हैं, 'सीस दीआ परू सी न उचरी।'[4] गुरु अर्जुन देव जी हर तरह की मुसीबतें सहते हुए भी 'तेरा भाणा मीठा लागे' की मूर्ति बने रहे। कामिल दरवेश ख़ुद ख़ुदा के हुक्म या रज़ा की मूर्ति होते हैं और दूसरों को भी ख़ुदा की रज़ा का पैग़ाम सुनाते हैं। 'कहु कबीर हम धुर के बेदी लाये हुकम हुजूरी।'[5] हज़रत ईसा का कथन है, 'मैं यहाँ अपनी मर्ज़ी करने नहीं आया बल्कि उस मालिक की रज़ा बाँटने आया हूँ जिसने मुझे यहाँ भेजा है।* जब आपको सूली पर चढ़ाया जाना था तो आपने कहा, 'तेरा भाणा पूरा होवे'† ख़ुद इलाही रज़ा के साथ जुड़ना और अपनी शरण में आनेवालों को इलाही रज़ा के साथ जोड़ना ही पूर्ण सन्त-सतगुरु का संसार में आने का असल उद्देश्य होता है।

आज़ादी का ग़लत प्रयोग

गुरु नानक साहिब 'आसा की वार' में उपदेश देते हैं:

> जितु सेविऐ सुखु पाईऐ सो साहिबु सदा सम्हालीऐ॥
> जितु कीता पाईऐ आपणा सा घाल बुरी किउ घालीऐ॥
> मंदा मूलि न कीचई दे लंमी नदरि निहालीऐ॥
> जिउ साहिब नालि न हारीऐ तेवेहा पासा ढालीऐ॥
> किछु लाहे उपरि घालीऐ॥[8]

परमात्मा ने हमें विवेक दिया था कि हम हर बात को दूरदर्शिता से परख कर ऐसे काम करें जिनसे अन्त में हमारा भला हो और जो सदैव आत्मिक सुख का साधन सिद्ध हों पर हमने सामयिक लालसाओं में पड़कर अपना भविष्य बिगाड़ लिया और हमेशा के लिए दुःखी हो गये। परमात्मा ने हमें विवेक दिया था ताकि हम यह समझकर संसार में चलें कि फल केवल कर्म

* I Seek not mine own will, but the will of the father which hath sent me.[6]

† Thy will be done.[7]

के अनुसार ही मिल सकता है और हर कर्म का फल अवश्य भोगना पड़ता है। हमने बुरे कर्मों से भी अच्छे फल की आशा रखनी शुरू कर दी और इस भ्रम का शिकार हो गये कि कर्मों का फल भोगना नहीं पड़ेगा। परमात्मा ने मन-इन्द्रियों को हमारी सेवा के लिए बनाया था पर हम इनके दास बन गये। परमात्मा ने सांसारिक पदार्थ हमें शारीरिक, मानसिक, कलात्मक और आत्मिक विकास के लिए दिये थे पर हमने इन्द्रियों के भोगों को ही अपना दीन-ईमान बना लिया। परमेश्वर ने मित्र-सम्बन्धी और दूसरे साथी दिये थे ताकि हम उनकी संगति में अपने अन्दर प्रेम, सेवा, शील, क्षमा, त्याग, विवेक, नम्रता, परोपकार आदि गुणों का निर्माण कर सकें पर हम नफ़रत, ईर्ष्या, स्वार्थ, काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि विकारों के शिकार हो गये। हमने मित्रों-सम्बन्धियों के मोह-जाल में फँसकर अपने कर्ता को ही भुला दिया और संसार तथा इसके शक़्लों-पदार्थों को उस कर्ता की दात समझने की बजाय, इन्हें ही अपनी सम्पत्ति समझना शुरू कर दिया। परमात्मा ने हमें झूठ और सच में अन्तर समझने की शक्ति (sense of discrimination) दी थी पर हमने झूठे संसार को सच और सच्चे परमेश्वर को झूठ समझ लिया और एक परमात्मा को प्रेम करने की बजाय अनेक इष्टों की पूजा करनी शुरू कर दी। परमात्मा ने हमें इनसान से भगवान बनने का सामर्थ्य बख़्शा था पर हम इनसान से शैतान बन गये।

परमात्मा ने तो हमें कई प्रकार की आज़ादी दी थी पर हमने हर आज़ादी को बन्धन में बदल लिया। कुल मालिक का शुक्र है कि उसने हमें अपनी और दूसरों की आत्मा का नाश करने की आज़ादी नहीं बख़्शी। क्या हम वह आज़ादी भी प्राप्त करना चाहते हैं? गुरु साहिब जपुजी में सन्देश देते हैं कि आपने बहुत देर तक मनमर्ज़ी कर ली है, अब मन को परमेश्वर के हुक्म के अधीन करके उसका फल देखने की भी कोशिश करो।

आज़ादी का वास्तविक अर्थ

आज़ादी का वास्तविक अर्थ क्या है? अपनी प्रत्येक इच्छा पूरी कर सकने की शक्ति। प्रत्येक इच्छा क्यों पूरी करनी चाहते हैं? जब मनमर्ज़ी की

बात हो जाती है तो ख़ुश हो जाते हैं और जब कोई बात मर्ज़ी के विरुद्ध हो जाती है तो दुखी हो जाते हैं। इसलिए यह सोचते हैं कि हर इच्छा पूरी होती जायेगी तो हमेशा ख़ुश रहेंगे। सन्त-महात्मा समझाना चाहते हैं कि इच्छा कर्म को जन्म देती है और कर्म फल को जन्म देता है। फल कर्म के अनुसार मिल सकता है, इच्छा के अनुसार नहीं। इसीलिए महात्मा बुद्ध ने कहा था कि इच्छा ही दुःख का मूल है।

गुरु अर्जुन साहिब की वाणी है, 'इस कै हाथि होइ ता सभु किछु लेइ॥[9]' इनसान का वश चले तो सारी त्रिलोकी को अपनी बाहों में समेट ले। अगर एक इनसान पूरे संसार को अपनी बाहों में समेट लेगा तो किसी अन्य इनसान की कोई इच्छा कैसे पूरी हो सकेगी? चाहे दलीलों के द्वारा विचार लें; चाहे सन्तों की बात मान लें, हर हालत में इसी नतीजे पर पहुँचेंगे कि इच्छा केवल एक की ही चल सकती है, दो की नहीं। हुक्म भी केवल एक ही 'हुकमी' का चल सकता है, किसी दूसरे का नहीं।

अपनी प्रत्येक इच्छा पूरी करने की शक्ति की माँग करना असल में रचयिता की जगह लेने की इच्छा प्रकट करना है। सन्तों-महात्माओं ने परमात्मा या उस के नाम को चिन्तामणि अथवा सभी इच्छाएँ पूर्ण करने का असल साधन स्वीकार किया है। कबीर साहिब की वाणी है, 'भव निधि तरन तारन चिंतामनि इक निमख न इहु मनु लाइआ॥'[10] आप कहते हैं कि हम ऐसे अज्ञानी हैं जो संसार रूपी भवसागर को पार करनेवाले और सभी इच्छाएँ पूरी करनेवाले कर्ता को पल-भर भी याद नहीं करते। गुरु साहिब कहते हैं, 'विणु तुधु होरु जि मंगणा सिरि दुखा कै दुख॥ देहि नामु संतोखीआ उतरै मन की भुख॥'[11] परमात्मा या उसके नाम के बिना अन्य किसी चीज़ की इच्छा करना, दुःखों को न्यौता देना है, जबकि आत्मा को नाम में अभेद करने से सब सुखों का भण्डार मिल जाता है और मन की सब तृष्णाएँ शान्त हो जाती है। 'दाता ओहु न मंगीऐ फिरि मंगणि जाईऐ।'[12] सन्त-महात्मा हमें हमेशा माँगते रहने की मजबूरी से मुक्त करना चाहते हैं। वे घाटे का नहीं, बल्कि लाभ का सौदा करने की युक्ति सिखाते हैं।

सार

गुरु साहिब वाणी के कुछ प्रसंगों में यह भाव दृढ़ करवाते हैं:

हुकमु भी तिन्हा मनाइसी जिन्ह कउ नदरि करेइ॥[13]

नानक हुकमु को गुरमुखि बुझै जिस नो किरपा करे रजाइ॥[14]

आप दूसरे किस्म के प्रसंग में यह भाव दृढ़ करवाते हैं:

हुकमि रजाई चलणा नानक लिखिआ नालि॥[15]

जो तुधु भावै साई भली कार॥ तू सदा सलामति निरंकार॥[16]

भाणे ते सभि सुख पावै संतहु अंते नामु सखाई॥[17]

उपर्युक्त प्रसंगों को मिलाकर पढ़ने से सुझाव मिलता है कि सैद्धान्तिक दृष्टि से यह समझ लेना ज़रूरी है कि हुक्म की पहचान कुल मालिक की रहमत, दया-मेहर या रज़ा पर निर्भर है जबकि व्यावहारिक दृष्टि से यह बात हृदय में बिठा लेनी ज़रूरी है कि हमारा असल भला भाणे में आ जाने में है। और भाणे में आ जाने का असल भाव जीवन के हर तरह के हालात में मन का सन्तुलन क़ायम रखते हुए ध्यान नाम या शब्द के साथ जोड़कर रखना है।

अपनी मर्ज़ी का त्याग

लोग डरते हैं कि अपनी मर्ज़ी को पूरी तरह त्याग देना न केवल अपने अस्तित्त्व को नकार देना है, बल्कि ऐसा करने से भरपूर सार्थक जीवन व्यतीत कर सकना भी असम्भव है पर असलियत इसके विपरीत है। निर्बल और अज्ञानी जीव उस सर्व-शक्तिमान और सर्वज्ञ परमेश्वर की रज़ा के साथ एक-सुर होकर एक शक्तिशाली, ज्ञानपूर्ण, प्रेमपूर्ण और आनन्दपूर्ण जीवन जीने का सामर्थ्य प्राप्त कर लेता है। कतरे का अपनी हस्ती को समुद्र में लीन कर देना, उसकी हस्ती के नाश हो जाने का

नहीं, समुद्र वाली हस्ती प्राप्त कर लेने का सूचक होता है। गुरु अर्जुन साहिब का कथन है, 'पूरा प्रभु आराधिआ पूरा जा का नाउ॥ नानक पूरा पाइआ पूरे का गुन गाउ॥'[18] पूर्ण में समाने से बलि चढ़ती है तो अपूर्णता की, निर्बलता और अज्ञानता की; दीवार (पालि) टूट जाती है तो असत्य की, द्वैत की और हौंमैं की और सौभाग्य प्राप्त हो जाता है, सर्व-समर्थ और सर्वज्ञ हुक्मी में समाकर पूर्ण-पुरुष बन जाने का।

गुरु नानक साहिब का यह संदेश पुस्तक के दूसरे कुछ प्रसंगों में भी पढ़ आये हैं, 'एको नामु हुकमु है नानक सतिगुरि दीआ बुझाइ जीउ॥'[19] आपने नाम के साथ लिव जोड़ने के लिए परमात्मा के द्वारा जीवात्मा को दिया गया एकमात्र हुक्म परवान किया है क्योंकि इस हुक्म की पहचान द्वारा मनुष्य कूड़िआर से सचिआर बन जाता है। गुरु अर्जुन देव जी ने वाणी के उपरोक्त प्रसंग में जीव को नाम के साथ लिव जोड़ने का सन्देश दिया है क्योंकि इससे मनुष्य पूर्ण पुरुष बन जाता है। आत्मा को नाम में अभेद कर चुके साधक को चाहे पूर्ण पुरुष कहो, सचिआर कहो या गुरुमुख कहो, एक ही बात है। गुरु साहिब के सम्पूर्ण उपदेश का सार ही यह है कि जो कोई भी, जब कभी भी, जहाँ कहीं भी सचिआर, गुरुमुख या पूर्ण पुरुष बन सकता है, हुक्म की पहचान द्वारा बन सकता है और हुक्म की पहचान का अर्थ आत्मा को नाम में अभेद करना है।

सार

परमात्मा के अस्तित्त्व में भरोसा रखना परमात्मा की रज़ा की पहचान की शुरुआत है। परमात्मा की भक्ति को जीवन का मूल उद्देश्य मानना, परमात्मा के सिवाय किसी दूसरे की पूजा-भक्ति न करना और ध्यान को अन्तर्मुख करके परमात्मा के नाम के साथ जुड़ने को परमात्मा की एकमात्र सच्ची भक्ति मानना, रज़ा की पहचान की तरफ़ अगला क़दम है। दु:ख-सुख, मान-अपमान, अमीरी-ग़रीबी को समान समझते हुए परमात्मा के नाम के द्वारा अपनी आत्मा, परमात्मा में अभेद कर देना परमात्मा के हुक्म या परमात्मा की रज़ा की पहचान की पूर्णता अथवा शिखर है।

'जपुजी' और नाम

'जपुजी' से पहले दिये गये मूल-मन्त्र का आरम्भ '१ओ सति नामु' से होता है और 'जपुजी' के अन्त में गुरु साहिब ने 'जिनी नामु धिआइआ गए मसकति घालि॥ नानक ते मुख उजले केती छुटी नालि॥' का उपदेश दिया है। इससे पता चलता है कि 'जपुजी' से पहले दर्ज मूल-मन्त्र भी परमात्मा और उसके नाम की स्तुति से शुरू होता है और 'जपुजी' के अन्त में दर्ज श्लोक में भी नाम की स्तुति की गयी है। इस तरह 'जपुजी' का आरम्भ इसके अन्त से जुड़ा हुआ है और दोनों को आपस में जोड़ने वाली कड़ी नाम है।

गुरु साहिब ने 'जपुजी' की पहली पउड़ी में परमात्मा की प्राप्ति के लिए अपनाये जानेवाले शेष सब साधनों को व्यर्थ सिद्ध करके 'हुकमि रजाई चलणा नानक लिखिआ नालि' का उपदेश दिया है। आप एक दूसरे प्रसंग में फ़रमाते हैं, 'नानक हुकमु पछाणि कै तउ खसमै मिलणा॥'[1] इसी तरह आपने यह भी समाझाया है, 'एको नामु हुकमु है नानक सतिगुरि दीआ बुझाइ जीउ॥'[2] स्पष्ट है कि 'हुकमि रजाई चलणा' और 'नानक हुकमु पछाणि कै' से आपका भाव अन्दर नाम के साथ लिव जोड़ना है।

गुरु साहिब ने 'जपुजी' की चौथी पउड़ी में 'साचा साहिबु साचु नाइ' द्वारा प्रभु और नाम को सच्चा कहा है। प्रभु भी अमर और अविनाशी है और उसका नाम भी अमर और अविनाशी है। प्रभु और नाम परिवर्तनरहित हैं। आप इसी पउड़ी में प्रश्न करते हैं कि परमात्मा की प्रसन्नता प्राप्त करने का साधन क्या है? फिर उत्तर देते हैं, 'अंम्रित वेला सचु नाउ वडिआई वीचारु॥' परमात्मा की प्रसन्नता प्राप्त करने का सच्चा साधन उसका सच्चा नाम है। उसकी प्रसन्नता प्राप्त करने या उससे मिलाप करने के इच्छुक को चाहिए कि अमृत वेला में उस सच्चे नाम से लिव जोड़े।

गुरु साहिब पाँचवीं पउड़ी में 'गुरमुखि नादं गुरमुखि वेदं' द्वारा संकेत करते हैं कि गुरुमुखों की हस्ती व ज्ञान का आधार और सार, परमात्मा का नाद, शब्द या नाम है।

गुरु साहिब ने 'जपुजी' की आठवीं से सोलहवीं तक की नौ पउड़ियों में नाम के साथ लिव जोड़ने के अद्‌भुत लाभ बयान किये हैं। आप विस्तारपूर्वक समझाते हैं कि जीवात्मा को विषयों-विकारों, आशाओं-तृष्णाओं और हर प्रकार के पापों से मुक्त करने का साधन सच्चा नाम है। मनुष्य के अन्दर उच्च दिव्य गुण भरनेवाला और उसको आवागमन के जाल से छुड़ाकर परमात्मा में अभेद करनेवाला साधन भी नाम है।

'जपुजी' की उन्नीसवीं पउड़ी में 'जेता कीता तेता नाउ॥ विणु नावै नाही को थाउ॥' द्वारा गुरु साहिब समझाते हैं कि नाम परमात्मा की रचनात्मक शक्ति है। उस सृजनहार ने जो कुछ रचा है, नाम द्वारा रचा है, उसने जो कुछ बनाया है, उसमें नाम व्याप्त है और जो कुछ बना है, वह नाम के सहारे क़ायम है।

बीसवीं पउड़ी में गुरु साहिब कहते हैं, 'भरीऐ मति पापा कै संगि॥ ओहु धोपै नावै कै रंगि॥' आप समझाते हैं कि शरीर की मैल पानी से और वस्त्रों की मैल साबुन से साफ़ होती है पर मन की मैल नाम की कमाई से उतरती है। संसार के निर्मल से निर्मल दरिया और सरोवर का पानी, मन पर चढ़ी अनगिनत जन्मों के कर्मों और संस्कारों की मलिनताएँ नहीं धो सकता। उस मैल को धोने का एकमात्र साधन नाम है। आप 21वीं पउड़ी में नाम को वह सच्चा तीर्थ कहते हैं जिसमें नहाकर जन्म-जन्म की मलिनताएँ उतर जाती हैं और आत्मा निर्मल होकर परमात्मा के साथ मिलाप करने के क़ाबिल बन जाती है।

चौबीसवीं पउड़ी में 'वडा साहिबु ऊचा थाउ॥ ऊचे उपरि ऊचा नाउ॥' द्वारा समझाया गया है कि वह साहिब भी बड़ा और ऊँचा है, उसका निवास-स्थान या निज घर भी बड़ा और ऊँचा है और उसका नाम भी उसकी तरह ही बड़े-से-बड़ा और ऊँचे-से-ऊँचा है। जिस तरह मूल-मन्त्र में 'सतिनामु' पद द्वारा और चौथी पउड़ी में 'साचा साहिबु साचु नाइ' द्वारा परमात्मा और उसके नाम को सत्य कहा है, उसी तरह

चौबीसवीं पउड़ी में परमात्मा और नाम को सबसे बड़ा और सबसे ऊँचा कहकर उसकी महिमा की गयी है क्योंकि नाम परमात्मा का ही रूप है और यह परमात्मा के पूर्ण सामर्थ्य से भरपूर है।

27वीं पउड़ी में 'सो दरु केहा सो घरु केहा जितु बहि सरब समाले॥' द्वारा उस स्थान की महिमा गाते हैं जहाँ बैठकर वह सर्वशक्तिमान परमात्मा अपने द्वारा सृजित कायनात को चला रहा है। इस पउड़ी में 'वाजे नाद अनेक असंखा' द्वारा इशारा करते हैं कि उसके दरबार में शब्द या नाम की अनेक ध्वनियाँ पल-पल हो रही हैं जिस कारण उसके दरबार में अद्‌भुत आनन्द छाया रहता है।

29वीं पउड़ी में योगियों को उपदेश देते हैं, 'भुगति गिआनु दइआ भंडारणि घटि घटि वाजहि नाद॥' ऐ योगियो, तुम शब्द या नाम को सच्चा ज्ञान समझो, दया को भण्डारी बनाओ और बाहरी राग-नाद में से ध्यान निकालकर अपनी लिव अन्दर हर क्षण हो रही परमात्मा के नाम की ध्वनि से जोड़ो। 32वीं पउड़ी में उपदेश दिया गया है:

> इक दू जीभौ लख होहि लख होवहि लख वीस॥
> लखु लखु गेड़ा आखीअहि एकु नामु जगदीस॥
> एतु राहि पति पवड़ीआ चड़ीऐ होइ इकीस॥

आप उपदेश देते हैं कि नाम का सुमिरन जितना अधिक किया जाये, उतना ही कम है क्योंकि नाम से लिव जोड़ने पर ही आत्मा द्वैत, अज्ञान या हौंमैं से मुक्त होकर परमात्मा में लीन हो सकती है। नाम का सुमिरन परमात्मा के महल में पहुँचाने वाली सीढ़ी के समान है।

नाम की उपरोक्त महिमा के बाद गुरु साहिब ने लगातार चार पउड़ियों में ज्ञान-खण्ड, सरम-खण्ड, करम-खण्ड और सच-खण्ड रूपी सूक्ष्म रूहानी मण्डलों का वर्णन करते हुए, इनमें नाम के अद्‌भुत प्रकाश, नाम की अद्‌भुत ध्वनियों और आश्चर्यजनक आनन्द का वर्णन किया है। 38वीं पउड़ी में अपनी विचारधारा का खुलासा करते हुए गुरु साहिब ने

फिर शब्द या नाम रूपी अमृत को आत्मा की घाड़त घड़ने वाला या परमात्मा के साथ मिलाने वाला एकमात्र सच्चा साधन सिद्ध किया है।

गुरु नानक साहिब 'जपुजी' के अन्त में दर्ज श्लोक में अपनी सम्पूर्ण विचारधारा का वर्णन करते हुए कहते हैं:

जिनी नामु धिआइआ गए मसकति घालि॥
नानक ते मुख उजले केती छुटी नालि॥

आपने जीव के चौरासी के दु:खदायक चक्कर से मुक्त होने के लिए किसी प्रकार के बाहरमुखी कर्मकाण्ड की वकालत नहीं की। न आपने जीव को कोई ख़ास धर्म धारण करने का उपदेश दिया है और न ही किसी धर्म का त्याग करने का। आपने न ही घर-गृहस्थ के त्याग की ताक़ीद की है और न ही किसी तरह के हठ-कर्मों की। आपने केवल नाम के साथ लिव जोड़ने की प्रेरणा दी है।

गुरु साहिब ने हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, यहूदी आदि सबको नाम के ध्यान का उपदेश दिया है। जिस देश, जिस क़ौम, जिस धर्म का जो भी व्यक्ति जब भी अन्दर नाम के साथ लिव जोड़ता है, उसकी चौरासी की दु:खदायक भटक समाप्त हो जाती है, वह उज्ज्वल मुख होकर कुल मालिक की दरगाह में पहुँच जाता है और उससे प्रेरणा और अगुवाई प्राप्त कर अन्य अनेक जीव भी कुल मालिक के साथ मिलाप करने का सौभाग्य प्राप्त कर लेते हैं। जिस धर्म, जिस देश, जिस जाति का जो भी व्यक्ति नाम के साथ लिव जोड़ता है, वही गुरु का सच्चा शिष्य है, वही सच्चा प्रभु-भक्त है, वही सच्चा गुरुमुख है और केवल वही परमात्मा के साथ मिलाप की सच्ची बड़ाई का हक़दार बनता है। स्पष्ट है कि 'जपुजी' का सारा उपदेश नाम के गिर्द घूमता है। 'जपुजी' के सम्पूर्ण वर्णन में नाम की ध्वनि गूँजती सुनाई देती है।

गुरु-घर और नाम

गुरु नानक साहिब द्वारा 'जपुजी' में प्रकट किये गये नाम सम्बन्धी विचारों की रोशनी में गुरु-घर की नाम सम्बन्धी सम्पूर्ण विचारधारा को समझना आसान भी होगा और लाभप्रद भी। श्री आदि ग्रन्थ के सम्पादक गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं, 'नानक कै घरि केवल नामु॥'[1] आप 'सुखमनी' की पहली असटपदी में कहते हैं:

सिमरउ जासु बिसुंभर एकै॥ नामु जपत अगनत अनेकै॥
बेद पुरान सिंम्रिति सुधाख्यर॥ कीने राम नाम इक आख्यर॥
किनका एक जिसु जीअ बसावै॥ ता की महिमा गनी न आवै॥[2]

आप उपदेश देते हैं कि उस एक परमात्मा का नाम जपना चाहिए। सब वेद-पुराण और ग्रन्थ-शास्त्र नाम के सुमिरन में से ही बने हैं। जिसके मन में नाम का एक कण भी बस जाता है, उसकी महिमा कहने-सुनने से ऊपर हो जाती है। आप कहते हैं:

सुखमनी सुख अंम्रित प्रभ नामु॥ भगत जना कै मनि बिस्राम॥[3]

सब सुखों में श्रेष्ठ सुख और सबसे ऊँचा और सच्चा अमृत प्रभु का नाम है, जिसका उसके भक्तों के मन में निवास है। गुरु साहिब 'सुखमनी' के अन्त में कहते हैं:

निरमल सोभा अंम्रित ता की बानी॥ एकु नामु मन माहि समानी॥
दूख रोग बिनसे भै भरम॥ साध नाम निरमल ता के करम॥
सभ ते ऊच ता की सोभा बनी॥ नानक इह गुणि नामु सुखमनी॥[4]

आप फ़रमाते हैं कि जिस भाग्यशाली जीव के हृदय में नाम बस जाता है, उसकी वाणी अमृत से भर जाती है। उसके अन्दर से माया, द्वैत, अज्ञान या हौंमैं के पैदा किये सब दु:ख, भय और भ्रम नष्ट हो जाते हैं। वह सच्चा साधु

या गुरुमुख बन जाता है। उसके कर्मों में पूर्ण निर्मलता आ जाती है। उसको लोक-परलोक दोनों में सबसे उत्तम बड़ाई मिल जाती है। गुरु साहिब कहते हैं कि परमात्मा का नाम हर प्रकार के पारमार्थिक गुणों की खान है।

गुरु अमरदास जी अपनी प्रसिद्ध रचना 'अनंदु' में कहते हैं:

वाजे पंच सबद तितु घरि सभागै॥
घरि सभागै सबद वाजे कला जितु घरि धारीआ॥
पंच दूत तुधु वसि कीते कालु कंटकु मारिआ॥
धुरि करमि पाइआ तुधु जिन कउ सि नामि हरि कै लागे॥
कहै नानकु तह सुखु होआ तितु घरि अनहद वाजे॥[5]

आप कहते हैं कि परमात्मा के सच्चे नाम के साथ केवल वही जुड़ सकते हैं, जिन पर वह कुल मालिक दया-मेहर करके धुर-मस्तक में लिखता है। ऐसे भाग्यशाली जीवों के अन्दर शब्द या नाम की पाँच ध्वनियाँ प्रकट हो जाती हैं। शब्द या नाम की कमाई से उनका पाँच विकारों से छुटकारा हो जाता है, उनके लिए काल का जाल सदा के लिए टूट जाता है। उनको अमर-पद प्राप्त हो जाता है और वे परमात्मा में समाकर उसका रूप हो जाते हैं।

गुरु नानक साहिब 'आसा दी वार' की पहली पउड़ी में कहते हैं, 'आपीन्है आपु साजिओ आपीन्है रचिओ नाउ॥'[6] उस परमात्मा ने अपना और नाम का सृजन स्वयं किया है। आप दूसरी पउड़ी में कहते हैं:

नानक जीअ उपाइ कै लिखि नावै धरमु बहालिआ॥
ओथै सचे ही सचि निबड़ै चुणि वखि कढे जजमालिआ॥
थाउ न पाइनि कूड़िआर मुह काल्है दोजकि चालिआ॥
तेरै नाइ रते से जिणि गए हारि गए सि ठगण वालिआ॥
लिखि नावै धरमु बहालिआ॥[7]

उस कर्ता ने सब जीवों की रचना करके उनके कर्मों का हिसाब रखने का कार्य धर्मराज को सौंप दिया है। 'तेरै नाइ रते से जिणि गए'— जो उस परमात्मा के नाम के साथ लिव जोड़ लेते हैं, वे जीवन की बाज़ी

जीतकर निज घर वापस पहुँच जाते हैं और बाकी सब लोग कर्मों का फल भोगने के लिए नरकों की अग्नि में जलते रहते हैं।

'सिध गोसटि' में सिद्ध प्रश्न करते हैं कि संसार-सागर से पार उतरने का क्या साधन है? गुरु नानक साहिब उत्तर देते हैं:

जैसे जल महि कमलु निरालमु मुरगाई नै साणे॥
सुरति सबदि भव सागरु तरीऐ नानक नामु वखाणे॥[8]

आप समझाते हैं कि जिस तरह कमल की जड़ें पानी में होती हैं पर वह स्वयं पानी से ऊपर होता है, जिस तरह मुर्ग़ाबी पानी में रहती है, पर उसके पंख पानी से नहीं भीगते, उसी तरह जो लोग परमात्मा के शब्द या नाम के साथ लिव जोड़ लेते हैं, वे इस मायामय संसार में रहते हुए भी इसकी मलिनताओं से बचे रहते हैं और सहज ही भवसागर से पार हो जाते हैं।

गुरु साहिब की चाहे कोई बड़े आकार वाली वाणी पढ़ लें या कोई छोटे से छोटा शब्द पढ़ लें, प्रत्येक पंक्ति, शब्द या नाम की महिमा करती है। श्री आदि ग्रन्थ का आरम्भ '१ओ सति नामु' से होता है और इसके अन्त में दर्ज 'मुंदावणी' में गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं:

थाल विचि तिंनि वसतू पईओ सतु संतोखु वीचारो॥
अंम्रित नामु ठाकुर का पइओ जिस का सभसु अधारो॥
जे को खावै जे को भुंचै तिस का होइ उधारो॥
एह वसतु तजी नह जाई नित नित रखु उरि धारो॥
तम संसारु चरन लगि तरीऐ सभु नानक ब्रहम पसारो॥[9]

आप उपदेश देते हैं कि शरीर रूपी थाल में तीन अमूल्य पदार्थ पड़े हैं: सत्य, सन्तोष और विवेक। इसके साथ ही इसमें परमात्मा ने अपना नाम रूपी अमृत रखा हुआ है। जो कोई उस अमृत का भोग लगाता है, वह भवसागर से पार हो जाता है और उसका जन्म सफल हो जाता है। आप उपदेश देते हैं कि नाम रूपी अमूल्य वस्तु को कभी किसी हाल में भी भुलाना नहीं चाहिए क्योंकि जीव केवल नाम या शब्द के साथ लिव

जोड़कर ही अज्ञानता और भ्रम के इस संसार से मुक्त होकर परमात्मा के साथ मिलाप कर सकता है। इसके बाद आप अपने इस श्लोक के साथ श्री आदि ग्रन्थ का समापन करते हैं:

तेरा कीता जातो नाही मैनो जोगु कीतोई॥
मै निरगुणिआरे को गुणु नाही आपे तरसु पइओई॥
तरसु पइआ मिहरामति होई सतिगुरु सजणु मिलिआ॥
नानक नामु मिलै तां जीवां तनु मनु थीवै हरिआ॥[10]

'नानक नामु मिलै तां जीवां तनु मनु थीवै हरिआ॥' आप कहते हैं कि मेरे जीवन का आधार नाम है। मन-आत्मा को सच्ची शान्ति, सच्ची ख़ुशी और सच्चा आनन्द प्रदान करनेवाला सार-पदार्थ परमात्मा का नाम है।

नाम दो प्रकार का

गुरु अर्जुन देव जी की वाणी है:

सगल नाम निधानु तिन पाइआ अनहद सबद मनि वाजंगा॥
किरतम नाम कथे तेरे जिहबा॥ सति नामु तेरा परा पूरबला॥[11]

आप जिह्वा द्वारा बोले जानेवाले नामों को 'किरतम नाम' कहते हैं। ये सब नाम मानव-कृत हैं और समय-स्थान की सीमा में हैं। इसके विपरीत अन्दर अनहद शब्द के रूप में सुनाई देनेवाला सच्चा नाम 'परा पूरबला' अर्थात् अनादि और अविनाशी है। वह नाम पढ़ने, लिखने या बोलने का विषय नहीं है। वह नाम बाहरी कानों द्वारा नहीं सुना जाता। उस नाम की ध्वनि अन्दर बजती सुनाई देती है। गुरु साहिबान की वाणी है:

तेरे नाम अनेका रूप अनंता कहणु न जाही तेरे गुण केते॥[12]

हरि हरि नाम असंख हरि हरि के गुन कथनु न जाहि॥[13]

आप समझा रहे हैं कि परमात्मा के अनन्त गुणों के आधार पर उसके अनेक नाम रखे गये हैं। राम, करतार, गिरधारी, मुरारी, दयालु, कृपालु,

राज़क, रहीम, करीम, अल्लाह, ख़ुदा आदि अनन्त नाम परमात्मा के गुणों का उल्लेख करते हैं, इन्हें गुणात्मक या वर्णात्मक नाम भी कहते हैं। इनमें से कोई भी नाम या सभी नाम मिलकर उस प्रभु के गुण बयान नहीं कर सकते क्योंकि वह परमात्मा सब गुणों से परे और ऊपर है। गुरु नानक साहिब का यह कथन पहले भी पढ़ आये हैं:

आपीन्है आपु साजिओ आपीन्है रचिओ नाउ॥
दुयी कुदरति साजीऐ करि आसणु डिठो चाउ॥[14]

गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं:

करम करतूति बेलि बिसथारी राम नामु फलु हूआ॥
तिसु रूपु न रेख अनाहदु वाजै सबदु निरंजनि कीआ॥[15]

जब उस परमात्मा ने एक से अनेक होने का संकल्प किया और अपनी कृपा से अपना विस्तार किया तो परमात्मा रूपी वृक्ष को नाम रूपी फल लगा। वह परमात्मा हर तरह के मायामय रंग-रूप से न्यारा है और उसका नाम भी उसकी तरह ही इन रंगों-रूपों से ऊपर और परे है। उस परमात्मा और उसके नाम का अनुभव अन्दर अनहद शब्द के रूप में होता है। गुरु-घर की वाणी है:

अंतरि अलखु न जाई लखिआ॥ नामु रतनु लै गुझा रखिआ॥[16]

इसु जग महि नामु अलभु है गुरमुखि वसै मनि आइ॥[17]

गुपता नामु वरतै विचि कलजुगि घटि घटि हरि भरपूरि रहिआ॥
नामु रतनु तिना हिरदै प्रगटिआ जो गुर सरणाई भजि पइआ॥[18]

परमात्मा का सच्चा नाम गुप्त है। वह नाम घट-घट में व्याप्त है। वह नाम सतगुरु के उपदेश की कमाई द्वारा अन्दर प्रकट होता है। कबीर साहिब ने भी इशारा किया है:

कोटि नाम संसार में, ताते मुक्ति न होय।
आदि नाम जो गुप्त जप, बिरला जाने कोय॥[19]

लिखने, पढ़ने और बोलने वाले अनेक नामों में से कोई भी नाम मुक्ति का साधन नहीं है। मुक्ति का साधन वह अनादि नाम है, जो गुप्त है और जिसके साथ लिव जोड़ने की युक्ति किसी विरले गुरुमुख को मालूम है। गुरु नानक साहिब इशारा करते हैं:

अद्रिसट अगोचरु नामु अपारा॥ अति रसु मीठा नामु पिआरा॥[20]

परमात्मा का सच्चा नाम अगम और अगोचर है। वह इन्द्रियों का विषय नहीं। वह सच्चा अमृत, जो अपार आनन्द का अथाह भण्डार है, आत्मा द्वारा अन्दर अनुभव किया जानेवाला परम तत्त्व है। फिर फ़रमाते हैं:

सचु वखरु धनु नामु है घटि घटि गहिर गंभीरु॥[21]

गुरु रामदास जी कहते हैं:

राम नामु रमु रवि रहे रमु रामो रामु रमीति॥[22]

राम-नाम परमात्मा का रूप है। वह परमात्मा की तरह ही सृष्टि के कण-कण में रमा हुआ है, इसलिए राम-नाम कहकर उसकी सराहना की जाती है।

नाम परमात्मा का रूप है

नाम और परमात्मा एक हैं, दोनों में कोई भेद नहीं है। गुरु साहिब इशारा करते हैं:

घरि घरि नामु निरंजना सो ठाकुरु मेरा॥[23]

हउ बलिहारी साचे नावै॥ राजु तेरा कबहु न जावै॥[24]

परमात्मा नाम-रूप होकर हर घट में समाया हुआ है; सारी कायनात पर उसका अटल राज्य चल रहा है। गुरु रामदास जी कहते हैं:

नामु निरंजन अलखु है किउ लखिआ जाई॥
नामु निरंजन नालि है किउ पाईऐ भाई॥
नामु निरंजन वरतदा रविआ सभ ठांई॥
गुर पूरे ते पाईऐ हिरदै देइ दिखाई॥[25]

उस निरंजन का नाम निरंजन की तरह ही अलख और अगम है। वह उस निरंजन की तरह ही सर्वव्यापक है और गुरु-कृपा करके अन्दर उसकी पूरी पहचान करवा देता है। गुरु अर्जुन साहिब कहते हैं:

जिसु नामै कउ तरसहि बहु देवा॥ सगल भगत जा की करदे सेवा॥
अनाथा नाथु दीन दुख भंजनु सो गुर पूरे ते पाइणा॥[26]

नाम ही सच्चा परमात्मा या ठाकुर है। अनेक देवता उस नाम की प्राप्ति के लिए तरस रहे हैं। संसार के सब भक्त उस नाम की आराधना में लगे हुए हैं, वह नाम अनाथों का नाथ है और उसकी प्राप्ति पूरे गुरु द्वारा होती है।

परमात्मा से छोटी कोई चीज़ हमें परमात्मा से नहीं मिला सकती। परमात्मा का नाम परमात्मा के साथ अभेद है। इसलिए जो कोई अपनी आत्मा उस नाम में लीन कर देता है, नाम उसको परमात्मा में अभेद कर देता है।

नाम परमात्मा की सृजनात्मक शक्ति है

गुरु साहिब ने 'जपुजी' की 19वीं पउड़ी में समझाया है, 'जेता कीता तेता नाउ॥ विणु नावै नाही को थाउ॥' गुरु अमरदास जी कहते हैं:

उतपति परलउ सबदे होवै॥ सबदे ही फिरि ओपति होवै॥[27]

नामे उपजै नामे बिनसै नामे सचि समाए॥[28]

संसार की उत्पत्ति भी शब्द या नाम द्वारा होती है, इसका विनाश भी शब्द या नाम द्वारा होता है और परमात्मा में अभेद होने का सौभाग्य भी शब्द या नाम द्वारा ही प्राप्त होता है।

नाम अन्दर है

वह सच्चा नाम बाहर नहीं, हर जीव के अन्दर है:

देही अंदरि नामु निवासी॥ आपे करता है अबिनासी॥[29]

नउ निधि अंम्रितु प्रभ का नामु॥ देही महि इस का बिस्रामु॥[30]

गुरु साहिब ने शरीर के आँखों तक के भाग को नौ द्वार कहा है, जिसमें दो आँखें, दो कान, दो नासिकाएँ, मुँह और नीचे दो मल-मूत्र के स्थान शामिल हैं। आपने आँखों से ऊपर माथे के उस भाग को जहाँ नाम की ध्वनि सुनाई देती है और नाम का प्रकाश दिखाई देता है, दसवाँ घर, दसवाँ दरवाज़ा आदि कहकर पुकारा है। गुरु अमरदास जी कहते हैं:

हरि जीउ गुफा अंदरि रखि कै वाजा पवणु वजाइआ॥
वजाइआ वाजा पउण नउ दुआरे परगटु कीए दसवा गुपतु रखाइआ॥
गुरदुआरै लाइ भावनी इकना दसवा दुआरु दिखाइआ॥
तह अनेक रूप नाउ नव निधि तिस दा अंतु न जाई पाइआ॥[31]

आप कहते हैं कि उस हरि ने शरीर रूपी गुफा के नौ द्वार प्रकट और दसवाँ गुप्त रखा है। जब गुरु-भक्ति द्वारा अन्दर दसवें दरवाज़े में ध्यान एकाग्र और स्थिर कर लेते हैं तो वहाँ परमात्मा जैसा अनन्त निधियों से भरा हुआ अनुपम नाम प्राप्त हो जाता है। गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं:

अनहद सबदु दसम दुआरि वजिओ तह अंम्रित नामु चुआइआ था॥[32]

नाम और सतगुरु

गुरु अर्जुन देव जी की वाणी है:

होरु दुआरा कोइ न सूझै॥ त्रिभवण धावै ता किछू न बूझै॥
सतिगुरु साहु भंडारु नाम जिसु इहु रतनु तिसै ते पाइणा॥[33]

आप कहते हैं कि चाहे सारी त्रिलोकी छान लो और जितने मर्ज़ी यत्न कर लो, नाम रूपी अमूल्य हीरा नहीं मिल सकता। यह हीरा केवल सतगुरु की दया से प्राप्त होता है। गुरु रामदास जी इसका कारण समझाते हुए कहते हैं:

नामु अमोलकु रतनु है पूरे सतिगुर पासि॥
सतिगुर सेवै लगिआ कढि रतनु देवै परगासि॥[34]

राम नाम कीरतन रतन वथु हरि साधू पासि रखीजै॥
जो बचनु गुर सति सति करि मानै तिसु आगै काढि धरीजै॥[35]

उस परमात्मा ने स्वयं नाम रूपी अमूल्य हीरा सतगुरु के सुपुर्द किया हुआ है। जो लोग सतगुरु के उपदेश के अनुसार प्रभु-भक्ति में लगते हैं, उनके अन्दर इस अमूल्य हीरे का प्रकाश प्रकट हो जाता है। गुरु अमरदास जी इशारा करते हैं:

सचै सबदि सची पति होई। बिनु नावै मुकति न पावै कोई॥
बिनु सतिगुर को नाउ न पाए प्रभि ऐसी बणत बणाई हे॥[36]

आप कहते हैं कि उस परमात्मा ने सृष्टि के आरम्भ से अपने हुक्म द्वारा स्वयं यह विधान या कानून बना दिया है कि सच्चे शब्द या नाम के बिना मुक्ति नहीं मिल सकती और पूरे गुरु के बिना नाम या शब्द नहीं मिल सकता। परमात्मा द्वारा अपने साथ मिलाप के लिए बनाया गया यह नियम समय-स्थान के हर प्रकार के प्रभाव से ऊपर है। भवसागर से पार होने के लिए सदा यही एक नियम क़ायम रहा है और आगे भी रहेगा।

नाम का उपदेश

गुरु अर्जुन देव जी उपदेश देते हैं:

संत जनहु मिलि भाईहो सचा नामु समालि॥
तोसा बंधहु जीअ का ऐथै ओथै नालि॥[37]

आप कहते हैं भाइयो, सन्तों की शरण में जाकर सच्चे नाम का अमूल्य धन प्राप्त करो क्योंकि लोक और परलोक दोनों में काम आनेवाला यही एक सार-पदार्थ है। गुरु अमरदास जी कहते हैं:

नानक होरि पतिसाहीआ कूड़ीआ नामि रते पातिसाह॥[38]

संसार की बादशाहतें झूठी हैं। इनमें से कभी किसी को सच्ची और स्थायी शान्ति प्राप्त नहीं हुई। गुरु नानक साहिब कहते हैं:

कूजा मेवा मै सभ किछु चाखिआ इकु अंम्रितु नामु तुमारा ॥[39]

ऐ कुल मालिक! मैंने संसार के उत्तम से उत्तम भोग-पदार्थों को आज़मा कर देख लिया है, इनमें से किसी में भी वह सुख नहीं, जो तेरे नाम में है। गुरु अर्जुन देव जी उपदेश देते हैं:

भई परापति मानुख देहुरीआ ॥ गोबिंद मिलण की इह तेरी बरीआ ॥
अवरि काज तेरै कितै न काम ॥ मिलु साधसंगति भजु केवल नाम ॥[40]

अर्थात् कुल मालिक ने अपार दया-मेहर करके हमें अमूल्य जन्म प्रदान किया है ताकि हम उसके नाम की कमाई द्वारा उससे मिलाप कर के सदा के लिए जन्म-मरण के बन्धनों से आज़ाद हो जायें। परमात्मा की तरफ़ से सौंपे गये इस कार्य को छोड़कर किये गये मनमर्ज़ी के कार्य कुल मालिक की दरगाह में काम नहीं आयेंगे। इसलिए हमें पूर्ण सन्तों के उपदेश के अनुसार नाम के साथ लिव जोड़ने का प्रयत्न करना चाहिए। गुरु नानक साहिब की वाणी है:

प्रेम पदारथु नामु है भाई माइआ मोह बिनासु ॥
तिसु भावै ता मेलि लए भाई हिरदै नाम निवासु ॥[41]

आप कहते हैं कि मन में से माया का मोह नष्ट करके इसके अन्दर परमात्मा का सच्चा प्रेम पैदा करनेवाला सार-पदार्थ नाम है। गुरु साहिब इशारा करते हैं:

अंम्रितु हरि का नामु है जितु पीतै तिख जाइ ॥
नानक गुरमुखि जिन्ह पीआ तिन्ह बहुड़ि न लागी आइ ॥[42]

अंम्रित नामु सुआमी तेरा जो पीवै तिस ही त्रिपतास ॥
जनम जनम के किलबिख नासहि आगै दरगह होइ खलास ॥[43]

गुरु साहिब उपदेश कर रहे हैं कि मन की तृष्णाएँ शान्त करनेवाला और अनन्त जन्मों के पापों की मैल उतारकर आत्मा को निर्मल बनाने वाला सच्चा अमृत परमात्मा का नाम है। गुरु-घर की वाणी है:

एकु नामु तारे संसारु ॥[44]

एक नामि जुग चारि उधारे सबदे नाम विसाहा हे ॥[45]

सरब धरम महि स्रेसट धरमु ॥ हरि को नामु जपि निरमल करमु ॥[46]

बिनु नावै होर पूज न होवी भरमि भुली लोकाई ॥[47]

विणु नावै दरि ढोई नाही ता जमु करे खुआरी ॥[48]

गुरु गोबिन्द सिंह जी की वाणी है:

सभ करम फोकट जान ॥ सभ धरम निहफल मान ॥
बिन एक नाम अधार ॥ सभ करम भरम बिचार ॥[49]

बिन एक नाम एक चित लीन ॥ फोकटो सरब धरमा बिहीन ॥[50]

इन सब प्रमाणों से भली-भाँति स्पष्ट हो जाता है कि गुरु साहिबान ने नाम से लिव जोड़ने को ही सच्चा और श्रेष्ठ धर्म माना है, इसको ही सबसे निर्मल कर्म माना है और इसी को हर युग में सम्पूर्ण जगत् के उद्धार का एकमात्र साधन स्वीकार किया है। गुरु साहिब प्रार्थना करते हैं:

मागउ दानु ठाकुर नाम ॥
अवरु कछू मैरै संगि न चालै मिलै क्रिपा गुण गाम ॥
राजु मालु अनेक भोग रस सगल तरवर की छाम ॥
धाइ धाइ बहु बिधि कउ धावै सगल निरारथ काम ॥
बिनु गोविंद अवरु जे चाहउ दीसै सगल बात है खाम ॥
कहु नानक संत रेन मागउ मेरो मनु पावै बिस्राम ॥[51]

प्रभ जी को नामु मनहि साधारै ॥
जीअ प्रान सूख इसु मन कउ बरतनि एह हमारै ॥
नामु जाति नामु मेरी पति है नामु मेरै परवारै ॥
नामु सखाई सदा मेरै संगि हरि नामु मो कउ निसतारै ॥

बिखै बिलास कहीअत बहुतेरे चलत न कछू संगारै॥
इसटु मीतु नामु नानक को हरि नामु मेरै भंडारै॥[52]

विद्वानों ने स्वीकार किया है कि गुरु साहिबान ने किरत करने, बाँटकर खाने और नाम जपने का उपदेश दिया है। गुरु नानक साहिब का कथन है, 'घालि खाइ किछु हथहु देइ॥ नानक राहु पछाणहि सेइ॥'[53] आप उपदेश देते हैं कि परमार्थ के मार्ग पर चलने के लिए किरत करनी चाहिए और उससे मिले फल को साधु-संगति के साथ मिल-बाँट कर खाना चाहिए। किरत करना और बाँटकर खाना नाम की कमाई में सहायता देने के लिए है। कहावत है: जैसा खावे अन्न तैसा होवे मन। किरत करने से भाव है कि बेकार रहनेवाले त्यागियों या वैरागियों की तरह समाज पर बोझ बन कर नहीं बल्कि मेहनती सूरमा की तरह गृहस्थ की ज़िम्मेदारियों को पूरा करते हुए नाम की कमाई करनी चाहिए।

'बाँट कर खाना' सन्तोष, शुक्राने, प्रेम, भरोसे और सेवा का सूचक है। बाँटकर वही खाता है, जिसमें सन्तोष, प्रेम और सेवा का भाव हो और जो कमाये हुए धन को कुल मालिक की दात समझकर शुक्राने के तौर पर साधु-संगति पर ख़र्च करने में ख़ुशी महसूस करता हो। बाँटकर खाने वाले साधक की वृत्ति कृतघ्न दुनियादार से बिल्कुल अलग होती है। वह सन्तोष, प्रेम, भरोसे, सेवा और नम्रता के भाव से नाम की कमाई करता है।

गुरु रामदास जी का कथन है:

मेरे प्रीतमा हउ जीवा नामु धिआइ॥
बिनु नावै जीवणु ना थीऐ मेरे सतिगुर नामु द्रिड़ाइ॥[54]

गुरु साहिब कहते हैं कि हे मेरे प्रियतम! मेरे जीवन का आधार तेरा नाम है। मेरी हस्ती का आधार तेरा नाम है। तेरे नाम के बिना मैं अपने जीवन की कल्पना भी नहीं कर सकता।

प्रत्यक्ष है कि गुरु-घर का उपदेश नाम के गिर्द परिक्रमा करता है।

'जपुजी' और गुरु साहिब का जीवन-दर्शन

'जपुजी' को गुरु नानक साहिब की विचारधारा का सार माना जाता है। इसलिए 'जपुजी' के आधार पर गुरु साहिब के जीवन-दर्शन को समझने का प्रयत्न करते हैं।

जीवन को निरन्तरता और सम्पूर्णता में देखना

गुरु साहिब ने 'जपुजी' की 34वीं से 37वीं पउड़ी तक पाँच खण्डों की झाँकी पेश की है। यह पाँच खण्ड स्थूल, सूक्ष्म, मानसिक और विशुद्ध रूहानी सृष्टि के दृश्य हैं। गुरु साहिब ने 'धरम खंड' में इस धरती रूपी धर्मशाला का उल्लेख किया है, जिसमें कर्म और फल का नियम प्रधान है। यह पूर्ण न्याय का देश है, जिसमें जो कुछ मिलता है, अपने किये हुए यत्न या उद्यम के अनुसार मिलता है और किया हुआ उद्यम कभी निष्फल नहीं जाता। दूसरे शब्दों में कर्मों से भाग्य जन्म लेता है और भाग्य अटल है।

गुरु साहिब बताते हैं कि 'गिआन खंड' में पहुँचकर अनन्त तत्त्वों, देवी-देवताओं, कर्म-भूमियों, पर्वतों, सूर्यों, चन्द्रमाओं, देशों, मण्डलों, समुद्रों और समुद्रों में से निकलने वाले रत्नों, अनन्त खानियों, वाणियों, निर्मल वृत्तिवाली आत्माओं और परमात्मा के सेवकों का ज्ञान होता है। 'सरम खंड' में पहुँचकर अनेक सूक्ष्म मानसिक मण्डलों का ज्ञान होता है। 'करम खंड' में पहुँचकर ऐसे अनेक मण्डलों के बारे में पता चलता है, जिनमें मन-माया की सीमा पार कर आये सच्चे भक्त निवास कर रहे हैं। 'सच खंडि' में पहुँचकर परमात्मा के निवास-स्थान सचखण्ड और उसमें आबाद अनन्त खण्डों, मण्डलों और ब्रह्माण्डों का साक्षात् अनुभव होता है।

इन पाँच खण्डों के वर्णन को ध्यान से पढ़ने पर पता चलता है कि जैसे-जैसे ऊपर जाते हैं वैसे-वैसे चेतना, ज्ञान और आनन्द में बढ़ोतरी होती जाती है। गुरु साहिब 'गिआन खंड' के बारे में कहते हैं:

गिआन खंड महि गिआनु परचंडु॥ तिथै नाद बिनोद कोड अनंदु॥[1]

'सरम खंड' के बारे में कहते हैं:

तिथै घड़ीऐ सुरति मति मनि बुधि॥ तिथै घड़ीऐ सुरा सिधा की सुधि॥[2]

आप 'करम खंड' के बारे में कहते हैं:

तिथै सीतो सीता महिमा माहि॥ ता के रूप न कथने जाहि॥
ना ओहि मरहि न ठागे जाहि॥ जिन कै रामु वसै मन माहि॥
तिथै भगत वसहि के लोअ॥ करहि अनंदु सचा मनि सोइ॥[3]

आप बताते हैं कि कर्मखण्ड में पहुँचकर आत्मा न केवल हर तरह के कर्मों और संस्कारों से, बल्कि जन्म-मरण के बन्धन से भी आज़ाद हो जाती है। फिर उस आत्मा को न माया ठग सकती है और न ही मन या काल सता सकते हैं। आप 'सच खंड' के बारे में कहते हैं:

सच खंडि वसै निरंकारु॥ करि करि वेखै नदरि निहाल॥[4]

प्रतीत होता सत्य और वास्तविक सत्य

परमार्थी साहित्य में बताया गया है कि एक प्रतीत होता सत्य (Apparent truth) है और दूसरा निरपेक्ष सत्य (Absolute truth) है। जब तक सपना देख रहे होते हैं, सपना सत्य प्रतीत होता है। जब आँख खुलती है तो पता चलता है कि सपने की कोई वास्तविकता नहीं थी। गुरु तेग़ बहादुर जी की वाणी है:

जिउ सुपना अरु पेखना ऐसे जग कउ जानि॥
इन मै कछु साचो नही नानक बिनु भगवान॥[5]

आप समझाते हैं कि संसार स्वप्न की भाँति है। सूर्य का प्रतिबिंब ज़मीन पर पड़े पानी के भरे एक टब में पड़ रहा है। उस टब के पानी का प्रतिबिंब आगे एक दीवार पर पड़ रहा है। जो केवल दीवार पर पड़ रहे प्रतिबिंब को देख रहा है, उसको दीवार पर पड़ रहा प्रतिबिंब सत्य प्रतीत होता है। जो टब में पड़ रहे प्रतिबिंब को देख रहा है, उसको टब वाला प्रतिबिंब सत्य और दीवार पर पड़ रहा प्रतिबिंब झूठ प्रतीत होता है। पर जो सूर्य को देख लेता है, उसको टब में पड़ रहा प्रतिबिंब भी झूठा प्रतीत होता है। न स्वप्न सच है और न ही संसार सच है। सच केवल संसार का कर्ता वह परमात्मा है। आप एक और श्लोक में कहते हैं:

जैसे जल ते बुदबुदा उपजै बिनसै नीत॥
जग रचना तैसे रची कहु नानक सुनि मीत॥[6]

आप समझाते हैं कि संसार पानी के बुलबुले के समान अस्थिर है। गुरु अंगद साहिब का कथन है, 'इहु जगु सचै की है कोठड़ी सचे का विचि वासु॥'[7] संसार सच्चे परमात्मा की कोठरी है। जिस तरह शरीर सच नहीं है, उसमें रहनेवाली आत्मा सच है, उसी तरह जगत् रूपी कोठरी सच नहीं है, इसमें रमी हुई प्रभु की सत्ता सच है।

गुरु साहिब इन पाँच खण्डों के वर्णन द्वारा हमें रूहानियत का यह गूढ़ रहस्य समझाना चाहते हैं कि जब तक हम स्थूल दृश्यमान जगत् तक सीमित हैं, हमें यह जगत् सच्चा प्रतीत होता है, जब स्थूल जगत् से ऊपर उठकर सूक्ष्म मानसिक मण्डलों में पहुँचते हैं तो यह दृश्यमान स्थूल जगत् झूठा प्रतीत होने लगता है और वे मण्डल सच्चे लगने लगते हैं। जब उन मण्डलों को पार करके विशुद्ध रूहानी जगत् में पहुँच जाते हैं तो केवल वह जगत् ही सत्य प्रतीत होता है और मानसिक मण्डल भी झूठे प्रतीत होने लगते हैं।

गुरु साहिब हमें प्रेरणा देते हैं कि तुम इस स्थूल मण्डल तक ही सीमित न रहो। तुम गुरुमत पर चल कर पहले मानसिक मण्डलों में पहुँचो और फिर उनको पार करके विशुद्ध रूहानी मण्डल में पहुँच

जाओ। गुरु साहिब अपने उदाहरण द्वारा हमारा हौसला बढ़ाना चाहते हैं कि उस दयालु पिता ने हर इनसान में सच्चे रूहानी देश में पहुँचकर पूर्णता प्राप्त करने का सामर्थ्य रखा हुआ है। इस सामर्थ्य का प्रयोग न करना, अपने साथ अन्याय करना और इस अमूल्य जन्म को कौड़ियों के दाम गँवा देना है।

वर्तमान अवस्था में हमारी सबसे बड़ी समस्या यह है कि हमारे सामने सम्पूर्ण कायनात और उसके कर्ता को देख सकने वाली दृष्टि नहीं है। हम हर चीज़ को छोटे-छोटे खण्डों में देखते हैं। 'जपुजी' में गुरु साहिब ने इस विचारधारा का विवेचन किया है कि:

1. जीवन को इसकी निरन्तरता और सम्पूर्णता में देखना ज़रूरी है। दृश्यमान जगत् पूरा जगत् नहीं है और वर्तमान जन्म पहला और आख़िरी जन्म नहीं है।
2. मनुष्य की हस्ती का सार शरीर नहीं, आत्मा है। एक जन्म के अन्त पर शरीर की मृत्यु हो जाती है पर आत्मा अमर है।
3. हम जीवन और जगत् को सम्पूर्णता और निरन्तरता में देखकर और मनुष्य के अस्तित्व का आधार आत्मा को मानकर ही जीवन की पहेली को समझ सकते हैं और अपना जन्म सफल कर सकते हैं।

जब तक सृष्टि को सम्पूर्णता में नहीं देखते, हम जीवन की पहेली को पूरी तरह समझ नहीं सकते। गुरु साहिब हमारे सामने एक ही समय में स्थूल भौतिक जगत्, सूक्ष्म मानसिक जगत् और विशुद्ध आध्यात्मिक जगत् की झाँकी पेश करते हैं। आपके वर्णन से पता चलता है कि सम्पूर्ण सृष्टि एक है। जिस तरह शरीर का प्रत्येक अंग शरीर के साथ जुड़ा होता है, उसी तरह अलग-अलग भागों वाली सृष्टि एक शरीर है। अलग-अलग अंग अलग-अलग कार्य करते हैं पर उनमें एक ही चेतना काम कर रही होती है। बर्फ़, पानी और भाप वास्तव में एक हैं पर बर्फ़ और पानी उड़ नहीं सकते, भाप उड़ सकती है। वृक्ष, कीड़े, पक्षी, पशु और मनुष्य में

एक ही चेतना काम कर रही है पर चेतना के कार्यशील होने के लिए मिले साधन या शरीर अलग-अलग होने के कारण चेतना के प्रकट होने का स्तर अलग-अलग है। इसी तरह चेतना वही है पर उसके स्थूल, मानसिक और आत्मिक जगत् में कार्यशील होने का स्तर अलग-अलग है। स्थूल सृष्टि बर्फ़ की तरह जमी हुई चेतना है। मानसिक सृष्टि पानी की तरह तरल चेतना है। रूहानी जगत् भाप के समान विशुद्ध चेतना है। 'जपुजी' हमें यह सन्देश देता है कि वर्तमान अवस्था में हम स्थूल शरीर, सूक्ष्म मन और परम चेतन आत्मा का मिश्रण हैं, हमारी आत्मा मन और माया के पर्दों से ढकी हुई है, जिस कारण हमारे कार्य और हमारी सोच केवल स्थूल जगत् तक सीमित है। हम रूहानी अभ्यास द्वारा स्थूल जगत् (धरम खण्ड) को पार करके सूक्ष्म मानसिक मण्डलों (गिआन खण्ड और सरम खण्ड) में, मानसिक मण्डलों को पार करके विशुद्ध रूहानी मण्डल (करम खण्ड) में और उसको पार करके परम चेतन मण्डल (सचखण्ड) में पहुँच सकते हैं।

जब तक हम सारा नाटक नहीं देखते, नाटक से मिलने वाला सन्देश कैसे समझ सकते हैं? जब तक पूरी तस्वीर सामने न हो, हमें तस्वीर से कुछ भी समझ नहीं आ सकता। गुरु नानक साहिब हमें सृष्टि रूपी नाटक या तस्वीर को सम्पूर्णता में देखने का सन्देश देते हैं।

जब हम गुरु साहिब द्वारा समझायी गयी युक्ति के अनुसार स्थूल, सूक्ष्म और मानसिक जगत् को पार करके, विशुद्ध रूहानी और परम चेतन देश में पहुँच जाते हैं तो हम पूर्ण पुरुष बन जाते हैं और हमें 'सृष्टि' और 'जीवन' की पहेली पूरी तरह से समझ आ जाती है। फिर हम जीवन को छोटे-छोटे खण्डों में नहीं, सम्पूर्णता में देखते हैं। फिर हमारी दृष्टि केवल इस जन्म तक सीमित नहीं रहती। फिर हमें भूत, वर्तमान और भविष्य का पूरा ज्ञान हो जाता है। इस तरह की पूर्ण दृष्टि से ही उत्तम और उचित कर्म का जन्म हो सकता है।

'जपुजी' मनुष्य के सामने मानसिक और रूहानी विकास की अद्भुत सम्भावनाओं का रहस्य खोलता है। यह मनुष्य को मायामय संसार तक

सीमित अधूरे, अज्ञानी, शक्तिहीन और दुःखी जीव से पूर्ण शक्ति, पूर्ण ज्ञान और पूर्ण आनन्द से भरपूर पूर्ण पुरुष बन जाने की सम्भावना से परिचित करवाता है।

रचना किसने, कैसे और क्यों की?

आज हमारे सामने सबसे बड़ी पहेली यह है कि संसार को किसने, कैसे और क्यों बनाया है? गुरु साहिब 'मूल मन्त्र' में '१ओ सति नामु करता पुरखु' द्वारा समझाते हैं कि सम्पूर्ण सृष्टि का रचयिता एक है और वह सारी सृष्टि में व्याप्त है। आप 'जपुजी' की दूसरी पउड़ी में कहते हैं:

हुकमी होवनि आकार हुकमु न कहिआ जाई॥
हुकमी होवनि जीअ हुकमि मिलै वडिआई॥

आप समझाते हैं कि सजीव और निर्जीव, स्थूल और सूक्ष्म, जड़ और चेतन हर तरह की रचना, उस एक कर्ता द्वारा पैदा की गयी है। हर तरह की रचना, उस रचयिता की इच्छा, मौज, भाणे या हुक्म का खेल है। रचयिता, रचना करना चाहता था, इसलिए रचना अस्तित्व में आ गयी। उसने उस तरह की रचना पैदा की, जिस तरह की रचना वह पैदा करना चाहता था। आप 16वीं पउड़ी में कहते हैं, 'कीता पसाउ एको कवाउ॥ तिस ते होए लख दरीआउ॥' आप 19वीं पउड़ी में कहते हैं, 'जेता कीता तेता नाउ॥ विणु नावै नाही को थाउ॥' उस कर्ता ने अपनी मौज और अपने नाम द्वारा रचना की और वह रचना रचकर इसके कण-कण में समा गया।

मन में प्रश्न उठता है कि सृष्टि रचे जाने का प्रयोजन क्या है? गुरु साहिब 'जपुजी' की 37वीं पउड़ी में 'जिव जिव हुकमु तिवै तिव कार' द्वारा समझाते हैं कि परमात्मा की इच्छा से पैदा हुई सृष्टि परमात्मा की इच्छा के अनुसार चल रही है। आप 38वीं पउड़ी में 'नानक नदरी नदरि निहाल' द्वारा संकेत करते हैं कि वह दयालु कर्ता, अपनी दया-मेहर द्वारा सारी सृष्टि को निहाल कर रहा है। सृष्टि उस कर्ता की मौज की

लीला, खेल या नाटक है। पहली बात यह है कि वह परमात्मा कर्ता या रचयिता है। उस रचयिता ने रचना के द्वारा अपनी सृजन शक्ति को प्रकट किया है। 'करि करि वेखै नदरि निहाल'[8] से पता चलता है कि इस जगत् की रचना परमात्मा ने अपनी अपार दया-मेहर को प्रकट करने के लिए की है।

पीछे विचार कर चुके हैं कि अगर परमात्मा में अपनी अपार शक्ति, ज्ञान, प्रेम और दया को प्रकट करने की इच्छा न हो तो ये गुण उसमें ही गुप्त रहेंगे। परमात्मा ने अपनी इच्छा द्वारा और अपनी अनन्त शक्ति और ज्ञान द्वारा, अपने प्रेम और अपनी दया को बाँटने के लिए सृष्टि की रचना की है। 37वीं पउड़ी में आये वर्णन 'जिव जिव हुकमु तिवै तिव कार' को 'वेखै विगसै करि वीचारु॥' से मिलाकर पढ़ते हैं तो पता चलता है कि वह परमात्मा अपनी सृष्टि को अपने हुक्म के अनुसार चल रही देखकर प्रसन्न होता है। खेल या नाटक का उद्देश्य मनोरंजन होता है। परमात्मा ने सृष्टि की रचना अपनी प्रसन्नता के लिए की है। उसने रचना रूपी नाटक द्वारा अपनी अपार सृजन शक्ति, अपनी अपार सामर्थ्य, अपने अपार ज्ञान, प्रेम और दया-मेहर का प्रसार किया है क्योंकि उसको इस तरह करने में प्रसन्नता होती है।

इस्लाम की पवित्र पुस्तक 'हदीस' में हज़रत मुहम्मद साहिब के जीवन से सम्बन्धित घटनाएँ और उनके वचन शामिल हैं। हदीस में आता है कि ख़ुदा 'गंजे मख़फ़ी' या गुप्त ख़ज़ाना था।[9] उसने अपने आपको प्रकट करना चाहा, जिस कारण उसने सृष्टि की रचना की। इससे भी पता चलता है कि परमात्मा में अनेक गुण हैं और उसने अपने गुणों को प्रकट करने के लिए रचना रची।

बहुत-से सूफ़ी दरवेशों ने यह विचार प्रकट किया है कि ख़ुदा प्रेम करना चाहता था, इसलिए उसने अपने अंशों अर्थात् आत्माओं को पैदा कर लिया ताकि वह उनसे प्रेम कर सके। इससे भी यही पता चलता है कि परमात्मा ने प्रेम और दया के अपने गुणों को प्रकट करने के लिए सृष्टि की रचना की।

सृष्टि संचालन: विधि और विधान

सृष्टि की पूरी झाँकी पेश करने, सृष्टि के रचयिता, रचना के कारण और प्रयोजन पर प्रकाश डालने के साथ ही गुरु साहिब एक अन्य रहस्य भी खोलते हैं। आप 'जपुजी' की तीसरी पउड़ी में कहते हैं, 'हुकमी हुकमु चलाए राहु॥ नानक विगसै वेपरवाहु॥' आप इशारा कर रहे हैं:

1. परमात्मा ने सृष्टि की रचना करते समय इसके संचालन के लिए एक विधान भी बना दिया है। सृष्टि परमात्मा द्वारा रचित विधान और उसके द्वारा स्थापित की गयी विधि या मर्यादा के अनुसार चल रही है।
2. हमारी सन्तान हमारे हुक्म से बाहर हो सकती है पर परमात्मा द्वारा सृजित सृष्टि उसके हुक्म से बाहर नहीं है। सृष्टि अन्धाधुन्ध और अपनी मर्ज़ी से नहीं चल रही। यह उस तरह चल रही है, जिस तरह परमात्मा ने इसके लिए मर्यादा स्थापित की है। यह परमात्मा द्वारा बनाये गये नियमों के अनुसार चल रही है और जिन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए इसको परमात्मा ने सृजित किया है, यह उन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए प्रयत्नशील है।

'जपुजी' की 27वीं पउड़ी को ही भली-भाँति समझ लें तो सृष्टि के बारे में गुरु साहिब की सम्पूर्ण विचारधारा को समझना आसान हो जाता है। इस पउड़ी से यह विचार सामने आते हैं:

1. जिस परमात्मा ने सृष्टि की रचना की है, वही इसका पालन और सँभाल कर रहा है और वही इसे अपने भाणे, हुक्म या विधान के अनुसार चला रहा है।
2. सम्पूर्ण सृष्टि एक इकाई है। यह एक सूत्र में पिरोयी हुई है, सृष्टि में दृश्यों की अनेकता है पर इसमें नियम और प्रयोजन की एकता है। कर्ता के हुक्म से उपजी सृष्टि, उस एक कर्ता के हुक्म के अनुसार चल रही है।

3. सजीव और निर्जीव, स्थूल और सूक्ष्म, जड़ और चेतन, हर तरह की रचना उस कर्ता के हुक्म में है और उसके द्वारा सौंपे गये कार्यों की पूर्ति में लगी हुई है।
4. उस परमात्मा ने हर कार्य के होने की एक विधि बना दी है। सृष्टि में सबकुछ सहज रूप में उस विधि के अनुसार होता चला जा रहा है।
5. परमात्मा द्वारा सृजित विधान सर्वव्यापक, अटल और परिवर्तनरहित है। इस विधान में न कोई छूट या अपवाद है और न ही किसी तरह के परिवर्तन की कोई गुँजाइश है। यह विधान सबके लिए है और सदा के लिए है। यह सबके लिए समान है और यह विधान सदा समान रहता है।
6. सारी सृष्टि का एक रचयिता और मालिक परमात्मा रूपी वह सच्चा पातशाह है। जो कुछ है, उसका किया हुआ है। जो कुछ है, उस की मौज से पैदा हुआ है और जो कुछ है उसकी रज़ा या मौज के अनुसार चल रहा है। सृष्टि उस कर्ता के हुक्म के अधीन है पर वह कर्ता किसी के हुक्म के अधीन नहीं है। कर्ता द्वारा रचित विधान उसके अधीन है, पर वह अपने विधान के अधीन नहीं है। जो कुछ है उस 'रजाई' भाव रज़ा, इच्छा या भाणे वाले परमात्मा की इच्छा के अधीन है, पर वह परमात्मा किसी और की इच्छा, रज़ा, भाणे या हुक्म के अधीन नहीं है।

करि करि करणा लिखि लै जाहु

गुरु साहिब 'जपुजी' की 20वीं पउड़ी में कहते हैं:

पुंनी पापी आखणु नाहि॥ करि करि करणा लिखि लै जाहु॥
आपे बीजि आपे ही खाहु॥ नानक हुकमी आवहु जाहु॥

गुरु साहिब पीछे समझा चुके हैं कि परमात्मा ने सृष्टि की रचना करते समय ही इसके संचालन का विधान भी बना दिया। यहाँ गुरु साहिब उस विधान के सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू पर प्रकाश डाल रहे हैं। आप समझाते हैं कि पुण्य और पाप, अच्छे कर्म और बुरे कर्म निपट कल्पना नहीं, ठोस हक़ीक़त हैं।

कर्म और प्रतिकर्म या कर्म और फल के इस देश में कुछ भी बिना वजह या अकारण नहीं होता। यहाँ दुर्घटना (accident) या संयोग (co-incidence) नाम की कोई चीज़ नहीं है। जो कुछ हो रहा है, या तो वह कर्मों का फल है या ऐसा नया कर्म है जो आगे जाकर फल देगा। संसार पूर्ण न्याय का देश है। इसमें किये हुए कर्मों के बिना न कोई फल दिया जा सकता है और न ही कोई सज़ा दी जा सकती है। फल के कारण के बारे में पता न होने का यह अर्थ नहीं कि फल अकारण मिल रहा है। जो-जो कर्म जीव करता है, वह उसके मन पर छाप छोड़ जाते हैं। वे कर्म सदा उसके साथ रहते हैं और उनका फल भोगने के लिए जीव बार-बार सृष्टि में जन्म लेता और मरता रहता है।

'नानक हुकमी आवहु जाहु'— फल किये हुए कर्मों के अनुसार मिलता है, पर कर्म और फल का नियम और किये हुए कर्मों का फल भोगने के लिए आवागमन के चक्कर से बँधे रहने का विधान परमात्मा ने बनाया है। गुरु साहिब 'जपुजी' की 34वीं पउड़ी में समझाते हैं कि यह धरती पूर्ण धर्म, न्याय या इन्साफ़ का देश है। यहाँ अनेक रंग-रूपों, वृत्तियों और ढंगों वाले जीव हैं। इन सब जीवों के कर्मों का हिसाब रखा जाता है और किये हुए कर्मों के अनुसार फल दिया जाता है। ग्रेवीटेशन (gravitation) या धरती के आकर्षण का नियम है कि जितनी अधिक ऊँचाई से कोई नीचे गिरता है, उसको उतनी अधिक चोट लगती है। कोई व्यक्ति इस नियम को जानता है या नहीं, इससे यह नियम नहीं बदल जाता। दस मंज़िला इमारत से चाहे कोई जान-बूझकर छलाँग लगाये और चाहे अनजाने में नीचे गिर जाए, उसका नतीजा ज़रूर भुगतना पड़ता है। 'नानक गइआ जापै जाइ'— गुरु साहिब समझाते हैं कि जो लोग यहाँ कर्म

और फल के नियम को नहीं मानते, उनको भी उस दरगाह में पहुँचकर पता चल जाता है कि कर्म और फल का नियम कल्पना या ख़याल न होकर एक ठोस हक़ीक़त है। गुरु साहिब सावधान कर रहे हैं कि किसी का कर्म और फल के नियम को न मानना, उसको इस नियम से मुक्त नहीं कर देता। परमात्मा द्वारा बनाया गया नियम हर व्यक्ति पर समान रूप से लागू होता है। गुरु नानक साहिब का कथन है:

> बहु सादहु दूखु परापति होवै॥ भोगहु रोग सु अंति विगोवै॥
> हरखहु सोगु न मिटई कबहू विणु भाणे भरमाइदा॥[10]

आप सावधान करते हैं कि जो भोग बाहर से देखने पर सुख-स्वाद का साधन प्रतीत होते हैं, वास्तव में रोगों और दुःखों का कारण सिद्ध होते हैं। मन के अधीन होकर सामयिक लाभ के लिए किये गये कर्म लम्बे समय के दुःख का कारण बन जाते हैं। गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं:

> निमख काम सुआद कारणि कोटि दिनस दुखु पावहि॥
> घरी मुहत रंग माणहि फिरि बहुरि बहुरि पछुतावहि॥[11]

आप सावधान करते हैं कि पल-भर का भोग अनन्त काल के रोग का रूप धारण कर लेता है।

छोटे-से कर्म के बीज में से बड़ के वृक्ष जैसा विशाल फल मिल सकता है। हमारा छोटा-सा कर्म ऐसे बड़े जिन्न को जन्म दे सकता है जो हमारे नाश का कारण बन सकता है। कोई व्यक्ति अनजाने में ज़हर पी लेता है, उसका अज्ञान उसको ज़हर के असर से नहीं बचा सकता। कर्म और फल के सिद्धान्त को न मानने से हम इसके प्रभाव से मुक्त नहीं हो जाते।

बाबा फ़रीद का कथन है, 'देखु फरीदा जि थीआ सकर होई विसु॥'[12] आप कहते हैं कि कितने आश्चर्य की बात है कि जो भोग और पदार्थ बाहर से देखने में शक्कर की तरह मीठे तथा प्यारे लगते हैं, उनका प्रभाव ज़हर की तरह विनाशकारी होता है। जब तक मनुष्य आत्मा की आँख

खोलकर आर-पार देखनेवाली अन्तर्दृष्टि प्राप्त नहीं करता, वह संसार की दृश्यमान झाँकियों के पीछे छिपी असलियत को समझकर कर्म करने के योग्य नहीं बन सकता और उसका गड्ढे में गिरने का ख़तरा हर समय बना रहता है।

गुरु साहिब द्वारा ऊपर बताये गये विचारों में कर्म और फल के नियम के सब मुख्य पहलू समाये हुए हैं। हम इस नियम को कई ढंग से समझ और बयान कर सकते हैं। इसको 'जो करो सो पाओ', 'जो करो सो भरो' या 'जो बोओ सो काटो' का नियम भी कह सकते हैं। परमात्मा ने हवा, पानी, धरती, आकाश, चन्द्रमा, सूर्य, वृक्षों, जंगलों-पर्वतों, समुद्रों, झीलों, धरती में पड़े हीरों, तेल और धातुओं के भण्डारों, समुद्र में पड़े रत्नों आदि का कोई मूल्य नहीं रखा। उस दाता ने सबकुछ मुफ़्त दिया है, पर यहाँ पर कुछ भी मुफ़्त नहीं मिलता। परमात्मा ने हर चीज़ को प्राप्त करने की एक विधि बना दी है। चलते हैं तो सफ़र तय होता है, बोलते हैं तो लोगों को हमारे विचारों का पता लगता है। कुछ खाते हैं तो पेट भरता है। स्कूल जाते हैं तो विद्या प्राप्त करते हैं। नौकरी करते हैं तो वेतन मिलता है। नाम का सुमिरन करते हैं तो परमात्मा के साथ लिव जुड़ती है। संसार में जो कुछ लेना चाहते हैं, यत्न द्वारा ही ले सकते हैं, और यत्न कभी व्यर्थ नहीं जाता।

इस विचार का दूसरा पहलू यह है कि जैसा करते हैं, वैसा भरते भी हैं। इसका भाव है कि हमारे कर्म केवल हम तक ही सीमित नहीं हैं। हमारे हर कर्म का सम्बन्ध किसी दूसरी वस्तु या दूसरे व्यक्ति से भी होता है। एक व्यक्ति ने बकरे का मांस खाया है। मांस बकरे का था, बकरे को भोजन के लिए मारा गया था। जब बकरे को मारा गया तो उसे बहुत दुःख और पीड़ा से गुज़रना पड़ा। उसके मांस को खाने वाले को उस दुःख और पीड़ा का मूल्य चुकाना पड़ेगा।

एक व्यक्ति किसी कारख़ाने का कर्मचारी है। उसे अपने काम का वेतन मिलता है, उस कारख़ाने में हीरे पालिश होते हैं। हर हीरा बहुत क़ीमती है। वह आँख बचाकर एक हीरा चुरा लेता है। वेतन के तौर पर कमाये हुए और चुराये हुए धन में बहुत अन्तर है। उसे उस चोरी का

फल भुगतना पड़ेगा। दफ़्तर में काम करने की तनख़्वाह और रिश्वतख़ोरी में अन्तर है। असली दवाइयों द्वारा कमाये गये लाभ और नक़ली दवाइयाँ बेचकर कमाये गये धन में ज़मीन-आसमान का फ़र्क है।

कर्म और फल के प्रसंग में यह बात भी भली-भाँति समझ लेनी चाहिए कि धन-दौलत, मान-बड़ाई, इल्म-अक़्ल आदि हमें कर्म के फल से नहीं बचा सकते। गुरु नानक साहिब का वचन है:

> पड़िआ होवै गुनहगारु ता ओमी साधु न मारीऐ॥
> जेहा घाले घालणा तेवेहो नाउ पचारीऐ॥
> ऐसी कला न खेडीऐ जितु दरगह गइआ हारीऐ॥
> पड़िआ अतै ओमीआ वीचारु अगै वीचारीऐ॥
> मुहि चलै सु अगै मारीऐ॥[13]

आप सावधान करते हैं कि अगर विद्वान् पाप करता है तो उसकी जगह निर्दोष अनपढ़ साधु को सज़ा नहीं दी जा सकती। इनसान की पहचान उसके कर्म से होती है, जाति-पाँति, धन-दौलत, इल्म-अक़्ल आदि से नहीं। उस सच्ची दरगाह में कर्म देखे जाते हैं, इल्म और अक़्ल नहीं। ब्राह्मण या शूद्र, विद्वान् या अनपढ़, राजा या रंक जो भी कर्म करता है, स्वयं उसका फल भोगता है। गुरु अर्जुन देव जी का कथन है:

> पर त्रिअ रावणि जाहि सेई ता लाजीअहि॥
> नितप्रति हिरहि पर दरबु छिद्र कत ढाकीअहि॥[14]

आप सावधान करते हैं कि पर-नारी हरण के कारण रावण का नाश हो गया। इसलिए इस तरह के पाप से बचना चाहिए। पराया धन हड़पने का पाप छिपाये नहीं छिपता। इसलिए ऐसे पाप से बचना चाहिए।

कर्म तीन प्रकार के हैं—मन का कर्म, वचन का कर्म और किया हुआ कार्य। इन तीनों को आगे दो भागों में बाँटा गया है। मन, वचन और कर्म द्वारा किसी को सुख पहुँचाना, पुण्य है और मन, वचन और कर्म द्वारा किसी को दुःख पहुँचाना, पाप है।

जबसे हम कर्म और फल के इस मण्डल में आये हैं, हम अनन्त जन्मों में अनन्त कर्म कर बैठे हैं। इन सब कर्मों के प्रभाव हमारे मन पर अंकित हैं। सबसे बड़ा संकट यह है कि हम कर्म अधिक करते हैं और फल कम का भोगते हैं, इसलिए बाक़ी कर्मों का फल भोगने के लिए बार-बार जन्म लेना पड़ता है। इसी को पुनर्जन्म या आवागमन कहते हैं।

एक बादशाह धार्मिक जनून में या अपने राज्य की सीमाओं को बढ़ाने के लोभ में, लाखों लोगों का क़त्ल करवा देता है। वे लाखों लोग आज और अभी उठकर उससे बदला नहीं ले सकते। एक डाकू जीवन में सौ घरों में डाका डालने में सफल हो जाता है। उन सौ घरों के मालिक अभी और आज ही उससे हिसाब नहीं ले सकते, उसे उन सौ डाकों का फल भोगने के लिए कई जन्म लग सकते हैं। एक व्यक्ति एक जन्म में एक हज़ार बकरे या सूअर या बीस हज़ार मछलियाँ खा जाता है। जितना दु:ख उन बकरों, सूअरों और मछलियों को हुआ था, वह उतना दु:ख भोग कर ही हिसाब चुका सकता है।

गुरु नानक साहिब 'जपुजी' की 18वीं पउड़ी में कहते हैं, 'असंख गलवढ हतिआ कमाहि॥ असंख पापी पापु करि जाहि॥' आप जीव-हत्या को सबसे बड़ा पाप कहते हैं। गुरु साहिब के इस विचार को एक उदाहरण द्वारा समझने का प्रयत्न करते हैं:

> चार दिन के लिए बाहर गया एक व्यक्ति घर वापस आता है। घर में प्रवेश करते ही उसे आँगन में कुछ फूल टूटे और बिखरे दिखाई देते हैं। वह सोचता है कि यह पड़ोसियों के शरारती लड़के की शैतानी है और मैं उसके कान खीचूँगा। आगे बढ़ता है तो हज़ारो चींटियाँ मरी हुई दिखाई देती हैं। वह यह सोचकर दु:खी होता है कि मूर्ख नौकर से ग़लती से दवाई चीटियों पर गिर गयी है। वह नौकर को डाँटने का मन बनाता है। और आगे जाता है तो उसे तोते के पिंजरे का दरवाज़ा खुला और तोता मरा हुआ दिखाई देता है। उसका मन भर आता है और वह कहता है कि जिस मूर्ख ने मेरा तोता मारा है, मेरा उसके साथ झगड़ा हो जायेगा। बैठक में प्रवेश करता है तो आगे पालतू कुत्ता मरा हुआ दिखाई देता है। उसकी आह निकल जाती है। वह कुत्ते की हत्या करनेवाले ज़ालिम से हरजाना वसूल करने का मन बनाता है। जब सोने वाले कमरे में क़दम रखता है तो अपनी पत्नी को क़त्ल हुआ देखकर उसकी चीखें निकल जाती हैं। वह पत्नी को गोद में लेकर विलाप करता है और पत्नी के हत्यारे को फाँसी लगवाने का विचार बनाता है। उस व्यक्ति को पाँचों हालात में ही जीव-हत्या का सामना करना पड़ा है पर पाँचों में उसकी प्रतिक्रिया अलग-अलग है।

सन्त-महात्मा समझाते हैं कि वनस्पति में चेतना सबसे कम होती है, कीड़े-पतंगों में उससे अधिक, पक्षियों में उससे अधिक, पशुओं में उससे भी अधिक और मनुष्यों में सबसे अधिक। इसलिए पशुओं और इनसानों की हत्या करना सबसे बड़ा पाप है। मनुष्य का क़त्ल तो एक तरफ़ रहा, मनुष्य के दिल को ठेस पहुँचाने को भी बड़ा गुनाह माना गया है। बाबा फ़रीद का कथन है:

> सभना मन माणिक ठाहणु मूलि मचांगवा॥
> जे तउ पिरीआ दी सिक हिआउ न ठाहे कही दा॥[15]

आप समझाते हैं कि हर इनसान का दिल हीरों की तरह क़ीमती है। मेरे प्यारे, अगर तेरे हृदय में परमात्मा रूपी प्रियतम के साथ मिलाप की चाह है तो भूलकर भी किसी के हृदय को ठेस न पहुँचाना।

मन और कर्म

कर्म-सिद्धान्त पर और अधिक गहराई से विचार करने के लिए गुरु नानक साहिब की वाणी का यह प्रसंग देखते हैं:

> इहु मनु करमा इहु मनु धरमा॥ इहु मनु पंच ततु ते जनमा॥
> साकतु लोभी इहु मनु मूड़ा॥ गुरमुखि नामु जपै मनु रूड़ा॥[16]

'इहु मनु करमा इहु मनु धरमा॥' मन हमारे पिछले जन्मों के सारे कर्मों से पैदा होता है। हर व्यक्ति के कर्म अलग-अलग होते हैं। इसलिए किसी एक व्यक्ति का मन किसी दूसरे के मन के साथ नहीं मिलता। एक व्यक्ति का मन भी हमेशा एक-सा नहीं रहता। तुलसी साहिब का कथन है, 'कर्म सारनी बुद्धि कहाई॥'[17] जिस तरह का कर्म उदय होता है, मन और बुद्धि उसी के अनुसार कार्य करते हैं। मन पिछले जन्मों के कर्मों के तेज़ बहाव के समान है जो जीव को ज़बरदस्ती अपने साथ बहा कर ले जाता है। गुरु नानक साहिब का कथन है, 'मन का कहिआ मनसा करै॥ इहु मनु पुंनु पापु उचरै॥'[18] आप समझा रहे हैं कि मन, कर्मों के वेग के अनुसार संकल्प और इच्छाएँ-तृष्णाएँ पैदा करता है और मनुष्य उनके वेग के अधीन अच्छे और बुरे कर्म करने के लिए विवश हो जाता है।

'इहु मनु पंच ततु ते जनमा॥' मन पाँच तत्त्वों के सतोगुणी अंश से रूप धारण करता है। कबीर साहिब की वाणी है, 'इहु मनु सकती इहु मनु सीउ॥ इहु मनु पंच तत को जीउ॥'[19] यह मन, माया (सकती) और ब्रह्म (सीउ) के मेल से जन्म लेता है। इस विचार को एक उदाहरण द्वारा समझने का प्रयत्न करते हैं:

टेप-रिकार्ड की टेप एक ख़ास मसाले की बनी होती है पर इसमें भरा गीत, गानेवाले का होता है। उस प्रभु ने हमारे अन्दर पाँच तत्त्वों के सतोगुणी अंश से बना एक ऐसा सूक्ष्म यन्त्र रखा हुआ है, जिस पर हमारे कर्मों के सब प्रभाव जमा होते रहते हैं। यूं समझो कि हमारे अन्दर एक सूक्ष्म कंप्यूटर लगा हुआ है। कंप्यूटर की एक मैमरी (memory) या याददाश्त होती है। हम जाने-अनजाने में कंप्यूटर की जो भी चाबी (key) दबाते हैं एकदम मैमरी में एक इम्प्रैशन (impression) या प्रभाव अंकित हो जाता है। हम सोचते बाद में हैं, हमारे मन पर हमारी सोच का प्रभाव पहले अंकित हो जाता है। बोलते समय ही हमारे मन पर हमारे बोलों का प्रभाव अंकित हो जाता है। कर्म करते समय ही मन पर उस कर्म का प्रभाव अंकित हो जाता है। मन वह सूक्ष्म कंप्यूटर है, जो

पिछले जन्मों के कर्मों में से वर्तमान जन्म के लिए दिये गये प्रारब्ध कर्मों को स्क्रीन पर लाता है, वर्तमान जन्म में किये जा रहे नये या क्रियमान कर्मों को मैमरी में अंकित करता जाता है और पिछले जन्मों के अनभोगे संचित कर्मों को स्टोर में सँभाल कर रखता है।

गुरु साहिब हमें तीन बातें समझाना चाहते हैं। पहली यह है कि जो कुछ हम आज हैं अपने पिछले कर्मों के प्रभाव के कारण हैं। गुरु नानक साहिब का कथन है:

ददै दोसु न देऊ किसै दोसु करंमा आपणिआ॥
जो मै कीआ सो मै पाइआ दोसु न दीजै अवर जना॥[20]

आप समझा रहे हैं कि हमारी होनी, भाग्य या प्रारब्ध हमारे अपने ही पिछले कर्मों का फल है। हमारा भाग्य किसी छिपकर बैठी विरोधी शक्ति ने नहीं लिखा। हम अपने भाग्य के विधाता स्वयं हैं। अपनी वर्तमान हालत के लिए किसी दूसरे को दोष देना अज्ञानता है। इस जन्म में आयु-बुद्धि, रंग-रूप, मान-अपमान, अमीरी-ग़रीबी, बीमारी-स्वास्थ्य आदि जो कुछ मिलता है, पिछले कर्मों के आधार पर बने प्रारब्ध के अनुसार मिलता है। प्रारब्ध अटल है, पर प्रारब्ध हमारे ही कर्मों से बना है। गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं:

काहू न कोऊ सुख दुख कर दाता। निज क्रित करम भोग सब भ्राता॥[21]

संसार में दिखाई देती अनन्त अनेकता का कारण जीवों के कर्म हैं। एक माँ एक समय में चार बच्चों को जन्म देती है। माँ भी एक है, बाप भी एक है। बच्चे इकट्ठे जन्म लेते हैं, पर सब बच्चों का स्वभाव अलग-अलग होता है और जीवन का सफ़र अलग-अलग होता है। यह सब पिछले कर्मों के प्रभाव के कारण है।

दूसरी बात गुरु साहिब यह समझाना चाहते हैं कि तुम पिछले जन्मों के कर्मों के प्रभाव से बच नहीं सकते, पर आगे के लिए हर कर्म विवेक

और ज्ञान की रोशनी में करो क्योंकि तुम्हें देर-सवेर हर कर्म का फल ज़रूर भुगतना पड़ेगा। ठण्डे दिमाग़ और निष्पक्ष हृदय से विचार करने की आवश्यकता है कि अगर किसी भी कर्म का फल न मिलना हो तो इनसान किस क़िस्म के कर्म करना चाहेगा? यदि नेकी का फल नहीं मिलना तो नेक बनने की क्या आवश्यकता है? यदि बदी का परिणाम न भुगतना पड़े तो बदी से परहेज़ करने की क्या आवश्यकता है? पर अगर अपनी छुरी और अपनी गर्दन का नियम है तो समझदारी बुरे कर्मों से बचने में है। आज अपने भाग्य को कोसने का कोई लाभ नहीं है। इस जन्म के भाग्य को मालिक का भाणा समझकर भुगत लो। गुरु नानक साहिब सावधान करते हैं, 'दुखु सुखु दीआ जेहा कीआ॥'[22] भाग्य कुल मालिक ने लिखा है पर लिखा हमारे ही कर्मों के अनुसार है। इसलिए आज भाग्य और कुल मालिक को दोष देने से भाग्य नहीं बदल सकता पर इस जन्म में उन बीजों को बोने से बचना चाहिए, जो आगे जाकर हमारे लिए दुःख का कारण बन सकते हैं।

तीसरी बात गुरु साहिब यह समझाते हैं कि पुण्य, पापों का नाश नहीं कर सकते। जीव को दोनों तरह के कर्मों का फल अलग-अलग भुगतना पड़ता है। गुरु नानक साहिब का कथन है:

मनहठ बुधी केतीआ केते बेद बीचार॥
केते बंधन जीअ के गुरमुखि मोख दुआर॥[23]

आप फ़रमाते हैं कि वेदों-शास्त्रों का ज्ञान और अनेक तरह के शुभ कर्म, कर्मों के बन्धन में बढ़ोतरी कर सकते हैं, कर्मों के जाल को तोड़ने में सहायता नहीं देते। यदि पाप लोहे की बेड़ियाँ हैं तो पुण्य सोने की ज़ंजीरें हैं क्योंकि दोनों तरह के कर्मों को भोगने के लिए जीव आवागमन के जाल में बँधा रहता है। कबीर साहिब का कथन है:

कबीर भांग माछुली सुरा पानि जो जो प्रानी खांहि॥
तीरथ बरत नेम कीए ते सभै रसातलि जांहि॥[24]

आप सावधान करते हैं कि मांस खाने वाले, शराब पीने वाले और नशों का प्रयोग करनेवाले लोग चाहे लाख पुण्य कर लें, नरकों की आग से नहीं बच सकते। भाव यह है कि पुण्य, पापों का नाश नहीं कर सकते और हमें दोनों का फल अलग-अलग भुगतना पड़ता है। गुरु नानक साहिब की वाणी है:

गुरमुखि नामु जपै मनु रूड़ा॥[25]

गुरमुखि मनु असथाने सोई॥ गुरमुखि त्रिभवणि सोझी होई॥
इहु मनु जोगी भोगी तपु तापै॥ गुरमुखि चीन्है हरि प्रभु आपै॥
मनु बैरागी हउमै तिआगी॥ घटि घटि मनसा दुबिधा लागी॥
राम रसाइणु गुरमुखि चाखै॥ दरि घरि महली हरि पति राखै॥
इहु मनु राजा सूर संग्रामि॥ इहु मनु निरभउ गुरमुखि नामि॥
मारे पंच अपुनै वसि कीए॥ हउमै ग्रासि इकतु थाइ कीए॥
गुरमुखि राग सुआद अन तिआगे॥ गुरमुखि इहु मनु भगती जागे॥
अनहद सुणि मानिआ सबदु वीचारी॥ आतमु चीन्हि भए निरंकारी॥
इहु मनु निरमलु दरि घरि सोई॥ गुरमुखि भगति भाउ धुनि होई॥
अहिनिसि हरि जसु गुर परसादि॥ घटि घटि सो प्रभु आदि जुगादि॥
राम रसाइणि इहु मनु माता॥। सरब रसाइणु गुरमुखि जाता॥
भगति हेतु गुर चरण निवासा॥ नानक हरि जन के दासनि दासा॥[26]

गुरु साहिब समझा रहे हैं कि इस समय हमारे मन की अवस्था बहुत ख़राब है पर इस मन को गुरुमुखों के उपदेश के अनुसार अन्दर नाम की ध्वनि से जोड़ दिया जाये तो इस पर चढ़ी कर्मों और संस्कारों की सब मलिनताएँ दूर हो जाती हैं और जीवात्मा निर्मल होकर परमात्मा के साथ मिलाप का सौभाग्य प्राप्त कर लेती है।

आप 20वीं पउड़ी में कहते हैं, 'भरीऐ मति पापा कै संगि॥ ओहु धोपै नावै कै रंगि॥' गुरु साहिब समझा रहे हैं कि नाम हर तरह के कर्मों और संस्कारों की मलिनताओं का नाश कर देता है। जब बड़े-बड़े चोर, कसाई

और डाकू नाम से लिव जोड़कर सन्त-महात्मा बन सकते हैं तो हम भी अपनी वर्तमान दशा के बावजूद कर्मों का जाल तोड़कर प्रभु के साथ मिलाप कर सकते हैं।

गुरु साहिब जीवात्मा को धरती रूपी धर्मशाला अर्थात् कर्म और फल के इस जगत् से ऊपर उठकर सचखण्ड रूपी विशुद्ध प्रेम और विशुद्ध दया के देश में पहुँचने का सन्देश देते हैं। आज हम मन, माया और काल के देश में क़ैद हैं। इस द्वैत और परिवर्तन के देश में सुख-दुःख और जन्म-मरण की द्वैत स्वाभाविक है। यह काल का देश है। सचखण्ड दयाल का देश है। वह द्वैत और परिवर्तन की सीमा से परे और ऊपर है। उसमें केवल प्रेम और दया का प्रसार है जिस कारण वहाँ पूर्ण सहज और पूर्ण आनन्द है।

मनि जीतै जगु जीतु

गुरु साहिब ने 'जपुजी' की 28वीं पउड़ी में 'मनि जीतै जगु जीतु' का सन्देश दिया है। आप उपदेश देते हैं कि अगर मन को जीत लेंगे तो संसार को जीत लेंगे, अर्थात् जगत् को पार करके जगदीश तक पहुँच जायेंगे।

गुरु साहिब समझाना चाहते हैं कि हमारे सामने दो रास्ते हैं— मन के कहे चलने का रास्ता और परमात्मा के हुक्म के अनुसार चलने का रास्ता। आप 'जपुजी' की पहली पउड़ी की पहली चार पंक्तियों में समझाते हैं कि हम मनमर्ज़ी से चाहे लाखों तीर्थों पर स्नान कर लें पर इससे मन निर्मल नहीं हो सकता। हम मन की मर्ज़ी के अनुसार मन को चुप या शान्त करने के चाहे लाखों यत्न कर लें पर इससे मन चुप, शान्त या स्थिर नहीं हो सकता। हम मनमर्ज़ी से लाखों ग्रन्थों-शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त कर लें और बहुत बुद्धिमान, विद्वान् या आलिम-फ़ाज़िल बन जायें, पर इससे हमें सत्य की पहचान नहीं हो सकती। जब तक हम मन के अधीन होकर कर्म करते रहेंगे, कूड़िआर रहेंगे। आप इसी पउड़ी की अन्तिम पंक्ति में

समझाते हैं— 'हुकमि रजाई चलणा नानक लिखिआ नालि॥' हम माया रूपी कूड़ को प्रेम करनेवाले कूड़िआर से परमात्मा रूपी सत्य को प्रेम करनेवाले सचिआर, केवल परमात्मा के हुक्म की पहचान द्वारा बन सकते हैं।

गुरु साहिब 'जपुजी' की दूसरी पउड़ी में समझाते हैं कि जो कुछ हुआ है परमात्मा के हुक्म से हुआ है, जो कुछ हो रहा है परमात्मा का किया हो रहा है और जो कुछ होगा, उस एक कर्ता का किया होगा। जिसे इस बात का अनुभव हो जाता है, वह मनमत छोड़ देता है। उसका हौंमैं का रोग मिट जाता है और वह परमात्मा के हुक्म से एक-स्वर होकर कूड़िआर से सचिआर बन जाता है।

गुरु साहिब के उपरोक्त विचार को गुरु अमरदास जी की वाणी के नीचे लिखे प्रसंग द्वारा समझने की कोशिश करते हैं:

मनमुखु लोकु समझाईऐ कदहु समझाइआ जाइ॥
मनमुखु रलाइआ ना रलै पइऐ किरति फिराइ॥
लिव धातु दुइ राह है हुकमी कार कमाइ॥
गुरमुखि आपणा मनु मारिआ सबदि कसवटी लाइ॥
मन ही नालि झगड़ा मन ही नालि सथ मन ही मंझि समाइ॥
मनु जो इछे सो लहै सचै सबदि सुभाइ॥
अंम्रित नामु सद भुंचीऐ गुरमुखि कार कमाइ॥
विणु मनै जि होरी नालि लुझणा जासी जनमु गवाइ॥
मनमुखी मनहठि हारिआ कूड़ु कुसतु कमाइ॥
गुर परसादी मनु जिणै हरि सेती लिव लाइ॥
नानक गुरमुखि सचु कमावै मनमुखि आवै जाइ॥[27]

उपरोक्त प्रसंग को इस पंक्ति से शुरू करते हैं—'लिव धातु दुइ राह है हुकमी कार कमाइ॥' गुरु साहिब समझाते हैं कि परमात्मा ने अपने हुक्म द्वारा संसार में दो रास्ते बनाये हैं—'लिव' का रास्ता और 'धातु' का रास्ता। 'धातु' के रास्ते से भाव माया के प्रेम के रास्ते, मनमत, हौंमैं,

अज्ञान या कूड़ के रास्ते से है और 'लिव' के रास्ते से भाव परमात्मा के नाम से लिव जोड़ने या गुरुमत के रास्ते से है। गुरु साहिब समझाते हैं कि संसार में दो तरह के लोग हैं—मनमुख और गुरुमुख। मनमुखों को लाख समझाया जाये कि मनमत विनाश का मार्ग है, वे कभी भी मनमत छोड़ने के लिए तैयार नहीं होते। परिणाम यह होता है कि वे किये हुए कर्मों का फल भोगने के लिए आवागमन के चक्कर से बँधे रहते हैं। इसके विपरीत गुरुमुख लोग अपने मन की मति त्यागकर परमात्मा के हुक्म के अनुसार अपनी लिव नाम या शब्द के साथ जोड़ लेते हैं। उनका मन दुश्मन से दोस्त बन जाता है। उनका मन उनको माया, हौंमैं, अज्ञान और भ्रम की तरफ़ खींचने की बजाय परमात्मा और उसके नाम की तरफ़ खींचना शुरू कर देता है। 'मन ही नालि झगड़ा मन ही नालि सथ मन ही मंझि समाइ॥' गुरु साहिब कहते हैं कि जो कुछ भी मिलता है, मन को 'धातु' की तरफ़ खींचने वाले दुश्मन से 'लिव' की तरफ़ खींचने वाला दोस्त बनाकर मिलता है। जब लिव को नाम के साथ जोड़ लेते हैं तो हमारा मन दोस्त बन जाता है। फिर यह आत्मा को अन्दर से बाहर और ऊपर से नीचे की तरफ़ खींचने की बजाय, बाहर से अन्दर, और नीचे से ऊपर की तरफ़ खींचना शुरू कर देता है। इसका क्या फल मिलता है? अन्दर से शब्द या नाम का अमृत पीकर मन की सभी तृष्णाएँ शान्त हो जाती हैं और यह मायामय आकर्षण से ऊपर उठ जाता है। नाम से लिव जोड़ने वाला गुरुमुख प्रभु रूपी सत्य में समाकर सचिआर बन जाता है पर नाम से विमुख मनमुख धातु, माया, हौंमैं, अज्ञान या मनमत में पड़कर अपना जन्म बरबाद कर लेता है।

गुरु नानक साहिब ने 'जपुजी' की पहली दो पउड़ियों में ही अपनी पूरी विचारधारा का सार समझा दिया है। आपने हुक्म की पहचान को हौंमैं या मनमत को नष्ट करने का और माया रूपी कूड़ से छुटकारा प्राप्त करके परमात्मा रूपी सत्य के साथ मिलाप करनेवाले सचिआर बनाने का साधन बताया है। हुक्म की पहचान से आपका भाव नाम के साथ लिव जोड़ना है। गुरु साहिब हमें हर क़िस्म के बाहरमुखी द्वैत, हर क़िस्म के

धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, व्यावहारिक और राजनीतिक झगड़ों की तरफ़ से ध्यान हटाकर, लिव अन्दर नाम के साथ जोड़ने का सन्देश देते हैं। आप हमें हर क़िस्म की बाहरमुखी करनी से हटाकर नाम के अन्तर्मुख अभ्यास का रास्ता दिखाते हैं।

गुरु साहिब समझाना चाहते हैं कि संसार में न कोई हमारा दोस्त है, न दुश्मन। हमारी वृत्ति ही हमारी दोस्त है और हमारी वृत्ति ही हमारी दुश्मन है। हमारा वास्तविक धर्म हमारी वृत्ति है और हमारी वास्तविक पहचान भी हमारी वृत्ति ही है। हम या तो मन की मर्ज़ी के अनुसार चल सकते हैं या परमात्मा के हुक्म के अनुसार चल सकते हैं। गुरु साहिब हमें मनमुखों जैसी वृत्ति त्यागकर परमात्मा के हुक्म के अनुसार लिव को नाम के साथ जोड़ने वाले गुरुमुख बनने की प्रेरणा देते हैं।

पीछे कबीर साहिब के इस कथन पर विचार कर आये हैं, 'इहु मनु सकती इहु मनु सीउ॥ इहु मनु पंच तत को जीउ॥' आप इस विचार को आगे बढ़ाते हुए कहते हैं, 'इहु मनु ले जउ उनमनि रहै॥ तउ तीनि लोक की बातै कहै॥'[28] आप समझाते हैं कि मन को वश में करके ब्रह्म में लीन कर दिया जाये तो जीव त्रिकालदर्शी हो जाता है। उसे भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों कालों का ज्ञान हो जाता है और वह पूरी त्रिलोकी को प्रत्यक्ष सामने देख सकता है। आप समझाते हैं:

> ममा मूल गहिआ मनु मानै॥ मरमी होइ सु मन कउ जानै॥
> मत कोई मन मिलता बिलमावै॥ मगन भइआ ते सो सचु पावै॥
> ममा मन सिउ काजु है मन साधे सिधि होइ॥
> मन ही मन सिउ कहै कबीरा मन सा मिलिआ न कोइ॥[29]

'मरमी होइ सु मन कउ जानै॥' आप समझाते हैं कि मन का रहस्य समझ सकना कठिन है। पर जो मन का रहस्य समझ लेता है, वह हर प्रकार के संकटों से मुक्त हो जाता है। 'मन साधे सिधि होइ'— आप समझा रहे हैं कि वर्तमान अवस्था में मन हमारा सबसे बड़ा दुश्मन है। जब नाम के सुमिरन द्वारा मन को इसके स्रोत ब्रह्म में लीन कर देते हैं तो

इस पर से पिछले जन्मों के कर्मों और संस्कारों की मलिनताएँ उतर जाती हैं। फिर मन पूरी तरह से निर्मल हो जाता है। 'मन सा मिलिआ न कोइ'—जो मन पहले जीव का सबसे बड़ा दुश्मन था, वही उसका सबसे अच्छा दोस्त बन जाता है। पहले मन जीवात्मा पर हावी था, फिर मन, आत्मा के हुक्म के अनुसार कार्य करता है। आत्मा परमात्मा का अंश है। यह परमात्मा की तरह सर्वज्ञाता है। जब इस पर से मन या कर्मों और संस्कारों के पर्दे उतर जाते हैं तो जीव परमात्मा के हुक्म के अनुसार कार्य करता है। 'हुकमि रजाई चलणा नानक लिखिआ नालि'[30] की अवस्था, मन को ब्रह्म में लीन करके या मन को जीत कर प्राप्त होती है। गुरु नानक साहिब की वाणी है:

कत की माई बापु कत केरा किदू थावहु हम आए॥
अगनि बिंब जल भीतरि निपजे काहे कंमि उपाए॥
मेरे साहिबा कउणु जाणै गुण तेरे॥ कहे न जानी अउगण मेरे॥
केते रुख बिरख हम चीने केते पसू उपाए॥
केते नाग कुली महि आए केते पंख उडाए॥
हट पटण बिज मंदर भंनै करि चोरी घरि आवै॥
अगहु देखै पिछहु देखै तुझ ते कहा छपावै॥
तट तीरथ हम नव खंड देखे हट पटण बाजारा॥
लै कै तकड़ी तोलणि लागा घट ही महि वणजारा॥
जेता समुंदु सागरु नीरि भरिआ तेते अउगण हमारे॥
दइआ करहु किछु मिहर उपावहु डुबदे पथर तारे॥
जीअड़ा अगनि बराबरि तपै भीतरि वगै काती॥
प्रणवति नानकु हुकमु पछाणै सुखु होवै दिनु राती॥[31]

हम केवल वर्तमान जन्म को ही पहला और अन्तिम समझने के भ्रम के शिकार हैं। हमारी सोच सिर्फ़ वर्तमान जन्म के माता-पिता और सगे-सम्बन्धियों तक सीमित है। गुरु साहिब प्रश्न करते हैं कि हमारे माता-

पिता कौन हैं और हम आये कहाँ से हैं? आप कहते हैं कि हमें यह तो पता है कि हम माता के पेट की जठराग्नि और पिता के वीर्य की बूँद से पैदा हुए हैं पर क्या हमने कभी यह भी सोचा है कि हमें उस कर्ता ने किस कार्य की पूर्ति के लिए पैदा किया है?

गुरु साहिब कहते हैं कि हमने लाखों जन्म वनस्पति संसार में वृक्षों के रूप में और लाखों जन्म कीड़े-पतंगों, साँप-बिच्छुओं और पशु-पक्षियों आदि की योनियों में लिए। जब किये हुए कर्मों का लेखा भुगत कर निचली योनियों से गुज़र कर मनुष्य-जन्म में पहुँचने का सौभाग्य प्राप्त हुआ तो सपने में भी यह न सोचा कि यह जन्म वास्तव में किस कार्य के लिए दिया गया है। अज्ञानवश यह जन्म भी चोरियों-ठगियों और अन्य अनेक प्रकार के घटिया कर्मों में बरबाद कर दिया। ये सब बुरे कर्म इस अज्ञान या भ्रम के अधीन किये कि न कोई हमारे कर्मों को देखने वाला है और न ही हिसाब माँगने वाला या सज़ा देनेवाला है। 'अगहु देखै पिछहु देखै तुझ ते कहा छपावै॥' वास्तविकता यह है कि जिस कर्ता ने रचना की है, हम उस मालिक से अपने कर्मों को नहीं छिपा सकते। वह हर जीव के कर्मों का हिसाब भी रखता है और हर कर्म का फल भी देता है। आप सावधान करते हैं कि जब तक जीव इस रचना में मनमानी करता रहता है, यह आवागमन के दु:खदायी चक्कर से बँधा रहता है। जीव को इस दर्दनाक संकट से छुटकारा कैसे मिले? गुरु साहिब उत्तर देते हैं, 'प्रणवति नानकु हुकमु पछाणै सुखु होवै दिनु राती॥' इस संकट का एकमात्र समाधान यह है कि जीव मनमत त्यागकर कुल मालिक के हुक्म की पहचान करे। जब यह मनमत त्यागकर कुल मालिक के हुक्म में आ जाता है तो यह परमात्मा के वियोग के लम्बे दु:खदायी सागर को पार करके, उससे मिलाप का अमर आनन्द प्राप्त कर लेता है।

हम हमेशा कर्म करने की आज़ादी माँगते हैं। हम अज्ञानवश यह नहीं समझते कि कर्म करने की आज़ादी फल भोगने की मजबूरी को जन्म देती है। हमें कर्म की आज़ादी की नहीं, कर्म से आज़ादी की ज़रूरत है। जब

परमात्मा के हुक्म के अनुसार कर्म करते हैं तो अपने आप फल भोगने की मजबूरी से मुक्त हो जाते हैं। गुरु नानक साहिब की वाणी है:

गुर सेवा ते लहै पदारथु॥ हिरदै नामु सदा किरतारथु॥
साची दरगह पूछ न होइ॥ माने हुकमु सीझै दरि सोइ॥
सतिगुरु मिलै त तिस कउ जाणै॥ रहै रजाई हुकमु पछाणै॥
हुकमु पछाणि सचै दरि वासु॥ काल बिकाल सबदि भए नासु॥
रहै अतीतु जाणै सभु तिस का॥ तनु मनु अरपै है इहु जिस का॥
ना ओहु आवै ना ओहु जाइ॥ नानक साचे साचि समाइ॥[32]

'हुकमु पछाणि सचै दरि वासु॥ काल बिकाल सबदि भए नासु॥' आप उपदेश देते हैं कि सतगुरु के हुक्म के अनुसार लिव शब्द या नाम के साथ जोड़ने वाला सेवक मन और माया द्वारा बुना गया आवागमन का जाल तोड़कर परमात्मा की दरगाह में पहुँच जाता है। 'ना ओहु आवै ना ओहु जाइ॥ नानक साचे साचि समाइ॥' वह परमात्मा रूपी सत्य में समाकर सत्य का रूप बन जाता है। यही 'कूड़िआर' से 'सचिआर' बनने का एकमात्र सच्चा साधन है जिसका गुरु साहिब ने 'जपुजी' में उपदेश दिया है।

'जपुजी': एक विवेचन

'जपुजी' एक अनुपम रचना है। इसके कर्ता ने उस पिता-परमात्मा से मिलाप करके उसके स्वरूप, उसके द्वारा रची रचना, रचना में लागू विधान और आत्मा के परमात्मा के साथ मिलाप के अनादि साधन और मार्ग पर प्रकाश डाला है।

'जपुजी' बहुपक्षीय रचना है। इसमें परमार्थी सिद्धान्त, परमात्मा के साथ मिलाप की युक्ति, सदाचारिक नियमावली (moral code), व्यक्तिगत आचरण (personal conduct) और सामाजिक आचार (social conduct) आदि को विशुद्ध रूहानी दृष्टि से पेश किया गया है।

'जपुजी' एक ऐसी खान है जिसकी जितनी गहरी खुदाई करते हैं, उसमें से विचारों के उतने रंग-बिरंगे, सुन्दर और अमूल्य हीरे बाहर निकलते हैं। 'जपुजी' वह सागर है, जिसमें जितनी गहरी डुबकी लगायी जाये, अर्थों के उतने ही क़ीमती मोती हाथ लगते हैं। 'जपुजी' को जितनी बार भी पढ़ा-सुना जाये, थोड़ा है। 'जपुजी' पर जितनी बार विचार किया जाये, थोड़ा है। 'जपुजी' का पढ़ना धन्य है, सुनना धन्य है, पर 'जपुजी' गहरे विचार की माँग करता है ताकि इसके उपदेश को भली-भाँति समझकर तथा श्रद्धापूर्वक मन में बिठाकर, जीवन को उसके अनुरूप ढाला जा सके।

परमार्थी सिद्धान्त

'जपुजी' में यह परमार्थी सिद्धान्त प्रकट किया गया है कि यह जगत् न तो अपने आप बना है और न ही अपने आप चल रहा है। यह उस सर्वशक्तिमान और सर्वज्ञाता प्रभु की रचना है। जगत् अपने सृष्टा की इच्छा, रज़ा या हुक्म का खेल है। सर्वशक्तिमान दो नहीं हो सकते और

रचित जगत् में दो रज़ाएँ नहीं चल सकतीं। जगत् में एक सर्वशक्तिमान और सर्वज्ञाता परमात्मा की रज़ा कार्यशील है। जड़ संसार भी अपने कर्ता की रज़ा के अनुसार कार्यशील है और प्राणधारी जीव भी उस एक कर्ता की रज़ा के अनुसार विचरण कर रहे हैं। सृजित जगत् में कुछ भी ऐसा नहीं होता, जो नहीं होना चाहिए था। इसमें जो कुछ होता है, विधि के विधान के अनुसार होता है। विधि का विधान ही भौतिक नियमों (Physical laws) की रचना करता है, यही सदाचारिक मूल्यों (Ethical values) का आधार और पारमार्थिक सिद्धान्तों (Spiritual principles) की बुनियाद है।

'जपुजी' द्वारा गुरु साहिब ने यह उपदेश दिया है:

अधूरे और नश्वर संसार में पूर्ण और अविनाशी सुख नहीं मिल सकता। आत्मा को पूर्ण और अविनाशी परमात्मा में लीन करने पर ही पूर्ण और अविनाशी सुख मिल सकता है। वह पूर्ण और अविनाशी परमात्मा भी अन्दर है तथा उससे मिलाप का साधन उसका नाम भी अन्दर है। नाम के साथ लिव जोड़ने की युक्ति सतगुरु से प्राप्त होती है और सतगुरु से मिलाप परमात्मा की दया-मेहर से होता है। लिव अन्दर नाम के साथ जोड़कर आत्मा को परमात्मा में लीन करना ही मनुष्य-जन्म का वास्तविक उद्देश्य है और इस उद्देश्य को पूरा करना ही परमात्मा के हुक्म का पालन करना है।

जब तक जीव जगत् का अंग है, इसको यह दृढ़ कर लेना चाहिए कि संसार में 'आपे बीजि आपे ही खाहु'[1] और 'नानक हुकमी आवहु जाहु'[2] का अटल नियम कार्यशील है। इस नियम का एक अंग यह है कि संसार रूपी कर्म-भूमि या धरती रूपी धर्मशाला में जो कुछ मिलता है, अपने किये हुए कर्मों के अनुसार मिलता है और किये हुए कर्मों का फल अवश्य भोगना पड़ता है। इसका दूसरा अंग यह है कि किये हुए कर्म जीव को चौरासी या आवागमन के चक्कर से बाँधकर रखने का मूल कारण हैं। जीव अपने किये हुए कर्मों, निजी संस्कारों और अपनी पैदा

की हुई आशाओं-तृष्णाओं की पूर्ति के लिए ही चौरासी के चक्कर से बँधा हुआ है। कर्म, कर्म का नाश नहीं कर सकते। पुण्य, पापों को समाप्त नहीं कर सकते। पुण्यों का फल अलग तथा पापों का फल अलग भोगना पड़ता है। आत्मा को संसार के साथ बाँधकर रखने के लिए पुण्य और पाप दोनों समान रूप से बलवान हैं। 'भरीऐ मति पापा कै संगि॥ ओहु धोपै नावै कै रंगि॥'[3] कर्मों और संस्कारों की मलिनताओं को परमात्मा के नाम का साबुन धोता है। चौरासी के चक्कर से छुटकारा परमात्मा के हुक्म की पहचान द्वारा होता है और हुक्म की पहचान का अर्थ नाम से लिव जोड़ना है।

'जपुजी' में प्रकट परमार्थी सिद्धान्तों का सबसे सूक्ष्म पहलू यह है कि जब तक परमात्मा की रज़ा परमात्मा की दया में नहीं बदलती, जीव कभी भी रचना से निकलकर रचयिता से मिलाप नहीं कर सकता। जिस रचयिता की रज़ा ने जीव को रचना में भेजा है, उसकी दया-मेहर ही इसे रचना से मुक्त करके अपने साथ मिला सकती है। सबकुछ परमात्मा की रज़ा पर निर्भर है और परमात्मा की रज़ा दया से भरपूर है।

साधनामय पहलू

'१ओ गुर प्रसादि'—परमात्मा की दया परमात्मा में समाकर परमात्मा का रूप हो चुके पूर्ण गुरुमुखों के मिलाप के रूप में प्रकट होती है। वह परमात्मा मानवीय यत्न, मानवीय बुद्धि या मानव द्वारा अदा की गयी क़ीमत से नहीं बल्कि पूर्ण गुरुमुखों से प्रसाद के रूप में मिलता है।

गुरुमुखों के 'प्रसाद' का व्यावहारिक अर्थ यह है कि गुरुमुख जीव की लिव अन्दर परमात्मा के नाम के साथ जोड़ते हैं। जैसे-जैसे जीव अन्दर परमात्मा के नाम का अभ्यास करता है, वैसे-वैसे वह नाम-रूप होता जाता है। नाम के अभ्यास द्वारा इसकी कर्मों, संस्कारों, इच्छाओं, तृष्णाओं आदि की सब प्रकार की मलिनताएँ उतर जाती हैं और अन्त में नाम के अभ्यास द्वारा यह नाम में समाकर उस नामी में ही लीन हो जाता है।

परमात्मा से छोटी कोई चीज़ जीवात्मा को परमात्मा के साथ नहीं मिला सकती। पूर्ण गुरुमुख परमात्मा का रूप होता है और उस निरंजन का नाम निरंजन का रूप है। बाहर से गुरुमुख के रूप में प्रकट परमात्मा जीव की सहायता करता है और अन्दर से नाम के रूप में कार्यशील परमात्मा जीव को रचना से मुक्त करके अपने साथ मिलाने का कार्य करता है। यह परमात्मा द्वारा परमात्मा की प्राप्ति के लिए स्वयं सृजित अनादि, सर्वसाँझा और परिवर्तनरहित साधन और मार्ग है। अन्य सब साधन और मार्ग मानव-कृत हैं। समय, स्थान और द्वैत से बँधे ये सब साधन जीवात्मा को रचना से बाँधकर रखते हैं। केवल परमात्मा द्वारा स्वयं-सृजित साधन और मार्ग पर चलकर ही जीव परमात्मा के साथ मिलाप करने के अपने दैविक उद्देश्य की पूर्ति में सफल हो सकता है।

सदाचारिक पहलू

'जपुजी' प्रभु-भक्ति को निर्मल सदाचार से तथा निर्मल सदाचार को प्रभु-भक्ति से जोड़ता है। परमात्मा की प्राप्ति नाम के साथ लिव जोड़ने से होती है, पर नाम के साथ लिव जोड़ने के लिए सदाचारिक निर्मलता ज़रूरी है। नाम रूपी निर्मल अमृत, निर्मल हृदय में ही रखा जा सकता है और हृदय नाम की कमाई से ही निर्मल होता है। प्रभु-भक्ति को जीवन का मूल उद्देश्य मानने वाले साधक को एक तरफ़ यह दृढ़ करना चाहिए कि प्रभु-भक्ति और विषयों के भोग इकट्ठे नहीं चल सकते और दूसरी तरफ़ यह समझना चाहिए कि हर तरह के गुणों की खान परमात्मा का नाम है। ऐसे साधक को विषय-विकारों की तरफ़ से मुँह मोड़ने का यत्न करना चाहिए और अपने अन्दर सत्य, सन्तोष, शील, क्षमा, दया, अहिंसा, विवेक और नम्रता आदि गुणों का विकास करना चाहिए और साथ ही अपनी लिव अन्तर में नाम के साथ जोड़ने का यत्न करना चाहिए। निर्मल आचरण नाम की कमाई में सहायता करता है और नाम की कमाई हर प्रकार के सदाचारिक गुणों की प्राप्ति का स्रोत बनती है।

'जपुजी' साधक को आलसी नहीं, उद्यमी और मेहनती बनाता है। यह उसे दूसरों पर निर्भर होने का नहीं, दूसरों की सेवा-सहायता का रास्ता दिखाता है। प्रभु के भक्त को अपनी आजीविका कमाने के लिए भी उद्यम करना चाहिए और नाम की कमाई में भी उत्साह और प्रेम से लगना चाहिए।

जीवन के अच्छे-बुरे हालात और दु:खों-सुखों को कुल मालिक की मौज या भाणा मानकर ख़ुशी-ख़ुशी स्वीकार करते हुए अपना ध्यान निरन्तर प्रभु-भक्ति की तरफ़ रखना चाहिए। भाणा मानने का असल अर्थ ही यह है कि चाहे दु:ख आयें चाहे सुख, ध्यान नाम की तरफ़ रहे और लिव नाम के साथ जुड़ी रहे।

सामाजिक पहलू

परमात्मा की प्राप्ति का सम्बन्ध मन-आत्मा की साधना से है, शरीर या इन्द्रियों की साधना से नहीं। परमेश्वर की प्राप्ति के लिए न घर-गृहस्थ के त्याग की ज़रूरत है, न हठ-कर्मों द्वारा शरीर को कष्ट देने की और न ही किसी दूसरे बाहरमुखी साधन में प्रवृत्त होने की। आत्मा को परमात्मा के साथ जोड़ने की विधि (योग) का सम्बन्ध इन्द्रियों के दमन से नहीं, साधक की वृत्ति से है। इसमें जाति, क़ौम, नस्ल, मुल्क, अमीरी, ग़रीबी, विद्या या अनपढ़ता का दख़ल नहीं। जीव की असली पहचान उसकी वृत्ति है। जीव का असली धर्म भी उसकी वृत्ति है। त्यागी वृत्ति का गृहस्थ भी त्यागी है और भोगी वृत्ति का त्यागी भी असल में भोगी है। परमेश्वर की प्राप्ति के लिए जीव को अपना मज़हब और मुल्क बदलने की ज़रूरत नहीं। उसको एक क़िस्म का पहरावा या कर्मकाण्ड छोड़कर दूसरी क़िस्म का पहरावा या कर्मकाण्ड धारण करने की ज़रूरत नहीं। उसको घर-गृहस्थी या समाज को तिलांजली देने की ज़रूरत नहीं। ज़रूरत है तो केवल स्वार्थी, भौतिक या भोगी वृत्ति की जगह पारमार्थिक वृत्ति धारण करने की। यह कार्य गृहस्थ जीवन में भी पूरी तरह से सम्भव है।

'जपुजी' शारीरिक या सामाजिक त्याग का नहीं, मन-आत्मा द्वारा किये जानेवाले त्याग का मार्ग दिखलाता है। इस मार्ग पर चलने वाला

साधक घर-गृहस्थी और समाज की सारी ज़िम्मेदारियाँ पूरी करता हुआ, लिव को अन्दर नाम के साथ जोड़कर पूर्णता प्राप्त कर सकता है। इससे वह एक अच्छा इनसान और अच्छा नागरिक ही नहीं, मानवता का सच्चा हितैषी और सेवक भी बन जाता है। उसकी सदाचारिक और आध्यात्मिक पूर्णता उसके निजी जीवन को भी सच्चे ज्ञान और पूर्ण आनन्द से भर देती है और उसके चारों तरफ़ भी प्रकाश और शीतलता फैलाती है। 'जपुजी' में 'जिनी नामु धिआइआ गए मसकति घालि' का सिद्धान्त 'नानक ते मुख उजले केती छुटी नालि'[4] के भाव से जुड़ा हुआ है। इस तरह एक की मुक्ति अनेक की मुक्ति का साधन बन जाती है।

पूर्ण दर्शन और पूर्ण जीवन-युक्ति

'जपुजी' मनुष्य को पूर्ण मनुष्य बनाना चाहता है। यह मनुष्य की दृष्टि को विशाल बनाता है। आम तौर पर मनुष्य केवल भौतिक, मानसिक, वैज्ञानिक और कलात्मक विकास के बारे में सोचता है। वह केवल इन्द्रियों और मानसिक भोगों से प्राप्त होनेवाले सुखों की लालसा में खोया रहता है। 'जपुजी' उसको आत्मिक विकास और उससे प्राप्त होनेवाले पूर्ण ज्ञान और परम आनन्द का रास्ता दिखाता है। यह भौतिक, मानसिक या वैज्ञानिक विकास का विरोध किये बिना आत्मिक विकास द्वारा प्राप्त होनेवाले ज्ञान और सुख की आवश्यकता महसूस करवाता है।

'जपुजी' किसी काल्पनिक सिद्धान्त को पेश नहीं करता। यह एक पूर्ण पुरुष के निजी अनुभव पर आधारित ऐसा पूर्ण दर्शन और ऐसी पूर्ण जीवन-युक्ति प्रस्तुत करता है, जो व्यक्ति के लोक और परलोक दोनों को सुखी बनाने का विश्वास दिलाती है।

'जपुजी' पाठक के मन में इसके कर्ता के प्रति प्रेम-भरी श्रद्धा का भाव उत्पन्न करता है और यह श्रद्धा पाठक को अपना जीवन गुरु नानक साहिब द्वारा 'जपुजी' में दिये गये उपदेश के अनुसार ढालने की प्रेरणा देती है ताकि वह संसार में आने के अपने दिव्य उद्देश्य की पूर्ति कर सके।

सन्दर्भ सूची

भूमिका

1. आदि ग्रन्थ, पृ. 1
2-3. आदि ग्रन्थ, पृ. 2
4. आदि ग्रन्थ, पृ. 5
5. आदि ग्रन्थ, पृ. 4
6. आदि ग्रन्थ, पृ. 6
7. आदि ग्रन्थ, पृ. 3
8. आदि ग्रन्थ, पृ. 6
9. रामचरितमानस, 1.240.2

निजी भाव

1. आदि ग्रन्थ, पृ. 969
2. आदि ग्रन्थ, पृ. 674

मूल-मन्त्र

1. आदि ग्रन्थ, पृ. 144
2. गुरु अर्जुन देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 292
3. आदि ग्रन्थ, पृ. 858
4. आदि ग्रन्थ, पृ. 23
5. आदि ग्रन्थ, पृ. 611
6. आदि ग्रन्थ, पृ. 97
7. आदि ग्रन्थ, पृ. 1048
8. आदि ग्रन्थ, पृ. 1077
9. आदि ग्रन्थ, पृ. 740
10. आदि ग्रन्थ, पृ. 463
11. आदि ग्रन्थ, पृ. 1083
12. आदि ग्रन्थ, पृ. 4
13. आदि ग्रन्थ, पृ. 353
14. गुरु नानक देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 229
15. गुरु नानक देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 1026
16. आदि ग्रन्थ, पृ. 910
17. गुरु नानक देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 464
18. गुरु अर्जुन देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 292
19. गुरु नानक देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 294
20. आदि ग्रन्थ, पृ. 1045
21. गुरु अर्जुन देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 1122
22. आदि ग्रन्थ, पृ. 1275
23. आदि ग्रन्थ, पृ. 1037
24. आदि ग्रन्थ, पृ. 463
25. आदि ग्रन्थ, पृ. 684
26. गुरु नानक देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 796
27. गुरु अमरदास जी, पृ. 842
28. आदि ग्रन्थ, पृ. 464
29. गुरु रामदास, आदि ग्रन्थ, पृ. 348
30. गुरु अर्जुन देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 293
31. आदि ग्रन्थ, पृ. 931
32. आदि ग्रन्थ, पृ. 1076

33. आदि ग्रन्थ, पृ. 1082
34. आदि ग्रन्थ, पृ. 609
35. आदि ग्रन्थ, पृ. 452
36. गुरु नानक देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 597
37. गुरु अर्जुन देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 73
38. गुरु नानक देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 223
39. गुरु नानक देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 421
40. गुरु अमरदास, आदि ग्रन्थ, पृ. 1054
41. गुरु अमरदास, आदि ग्रन्थ, पृ. 173
42. गुरु अमरदास, आदि ग्रन्थ, पृ. 110
43. आदि ग्रन्थ, पृ. 134
44. गुरु नानक देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 466
45. गुरु नानक देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 72
46. गुरु नानक देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 1009
47. गुरु अर्जुन देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 52
48. गुरु रामदास, आदि ग्रन्थ, पृ. 556
49. गुरु अमरदास, आदि ग्रन्थ, पृ. 1046
50. गुरु नानक देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 221
51. कबीर, आदि ग्रन्थ, पृ. 324
52. गुरु अर्जुन देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 102
53. गुरु अर्जुन देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 864
54. गुरु अर्जुन देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 852
55. गुरु अमरदास, आदि ग्रन्थ, पृ. 594
56. गुरु नानक देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 227
57. आदि ग्रन्थ, पृ. 1245
58. आदि ग्रन्थ, पृ. 262
59. आदि ग्रन्थ, पृ. 612
60. आदि ग्रन्थ, पृ. 1076
61. आदि ग्रन्थ, पृ. 1279
62. वारां भाई गुरदास, 1.17
63. आदि ग्रन्थ, पृ. 262
64-65. आदि ग्रन्थ, पृ. 917

जपु

1. आदि ग्रन्थ, पृ. 227
2. आदि ग्रन्थ, पृ. 1039
3. आदि ग्रन्थ, पृ. 1050
4. आदि ग्रन्थ, पृ. 345
5. आदि ग्रन्थ, पृ. 740
6. आदि ग्रन्थ, पृ. 1047
7. आदि ग्रन्थ, पृ. 1075
8. आदि ग्रन्थ, पृ. 1077
9. आदि ग्रन्थ, पृ. 1049

पउड़ी 1

1. गुरु अर्जुन देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 265
2. गुरु अमरदास, आदि ग्रन्थ, पृ. 1045
3-4. आदि ग्रन्थ, पृ. 1367
5. आदि ग्रन्थ, पृ. 1348
6. आदि ग्रन्थ, पृ. 278
7. आदि ग्रन्थ, पृ. 1287
8. आदि ग्रन्थ, पृ. 958
9. आदि ग्रन्थ, पृ. 147
10. आदि ग्रन्थ, पृ. 151
11. आदि ग्रन्थ, पृ. 287
12. आदि ग्रन्थ, पृ. 541
13. आदि ग्रन्थ, पृ. 140

14. आदि ग्रन्थ, पृ. 231
15. आदि ग्रन्थ, पृ. 1077
16. गुरु नानक देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 468
17. गुरु नानक देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 419
18. गुरु नानक देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 937
19. गुरु नानक देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 463
20. नामदेव, आदि ग्रन्थ, पृ. 1351
21. गुरु रामदास, आदि ग्रन्थ, पृ. 1242
22. गुरु अमरदास, आदि ग्रन्थ, पृ. 162
23. आदि ग्रन्थ, पृ. 1242
24. गुरु नानक देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 72
25. आदि ग्रन्थ, पृ. 199
26. आदि ग्रन्थ, पृ. 106

पउड़ी 2

1. आदि ग्रन्थ पृ. 1061
2. आदि ग्रन्थ, पृ. 55
3. आदि ग्रन्थ, पृ. 786
4. आदि ग्रन्थ, पृ. 1075
5. गुरु नानक देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 903
6. आदि ग्रन्थ, पृ. 418
7. आदि ग्रन्थ, पृ. 1241
8. आदि ग्रन्थ, पृ. 7
9. आदि ग्रन्थ, पृ. 475
10. आदि ग्रन्थ, पृ. 463
11. आदि ग्रन्थ, पृ. 98
12. आदि ग्रन्थ, पृ. 205
13. आदि ग्रन्थ, पृ. 1009
14. आदि ग्रन्थ, पृ. 161
15. आदि ग्रन्थ, पृ. 466
16. आदि ग्रन्थ, पृ. 800
17. आदि ग्रन्थ, पृ. 496
18. आदि ग्रन्थ, पृ. 560
19. आदि ग्रन्थ, पृ. 568

पउड़ी 3

1. आदि ग्रन्थ, पृ. 1045
2. आदि ग्रन्थ, पृ. 579
3. आदि ग्रन्थ, पृ. 912
4. आदि ग्रन्थ, पृ. 25
5. आदि ग्रन्थ, पृ. 554
6. आदि ग्रन्थ, पृ. 802
7. आदि ग्रन्थ, पृ. 15
8. आदि ग्रन्थ, पृ. 635
9. आदि ग्रन्थ, पृ. 526

पउड़ी 4

1. आदि ग्रन्थ, पृ. 463
2. गुरु रामदास, आदि ग्रन्थ, पृ. 725
3. गुरु नानक देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 229
4. गुरु अमरदास, आदि ग्रन्थ, पृ. 1334
5. नामदेव, आदि ग्रन्थ, पृ. 1351
6. गुरु अमरदास, आदि ग्रन्थ, पृ. 515
7. गुरु नानक देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 4
8. गुरु अमरदास, आदि ग्रन्थ, पृ. 1334
9. गुरु नानक देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 1
10. गुरु अमरदास, आदि ग्रन्थ, पृ. 1043
11. गुरु नानक देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 1275
12. गुरु अमरदास, आदि ग्रन्थ, पृ. 602

13. पुरातन टीका, पृ. 5
14. आदि ग्रन्थ, पृ. 222
15. 1 जॉन 4.16
16. दसम ग्रन्थ, पृ. 14
17. आदि ग्रन्थ, पृ. 676
18. आदि ग्रन्थ, पृ. 47
19. आदि ग्रन्थ, पृ. 892
20. आदि ग्रन्थ, पृ. 1420
21. आदि ग्रन्थ, पृ. 958
22-23. आदि ग्रन्थ, पृ. 1266
24. आदि ग्रन्थ, पृ. 62
25. गुरु अमरदास, आदि ग्रन्थ, पृ. 121
26. आदि ग्रन्थ, पृ. 910
27. आदि ग्रन्थ, पृ. 1330
28. आदि ग्रन्थ, पृ. 1099
29. आदि ग्रन्थ, पृ. 734
30. आदि ग्रन्थ, पृ. 1384
31. आदि ग्रन्थ, पृ. 1383
32. आदि ग्रन्थ, पृ. 565
33. आदि ग्रन्थ, पृ. 115
34-35. आदि ग्रन्थ, पृ. 136
36. आदि ग्रन्थ, पृ. 1351
37. आदि ग्रन्थ, पृ. 1035
38. आदि ग्रन्थ, पृ. 1036
39. आदि ग्रन्थ, पृ. 354
40. आदि ग्रन्थ, पृ. 907
41. गुरु नानक देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 4
42. आदि ग्रन्थ, पृ. 1275
43. आदि ग्रन्थ, पृ. 1046
44. आदि ग्रन्थ, पृ. 469
45. आदि ग्रन्थ, पृ. 103
46. आदि ग्रन्थ, पृ. 277
47. गुरु नानक देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 2
48. गुरु नानक देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 1
49. प्राप्त नहीं
50. आदि ग्रन्थ, पृ. 510
51. आदि ग्रन्थ, पृ. 414
52-53. गुरु नानक देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 1
54. गुरु अंगद देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 139
55. आदि ग्रन्थ, पृ. 1026
56. गुरु अमरदास, आदि ग्रन्थ, पृ. 157
57. गुरु नानक देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 109
58. गुरु नानक देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 72
59. जैनेसिस 3.1-23
60-61. आदि ग्रन्थ, पृ. 1
62. आदि ग्रन्थ, पृ. 72
63. सेंट मैथ्यू 12.31
64. आदि ग्रन्थ, पृ. 763
65. गीता, 9.27-28
66. आदि ग्रन्थ, पृ. 236

पउड़ी 5

1. गुरु नानक देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 463
2. गुरु नानक देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 6
3. आदि ग्रन्थ, पृ. 104
4. आदि ग्रन्थ, पृ. 11
5. पुरातन टीका, पृ. 6
6. आदि ग्रन्थ, पृ. 432
7. आदि ग्रन्थ, पृ. 664
8. आदि ग्रन्थ, पृ. 109-110
9. आदि ग्रन्थ, पृ. 661
10. आदि ग्रन्थ, पृ. 223

11. गीता, 9.25
12. आदि ग्रन्थ, पृ. 592
13. आदि ग्रन्थ, पृ. 917
14. आदि ग्रन्थ, पृ. 1058
15. आदि ग्रन्थ, पृ. 2
16-17. आदि ग्रन्थ, पृ. 6
18. आदि ग्रन्थ, पृ. 7
19. गुरु अर्जुन देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 263
20. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब कोश, पृ. 371
21. आदि ग्रन्थ, पृ. 1024
22. आदि ग्रन्थ, पृ. 1279
23. गुरु नानक देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 795
24. आदि ग्रन्थ, पृ. 1018

पउड़ी 6

1. आदि ग्रन्थ, पृ. 687
2. आदि ग्रन्थ, पृ. 13
3. आदि ग्रन्थ, पृ. 1323

पउड़ी 7

1. पुरातन टीका, पृ. 8

पउड़ी 8

1. आदि ग्रन्थ, पृ. 740
2. आदि ग्रन्थ, पृ. 1240
3. आदि ग्रन्थ, पृ. 1046
4. संथ्या श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, भाग 1, पृ. 76
5. आदि ग्रन्थ, पृ. 637
6. आदि ग्रन्थ, पृ. 1239
7. आदि ग्रन्थ, पृ. 1240
8. आदि ग्रन्थ, पृ. 262

पउड़ी 9

1. आदि ग्रन्थ, पृ. 1030
2. आदि ग्रन्थ, पृ. 1041
3. आदि ग्रन्थ, पृ. 695
4-5. आदि ग्रन्थ, पृ. 754
6. आदि ग्रन्थ, पृ. 197
7. आदि ग्रन्थ, पृ. 263
8. आदि ग्रन्थ, पृ. 262

पउड़ी 10

1. आदि ग्रन्थ, पृ. 990
2. आदि ग्रन्थ, पृ. 1332
3. आदि ग्रन्थ, पृ. 1
4. आदि ग्रन्थ, पृ. 1240

पउड़ी 11

1. आदि ग्रन्थ, पृ. 954
2. आदि ग्रन्थ, पृ. 364
3. आदि ग्रन्थ, पृ. 846
4. गुरु नानक देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 1009

5. आदि ग्रन्थ, पृ. 1240
6. संथ्या श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, भाग 1, पृ. 73-83
7. आदि ग्रन्थ, पृ. 730
8. आदि ग्रन्थ, पृ. 540
9. आदि ग्रन्थ, पृ. 284
10. आदि ग्रन्थ, पृ. 1429
11. आदि ग्रन्थ, पृ. 1291
12. गुरु नानक देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 1038
13. आदि ग्रन्थ, पृ. 663

पउड़ी 14

1. आदि ग्रन्थ, पृ. 1241
2. आदि ग्रन्थ, पृ. 256
3. गुरु अर्जुन देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 393
4. आदि ग्रन्थ, पृ. 621

पउड़ी 15

1-2. आदि ग्रन्थ, पृ. 1241
3. आदि ग्रन्थ, पृ. 312
4. आदि ग्रन्थ, पृ. 608
5. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब दर्पण, भाग 1, पृ. 71
6. महान कोश, पृ. 1003
7. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब कोश, पृ. 546
8. आदि ग्रन्थ, पृ. 4
9. गुरु नानक देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 15
10. आदि ग्रन्थ, पृ. 229
11. आदि ग्रन्थ, पृ. 1240
12. गुरु नानक देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 152
13. आदि ग्रन्थ, पृ. 1241
14. आदि ग्रन्थ, पृ. 27
15. पुरातन टीका, पृ. 10
16. जपु-बीचार, पृ. 58
17. गुरु अमरदास, आदि ग्रन्थ, पृ. 585
18. गुरु रामदास, आदि ग्रन्थ, पृ. 1242
19. गुरु अमरदास, आदि ग्रन्थ, पृ. 112
20. गुरु अमरदास, आद्रि ग्रन्थ, पृ. 754
21. संथ्या श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, भाग 1, पृ. 14-15
22. संथ्या श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, भाग 1, पृ. 79

पउड़ी 16

1. गुरु अमरदास, आदि ग्रन्थ, पृ. 1413
2. गुरु अमरदास, आदि ग्रन्थ, पृ. 590
3-5. संथ्या श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, भाग 1, पृ. 85
6-7. संथ्या श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, भाग 1, पृ. 83
8. वारां भाई गुरदास, पृ. 359-360
9. वारां भाई गुरदास, पृ. 628
10. पुरातन टीका, पृ. 13-14
11. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब कोश, पृ. 397
12. जपु-बीचारु, पृ. 60-61
13. गुरु नानक देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 764
14. आदि ग्रन्थ, पृ. 985
15. भक्त बेणी जी, आदि ग्रन्थ, पृ. 974

16. वारां भाई गुरदास, 22.5
17. वारां भाई गुरदास, 39.2
18. नानक नाम नवेला, पृ. 87
19. गुरु अर्जुन देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 888
20. गुरु नानक देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 1040
21. गुरु रामदास, आदि ग्रन्थ, पृ. 1315
22. आदि ग्रन्थ, पृ. 2
23. आदि ग्रन्थ, पृ. 268
24. आदि ग्रन्थ, पृ. 464
25. आदि ग्रन्थ, पृ. 1345
26. आदि ग्रन्थ, पृ. 19
27. आदि ग्रन्थ, पृ. 1071
28-30. Motion & Motion's God, p. 84
31-33. Motion & Motion's God, p. 197.
34. Motion & Motion's God, p. 196
35-36. प्राप्त नहीं
37. मसनवी, दफ़्तर 1, पृ. 266
38. आदि ग्रन्थ, पृ. 948
39. आदि ग्रन्थ, पृ. 1078
40. आदि ग्रन्थ, पृ. 1003
41. शब्दार्थ श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, पृ. 1003
42. वारां भाई गुरदास, 26.2
43. वारां भाई गुरदास, 26.35
44. दसम ग्रन्थ, पृ. 1387
45. Ths Story of Creation, p. 116.
46. Religion & Philosophy of the Vedas, Vol. 32. pp. 435-36.
47. सेंट जान 1.1, 3
48. जैनेसिस 1.3
49. कुरान 36.82
50. दीवाने-नयाज़ बरेलवी, पृ. 91
51. प्राप्त नहीं
52. The Principal Upanishads, p. 62
53. सारबचन, 38.12.17
54. सारबचन, 9.2.1-4
55. आदि ग्रन्थ, पृ. 908
56. आदि ग्रन्थ, पृ. 246
57. शब्दार्थ श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, पृ. 246
58. आदि ग्रन्थ, पृ. 117
59. शब्दार्थ श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, पृ. 117
60. आदि ग्रन्थ, पृ. 359
61. आदि ग्रन्थ, पृ. 910

पउड़ी 17

1. पुरातन टीका, पृ. 15

पउड़ी 18

1. आदि ग्रन्थ, पृ. 140
2. आदि ग्रन्थ, पृ. 789
3. आदि ग्रन्थ, पृ. 954
4. आदि ग्रन्थ, पृ. 1015
5. आदि ग्रन्थ, पृ. 195
6. आदि ग्रन्थ, पृ. 1020
7. आदि ग्रन्थ, पृ. 141
8. आदि ग्रन्थ, पृ. 1350
9. आदि ग्रन्थ, पृ. 1103
10. आदि ग्रन्थ, पृ. 1375
11. आदि ग्रन्थ, पृ. 1350
12. आदि ग्रन्थ, पृ. 332
13. आदि ग्रन्थ, पृ. 468
14. आदि ग्रन्थ, पृ. 15

15. आदि ग्रन्थ, पृ. 1374
16. वारां भाई गुरदास, 37.21
17. आदि ग्रन्थ, पृ. 554
18. आदि ग्रन्थ, पृ. 1147
19. आदि ग्रन्थ, पृ. 1364
20. आदि ग्रन्थ, पृ. 278
21. आदि ग्रन्थ, पृ. 266
22. वारां भाई गुरदास, 31.4
23-24. आदि ग्रन्थ, पृ. 339
25. आदि ग्रन्थ, पृ. 755
26. आदि ग्रन्थ, पृ. 12
27. संत बानी संग्रह, भाग 2, पृ. 56-57
28. वारां भाई गुरदास, 1.24
29. आदि ग्रन्थ, पृ. 470

पउड़ी 19

1. गुरु नानक देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 1275
2. गुरु रामदास, आदि ग्रन्थ, पृ. 261
3. गुरु नानक देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 463
4. आदि ग्रन्थ, पृ. 284
5. गुरु अमरदास जी, आदि ग्रन्थ, पृ. 1090
6-7. गुरु अर्जुन देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 293
8-10. आदि ग्रन्थ, पृ. 284
11. संथ्या श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, भाग 1, पृ. 98-99

पउड़ी 20

1. आदि ग्रन्थ, पृ. 263
2. आदि ग्रन्थ, पृ. 4
3. आदि ग्रन्थ, पृ. 121
4-5. आदि ग्रन्थ, पृ. 62
6. पुरातन टीका, पृ. 17

पउड़ी 21

1. पुरातन टीका, पृ. 18
2. आदि ग्रन्थ, पृ. 484
3. आदि ग्रन्थ, पृ. 687
4. आदि ग्रन्थ, पृ. 909
5. गुरु नानक देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 1332
6. Guru Nanak and the Logos of Divine Manifestation, p. 284
7. Guru Nanak and the Logos of Divine Manifestation, p. 422
8. आदि ग्रन्थ, पृ. 1179
9. शब्दार्थ श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, भाग 4, पृ. 1179
10. आदि ग्रन्थ, पृ. 640
11. आदि ग्रन्थ, पृ. 725
12. आदि ग्रन्थ, पृ. 48
13. संथ्या श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, भाग 1, पृ. 103-105

पउड़ी 22

1. बृहद उपनिषद, 2.3.6
2. आदि ग्रन्थ, पृ. 117
3. आदि ग्रन्थ, पृ. 292

पउड़ी 23

1. गुरु नानक देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 9
2. गुरु नानक देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 348
3. आदि ग्रन्थ, पृ. 1416

पउड़ी 24

1. आदि ग्रन्थ, पृ. 284
2. रामचरितमानस, 1.22.1-2
3. रामचरितमानस, 1.23
4. पुरातन टीका, पृ. 21

पउड़ी 25

1. आदि ग्रन्थ, पृ. 9
2. रामचरितमानस, 3.32.1
3. रामचरितमानस, 7.0.6
4. आदि ग्रन्थ, पृ. 268
5. आदि ग्रन्थ, पृ. 1030
6. कबीर साखी, पृ. 175
7. आदि ग्रन्थ, पृ. 469
8. गीता, 2.23
9. प्राप्त नहीं
10. गुरु नानक देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 72
11. गुरु अर्जुन देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 386
12. आदि ग्रन्थ, पृ. 134
13. आदि ग्रन्थ, पृ. 672
14. आदि ग्रन्थ, पृ. 706
15. आदि ग्रन्थ, पृ. 676
16. आदि ग्रन्थ, पृ. 1413
17. आदि ग्रन्थ, पृ. 590

पउड़ी 26

1. आदि ग्रन्थ, पृ. 725
2. आदि ग्रन्थ, पृ. 852
3. आदि ग्रन्थ, पृ. 1123
4. आदि ग्रन्थ, पृ. 223
5. आदि ग्रन्थ, पृ. 931
6. आदि ग्रन्थ, पृ. 917
7-8. आदि ग्रन्थ, पृ. 9
9. गुरु नानक देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 795
10. आदि ग्रन्थ, पृ. 382

पउड़ी 27

1. आदि ग्रन्थ, पृ. 846
2. गुरु अर्जुन देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 621
3. कबीर, आदि ग्रन्थ, पृ. 1162
4. वारां भाई गुरदास, 26.35
5. वारां भाई गुरदास, 11.1
6. गुरु नानक देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 13

पउड़ी 28

1-2. आदि ग्रन्थ, पृ. 1012
3. दसम ग्रन्थ, पृ. 709
4. आदि ग्रन्थ, पृ. 1013
5. आदि ग्रन्थ, पृ. 279

6. आदि ग्रन्थ, पृ. 1245
7. आदि ग्रन्थ, पृ. 1089
8. आदि ग्रन्थ, पृ. 522
9. आदि ग्रन्थ, पृ. 879
10. आदि ग्रन्थ, पृ. 3
11. कबीर साखी-संग्रह, पृ. 131
12. गुरु नानक देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 840
13. आदि ग्रन्थ, पृ. 611
14. आदि ग्रन्थ, पृ. 1299
15. सेंट मैथ्यू 22.37-40
16. आदि ग्रन्थ, पृ. 1179
17-18. आदि ग्रन्थ, पृ. 62

पउड़ी 29

1. आदि ग्रन्थ, पृ. 273
2. आदि ग्रन्थ, पृ. 1038
3. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब कोश, पृ. 371
4. महान कोश, पृ. 57
5. आदि ग्रन्थ, पृ. 350
6. वारां भाई गुरदास, 3.17
7. कबीर साखी, पृ. 646
8. गुरु नानक देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 903
9. सारबचन, 20.27.1
10. आदि ग्रन्थ, पृ. 749
11. पलटू साहिब की बानी, भाग 1, कुण्डली 4
12. नितनेम ते होर बानीआं, पृ. 204
13. गुरु अर्जुन देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 527
14. वारां भाई गुरदास, 1.43
15. दसम ग्रन्थ, पृ. 157
16. आदि ग्रन्थ, पृ. 864
17. आदि ग्रन्थ, पृ. 509
18. आदि ग्रन्थ, पृ. 18
19. गुरु नानक देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 1030
20. आदि ग्रन्थ, पृ. 700

पउड़ी 31

1. आदि ग्रन्थ, पृ. 214
2. दादू दयाल की बानी, भाग 1, पृ. 188
3. आदि ग्रन्थ, पृ. 414
4. आदि ग्रन्थ, पृ. 1075
5. आदि ग्रन्थ, पृ. 1083
6. आदि ग्रन्थ, पृ. 1159
7. आदि ग्रन्थ, पृ. 227

पउड़ी 32

1. आदि ग्रन्थ, पृ. 263
2. गुरु नानक देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 941
3. आदि ग्रन्थ, पृ. 1136
4. आदि ग्रन्थ, पृ. 1298
5. आदि ग्रन्थ, पृ. 101
6. आदि ग्रन्थ, पृ. 941
7. आदि ग्रन्थ, पृ. 1113
8. आदि ग्रन्थ, पृ. 263
9-10. गुरु अर्जुन देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 262
11. आदि ग्रन्थ, पृ. 265
12. आदि ग्रन्थ, पृ. 891
13. आदि ग्रन्थ, पृ. 109-110
14. संथ्या श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, भाग 1, पृ. 15
15. आदि ग्रन्थ, पृ. 1384
16. आदि ग्रन्थ, पृ. 322

17. आदि ग्रन्थ, पृ. 661
18. आदि ग्रन्थ, पृ. 72
19. आदि ग्रन्थ, पृ. 284

पउड़ी 33

1. आदि ग्रन्थ, पृ. 48
2. आदि ग्रन्थ, पृ. 11
3. आदि ग्रन्थ, पृ. 98
4. आदि ग्रन्थ, पृ. 277
5. आदि ग्रन्थ, पृ. 83

पउड़ी 34

1. आदि ग्रन्थ, पृ. 736
2. आदि ग्रन्थ, पृ. 472
3. आदि ग्रन्थ, पृ. 20
4. वारां भाई गुरदास, 1.27
5. दसम ग्रन्थ, पृ. 14
6. आदि ग्रन्थ, पृ. 1167
7. आदि ग्रन्थ, पृ. 296
8-10. आदि ग्रन्थ, पृ. 266
11. आदि ग्रन्थ, पृ. 941
12. आदि ग्रन्थ, पृ. 224
13. आदि ग्रन्थ, पृ. 263
14. आदि ग्रन्थ, पृ. 378
15. आदि ग्रन्थ, पृ. 1379
16. आदि ग्रन्थ, पृ. 1427
17. गुरु अर्जुन देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 134
18-19. गुरु नानक देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 4
20. गुरु नानक देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 730
21. आदि ग्रन्थ, पृ. 706
22. आदि ग्रन्थ, पृ. 1379
23. गुरु नानक देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 463
24. गुरु अमरदास, आदि ग्रन्थ, पृ. 604
25. आदि ग्रन्थ, पृ. 1019

पउड़ी 36

1. आदि ग्रन्थ, पृ. 29
2. आदि ग्रन्थ, पृ. 344
3. आदि ग्रन्थ, पृ. 700
4. आदि ग्रन्थ, पृ. 342
5. मसनवी, दफ़्तर 6, पृ. 153
6. गुरु नानक देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 1034

पउड़ी 37

1. नानक नाम नवेला, पृ. 134
2. आदि ग्रन्थ, पृ. 334
3. आदि ग्रन्थ, पृ. 635
4. आदि ग्रन्थ, पृ. 1064
5. आदि ग्रन्थ, पृ. 754
6. आदि ग्रन्थ, पृ. 695
7. आदि ग्रन्थ, पृ. 1041
8. आदि ग्रन्थ, पृ. 425
9. आदि ग्रन्थ, पृ. 1039
10. आदि ग्रन्थ, पृ. 840
11. आदि ग्रन्थ, पृ. 1062
12. आदि ग्रन्थ, पृ. 305
13. आदि ग्रन्थ, पृ. 139
14. आदि ग्रन्थ, पृ. 577
15. आदि ग्रन्थ, पृ. 1016
16. आदि ग्रन्थ, पृ. 117

17. आदि ग्रन्थ, पृ. 345
18. आदि ग्रन्थ, पृ. 1019
19. आदि ग्रन्थ, पृ. 954
20. आदि ग्रन्थ, पृ. 345
21. आदि ग्रन्थ, पृ. 8
22. गुरु नानक देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 1024
23. आदि ग्रन्थ, पृ. 87
24. आदि ग्रन्थ, पृ. 279
25. दसम ग्रन्थ, पृ. 1
26. आदि ग्रन्थ, पृ. 684
27. आदि ग्रन्थ, पृ. 1033
28. आदि ग्रन्थ, पृ. 370
29. आदि ग्रन्थ, पृ. 1162
30. आदि ग्रन्थ,पृ. 657
31. सारबचन, 21: हिदायतनामा

पउड़ी 38

1. आदि ग्रन्थ, पृ. 471
2. कबीर साखी-संग्रह, पृ. 131
3. आदि ग्रन्थ, पृ. 855
4. आदि ग्रन्थ, पृ. 1348
5. आदि ग्रन्थ, पृ. 938
6. आदि ग्रन्थ, पृ. 522
7. आदि ग्रन्थ, पृ. 1046
8. पुरातन टीका, पृ. 33
9. दसम ग्रन्थ, पृ. 842
10. सारबचन 15.16.4
11. चरनदास जी की बानी, भाग 1, पृ. 16
12. आदि ग्रन्थ, पृ. 1062
13. प्राप्त नहीं
14. वारां भाई गुरदास, 28.1
15. कबीर साखी-संग्रह, पृ. 139
16. आदि ग्रन्थ, पृ. 225
17. कबीर साखी-संग्रह, पृ. 89
18. वारां भाई गुरदास, 1.17
19. आदि ग्रन्थ, पृ. 1384
20. कबीर साखी-संग्रह, पृ. 147
21. आदि ग्रन्थ, पृ. 151
22. 1 जान 4.16
23. आदि ग्रन्थ, पृ. 253
24. चरनदास जी की बानी, भाग 1, पृ. 10
25. आदि ग्रन्थ, पृ. 787
26. आदि ग्रन्थ, पृ. 1379
27. आदि ग्रन्थ, पृ. 722
28. आदि ग्रन्थ, पृ. 123
29. गुरु नानक देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 222
30. आदि ग्रन्थ, पृ. 60
31. आदि ग्रन्थ, पृ. 1164
32. कुल्लियात बुल्लेशाह, पृ. 123
33. आदि ग्रन्थ, पृ. 941
34. आदि ग्रन्थ, पृ. 263
35. आदि ग्रन्थ, पृ. 640
36. आदि ग्रन्थ, पृ. 1426
37. सेंट मार्क 12.30
38. गुरु नानक देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 730
39. गुरु रामदास, आदि ग्रन्थ, पृ. 1238
40. गुरु अमरदास, आदि ग्रन्थ, पृ. 1259
41. गुरु अमरदास, आदि ग्रन्थ, पृ. 441
42. आदि ग्रन्थ, पृ. 474
43. आदि ग्रन्थ, पृ. 522

सलोकु

1. गुरु अर्जुन देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 614
2. गुरु अर्जुन देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 289

'जपुजी' और हुक्म

1. गुरु अर्जुन देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 556
2. आदि ग्रन्थ, पृ. 1275
3. भाई बाले वाली जनम साखी, साखी सैयद जलाल
4. दसम ग्रंथ, बचित्र अ 5, 13:4
5. प्राप्त नहीं
6. John 5 : 30
7. Luke 11 : 2
8. आदि ग्रन्थ, पृ. 474
9. गुरु अमरदास, आदि ग्रन्थ, पृ. 227
10. गुरु अमरदास, आदि ग्रन्थ, पृ. 970
11. आदि ग्रन्थ, पृ. 958
12. भाई गुरदास, वारां 27:15
13. गुरु अमरदास, आदि ग्रन्थ, पृ. 510
14. गुरु अर्जुन देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 556
15. गुरु नानक देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 1
16. गुरु नानक देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 3
17. गुरु अमरदास, आदि ग्रन्थ, पृ. 910
18. आदि ग्रन्थ, पृ. 295
19. गुरु नानक देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 72

'जपुजी' और नाम

1. आदि ग्रन्थ, पृ. 139
2. आदि ग्रन्थ, पृ. 72

गुरु घर और नाम

1. आदि ग्रन्थ, पृ. 1136
2-3. आदि ग्रन्थ, पृ. 262
4. आदि ग्रन्थ, पृ. 296
5. आदि ग्रन्थ, पृ. 917
6-7. आदि ग्रन्थ, पृ. 463
8. आदि ग्रन्थ, पृ. 938
9-10. गुरु अर्जुन देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 1429
11. आदि ग्रन्थ, पृ. 1083
12. गुरु नानक देव, आदि ग्रन्थ पृ. 358
13. गुरु रामदास, आदि ग्रन्थ, पृ. 1316
14. आदि ग्रन्थ, पृ. 463
15. आदि ग्रन्थ, पृ. 351
16. गुरु अर्जुन देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 130
17. गुरु अमरदास, आदि ग्रन्थ, पृ. 644
18. गुरु अमरदास, आदि ग्रन्थ, पृ. 1334
19. कबीर साखी, पृ. 174
20. आदि ग्रन्थ, पृ. 1041
21. आदि ग्रन्थ, पृ. 22
22. आदि ग्रन्थ, पृ. 1316
23. गुरु नानक देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 229
24. गुरु अर्जुन देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 566-567
25. आदि ग्रन्थ, पृ. 1242
26. आदि ग्रन्थ, पृ. 1078
27. आदि ग्रन्थ, पृ. 117
28. आदि ग्रन्थ, पृ. 246
29. गुरु नानक देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 1026

30. गुरु अर्जुन देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 293
31. आदि ग्रन्थ, पृ. 922
32. गुरु अर्जुन देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 1002
33. आदि ग्रन्थ, पृ. 1078
34. आदि ग्रन्थ, पृ. 40
35. आदि ग्रन्थ, पृ. 1326
36. आदि ग्रन्थ, पृ. 1046
37. आदि ग्रन्थ, पृ. 49
38. आदि ग्रन्थ, पृ. 1413
39. आदि ग्रन्थ, पृ. 155
40. आदि ग्रन्थ, पृ. 378
41. आदि ग्रन्थ, पृ. 640
42. गुरु नानक देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 1283
43. गुरु अर्जुन देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 1208
44. गुरु अमरदास, आदि ग्रन्थ, पृ. 1175
45. गुरु अमरदास, आदि ग्रन्थ, पृ. 1055
46. गुरु अर्जुन देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 266
47. गुरु अमरदास आदि ग्रन्थ, पृ. 910
48. गुरु अमरदास, आदि ग्रन्थ, पृ. 754
49. दसम ग्रन्थ, पृ. 16
50. दसम ग्रन्थ, पृ. 24
51-52. गुरु अर्जुन देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 713
53. आदि ग्रन्थ, पृ. 1245
54. आदि ग्रन्थ, पृ. 40

'जपुजी' और गुरु साहिब का जीवन दर्शन

1. गुरु नानक देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 7
2-4. गुरु नानक देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 8
5-6. आदि ग्रन्थ, पृ. 1427
7. आदि ग्रन्थ, पृ. 463
8. गुरु नानक देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 8
9. अहादीसी-मनसवी, ए.एम. 70
10. आदि ग्रन्थ, पृ. 1034
11. आदि ग्रन्थ, पृ. 403
12. आदि ग्रन्थ, पृ. 1378
13. आदि ग्रन्थ, पृ. 469
14. आदि ग्रन्थ, पृ. 1362
15. आदि ग्रन्थ, पृ. 1384
16. आदि ग्रन्थ, पृ. 415
17. रत्नसागर, पृ. 84
18. आदि ग्रन्थ, पृ. 832
19. आदि ग्रन्थ, पृ. 342
20. आदि ग्रन्थ, पृ. 433
21. रामचरितमानस, 2.91.4
22. आदि ग्रन्थ, पृ. 581
23. आदि ग्रन्थ, पृ. 62
24. आदि ग्रन्थ, पृ. 1377
25-26. आदि ग्रन्थ, पृ. 415
27. आदि ग्रन्थ, पृ. 87
28-29. आदि ग्रन्थ, पृ. 342
30. आदि ग्रन्थ, पृ. 1
31. आदि ग्रन्थ, पृ. 156
32. आदि ग्रन्थ, पृ. 832

'जपुजी': एक विवेचन

1-3. गुरु नानक देव, आदि ग्रन्थ, पृ. 4
4. आदि ग्रन्थ, पृ. 8